सूर्यकुमारी-पुस्तकमाला

अकबरी दरबार

दूसरा भाग

अनुवादक

रामचंद्र वर्म्मा

काशी-नागरीप्रचारिणी सभा की ओर से

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

संवत १९८५] [मूल्य १॥)

परिचय

जयपुर राज्य के शेखावाटी प्रांत में खेतड़ी राज्य है। वहां के राजा श्रीअजीतसिंहजी बहादुर बड़े यशस्वी और विद्याप्रेमी हुए। गणित शास्त्र में उनकी अद्भुत गति थी। विज्ञान उन्हें बहुत प्रिय था। राजनीति में वह दक्ष और गुणग्राहिता में अद्वितीय थे। दर्शन और अध्यात्म की रुचि उन्हें इतनी थी कि विलायत जाने के पहले और पीछे स्वामी विवेकानंद उनके यहां महीनों रहे। स्वामीजी से घंटों शास्त्र-चर्चा हुआ करती। राजपूताने में प्रसिद्ध है कि जयपुर के पुण्यश्लोक महाराज श्रीरामसिंहजी को छोड़कर ऐसी सर्वतोमुख प्रतिभा राजा श्रीअजीत-सिंहजी ही में दिखाई दी।

राजा श्रीअजीतसिंहजी की रानी आउआ (मारवाड़) चांपावतजी के गर्भ से तीन संतति हुईं—दो कन्या, एक पुत्र। ज्येष्ठ कन्या श्रीमती सूरजकुँवर थीं जिनका विवाह शाहपुरा के राजाधिराज सर श्री नाहर-सिंहजी के ज्येष्ठ चिरंजीव और युवराज राजकुमार श्रीउमेदसिंहजी से हुआ। छोटी कन्या श्रीमती चाँदकुँवर का विवाह प्रतापगढ़ के महा-रावल साहब के युवराज महाराजकुमार श्रीमानसिंहजी से हुआ। तीसरी संतान जयसिंहजी थे जो राजा श्रीअजीतसिंहजी और रानी चांपावतजी के स्वर्गवास के पीछे खेतड़ी के राजा हुए।

इन तीनों के शुभचिंतकों के लिये तीनों की स्मृति, संचित कर्मों के परिणाम से, दुःखमय हुई। जयसिंहजी का स्वर्गवास सत्रह वर्ष की अवस्था में हुआ। सारी प्रजा, सब शुभचिंतक, संबंधी, मित्र और गुरुजनों का हृदय आज भी उस आँच से जल ही रहा है। अश्वत्थामा के व्रण की तरह यह घाव कभी भरने का नहीं। ऐसे आशामय जीवन का ऐसा निराशात्मक परिणाम कदाचित् ही हुआ हो। श्री सूरजकुँवर बाईजी को एक मात्र भाई के वियोग की ऐसी ठेस लगी कि दो ही तीन वर्ष में उनका शरीरांत हुआ। श्रीचांदकुँवर बाईजी को वैधव्य की विषम यातना भोगनी पड़ी और भ्रातृवियोग और पति-वियोग दोनों का

असह्य दुःख वे झेल रही हैं। उनके एकमात्र चिरंजीव प्रतापगढ़ के कुँवर श्रीरामसिंहजी से मातामह राजा श्रीअजीतसिंहजी का कुल प्रजावान् है।

श्रीमती सूर्यकुमारीजी के कोई संतति जीवित न रही। उनके बहुत आग्रह करने पर भी राजकुमार श्रीउमेदसिंहजी ने उनके जीवन-काल में दूसरा विवाह नहीं किया। किंतु उनके वियोग के पीछे, उनके आज्ञानुसार, कृष्णगढ़ में विवाह किया जिससे उनके चिरंजीव वंशांकुर विद्यमान हैं।

श्रीमती सूर्यकुमारीजी बहुत शिक्षिता थीं। उनका अध्ययन बहुत विस्तृत था। उनका हिंदी का पुस्तकालय परिपूर्ण था। हिंदी इतनी अच्छी लिखती थीं और अक्षर इतने सुंदर होते थे कि देखनेवाले चमत्कृत रह जाते। स्वर्गवास के कुछ समय के पूर्व श्रीमती ने कहा था कि स्वामी विवेकानंदजी के सब ग्रंथों, व्याख्यानों और लेखों का प्रामाणिक हिंदी अनुवाद मैं छपवाऊँगी। बाल्य काल से ही स्वामीजी के लेखों और अध्यात्म विशेषतः अद्वैत वेदांत की ओर श्रीमती की रुचि थी। श्रीमती के निर्देशानुसार इसका कार्यक्रम बांधा गया। साथ ही श्रीमती ने यह इच्छा प्रकट की कि इस संबंध में हिंदी में उत्तमोत्तम ग्रंथों के प्रकाशन के लिये एक अक्षय नीवी की व्यवस्था का भी सूत्रपात हो जाय। इसका व्यवस्थापत्र बनते बनते श्रीमती का स्वर्गवास हो गया।

राजकुमार उमेदसिंहजी ने श्रीमती की अंतिम कामना के अनुसार बीस हजार रुपए देकर काशी नागरीप्रचारिणी सभा के द्वारा इस ग्रंथमाला के प्रकाशन की व्यवस्था की है। स्वामी विवेकानंदजी के यावत् निबंधों के अतिरिक्त और भी उत्तमोत्तम ग्रंथ इस ग्रंथमाला में छापे जायँगे और अल्पमूल्य पर सर्वसाधारण के लिये सुलभ होंगे। ग्रंथमाला की बिक्री की आय इसी में लगाई जायगी। यों श्रीमती सूर्यकुमारी तथा श्रीमान् उमेदसिंहजी के पुण्य तथा यश की निरंतर वृद्धि होगी और हिंदी भाषा का अभ्युदय तथा उसके पाठकों को ज्ञान-लाभ होगा।

विषय-सूची

अकबरी दरबार

— · —

दूसरा भाग

खानजमाँ पर अकबर की पहली चढ़ाई

चुगली खानेवालों की प्रकृति मानो बंदर की प्रकृति का छापा है। उनसे निश्चल होकर बैठा नहीं जाता। उन्हें नाचने कूदने के लिये कोई न कोई चीज़ अवश्य चाहिए। उन लोगों ने इन विजयों का समाचार सुनकर बादशाह को फिर बहकाना आरंभ किया। वे जानते थे कि अकबर हाथियों का बहुत प्रेमी है; इसलिये उन्होंने इस विजय में प्राप्त खजानों और दूसरे अनेक अद्भुत पदार्थों का जो वर्णन किया, वह तो किया ही; साथ ही यह भी कहा कि इस युद्ध में खानजमाँ को वह वह हाथी मिले हैं कि देखनेवाले देखते हैं और समझते हैं। इसलिये जब बादशाह अहमदखाँ की व्यवस्था करके मालवे से लौटा तो आते ही फिर साहस के घोड़े पर सवार हो गया।

उसने मुनइमखाँ और ख्वाजा जहान आदि अमीरों को साथ लिया और काल्पी के मार्ग से होता हुआ वह अचानक कड़ा मानिकपुर जा पहुँचा। दोनों भाइयों को भी समाचार मिल गया था। वे भी जौनपुर से बढ़ते हुए चले आए थे। गंगा के तट पर कड़ा नामक स्थान में वे बादशाह की सेवा में उपस्थित हुए और सलाम करके सिर उठाकर खड़े हो गए। उन्होंने जान-माल सब कुछ हाजिर कर दिया। सारा झगड़ा हाथियों पर था। उन्होंने लूट में के बहुत से हाथी बल्कि साथ ही अपने फीलखाने के भी बहुत से हाथी बादशाह को भेंट किए। उनमें से दबिस्तकान, पलता, दलेल, सुबदलिया, जगमोहन आदि हाथी बादशाह को ऐसे पसंद आए कि खास बादशाह के साथ चलनेवाले हाथियों में सम्मिलित कर लिए गए। अकबर तो मानों कृपा और क्षमा का सागर था। इसके अतिरिक्त वह बहादुरखाँ के साथ खेला हुआ था; इसलिये वह उसे भाई भाई कहा करता था। तिस पर से खानजमाँ की वीरता और जान निछावर करनेवाली सेवाओं ने अकबर को अपना आशिक बना लिया था। इसलिये दोनों भाइयों के लिये उसके हृदय में विशेष स्थान था। वह उनसे बहुत हँसी खुशी से मिला। उनकी प्रतिष्ठा पहले से बहुत बढ़ाई; उन्हें खिलअतें पहनाईं और जरी की जीन तथा साजदार घोड़ों पर चढ़ाकर बिदा किया। पहले तो चुगली खानेवालों को बड़ी बड़ी आशाएँ थीं; पर जो जो बातें उन्होंने बादशाह के कान में

फूँकी थीं, उनका जिक्र भी जबान पर न आया। कवियों ने इस मेल की कई तारीखें भी कही थीं।

दोनों भाई दिग्विजय के क्षेत्र में अच्छे अच्छे काम दिखलाते थे और राजनीतिक विषयों में मानों पानी के ऊपर पत्थर की सी रेखा बैठाते थे। लेकिन फिर भी दरबार की ओर से उन्हें हतोत्साह और दुःखी ही होना पड़ता था। अकबर जैसे बादशाह को उचित था कि वह ऐसे जान निछावर करनेवालों का पूरा पूरा आदर करता। और फिर वे जान निछावर करनेवाले भी ऐसे वैसे नहीं थे। वे बहुत पुराने सेवा करनेवाले थे; इसी लिये सन् ९७१ हि० में मुल्ला अबदुल सुलतानपुरी, मौलाना अलाउद्दीन लारी, शहाब उद्दीन अहमदखां और वजीरखाँ को भेजा कि जाकर उन्हें समझाओ; उनसे तोबा कराओ और कहो कि वे निराश न हों। बादशाह की कृपा की नदी तुम्हारे वास्ते लहरें मार रही है।

फतहखाँ और हसनखाँ नामक अफगान अपने साथ अफगानों का बहुत बड़ा लश्कर लेकर रोहतास के किले से घटा की तरह उठे। उन्होंने सलीम शाह के पुत्र को बादशाह बनाकर लड़ाई का मंसूबा जमाया। उन्होंने बिहार प्रदेश पर विजय प्राप्त कर ली और वे इधर उधर बिजली की भांति कौंदने लगे। उन्होंने खानजमाँ के भी कुछ इलाके दबा लिए थे। दोनों भाइयों ने इब्राहीमखाँ उजबक और मजनूँ खाँ काकशाल को आगे बढ़ाया। पर देखा कि अफगानों का टिड्डी-दल जोरों में भरा चला आता

है। खुले मैदान में उनका मुकाबला न हो सकेगा, इसलिये उन्होंने सोन नदी के तट पर इंदरबारी नामक स्थान में दमदमे और मोरचे बाँधकर वहाँ का किला अच्छी तरह मजबूत कर लिया था और युद्ध के लिये तैयार बैठे थे। एक दिन बादशाही अमीर बैठे हुए आपस में बातचीत कर रहे थे। इतने में शत्रु आ पहुँचा और खानजमाँ की सेना को लपेटता हुआ नगर की ओर आया। खानजमाँ का लश्कर भागा। अफगान लोग खेमों डेरों वल्कि आस पास के घरों आदि तक को लूटने लगे। खानजमाँ उसी समय उठ खड़ा हुआ और सवार होकर निकला। जो लोग साथ हो सके, उन्हें लेकर किले की दीवार के नीचे आया। वहाँ खड़ा खड़ा ईश्वर की महिमा देख रहा था और किसी दैवी घटना की प्रतीक्षा कर रहा था। इतने में देखा कि हसनखाँ तिब्बती बख्तबुलंद नामक हाथी पर सवार चला आ रहा है। यह सेना लेकर उसके सामने हो गया और आक्रमण के लिये ललकारा। शत्रु की सेना अधिक थी। आक्रमण की चोट कुछ हलकी पड़ी और सेना बिखर गई। यह कुछ आदमियों को साथ लेकर मरने का दृढ़ विचार करके बुर्ज की ओर दौड़ा। वहाँ तोप तैयार थी। शत्रु हाथी पर सवार हथियाई करता हुआ चला आ रहा था। खानजमाँ ने अपने हाथ से निशाना बाँधकर झट तोप दाग दी। ईश्वर की महिमा देखिए, तोप से जो गोला निकला, वह मानो मौत का गोला था। हाथी इस प्रकार उलटकर

गिरा जिस प्रकार बुर्ज गिरता है। उसके गिरते ही पठानों के होश ठिकाने न रहे।

जब बहादुरखाँ को बैरमखाँ ने मालवे पर आक्रमण करने के लिये भेजा था, तब उसे कोहपारा नामक हाथी दिया था। वह हाथी कहीं इसी ओर जंजीरों से जकड़ा हुआ खड़ा था और बदमस्ती कर रहा था। अफगानी महावतों को उसकी करतूतों की खबर नहीं थी। उन्होंने आते ही उस पर अधिकार करने के लिये उसकी जंजीरें खोल दीं। वह अभी जंजीरों से निकला भी न था कि उनके अधिकार से निकल गया। एक फील-बान को तो उसने वहीं चीर डाला; और जंजीर को चकराता हुआ इस प्रकार चला मानो आँधी और भूकंप दोनों साथ ही आए हों। सारी सेना में आफत मच गई। शत्रु ने समझा कि खानजमाँ ने घात में से निकलकर पार्श्व पर आक्रमण किया है। जो पठान लूटने खसोटने में लगे हुए थे, वे बदहवास होकर भागे। खानजमाँ की सेना इस ईश्वरी सहायता को देखकर लौटी और अफगानों की सेना के पीछे दौड़ी। उसने शत्रु के बहुत से सैनिकों को मारा और बाँधा। लाखों रुपए का माल असबाब, अनेक बहुमूल्य पदार्थ, प्रसिद्ध हाथी, बढ़िया घोड़े और बहुत से अद्भुत तथा विलक्षण पदार्थ हाथ आए। उसने इस ईश्वरप्रदत्त विजय के शुकराने में बादशाह को बहुत से बहुमूल्य पदार्थ भेंट स्वरूप भेजे और अपने अमीरों को अनेक बहुमूल्य पदार्थ पुरस्कार स्वरूप दिए।

दूसरा आक्रमण

खानजमाँ का घोड़ा प्रताप के वातावरण में उड़ा चला जाता था कि इतने में फिर नहूसत की ठोकर लगी। इसमें कोई संदेह नहीं कि शत्रु हर दम दोनों भाइयों के पीछे पड़े रहते थे; परंतु ये दोनों भाई भी कुछ तो अपनी वीरता के नशे में और कुछ भोग-विलास से उत्पन्न उदासीनता के कारण शत्रुओं को चुगली खाने का अवसर ही नहीं देते थे। इतने में बादशाह की सेवा में शिकायतें पेश हुईं कि युद्धों में जो खजाने तथा बहुमूल्य पदार्थ आदि हाथ आए हैं, वे सब यह लिए बैठा है। यहां कुछ भी नहीं भेजता। इनमें से सफ-शिकन और कोहपारा नामक दो हाथियों की ऐसी प्रशंसा की गई कि सुनकर अकबर मस्त हो गया। और यह बात भी जरूर है कि खानजमाँ के जलसों में शत्रुओं का जिक्र आता होगा, तो ये उन्हें कोई चीज ही न समझते होंगे। ये लोग विजय की मस्ती और प्रताप के नशे में अपने वीरतापूर्ण कृत्यों को अपने वंश के गौरव से चमकाते थे और विपत्तियों की दिल्लगियां उड़ाया करते थे। इन सब बातों को उनके विपक्षी लोग अकबर के सामने ऐसे ढंग से कहा करते थे कि जिससे संकेत के नश्तर बादशाह की ओर चुभते थे और उसे इस बात का संदेह होता था कि ये लोग कहीं विद्रोह की तैयारी तो नहीं कर रहे हैं। यह संदेह इसलिये और भी भयंकर रूप धारण कर लेता था कि इन लोगों के साथ ईरानी, तूरानी,

अफगान और राजपूत सब मिलकर कोई तीस हजार सैनिक थे। यह जिस ओर घोड़ा उठाता था, उस ओर मानों आँधी और भूचाल साथ चलता था। पर शत्रुओं ने अकबर को इन लोगों के विरुद्ध कुछ ऐसा भड़काया था कि कई अवसरों पर उसने कहा था कि ये लोग शैबानीख़ाँ के वंश के नाम पर क्या घमंड किया करते हैं। जानते नहीं कि उसके कारण हमारे स्वर्गीय पूर्व पुरुषों ने क्या क्या कष्ट उठाए थे और कैसी कैसी विपत्तियाँ झेली थीं! मैं भारतवर्ष में उजबक का बीज तक न छोड़ूँगा। इससे भी बढ़कर बुरा संयोग यह हुआ कि इन्हीं दिनों में अब्दुल्ला उजबक आदि कुछ सरदार लगातार कुछ ऐसे अनुचित कृत्य कर बैठे कि बादशाह और भी नाराज हो गया। वे लोग भी जब दरबार की ओर से निराश हुए, तब खानजमाँ के पास जा पहुँचे और सब ने मिलकर विद्रोह खड़ा कर दिया।

विद्रोहियों ने विद्रोह करने के लिये आपस में देश का विभाग भी कर लिया था। उन्होंने निश्चय किया था कि सिकंदरखाँ उजबक और खानजमाँ का मामा इब्राहीमखाँ दोनों लखनऊ में रहें और खानजमाँ तथा बहादुरखाँ दोनों भाई कड़ा मानिकपुर में रहें। जब ये समाचार प्रसिद्ध हुए और विरोधियों ने दूर दूर से यह अवस्था देखी, तो वे इधर उधर से एकत्र होकर खानजमाँ पर आक्रमण करने के लिये आए, क्योंकि वही सबकी आँखों में खटकता था। और वास्तव

में जो कुछ था, वही था। बादशाह के यहाँ नमकहलाली की सौदागरी करनेवालों में मजनूँखाँ और बाकीखाँ काकशाल दो आदमी थे जिनके साथ बहुत अधिक सेना रहा करती थी और जो अपनी वीरता तथा परिश्रम दिखलाकर अभागे खानजमाँ की दो पीढ़ियों का परिश्रम नष्ट करना चाहते थे और बादशाह के हृदय पर अपनी छाप बैठाना चाहते थे। पर वह इन लोगों को क्या समझता था। उसने इन सबको मार मारकर भगा दिया। मजनूँखाँ भाग भी न सके। वह मानिकपुर में घिर गए। मुहम्मद अमीन दीवाना, जो उनके साथी थे, पकड़े गए। बादशाह के दरबार में आसफखाँ अभी तक बिल्कुल साफ और विद्रोह के अपराध से बचे हुए थे। वे मजनूँ की सहायता के लिये आए और आकर उन्हें घेरे में से निकाला। उन्होंने अपने खजाने खोल दिए और फिर से सैनिकों की कमर बँधवाई। मजनूँखाँ को भी बहुत से रुपए दिए। उन्हीं की बदौलत उसने फिर से अपने पर और बाल ठीक किए और दोनों मिलकर खानजमाँ के सामने बैठ गए। उन्होंने दरबार में अर्जियाँ परचे दौड़ाए, खबरें उड़ाए। वृद्ध बाकीखाँ ने अपने निवेदन-पत्र में एक शेर भी लिखा था, जिसका अभिप्राय यह था कि श्रीमान् स्वयं आवें और बहुत शीघ्र आवें।

अकबर उसी समय मालवे पर आक्रमण करके लौटा था। यह दशा देखकर उसने समझा कि मारका बेढब है। उसने

तुरंत मुनइमखाँ को भेजा कि सेना लेकर कन्नौज के घाट उतर जाओ। वह यह भी जानता था कि यह मुकाबला किससे है। साथ हो वह यह भी समझ गया था कि ये जो लोग आग लगाते हैं और सेनापति होने का दम भरते हैं, ये कितने पानी में हैं? इसलिये वह स्वयं कई दिनों तक सेना की तैयारियों में सवेरे से संध्या तक लगा रहा। उसने आस पास के अमीरों और सेनाओं को एकत्र किया। जो लोग उसके सामने उपस्थित थे, उन्हें उसने पूरा सिपाही बना दिया था। इस लश्कर में दस हजार तो केवल हाथी थे। बाकी पाठक आप ही समझ लें। इतना सब कुछ होने पर भी उसने प्रसिद्ध यह किया कि हम शिकार करने के लिये जा रहे हैं और बहुत ही फुरती के साथ चल पड़ा। यहाँ तक कि जो थोड़े से लोग खास उसके साथ में थे, वे इतने थोड़े थे कि गिनने के योग्य भी न थे।

मुनइमखाँ हरावल बनकर आगे आगे रवाना हुआ था। वह अभी कन्नौज में ही था कि अकबर भी वहाँ जा पहुँचा। पर वह बुड्ढा बहुत ही सुशील और शांतिप्रिय सरदार था। वह वास्तव में बादशाह का सच्चा शुभचिंतक और उसके लिये अपनी जान तक निछावर करनेवाला था। वह इस झगड़े की जड़ को अच्छी तरह जानता और समझता था। उसे किसी तरह यह बात मंजूर नहीं थी कि लड़ाई हो; और यह कई पीढ़ियों का सेवा करनेवाला व्यर्थ अपने शत्रुओं के हाथों

नष्ट हो। उस समय खानजमाँ मुहम्मदाबाद में बे-खबर बैठा हुआ था। यदि यह घोड़ा उठाकर जा पड़ता तो वह बहुत ही सहज में पकड़ा जाता। मुनइमखाँ ने उधर तो उसे होशियार कर दिया और इधर अपनी सेना को बहुत रोक थामकर ले चला कि अभी युद्ध की पूरी पूरी सामग्री तैयार नहीं है। पहले सब सामग्री एकत्र कर लेनी चाहिए और तब आगे बढ़ना चाहिए। इस बीच में खानजमाँ कहीं के कहीं पहुँच गए। इतना सब कुछ होने पर भी उसके कई सरदारों को बातचीत करके तोड़ लिया था और अपनी ओर मिला लिया था। उन सरदारों को बादशाह की सेवा में उपस्थित करके उनके अपराध क्षमा करा दिए। बादशाह ने उसे वहीं छोड़ा और आप धावा मारकर लखनऊ पहुँचा। सिकंदरखाँ पीछे हटा और भागता हुआ इसलिये जौनपुर पहुँचा कि वहाँ चलकर सब लोग मिलकर अपने बचने का कोई उपाय करें। बादशाह भी उनके इस मंसूबे को ताड़ गया। उसने भी उधर का ही रुख किया। इधर मुनइमखाँ को आज्ञा भेजी कि अपनी सेना लेकर जौनपुर की ओर चलो। खानजमाँ आखिर पुराने सिपाही थे। उन्होंने भी सामने से बादशाह को आते देखकर अपने साथियों का इधर उधर बिखरा रहना उचित नहीं समझा। आसफखाँ और मजनूँखाँ का मुकाबला छोड़कर वे जौनपुर पहुँचे। वहाँ अपने साथियों से सारा हाल कहा। जब उन लोगों ने सुना कि बादशाह स्वयं इधर

आ रहा है, तब वे सब लोग एकत्र होकर जौनपुर से निकले और पीछे हटकर नदी के पार उतर गए।

अकबर यद्यपि बादशाह था, तथापि वह समय समय पर ऐसे ऐसे जोड़ तोड़ मारता था जैसे अच्छे अहलकार और पुराने सेनापति मारा करते हैं। वह जानता था कि खानजमां ने बंगाल के अमीरों और राजाओं से मेल जोल बढ़ा लिया है। उन दिनों उड़ीसा का राजा सेना और सैनिक सामग्री के लिये बहुत अधिक प्रसिद्ध था। सुलेमान किरारानी कई बार उसके देश पर आक्रमण करने गया था, पर उसका वहां कुछ भी वश न चला था। इस बार बादशाह ने महापात्र भाट को उसके पास भेजा। यह महापात्र सलीम शाह के मुसाहबों में से था और संगीत विद्या तथा हिंदी कविता करने में अपना जोड़ नहीं रखता था। हसनखां खजानची को भी उसके साथ कर दिया। इन दोनों को उड़ीसा के राजा के पास भेजा और साथ ही आज्ञापत्र लिख भेजा कि यदि अली-कुलीखां की सहायता करने के लिये सुलेमान किरारानी आवे, तो तुम आकर उसके देश को नष्ट भ्रष्ट कर देना। राजा ने यह आई हुई आज्ञा शिरोधार्य की और अपने देश के बहुत से हाथी तथा अनेक दूसरे अच्छे अच्छे पदार्थ भेंट स्वरूप भेजे। बादशाह की अधीनता भी स्वीकृत कर ली। उधर कुलीचखां को रोहतास की ओर इसलिये भेजा कि शेरखानी अफगान फतहखां तिब्बती को हमारी ओर से क्षमा प्रदान करके निश्चित

कर दें और कहें कि जब खानजमाँ बादशाही सेना के साथ लड़ने लगे, तब तुम रोहतास से उतरकर उसके देश में विद्रोह मचा दो। उसने पहली बार अधीनता स्वीकृत करने का वचन दिया था और बहुत से बहुमूल्य पदार्थ भेंट स्वरूप दिए थे। इस बार कुलीचखाँ को दोबारा भेजा था। फतहखाँ ने कुलीचखाँ को बातों बातों में रखकर टालना चाहा। जब कुलीचखाँ ने देखा कि यह कोरी बातों से ही टालना चाहता है, तब वह विफल-मनोरथ होकर वहाँ से लौट आया।

अकबर स्वयं जौनपुर जा पहुँचा। जिन आसफखाँ ने नमकहलाल बनकर मजनूँखाँ को घेरे में से निकाला था, वे पाँच हजार सवार लेकर सेवा में उपस्थित हुए। विद्रोहियों पर सेना लेकर आक्रमण करने के लिये उन्हें सेनापतित्व मिला। साथ ही कुछ अमीरों को अफगान सरदारों तथा आस पास के राजाओं के पास भेजा और कहला दिया कि यदि खान-जमाँ भागकर तुम्हारे इलाके में आवे तो रोक लो। बैरम-खानी वृद्ध सेनापतियों में से हाजी मुहम्मदखाँ सीस्तानी बचा हुआ था। उसे सुलेमान किरारानी के पास भेजा, क्योंकि वह सारे बंगाल का हाकिम था और पुराने अफगानों में से वही एक बचा हुआ था। खानजमाँ कई बरसों से यहाँ था और इस देश में उसने सब काम बहुत अच्छी तरह किए थे। सुलेमान किरारानी की उससे बहुत मित्रता थी। उसने झट हाजी मुहम्मदखाँ को पकड़कर खानजमाँ के पास भेज

दिया। एक तो वे दोनों एक ही देश सीस्तान के रहनेवाले थे, दूसरे बैरमखाँ के समय के पुराने साथी थे। जब वृद्ध हाजी मुहम्मदखाँ को लोग प्रतापी युवक खानजमाँ के सामने लाए, तब दोनों एक दूसरे को देखकर बहुत हँसे। दोनों हाथ फैला फैलाकर गले मिले। देर तक बैठकर आपस में परामर्श हुए। वृद्ध हाजी मुहम्मदखाँ ने यह उपाय निकाला कि न तो तुम्हारे मन में किसी प्रकार का छल कपट या नमक-हरामी है और न किसी पराए बादशाह से यह झगड़ा है। तुम यहीं रहो और अपनी माता को मेरे साथ भेज दो। वे महल में जायँगी और बेगम के द्वारा निवेदन करेंगी। बाहर मैं मौजूद ही हूँ। सारी बिगड़ी हुई बात फिर से बन जायगी। शत्रुओं के किए कुछ भी न हो सकेगा।

अब पाठक जरा इस बात पर विचार करें कि अकबर तो जौनपुर में है और आसफखाँ तथा मजनूँखाँ कड़ा मानिकपुर में सेनाएँ लिए हुए पड़े हैं। दरबार के नमकहरामों ने आसफखाँ से कहलाया कि रानी दुर्गावती के खजानों का हिसाब समझाना होगा। बतलाओ, अब हम लोगों को क्या खिलाओगे; और चौरागढ़ के माल में से हम लोगों को क्या भेंट दोगे। उसे खटका तो पहले से ही था। अब यह सँदेसा सुनकर वह और भी घबरा गया। लोगों ने उसके मन में यह संदेह भी उत्पन्न कर दिया कि खानजमाँ के मुकाबले में तुम्हें इस समय भेजना मानों तुम्हारा सिर ही कट-

वाना है। अंत में उसने बहुत कुछ सोच समझकर एक दिन, आधी रात के समय, अपने खेमे डेरे उखड़वा दिए और मैदान से उठ गया। उसके साथ उसका भाई वजीरखाँ तथा उसके साथी सरदार भी उठ गए। बादशाह ने यह समाचार सुनते ही उसके स्थान पर तो मुनइमखाँ को भेजा जिसमें मोरचा बना रहे; और शुजाअतखाँ को उसके पीछे दौड़ाया। शुजाअतखाँ मानिकपुर में पहुँचकर नदी के पार उतरना ही चाहते थे, आसफखाँ अभी थोड़ा ही दूर आगे बढ़ा था कि उसे समाचार मिला कि मुकीम बेग पीछे आता है। वह जाते जाते उलट पड़ा; और दिन भर इस प्रकार जान तोड़कर लड़ा कि मुकीम बेग की शुजाअतखाँवाली जो उपाधि थी, वह मानों मिट्टी में मिल गई। आसफखाँ रात के समय अपने सब सैनिक और सामग्री लेकर विजय का डंका बजाता हुआ चला गया। सवेरे इन्हें समाचार मिला। इन्होंने नदी पार उतरकर अपनी शुजाअत (वीरता) के मुँह पर लगी हुई कालिमा धोई और आसफखाँ के पीछे पीछे दौड़े। यद्यपि यह भी तुर्क थे, पर तुर्कों का यह सिद्धांत भूल गए थे कि जो शत्रु कमान भर निकल गया, वह मानों तीरों की पहुँच के भी बाहर निकल गया। अस्तु, ये जैसे गए थे, वैसे ही फिर लौटकर दरबार में आ उपस्थित हुए।

खानजमाँ युद्ध रूपी शतरंज का बहुत अच्छा खेलाड़ी था। अभी मुनइमखाँ उसके मुकाबले पर पहुँचा भी न था

कि उसने देखा कि बादशाह भी इधर ही चला आया है। उसने सोचा कि अवध का इलाका इस समय खाली है। उसने अपने भाई बहादुरखाँ को सेनापति बनाकर अवध की ओर सेना भेज दी। सिकंदरखाँ को भी उसकी सेना सहित उसके साथ कर दिया कि जाओ और उस ओर से देश में अराजकता फैलाओ। बादशाह ने जब यह समाचार सुना, तब उसने भी कुछ पुराने और अनुभवी सरदारों को सेनाएँ देकर उस ओर भेजा। मीर मअजउल्मुल्क मशहदी को उनका सरदार नियुक्त किया। पर यह कार्य उनकी योग्यता तथा सामर्थ्य को देखते हुए उनके लिये किसी प्रकार उपयुक्त नहीं था। उन्हें यह आज्ञा दी गई थी कि बहादुरखाँ को रोको। पर भला बहादुरखाँ उनके रोके कब रुक सकता था।

इधर खानजमाँ के सामने मुनइमखाँ पहुँचे। दोनों बहुत पुराने मित्र और साथी थे। दोनों में साहब सलामत हुई। बीबी सरोकद नाम की एक बहुत पुरानी बुढ़िया थी जो बादशाह बाबर के समय महलों में रहा करती थी। उसे बात-चीत के लिये मुनइमखाँ के महल में भेजा। बाहर कुछ विश्वसनीय और कार्यकुशल आदमी भेजे। हाजी मुहम्मदखाँ भी जाकर उन्हीं लोगों में सम्मिलित हो गए। इन्हीं दिनों में यह अफवाह भी उड़ रही थी कि अकबर पर जान निछावर करनेवाले कुछ लोग इस ताक में हैं कि अवसर पाकर खान-जमाँ और बहादुरखाँ के प्राण ले लें। इसलिये अलीकुलीखाँ

को आने में कुछ आगा पीछा हुआ। अंत में यह निश्चय हुआ कि इस प्रकार दूर से बैठे हुए सँदेसे भुगवाने से काम नहीं चलता। यदि खानजमाँ और मुनइमखाँ दोनों आदमी मिलकर बातचीत करें तो सब कुछ ते हो सकता है। यद्यपि उक्त अफवाह जोरों से उड़ रही थी, पर फिर भी अलीकुलीखाँ ने मुनइमखाँ से भेंट करना बहुत प्रसन्नता से स्वीकृत कर लिया।

दोनों की सेनाएँ जैसा नदी के किनारे आकर खड़ी हुईं। उधर से खानजमाँ, शहरयार गुल, सुलतान मुहम्मद मीर आब नामक अपने दास को लेकर नाव पर सवार हुए। इधर से मुनइमखाँ खानखाना अपने साथ मिरजा गयासुद्दीन अली, बायजीदबेग, मीरखाँ गुलाम सुलतान मुहम्मद कुबक के साथ नाव पर चढ़कर चले। वह दृश्य भी देखने ही योग्य था। नदी के दोनों तटों पर हजारों आदमी पंक्तियाँ बाँधकर तमाशा देखने के लिये खड़े थे कि देखें क्या होता है। मजा हो यदि पानी में बिजलियाँ चमकती हुई दिखाई दें। बीच नदी में भेंट हुई। दोनों के मन में प्रेम का आवेश था और दोनों का ही मन साफ था। खानजमाँ सामने से देखते ही खड़े हो गए और तुर्की में हँसते हुए सलाम किया। ज्यों ही दोनों नावें आमने सामने हुईं, त्यों ही दिलावरखाँ कूदकर खानखानाँ की नाव पर जा पहुँचे झुककर गले मिले और बैठे। पहले उन्होंने अपनी सेवाओं का वर्णन किया; फिर अपने साथियों के अत्याचार, बादशाह की उदासीनता और अपनी निस्सहाय

अवस्था पर रोए। खानखानाँ अवस्था में भी बड़े थे। कुछ तो उनकी प्रशंसा करते रहे और कुछ उन्हें समझाते बुझाते रहे। अंत में यह निश्चय हुआ कि इब्राहीमखाँ उजबक हम सबके बड़े हैं। वही सब झगड़ों की जड़, खजाने, बहुमूल्य पदार्थ तथा हाथी आदि लेकर बादशाह की सेवा में जायँ और राजमहल में जाकर अपराधों के लिये क्षमा-प्रार्थना करें। और तुम मेरी ओर से श्रीमान् की सेवा में जाकर यह निवेदन करो कि इस काले मुँहवाले से बहुत अपराध हुए हैं। अब यह मुँह दिखाने के योग्य नहीं रह गया। मैं चाहता हूँ कि पहले कुछ थोड़ी सेवाएँ कर लूँ और अपने मुँह पर लगी हुई यह कालिख धो लूँ; फिर श्रीमान् की सेवा में स्वयं ही उपस्थित होऊँगा।

दूसरे दिन मुनइमखाँ अपने साथ कुछ अमीरों को लेकर, नाव पर बैठकर, खानजमाँ के खेमों में गए। उन्होंने उनके स्वागत की उसी प्रकार व्यवस्था की, जिस प्रकार बड़े लोग किया करते हैं। शाही जशन का आयोजन किया गया। बहुत धूमधाम से मेहमानदारी हुई। ख्वाजा गयासुद्दीन वही मँदेसा लेकर दरबार में गए। उन दिनों ख्वाजा जहाँ उर्फ ख्वाजा अमीना के द्वारा ही साम्राज्य के सब झगड़े ते हुआ करते थे। वे बादशाह की ओर से खानजमाँ का संतोष करने के लिये आए। मुनइमखाँ ने कहा कि अब तो कोई बात बची ही नहीं; इसलिये खानजमाँ के डेरे पर चलकर सब बातें हो जायँ। ख्वाजा जहाँ ने कहा कि वह उद्धत स्वभाव का आदमी

4301

को आने में कुछ आगा पीछा हुआ। अंत में यह निश्चय हुआ कि इस प्रकार दूर से बैठे हुए सँदेसे भुगवाने से काम नहीं चलता। यदि खानजमाँ और मुनइमखाँ दोनों आदमी मिलकर बातचीत करें तो सब कुछ ते हो सकता है। यद्यपि उक्त अफवाह जोरों से उड़ रही थी, पर फिर भी अलीकुलीखाँ ने मुनइमखाँ से भेंट करना बहुत प्रसन्नता से स्वीकृत कर लिया।

दोनों की सेनाएँ जैसा नदी के किनारे आकर खड़ी हुईं। उधर से खानजमाँ, शहरयार गुल, सुलतान मुहम्मद मीर आब नामक अपने दास को लेकर नाव पर सवार हुए। इधर से मुनइमखाँ खानखाना अपने साथ मिरजा गयासुद्दीन अली, बायजीदबेग, मीरखाँ गुलाम सुलतान मुहम्मद कुबक के साथ नाव पर चढ़कर चले। वह दृश्य भी देखने ही योग्य था। नदी के दोनों तटों पर हजारों आदमी पंक्तियाँ बाँधकर तमाशा देखने के लिये खड़े थे कि देखें क्या होता है। मजा तो यदि पानी में बिजलियाँ चमकती हुई दिखाई दें। बीच नदी में भेंट हुई। दोनों के मन में प्रेम का आवेश था और दोनों का ही मन साफ था। खानजमाँ सामने से देखते ही खड़े हो गए और तुर्की में हँसते हुए सलाम किया। ज्यों ही दोनों नावें आमने सामने हुईं, त्यों ही दिलावरखाँ कूदकर खानखानाँ की नाव पर जा पहुँचे झुककर गले मिले और बैठे। पहले उन्होंने अपनी सेवाओं का वर्णन किया; फिर अपने साथियों के अत्याचार, बादशाह की उदासीनता और अपनी निस्सहाय

अवस्था पर रोए। खानखानाँ अवस्था में भी बड़े थे। कुछ तो उनकी प्रशंसा करते रहे और कुछ उन्हें समझाते बुझाते रहे। अंत में यह निश्चय हुआ कि इब्राहीमखाँ उजबक हम सबके बड़े हैं। वही सब झगड़ों की जड़, खजाने, बहुमूल्य पदार्थ तथा हाथी आदि लेकर बादशाह की सेवा में जायँ और राज-महल में जाकर अपराधों के लिये क्षमा-प्रार्थना करें। और तुम मेरी ओर से श्रीमान् की सेवा में जाकर यह निवेदन करो कि इस काले मुँहवाले से बहुत अपराध हुए हैं। अब यह मुँह दिखाने के योग्य नहीं रह गया। मैं चाहता हूँ कि पहले कुछ थोड़ी सेवाएँ कर लूँ और अपने मुँह पर लगी हुई यह कालिख धो लूँ; फिर श्रीमान् की सेवा में स्वयं ही उपस्थित होऊँगा।

दूसरे दिन मुनइमखाँ अपने साथ कुछ अमीरों को लेकर, नाव पर बैठकर, खानजमाँ के खेमों में गए। उन्होंने उनके स्वागत की उसी प्रकार व्यवस्था की, जिस प्रकार बड़े लोग किया करते हैं। शाही जशन का आयोजन किया गया। बहुत धूमधाम से मेहमानदारी हुई। ख्वाजा गयासुद्दीन वही मँदेसा लेकर दरबार में गए। उन दिनों ख्वाजा जहाँ उर्फ ख्वाजा अमीना के द्वारा ही साम्राज्य के सब झगड़े तै हुआ करते थे। वे बादशाह की ओर से खानजमाँ का संतोष करने के लिये आए। मुनइमखाँ ने कहा कि अब तो कोई बात बची ही नहीं; इसलिये खानजमाँ के डेरे पर चलकर सब बातें हो जायँ। ख्वाजा जहाँ ने कहा कि वह उद्धत स्वभाव का आदमी

4311

है; उसका मिजाज बहुत तेज है। और फिर वह पहले से ही मुझसे प्रसन्न नहीं है। कहीं ऐसा न हो कि कोई ऐसी बात हो जाय जिसके लिये पीछे से दुःख करना पड़े। जब मुनइमखाँ ने उनको बहुत अधिक विश्वास दिलाया, तब उन्होंने कहा कि अच्छा, उससे कोई आदमी ओल में ले लो। खानखानाँ ने यही बात कहला भेजी। वह परम उदार चित्त का आदमी था। उसने तुरंत अपने मामा इब्राहीमखाँ उजबक को भेज दिया। इसके उपरांत मुनइमखाँ और सदरजहाँ दोनों मिलकर खानजमाँ के लश्कर में गए। सब ऊँच नीच समझ लेने के उपरांत पक्की व्यवस्था हुई। दूसरे दिन सदरजहाँ के मन में से भी डर निकल गया। वे फिर गए और इब्राहीमखाँ उजबक के डेरे पर बैठकर बातें हुईं। मजनूँखाँ काकशाल आदि सरदारों को भी खानजमाँ से गले मिलवा दिया। खानजमाँ के दरबार में चलने के संबंध में बहुत देर तक बातें होती रहीं; पर उन्होंने नहीं माना और कहा कि इब्राहीमखाँ ही हम सब लोगों के बड़े हैं। उनकी दाढ़ी भी पक चुकी है। बाहर यह रहें और अंदर माँ जायँ। इस प्रकार इस समय मेरा अपराध क्षमा हो जाय। फिर आँखों में आँसू भरकर कहा कि मुझसे बहुत बड़ा अपराध हुआ है। इसी लिये मैं इस समय बादशाह के समक्ष नहीं जा रहा हूँ। जब मैं पहले अच्छी अच्छी सेवाएँ कर लूँगा और अपने मुँह पर लगी हुई कालिख धो लूँगा, तभी दरबार में उपस्थित होऊँगा।

दूसरे दिन ये सब अमीर अपने साथ समस्त बहुमूल्य पदार्थ और अच्छे अच्छे हाथी लेकर, जिनमें बालसुंदर और चपला आदि भी थे, दरबार की ओर चल पड़े। खानखानाँ ने इब्राहीमखाँ के गले में चादर के बदले कफन और तलवार डाली। वह चंगेजखानी नियमों के अनुसार नंगे सिर और नंगे पैर, बाईं ओर से, सामने लाकर खड़ा किया गया। उसने दोनों हाथ उठाकर निवेदन किया कि अब चाहे श्रीमान् मुझे जीवित रखें और चाहे मेरे प्राण ले लें। खानखानाँ ने अपराध क्षमा करने के लिये प्रार्थनाएँ कीं। ख्वाजा जहान आमीन् आमीन् (तथास्तु तथास्तु) कहते गए। अकबर ने कहा—खान-खाना, हम तुम्हें प्रसन्न रखना चाहते हैं। हमने इन लोगों के अपराध क्षमा किए। पर देखना यह है कि अब भी ये लोग ठीक रास्ते पर रहते हैं या नहीं। खानखानाँ ने निवेदन किया कि इनकी जागीर के संबंध में क्या आज्ञा होती है। आज्ञा दी कि जब इनके अपराध ही क्षमा कर दिए गए, तब फिर जागीरें क्या चीज हैं। तुम्हारी खातिर से वह भी उन्हीं के पास रहने देता हूँ। परंतु शर्त यह है कि जब तक हमारा प्रतापी लश्कर उन सीमाओं में है, तब तक खानजमाँ नदी के उस पार ही रहे। जब हम राजधानी में पहुँचें, तब उसके वकील उपस्थित होकर दीवाने आला (प्रधान सचिव) से अपनी सनदें ठीक करा लें और उन्हीं के अनुसार सब काम करें। खानखानाँ ने झुककर धन्यवाद दिया और फिर खड़े होकर

कहा—दो पीढ़ियों से सेवाएँ करनेवाले इन होनहार नवयुवकों के प्राण श्रीमान् की कृपा से बच गए। ये लोग काम करनेवाले हैं; और आगे भी काम कर दिखावेंगे। आज्ञा हुई कि इब्राहीमखाँ के गले में से तलवार और कफन उतार लिया जाय। जब बादशाह राजप्रासाद में गए, तब वह बुढ़िया सामने आई जिसका साँस केवल पुत्रों की आस पर चलता था। उसने पैरों पर गिरकर हजारों असीसें दीं। वह अपने पुत्रों की नालायकी की सब बातें कहती जाती थी और क्षमा करने के लिये सिफारिशें भी करती जाती थी। रोती थी और आशीर्वाद देती थी। उसकी दशा देखकर अकबर को दया आ गई। वह जो कुछ दरबार में कह आया था, वही उसे भी अच्छी तरह समझा दिया और बहुत दिलासा दिया। बाहर से खानखानां ने खानजमाँ को पत्र लिखा। अंदर से माता ने अपने पुत्रों के पास सुसमाचार भेजा। साथ ही यह भी लिख दिया कि कोहपारा और सफशिकन आदि हाथी तथा भेंट स्वरूप और भी कुछ पदार्थ शीघ्र बादशाह की सेवा में भेज दो। अब उन लोगों को भी संतोष तथा धैर्य हो गया और उन्होंने बहुत शान के साथ ये सब चीज़ें भेज दीं।

शाही अमीरों के साथ बहादुरखाँ का युद्ध

इधर तो यह झगड़ा तै हुआ, अब ज़रा उधर का हाल सुनिए। यह तो आप सुन ही चुके हैं कि खानजमाँ ने बहा-

दुरखाँ और सिकंदरखाँ को यह कहकर अवध की ओर भेज दिया था कि तुम लोग वहाँ जाकर देश में उपद्रव मचाओ। बहादुरखाँ ने वहाँ पहुँचते ही खैराबाद पर अधिकार कर लिया ;और उसकी सेनाएँ सारे देश में फैल गईं। आप यह भी देख चुके हैं कि इन लोगों को रोकने के लिये अकबर ने मीर मुअज उल्मुल्क आदि अमीरों को सेनाएँ देकर भेजा था। अब ज़रा यह तमाशा देखिए। उधर दरबार में तो ये सब झगड़े इस प्रकार ते हो रहे हैं और इधर जब बादशाही सेना पास पहुँची, तब बहादुरखाँ जहाँ था, वहीं थम गया। उसने मुअज उल्मुल्क के पास अपना प्रतिनिधि भेजा और राज-प्रासाद में उसकी बहन के पास कुछ स्त्रियाँ भेजीं; और कहलाया कि मुनइमखाँ के द्वारा खानजमाँ बादशाह की सेवा में अपना निवेदन भेज रहे हैं। हमारे लिये बादशाह की सेवा में तुम सिफारिश करो जिससे हमारे अपराध क्षमा हो जायँ। इस समय हाथी आदि जो कुछ हैं, वह सब हमारा प्रतिनिधि ले जायगा। जब हमारे अपराध क्षमा हो जायँगे, तब हम स्वयं दरबार में उपस्थित होंगे।

मुअज उल्मुल्क बहुत भारी अभिमानी और घमंडी था। वह कहता था कि जो कुछ मैं हूँ, वह और है कौन? वह आकाश पर चढ़ गया और बोला—नमकहरामो, अब तुम लोग तलवार के पानी के सिवा और किसी चीज से पवित्र नहीं हो सकते। तुम्हारे कलंकों को मैं तलवार के पानी से धोऊँगा।

इतने में लश्करखाँ मीरबख्शी, जिन्हें बादशाह ने अस्करखाँ की उपाधि दी थी और लोगों ने जिसे अस्तरखाँ बना दिया था, तथा राजा टोडरमल जा पहुँचे। वे लोग यह सोचते थे कि संधि अथवा युद्ध जो कुछ उचित समझा जाय, वह किया जाय। बहादुरखाँ फिर बादशाही लश्कर के किनारे आया। उसने मअज उल्मुल्क को बुला भेजा और समझाया कि हमारे भाई माता जी तथा इब्राहीमखाँ को बादशाह की सेवा में भेजना चाहते हैं; बल्कि बहुत संभव है कि अब तक भेज चुके होंगे। दृढ़ आशा है कि अपराध क्षमा हो जायगा। जब तक वहाँ से कोई उत्तर न आ जाय, तब तक हम भी तलवार पर हाथ नहीं डालते। तुम भी इस बीच में शांत रहो। मअज उल्मुल्क तो आग थे ही, ऊपर से राजा साहब रंजक बनकर पहुँचे। ज्यों ज्यों बहादुरखाँ और सिकंदरखाँ धीमे होते जाते थे, त्यों त्यों ये लोग आग बबूला होते जाते थे। ये लोग कड़ी बात के सिवा और कुछ कहते ही न थे। वह भी आखिर बहादुरखाँ थे। जब वे लश्कर से निराश होकर लौटे, तब "मरता क्या न करता" के सिद्धांत के अनुसार अपने काम की चिन्ता में लगे।

बहादुरखाँ अपनी सेना तैयार करके खैराबाद के पास के मैदान में आ खड़े हुए। उधर से मअज उल्मुल्क भी बादशाही लश्कर को लेकर बहुत अभिमान से आगे बढ़े। यद्यपि उस अवसर पर बहादुरखाँ का दिल बहुत टूट गया था और

वे बहुत परेशान थे, तथापि वे अपने शरीर में शेर का दिल और हाथी का कलेजा लेकर पैदा हुए थे। वे सेना तैयार करके सामने जा खड़े हुए। एक ही समय में दोनों ओर से आक्रमण हुआ। दोनों सेनाएँ इस जोर से टकराईं मानों दो पहाड़ों ने टक्कर खाई हो। युद्ध क्षेत्र में प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया। बादशाही सेना ने सिकंदरखाँ को ऐसा रेला कि वह भागा। उसके पीछे की ओर एक झील थी; वह तो किसी प्रकार कूद फाँदकर पार उतर गया, पर उसके सैनिकों में से बहुत से लोग डूबे और मारे गए। सभी बादशाही अमीर अपनी अपनी सेनाएँ लेकर उसी के पीछे दौड़े। सिकंदरखाँ तो भागा, पर बहादुरखाँ अड़कर खड़ा हो गया। उसने देखा कि मआज उल्मुल्क थोड़ी सी सेना लिए सामने है। वह बाज की तरह झपटकर उस पर जा गिरा। मआज उल्मुल्क तो केवल जबान के बहादुर थे; कुछ युद्ध क्षेत्र के बहादुर तो थे ही नहीं। बहादुरखाँ ने पहले ही आक्रमण में इन्हें उलटकर फेंक दिया। पर शाह बदागखाँ जमे खड़े रहे। उन्हें घोड़े ने फेंक दिया। उनके पुत्र ने उन्हें उठाने के लिये बहुत जोर किया पर वह उठा न सका। इसलिये वह अपनी जान लेकर वहाँ से भागा और अपने पिता को उजबकों के हवाले कर गया।

टोडरमल और लश्करखाँ पहले से ही इसलिये अलग थे कि जब जिधर आवश्यकता होगी, तब उधर जाकर सहायता

करेंगे। वे लोग संध्या तक अलग अलग लड़ते रहे। फिर जब रात हुई, तब वे उसके काले परदे में वहाँ से सरक गए। भागकर वे लोग कन्नौज पहुँचे। वहाँ और भी आगे भटके आकर एकत्र हुए। उन लोगों ने बादशाह की सेवा में एक निवेदनपत्र लिखा जिसमें अपने विपत्तियों के अत्याचारों का बहुत ही अतिरंजित वर्णन किया था; और उसके अंत में यह निवेदन किया था कि ऐसे दुष्टों को पूरा पूरा दंड देना चाहिए। वास्तव में बात यह है कि मअज़ उल्मुल्क के कटु स्वभाव और अनुचित व्यवहार तथा टोडरमल के कठोर व्यवहारों ने उनके साथ के अमीरों को बहुत जला दिया था। इसी लिये वे भी समय पर जान बूझकर चुप रह गए थे। नहीं तो इन लोगों की इतनी अधिक दुर्दशा न होती। पुराने पुराने योद्धा और जान लड़ानेवाले, जिनमें हुसैनखाँ आदि भी सम्मिलित थे, युद्ध क्षेत्र से टलनेवाले नहीं थे। वे मयके सब मरने और मिटनेवाले थे।

उधर दरबार में इब्राहीमखाँ गले से तलवार और कफन उतारकर हार और खिलअत पहन चुके थे। अलीकुलीखाँ के प्रतिनिधि भी भेंट करने के लिये नगद रुपए, अनेक बहुमूल्य पदार्थ तथा कोहपारा और सफशिकन आदि हाथी लेकर दरबार की ओर चल चुके थे कि इतने में इन लोगों का यह निवेदनपत्र पहुँचा। बादशाह ने कहा कि खैर, अब तो हम खानखानाँ की खातिर से खानजमाँ और उसके साथ

और सब लोगों के भी अपराध क्षमा कर चुके। यह सुनकर मअज उल्मुल्क और टोडरमल भी चुपचाप वहाँ से चले आए। ये लड़ाई झगड़ा करानेवाले लोग बहुत दिनों तक बादशाह की सेवा में उपस्थित होने और उसे अभिवादन करने से वंचित रहे। लश्करखाँ बख्शीगिरी के पद से हटा दिए गए। ख्वाजा जहाँ से बड़ी मोहर, जो मुहर मुकद्दस या परम पवित्र मोहर कहलाती थी, छीन ली गई; और वे हज की यात्रा करने के लिये भेज दिए गए।

अभागे खानजमाँ पर फिर नहूसत की चील ने झपट्टा मारा। बादशाह इस झगड़े से छुट्टी पाकर चुनारगढ़ का किला देखने गया। इसे किला न समझिएगा। यह जंगल का जंगल बल्कि पहाड़ी प्रांत है जो चारों ओर प्राकार से घिरा हुआ है। वहाँ पहुँचकर बादशाह ने शिकार खेले, हाथी पकड़े। इसमें कुछ देर लग गई। यह प्रदेश कई वर्षों तक खानजमाँ के शासन में रह चुका था। या तो उससे इस प्रदेश की अव्यवस्था न देखी गई और या उससे बादशाही अहल-कारों की मनमानी न सही गई। उसने तुरंत गंगा पार उतरकर जौनपुर और गाजीपुर आदि का प्रबंध करना आरंभ कर दिया। इस काम के लिये सिकंदरखाँ उजबक ने भी उसे कुछ उसकाया था। उसके मन में कदाचित् यह बात भी आई होगी कि यह देश भी बादशाह का ही है और मैं भी बादशाह का ही सेवक हूँ। मैं पुराना जान निछावर करने-

वाला हूँ और फिर मैं यहाँ की व्यवस्था ही करता हूँ। इसे कुछ नष्ट तो कर ही नहीं रहा हूँ। इस पर लोगों ने बादशाह को फिर बहका दिया। कहा कि देखिए, यह श्रीमान् की आज्ञा को कोई चीज ही नहीं समझता। बादशाह ने तुरंत अशरफखाँ मीर मुनशी को भेजा कि जाकर जौनपुर का प्रबंध करो। और खानजमाँ की बुढ़िया माँ को यहाँ पकड़कर ले आओ और किले में कैद कर दो। यहाँ लश्कर और छावनी की व्यवस्था मुजफ्फरखाँ को सौंपी और आप चढ़ाई करके खानजमाँ की ओर दौड़ा और बात की बात में गाजीपुर जा पहुँचा। खानजमाँ उस समय अवध के किनारे पर था और निश्चिन्त होकर अपने काम में लगा हुआ था। जब उसने एकाएक बादशाह के आने का समाचार सुना, तब वह खजाने और माल की भरी हुई नावें वहीं छोड़कर आप पहाड़ों में घुस गया।

इधर बहादुरखाँ अपने वीर सैनिकों को लेकर जौनपुर पर आया। वहाँ वह कमंदें डालकर किले में कूद गया। उसने अपनी माँ को वहाँ से छुड़ा लिया और मीर मुनशी साहब को पकड़कर बाँध लिया और ले गया। वह चाहता था कि बादशाही लश्कर पर आक्रमण करके मुजफ्फरखाँ को भी युद्ध और विजय का कुछ आनंद दिखावे। पर इतने में उसने सुना कि बादशाह अवध से लौटकर इधर ही आ रहा है। इसलिये वह फिर सिकंदर को साथ लिए हुए नदी के

उस पार चला गया। खानजमाँ ने अपने विश्वसनीय मिरजा मीरक रजवी के साथ अपनी माता को फिर खानखानाँ के पास भेजा। वहाँ क्षमा के लिये दरवाजा खटखटाया। बहुत नम्रतापूर्वक प्रार्थना की। जो निवेदनपत्र लिखा था, उसमें एक शेर इस आशय का भी था कि आपकी उदारता और कृपा ने ही मुझे उद्दंड बना दिया है। खानखानाँ परामर्श और सुधार के मानो ठेकेदार थे। उन्होंने मीर अब-दुल लतीफ कजवीनी, मखदूम उल्मुल्क, शेख अब्दुल नबी सदर आदि को भी अपने साथ मिला लिया। सबको साथ लेकर वे दरबार में उपस्थित हुए। सब बातें निवेदन कीं। आखिर वे भी बहुत पुराने सेवक थे। उनकी अगली पिछली सेवाओं ने भी उनकी सिफारिश की। अकबर ने कहा कि उनका अपराध क्षमा किया जाता है और जागीर बहाल की जाती है। पर अब वे यहा आकर सेवा में उपस्थित रहें। यह आज्ञा लेकर ये चल पड़े। जब लश्कर के पास पहुँचे, तब खानजमाँ उनके स्वागत के लिये आया। बहुत आदर और सत्कार के साथ अपने साथ ले गया। खूब दावतें कीं। उत्तर में निवेदन किया कि बादशाह सलामत राजधानी की ओर पधारें। दो तीन पड़ाव आगे बढ़कर ये दोनों सेवक भी सेवा में उप-स्थित होते हैं। हम लोग बरसों से यहाँ देश का शासन और व्यवस्था आदि कर रहे हैं। यहाँ के हिसाब किताब का फैसला कर लें। उसने इन सब लोगों को बहुत अधिक

आदर और सत्कार के साथ बिदा किया। चलते समय बहुत से उपहार आदि भी दिए। उन्होंने फिर जाकर बादशाह की सेवा में निवेदन किया। यह निवेदन भी स्वीकृत हो गया। पर यह निश्चय शपथ की सिकड़ियों से बाँधकर दृढ़ किया गया। बादशाह ने राजधानी में प्रवेश किया।

लोग कहेंगे कि दरबार में उपस्थित रहने का इन लोगों को यह बहुत अच्छा अवसर हाथ आया था। पर आखिर ये लोग सिपाही थे; कुछ राजनीतिज्ञ या अहलकार नहीं थे; इसी लिये ये लोग फिर चाल चूके। या यह कह लीजिए कि दूर रहने के कारण इन लोगों को स्वतंत्रतापूर्वक शासन करने का जो चसका पड़ गया था, उसने जौनपुर और मानिकपुर से अलग न होने दिया। नहीं तो यह अवसर ऐसा ही था कि लोग जिस बादशाह की आज्ञा से इन्हें खराब कर रहे थे, अब ये उसी बादशाह के पार्श्व में बैठते और उसी की तलवार से अपने शत्रुओं के नाक-कान काटते।

अब जरा आसफखाँ का हाल भी सुन लीजिए। कहाँ तो वह समय था कि इन्होंने मजनूँ खाँ को खानजमाँ की कैद से छुड़ाया था और दोनों आदमी सेनाएँ लेकर खानजमाँ के मुकाबले में खड़े हो गए थे। जब दरबारियों के लालच ने उसे भी स्वामिनिष्ठा के क्षेत्र से निकालकर बाहर ढकेल दिया, तब वह जूनागढ़ में जा बैठा। अब जब खानजमाँ के झगड़े से बादशाह निश्चिंत हो गया, तब उसने मेहदी कासिमखाँ

को उसकी खबर लेने के लिये भेजा। हुसैनखाँ आदि कुछ प्रसिद्ध अमीरों को आज्ञा दी कि अपनी अपनी सेना लेकर इनके साथ जाओ। आसफखाँ को अपने बादशाह के साथ किसी प्रकार लड़ना मंजूर नहीं था। उसने बादशाह की सेवा में क्षमा-प्रार्थना के लिये एक निवेदनपत्र लिख भेजा। पर उसका वह निवेदन स्वीकृत नहीं हुआ। उसने विवश होकर खानजमाँ को पत्र लिखा, और आप भी चटपट वहाँ जा पहुँचा। खानजमाँ के दिल के घाव अभी तक हरे ही थे। जब वह मिला, तब बहुत ही अभिमान और लापरवाही के साथ मिला। आसफखाँ मन ही मन पछताया कि हाय, मैं यहाँ क्यों आया! उधर से जब मेंहदीखाँ वहाँ पहुँचे, तब उन्होंने मैदान खाली देखकर जूनागढ़ पर अधिकार कर लिया और आसफखाँ को खानजमाँ के साथ देखकर अपना पार्श्व बचा लिया।

यहाँ खानजमाँ स्वयं तो आज्ञा देनेवाले बनकर बैठ गए और आसफखाँ से कहा कि पूरब में जाकर पठानों से लड़ो। बहादुरखाँ को उसके साथ कर दिया। आसफखाँ के भाई वजीरखाँ को अपने पास रखा। मानों दोनों को नजरबंद कर लिया। दृष्टि उनकी संपत्ति पर थी। वे लोग भी इनका अभिप्राय ताड़ गए। दोनों भाइयों ने अंदर ही अंदर पत्र-व्यवहार करके कुछ सलाह ठीक कर ली। बस यह इधर से भागा और वह उधर से। दोनों मिलकर मानिकपुर पर चढ़

जाना चाहते थे। बहादुरखां यह देखकर आसफखाँ के पीछे पीछे दौड़ा। जौनपुर और मानिकपुर के बीच में बहुत भारी युद्ध हुआ। अंत में आसफखाँ पकड़ा गया। बहादुरखाँ उसे हाथी की अम्मारी में रखकर चल पड़ा। उधर जौनपुर से वजीरखाँ आ रहा था। यह समाचार सुनते ही वह दौड़ा हुआ आया। बहादुरखाँ के साथ आदमी थोड़े थे। इसके अतिरिक्त वे आदमी थके हुए थे; और जो थे भी, वे लूट में लगे हुए थे। इसलिये बहादुरखाँ उसके आक्रमण को रोक न सका। वह आप तो भाग निकला और अपने आदमियों से कह गया कि अम्मारी में आसफखाँ के प्राण ले लें। पर वजीरखाँ वहाँ पहले ही जा पहुँचा और अपने भाई को निकाल ले गया। फिर भी आसफखां की उँगलियाँ कट गईं और उसकी नाक पर घाव लग गया। परिणाम यह हुआ कि पहले वजीरखाँ बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। फिर आसफखाँ का अपराध क्षमा हो गया।

मीर मुर्तजा शरीफी मीर सैयद शरीफ जरजानी के वंशज थे। उनकी विद्वत्ता और ग्रंथ-रचना ने उन्हें विद्या के दरबार से कई बड़ी बड़ी उपाधियाँ दिलवाई थीं। वे बहुत बड़े विद्वान् और पंडित थे। मुल्ला साहब अगले वर्ष के विवरण में लिखते हैं कि दिल्ली में इनका देहांत हुआ और ये अमीर खुसरो के पार्श्व में गाड़े गए थे। काजियों तथा शेख उल् इस्लाम ने अकबर की सेवा में निवेदन किया कि अमीर खुसरो

भारतीय और सुन्नी संप्रदाय के थे। मीर मुर्तजा ईरानी और शीया हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि उन्हें इस पड़ोसी से कष्ट होगा। अकबर ने आज्ञा दी कि वहाँ से निकालकर किसी और स्थान में गाड़ दो। जरा उस समय के लोगों के ये विलक्षण विचार तो देखिए! थोड़े ही दिनों के उपरांत यह दशा हो गई कि इन बलवान विद्वानों में से एक भी न रह गया। अकबर के दरबार का रंग ही कुछ और हो गया। मीर फतहउल्ला शीराजी, हकीम अब्दुल फतह, हकीम हमाम आदि आदि सैकड़ों ईरानी थे जिन्हें साम्राज्य के समस्त कार्य मिले हुए थे। जो लोग एक समय दबकर बहुत कष्ट भोगते हैं, कुछ दिनों के उपरांत संसार उन्हें उठाकर अवश्य ऊँचा करता है।

यहाँ तो अकबर इस झगड़े में पड़ा हुआ था। इतने में समाचार मिला कि काबुल में बहुत बड़ा उपद्रव खड़ा हो गया है। मिरजा हकीम सेना लेकर काबुल से पंजाब की ओर आ रहा है। अकबर सुनकर बहुत ही चिंतित हुआ। पंजाब के अमीर अवश्य ऐसे थे जो अच्छी तरह उसका सामना करके उसे पीछे हटा सकते थे। पर अकबर को इस बात का सब से अधिक ध्यान था कि यदि वह इस ओर से निराश होकर भागा, तो कहीं ऐसा न हो कि बुखारा में उजबक के पास चला जाय। इसमें हमारे वंश की बदनामी भी है; और साथ ही यह भी खराबी है कि यदि उजबक उसे साथ लेकर इस ओर आवे और कहे कि हम तो अधिकारी को केवल उसका

अधिकार दिलवाने आए हैं, तो उसके लिये कंधार, काबुल और बदख़शाँ ले लेना बहुत सहज है। इसलिये उसने पंजाब के समस्त अमीरों को लिख दिया कि कोई हकीम मिरजा का सामना न करे। वह जहाँ तक आवे, उसे आने दो। उसका तात्पर्य केवल यही था कि जहाँ तक हो सके, शिकार ऐसे स्थान पर आ जाय जहाँ से वह सहज में हाथ में आ सके। इधर खानजमाँ का झगड़ा उसके अपराध क्षमा करके निपटाया और आप आगरे की ओर हटा। हकीम मिरजा का हाल परिशिष्ट में देखो और यह भी देखो कि उसके विद्रोह ने कितनी दूर जाकर गुल खिलाया।

खानजमाँ ने जब सुना कि हकीम मिरजा पंजाब पर आक्रमण करने के लिये आ रहा है, तब वह बहुत प्रसन्न हुआ। इस घटना को उसने अपने लिये एक दैवी सहायता समझा। उसने जौनपुर में उसके नाम का खुतबा पढ़वाया और एक निवेदनपत्र लिखा जिसका अभिप्राय यह था कि चालीस हजार पुश्तैनी सेवक लेकर यह दास आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा में बैठा हुआ है। आप तुरंत पधारें। उसने केवल इतने पर ही संतोष नहीं किया। जहाँ जहाँ बादशाही अमीर थे, वहाँ वहाँ सेनाएँ भेजकर उन सबको घेर लिया। इब्राहीम हुसैन मिरजा आदि को लिखा कि तुम भी उठ खड़े हो; फिर ऐसा अवसर हाथ न आवेगा। और स्वयं सेना लेकर कन्नौज जा पहुँचा।

अकबर का प्रताप तो मानो सिकंदर के प्रताप के साथ शर्त लगाए हुए था। पंजाब और काबुल के झगड़े का निपटारा इतने सहज में हो गया कि किसी के ध्यान में भी न आया था। वह थोड़े दिनों तक पंजाब में शिकार खेलता रहा।" एक दिन शिकारगाह में आसफखाँ का भाई वजीरखाँ आया। उसने अपने भाई की ओर से बहुत कुछ क्षमा माँगी। अकबर ने फिर उसका अपराध क्षमा कर दिया और उसे पंज-हजारी मंसब प्रदान किया।

तीसरा आक्रमण

काबुलवाले झगड़े पर भली भाँति विचार करने से अकबर को इस बात का पूरा पूरा विश्वास हो गया था कि यदि खानजमाँ का यह मंसूबा पूरा उतर जाता तो सारा भारत आतिशबाजी का एक अच्छा खासा मैदान हो जाता। उसने सोचा कि इन दोनों भाइयों का ठीक ठीक उपाय होना चाहिए। इसलिये उसने आसफखाँ और वजीरखाँ को आज्ञा दी कि तुम लोग जाओ और कड़ा मानिकपुर का ऐसा कड़ा प्रबंध रखो कि खानजमा और बहादुरखाँ हिल न सकें। १२ रमजान सन् ९७४ हि० को उसने स्वयं भी लाहौर से कूच किया और जल्दी जल्दी चलता हुआ आगरे पहुँचा। अच्छे अच्छे अनुभवी योद्धाओं को उसने सेनाएँ देकर आगे भेजा। हुसैनखाँ के नाम हरावली निकली थी। उसकी

उदारता उसे सदा कंगाल बनाए रहती थी। अबकी बार जो वह भारी आघात सहकर आया था, उसके कारण उसकी दशा बहुत खराब हो रही थी। पता लगा कि वह अपने इलाके शम्साबाद गया हुआ है। इसलिये कवाखाँ गंग हरावल बनाया गया। अकबर २६ शवाल को आगरे से निकला। आगरे से पूरब सुकेट नामक स्थान में पता चला कि खानजमाँ ने कन्नौज से डेरे उठा दिए और वह राय बरेली की ओर चला जा रहा है। अकबर ने मुहम्मदकुली बरलास और राजा टोडरमल को छः हजार सेना देकर सिकंदरखाँ को रोकने के लिये भेजा और आप मानिकपुर की ओर मुड़ा। चारों ओर सचेत और प्रस्तुत रहने के लिये आज्ञापत्र भेज दिए। राय बरेली पहुँचकर सुना कि खानजमाँ ने सुलतान मिरजा की संतान से मेल कर लिया है। अब वह मालवे की ओर उधर के इलाकों पर अधिकार करने के लिये जा रहा है। और यदि वहाँ उससे कुछ न हो सकेगा तो वह दक्षिण भारत के बादशाहों की शरण में जा बैठेगा।

अलीकुलीखाँ यह सोचता था कि मैंने अकबर को जिन झगड़ों में डाला है, उनका निपटारा बरसों में होगा। इसलिये वह एक किले पर किसी बादशाही अमीर को घेरे हुए पड़ा था। इतने में उसे समाचार मिला कि अकबर आगरे आ पहुँचा; और अब वह इसी ओर निशान फहराता हुआ चला आ रहा है। उसने हँसकर एक शेर पढ़ा जिसका

आशय यह था कि तेज घोड़े लाल और सूर्य को चाहिएँ कि पूर्व से पश्चिम की ओर चलें और मार्ग में केवल एक रात रहें।

वह भी साहस का पर्वत और युक्ति का समुद्र था। वह शेरगढ़ (कन्नौज) से मानिकपुर की ओर चला, क्योंकि बहादुरखाँ भी वहीं था। वह किसी और सरदार को घेरे हुए पड़ा था। दोनों भाई गंगा के किनारे किनारे चलकर सँगरौड़ पहुँचे। यह स्थान इलाहाबाद और मानिकपुर के मध्य में है और कदाचित् आजकल नवाबगंज कहलाता है। उसी स्थान पर ये लोग पुल बाँधकर गंगा के पार उतरे। अकबर ने जब यह समाचार सुना, तब वह भी बढ़ता हुआ आगे चला। पर रास्ते दो थे। एक तो दूर की बड़ी सड़क थी और दूसरा बीच में से होकर जाने का पास का रास्ता था। पर इस रास्ते में पानी नहीं मिलता था। लोगों ने यह बात बादशाह की सेवा में निवेदन की। उन लोगों ने यह भी परामर्श दिया कि सीधी बड़ी सड़क से ही चलना चाहिए। पर ऊँची दृष्टिवाले बादशाह ने कहा कि चाहे जो हो, वहाँ जल्दी पहुँचना चाहिए। ईश्वर पर भरोसा रखकर वह उधर से ही चल पड़ा। प्रताप देखो कि मार्ग में वर्षा हो चुकी थी जगह जगह तालाब के तालाब भरे हुए मिले। सेना ऐसे आराम से गई कि किसी मनुष्य अथवा पशु को किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ।

अकबर इसी प्रकार दिन रात बढ़ता हुआ चला गया। रात का समय था कि वह गंगा के किनारे जा पहुँचा। नदी

के उस पार सामने कड़ा मानिकपुर बसा हुआ था। वहाँ नाव बेड़ा आदि कुछ भी नहीं था। सबने यही परामर्श दिया कि यहीं ठहरकर और अमीरों के आने की प्रतीक्षा करनी चाहिए। जब यथेष्ट सामग्री एकत्र हो जाय तब आगे बढ़ना चाहिए, क्योंकि अलीकुलीखाँ का सामना है। पर अकबर ने किसी की एक भी न सुनी। उस समय वह बालसुंदर नामक हाथी पर सवार था। आप सब से आगे बढ़ा और नदी में हाथी डाल दिया। जरा ईश्वर की महिमा और प्रताप का बल देखिए कि घाट भी ऐसा मिल गया जहाँ पानी घुटने घुटने था। गंगा जैसी नदी में भी हाथी को कहीं तैरना नहीं पड़ा। बहुत से प्रसिद्ध और जंगी हाथी साथ में थे; इसलिये वह केवल सौ सवारों को साथ लेकर पार उतर गया। पार पहुँचने पर पिछली रात चुपचाप गंगा के किनारे सोकर बिता दी। उस समय वह खानजमाँ के लश्कर के बहुत ही पास था। प्रातःकाल होते ही वह अलीकुलीखाँ की सेना के सिर पर पहुँच गया। उस समय आसफखाँ भी सजी सजाई सेना लेकर आ पहुँचा। मजनूँखाँ और आसफखाँ हम पर हम खानजमाँ और उसकी सेना के समाचार अकबर को पहुँचा रहे थे। आज्ञा यह थी कि पहर में दो बार समाचार पहुँचाने के लिये दूत भेजो; और इस बात का पूरा ध्यान रखो कि कहीं खानजमाँ को हमारे आने का पता न लग जाय और ऐसा न हो कि वह निकल जाय। अलीकुलीखाँ और बहादुरखाँ

को बादशाह के इस प्रकार आ पहुँचने का स्वप्न में भी ध्यान नहीं था। यहाँ सारी रात नाच गाना और खाना पीना होता रहा था। रंडियाँ छम छम नाचती थीं और शराब के दौर पर दौर चल रहे थे। मुगल आनंद में मस्त हो रहे थे।

रात ने करवट बदलकर सबेरा किया। सितारों ने आँख मारी। प्रभात के समय बादशाही लश्कर के एक आदमी ने उनके खेमे के पीछे पहुँचकर जोर से चिल्लाकर कहा कि मस्तो, बेखबरो! तुम्हें कुछ खबर भी है कि बादशाह स्वयं लश्कर समेत आ पहुँचे हैं और नदी के इस पार भी उतर आए हैं। उस समय खानजमाँ के कान खड़े हुए। पर उसने समझा कि यह आसफखाँ की चालाकी है। मजनूँखाँ काकशाल को तो वह घास फूस भी नहीं समझता था; इसलिये उसने कुछ भी परवाह न की। समाचार देनेवाला भी कोई बादशाह का शुभ-चिंतक ही था। उस समय बादशाही सेना बहुत कम थी। अमीरों के तीन चार हजार सैनिक थे। पाँच सौ सवार बादशाह के साथ आए थे। पीछे से पाँच सौ हाथी भी आ पहुँचे थे। बहुत से सरदार यह नहीं चाहते थे कि इस मैदान में तलवार चले। अथवा यह भी संभव है कि समाचार देनेवाले उस आदमी का यह अभिप्राय रहा हो कि खानजमाँ भाग जाय। अभी बिलकुल तड़का ही था कि बादशाही नगाड़े पर चोट पड़ी। उसका शब्द सुनते ही खानजमाँ उठ खड़ा हुआ और अपनी सेना की व्यवस्था करने लगा।

सन् ९७४ हि० की ईद कुरबान की पहली तारीख थी; सोमवार का दिन था। संगरवाल नामक स्थान में, जो प्रयाग प्रांत में था, प्रातःकाल नौ बजे के समय युद्धक्षेत्र में म्यान से तलवार निकली। दोनों भाई शेर बबर की भाँति आगे और पैर जमाकर पहाड़ की तरह डट गए। मध्य में खानजमाँ खड़ा हुआ। उधर से अकबर ने अपने हाथी पंक्तियों में खड़े किए और अपनी सेनाओं के पैर बाँधे। सबसे पहले बादशाही पक्ष से बाबाखाँ काकशाल हरावल की सेना लेकर आगे बढ़ा। शत्रु की ओर से उसके सामने जो हरावल आया, उसे उसने ऐसा दबाकर रेला कि वह अलीकुलीखाँ की सेना पर जा पड़ा। बहादुरखाँ देखकर झपटा। वह ऐसे जोर से आकर गिरा कि बाबाखाँ की सेना को उठाकर मजनूँखाँ की सेना पर दे मारा। यद्यपि स्वयं उसकी सेना का क्रम बिगड़ गया था, तथापि वह दोनों को उलटता पलटता आगे बढ़ा। बात की बात में उसने उन सैनिकों की पंक्तियों को तितर बितर कर दिया। इधर उधर चारों ओर सेना में आफत मच गई। साथ ही वह बादशाही सेना के मध्य भाग की ओर बढ़ा, क्योंकि अकबर अपने अमीरों को साथ लिए हुए वहीं था। जान निछावर करनेवाले बड़े बड़े सरदार और वीर वहीं उपस्थित थे। आगे उन्होंने अपनी छाती को ढाल बनाकर सामना रोका; पर फिर भी उन लोगों में खलबली मच गई।

बादशाह बालसुंदर नामक हाथी पर सवार था। मिरजा अजीज कोका खवासी में बैठे हुए थे। उनके वंश के सभी लोग आस पास एकत्र थे। अकबर ने देखा कि युद्ध क्षेत्र का रंग बदला। वह सतर्क होकर हाथी पर से कूद पड़ा और घोड़े पर सवार हो गया। अपने वीरों को उसने ललकारा। अब दोनों भाइयों ने पहचान लिया कि अवश्य ही स्वयं बादशाह भी इस लश्कर में है; क्योंकि सरदारों में कोई ऐसा नहीं था जो इस प्रकार उन लोगों के सामने जमकर ठहर सकता, अथवा इस प्रकार व्यवस्था करके स्थान स्थान पर सहायता पहुँचाता। साथ ही उन्हें हाथियों का घेरा भी दिखाई दिया। अब उन लोगों ने मन में मरना ठान लिया। वे जिस स्थान पर थे, वहीं रुक गए; क्योंकि बादशाह का मुकाबला करना कोई साधारण काम नहीं था। वह एक बहुत ही विचारणीय विषय था। वे वास्तव में बादशाह से लड़ना नहीं चाहते थे। पर उन अभागों ने बहुत ही लाग डाँट से लड़ाई जारी कर रखी थी। पर नमक की मार की कुछ और ही चोट हुआ करती है। बहादुरखाँ के घोड़े की छाती में एक तीर लगा जिससे वह औंधा होकर जमीन पर गिर पड़ा। अब बहादुरखाँ पैदल रह गया। बादशाह को यह बात अभी तक नहीं मालूम हुई थी। सब लोगों को बदहवास देखकर वह स्वयं आगे बढ़ा। उसने अपने फौजदारों को आवाज दी कि हाथियों की पंक्तियों को अलीकुलीखाँ की

सेना पर रेल दो जिसमें बहादुरखाँ को इधर ध्यान देना पड़े। दोनों सेनाएँ तितर बितर हो रही थीं। अलीकुलीखाँ अपने स्थान पर जमा हुआ खड़ा था। वह बार बार बहादुरखाँ का हाल पूछता था और उसके लिये सहायता भेजता था। अभी इस बात का कुछ पता ही नहीं लगा था कि इन दोनों भाइयों पर क्या बीती कि इतने में अकबरी वीरों को विजय का रंग फड़कता हुआ जान पड़ा। उन्हें सफलता के चिह्न दिखाई देने लगे।

बात यह हुई कि इधर से पहले हीरानंद नामक हाथी अलीकुलीखाँ की सेना पर झुका। उधर से उसका सामना करने के लिए रोदियाना नामक हाथी था। हीरानंद ने कावा काटकर इस प्रकार कल्ले की टक्कर मारी कि रोदियाना छाती टेककर बैठ गया। संयोगवश मौत के तीर की तरह एक तीर आकर अलीकुलीखाँ को लगा। वह वीर बहुत ही बे-परवाही से वह तीर निकाल रहा था कि एक और तीर आकर उसके घोड़े को लगा। यह तीर ऐसा बेढब लगा था कि वह किसी प्रकार सँभल ही न सका। घोड़ा गिरा और साथ ही अपने सवार को भी ले गिरा। उसके साथियों ने लाकर दूसरा घोड़ा उसके सामने किया। वह उस पर सवार होना ही चाहता था कि इतने में बादशाही हाथियों में से एक हाथी विद्रोहियों को पैरों तले कुचलता हुआ आफत की तरह उस पर आ पहुँचा। खानजमाँ ने आवाज दी—फौजदार! हाथी को रोकना! मैं सेनापति हूँ। मुझे जीवित ही श्रीमान् की

सेवा में ले चल। बहुत सा इनाम पावेगा। पर उस दुष्ट अभागे ने नहीं सुना। हाथी को उस पर हूल ही दिया। वह खानजमाँ जिसके घोड़े की झपट से सेनाओं के धूँएँ उड़ते थे, हाथी के पैरों के नीचे कुचला गया। हाथी उसे रौंदता हुआ दूसरी ओर निकल गया। खानजमाँ जमीन पर सिसकता हुआ पड़ा रह गया। हे ईश्वर! जिस वीर को विजय और प्रताप सदा हवा के घोड़ों पर चढ़ाते थे, जिस विलासी को विलास और सुख मखमलों के फर्श पर लेटाते थे, वह इस समय मिट्टी पर पड़ा हुआ दम तोड़ रहा था। जवानी सिरहाने खड़ी सिर पीटती थी और वीरता आँसुओं की धारा बहाती थी। उसके सारे विचार, सारे हौसले, स्वप्न हो गए थे। हाय खानजमाँ, यह इस संसार का एक साधारण नियम है। तुमने हजारों आदमियों को मिट्टी और रक्त में लेटाया था। आओ भाई, अब की तुम्हारी पारी है। आज उसी मिट्टी पर तुम्हें सोना पड़ेगा।

सेनापति के मरते ही सारी सेना बिखर गई। बादशाही सेना में विजय का नगाड़ा बजने लगा। अकबर उधर सहायता के लिये सेनाएँ दौड़ा रहा था। इतने में नजर बहादुर अपने घोड़े पर आगे की ओर बहादुरखाँ को सवार कराके ले आया और उसे बादशाह की सेवा में उपस्थित किया। अकबर ने पूछा—बहादुर, क्या हाल है? बहादुरखाँ ने कोई उत्तर न दिया। अकबर ने फिर पूछा बहादुर ने कहा—

ईश्वर को धन्यवाद है कि किसी तरह बचा हूँ। बादशाह का जी भर आया। उसे अपनी बाल्यावस्था और साथ खेलने का स्मरण हो आया। उसने फिर कहा—बहादुर, भला यह तो बतलाओ कि मैंने तुम्हारे साथ कौन सी बुराई की थी जो तुमने मेरे सामने आकर तलवार निकाली ? वह बहुत ही लज्जित होकर सामने सिर झुकाए खड़ा था। लज्जा के मारे वह कुछ भी उत्तर न दे सका। यदि उसने कुछ कहा तो केवल यही कहा कि ईश्वर को धन्यवाद है कि अपने जीवन के अंत में मैंने श्रीमान् के दर्शन कर लिए। श्रीमान् के ये दर्शन सब अपराधों से मुक्त करनेवाले हैं। धन्य है अकबर का हौसला ! उसने अपराधों की क्षमा की बात सुनते ही आँखें नीची कर लीं और कहा कि इसे अच्छी तरह पहरे में रखो। उसने पानी माँगा। अकबर ने उसे अपनी छागल में से पानी दिया।

उस समय तक किसी को कुछ भी खबर नहीं थी कि अलीकुलीखाँ की क्या दशा हुई। बादशाह के शुभचिंतकों ने समझा कि वह अपने ऐसे शेर भाई का इस प्रकार बंदी होना अपनी आँखों से न देख सकेगा। वह प्रलय उपस्थित कर देगा। अपनी जान पर खेल जायगा और जिस प्रकार होगा, उसे छुड़ा ले जायगा। इसलिये कुछ लोग तो कहते हैं कि बिना बादशाह को सूचना दिए ही और कुछ कहते हैं कि अकबर के संकेत करने पर शहबाजखाँ कंबोह ने अनुपम वीर

बहादुरखाँ के प्राणों का अंत कर दिया। पर मुल्ला साहब कहते हैं कि बादशाह यह नहीं चाहता था कि उसकी हत्या हो।

बादशाह मैदान में खड़ा था। नमकहराम लोग पकड़े जाकर सामने आते थे और मारे जाते थे। बादशाह को खानजमाँ का बहुत खयाल था। जो सामने आता था, उसी से उसका हाल पूछते थे। इतने में बाबू फौजदार फीलवान पकड़ा हुआ सामने आया। उसने कहा मैं देखता था, श्रीमान् के एकदंत हाथी ने उसे दे मारा था। उसने हाथी और महावत का पता भी बतला दिया। बहुत से हाथी दिखाए गए। उसने नैनसुख हाथी को पहचाना। वास्तव में उसको एक ही दाँत था।

अकबर अभी तक संदेह में ही था। उसने आज्ञा दी कि जो नमकहरामों का सिर काटकर लावेगा, उसे पुरस्कार दिया जायगा। विलायती के सिर के लिये एक अशरफी और हिंदुस्तानी के सिर के लिये एक रुपया नियत हुआ। हाय अभागे हिंदुस्तानियो, तुम्हारे सिर कटकर भी सस्ते ही रहे। लश्कर के लोग सिर पर पैर रखकर उठ भागे। गोद में भर भरकर विपक्षियों के सैनिकों के सिर लाते थे और मुट्ठियाँ भर भरकर रुपए और अशरफियाँ लेते थे। बादशाह प्रत्येक सिर को देखता था, दिखाता था और पहचानता था। उन्हीं सिरों में से खानजमाँ का सिर भी मिला। धन्य है वह ईश्वर! जिस सिर से विजय का चिह्न कभी अलग नहीं होता था, जिस

पर से प्रताप का खेद कभी उतरता ही न था, जिस आकृति को सफलताओं की लाली सदा प्रफुल्लित रखती थी, उसी पर रक्त की काली धारियां खिंची थीं। अभाग्य ने उस पर मिट्टी डाली थी। भला उसे कौन पहचानता! सब लोग चिंता में थे। उसका विशिष्ट और विश्वसनीय दीवान अरजानी-मल भी उस समय कैदियों में उपस्थित था। उसे भी बुलाया और पूछा गया। उसने उस सिर को उठा लिया और अपने सिर पर दे मारा और ढाढ़ें मार मारकर रोने लगा। दौलत नाम का एक ख्वाजा-सरा था जो पहले अलीकुलीखां के महलों में रहता था। वह वहाँ से आकर बादशाह की सेवा में नौकर हो गया था और फिर पीछे से दौलतखाँ हो गया था। उसने देखा और कहा कि मृत वीर की यह आदत थी कि पान सदा बाईं ओर से खाया करता था; इसलिये उधर के दाँत रंगीन हो गए थे। देखा तो उस सिर में भी ऐसा ही था।

अब जरा यह सुन लीजिए कि उस अभागे पर क्या बीती थी। नैनसुख तो उसे रौंदकर चला गया था। वह अध-मरा होकर पड़ा हुआ दम तोड़ता था। बादशाही सेना का कोई बहुत ही साधारण सैनिक सिर काटने की फिक्र में घूमता फिरता वहां आ निकला। उसने इस मुगल को सिसकते देखकर सिर काट लिया। इतने में एक बादशाही चेला वहाँ आ पहुँचा। उसने उससे वह सिर छीन लिया और उसे धक्के देकर दुतकार दिया। आप बादशाह की सेवा में

उपस्थित होकर पुरस्कार में अशरफी ले ली। हाय, काल का यह चक्र देखना चाहिए। यह सीस्तान के उसी दूसरे रुस्तम का सिर है। आज उस पर कुत्ते लड़ रहे हैं। ईश्वर कभी किसी को कुत्तों का शिकार न कराए। शिकार भी करवाए तो शेर का ही करवाए। नहीं, तेरे यहाँ क्या कमी है! तू शेर का पंजा दीजियो और संसार के कुत्तों पर शेर रखियो।

जब अकबर को विश्वास हो गया कि खानजमा भी मर गया, तब उसने घोड़े पर से उतरकर जमीन पर सिर टेक दिया। उसने ईश्वर को धन्यवाद दिया। प्राय: सभी इतिहासलेखक इस युद्ध का वर्णन समाप्त करते हुए अपनी अपनी कलम का पूरा पूरा जोर दिखलाते हैं। वे कहते हैं कि यह विजय केवल अकबर के प्रताप और प्रभुत्व के कारण हुई थी; आदि आदि। यद्यपि गरमी बहुत जोरों की पड़ रही थी, पर फिर भी बादशाह उसी दिन इलाहाबाद चला आया। खानजमाँ, धन्य है तेरा आतंक और धन्य है तेरा दबदबा। वीर हो तो ऐसा हो। आजाद को तेरे मरने का दु:ख नहीं है। एक न एक दिन मरना तो सभी को है। हाँ, इस बात का दु:ख अवश्य है कि तेरा अंत अच्छा नहीं हुआ। तू इससे भी अधिक दुर्दशा से मरता, तेरी लाश की इससे भी बढ़कर दुर्दशा होती, पर तू अपने स्वामी की सेवा करता हुआ उसके ऊपर जान निछावर करता। उस दशा में तेरी मृत्यु का उल्लेख स्वर्णाक्षरों में होता। ईश्वर ईर्ष्या करनेवालों का मुँह

काला करे जिन्होंने इन भाइयों के चेहरे की लाली पर कालिमा लगाई थी। आजाद भी ऐसे ही अयोग्य और कमीने ईर्ष्यालुओं के हाथों परम दुःखी होकर बैठा है। फिर भी ईश्वर को धन्यवाद है कि वह मुँह पर कालिमा लगने से बचा हुआ है। ईश्वर आगे भी इसी प्रकार बचाए रहे। ये नीच स्वयं कुछ भी नहीं कर सकते। दूसरों को ढूँढ़ ढूँढ़ कर लाते हैं और मोरचे बाँधते हैं। अवसर पाते हैं तो अफसरों से लड़ते हैं। पर आजाद उन लोगों की कुछ भी परवाह नहीं करता। वह अपने आपको ईश्वर के और उन लोगों को संसार के सपुर्द करता है। स्वयं उनके कर्म ही उनसे समझ समझा लेते हैं।

ख्वाजा निजामउद्दीन बख्शी ने तबक़ाते अकबरी में लिखा है कि मैं उन दिनों आगरे में था। इधर तो ये लड़ाइयाँ हो रही थीं और उधर लोग दिन रात नई नई हवाइयाँ उड़ा रहे थे। फिर पोस्तियों और अफीमचियों का तो यही एक काम ठहरा। एक दिन चार मित्र एक स्थान पर बैठे हुए थे। जी में आया कि लाओ, हम भी एक फुलझड़ी छोड़ें। उन लोगों ने बात यह गढ़ी कि खानजमाँ और बहादुरखाँ मारे गए। बादशाह ने उन दोनों के सिर कटवाकर भेजे हैं। दोनों सिर राजधानी में चले आ रहे हैं। उन्होंने कुछ लोगों से इसका जिक्र भी कर दिया। तुरंत सारे नगर में यह चर्चा फैल गई। ईश्वर की महिमा देखो कि तीसरे ही दिन उन लोगों के सिर

आगरे आ पहुँचे। और फिर वहाँ से दिल्ली और लाहौर होते हुए काबुल पहुँचे। मुल्ला साहब कहते हैं कि मैं भी यह अफवाह उड़ाने में सम्मिलित था।

जिन लोगों को खानजमाँ और बहादुरखाँ से लाभ पहुँचता था, उन लोगों ने बहुत ही दुःखी होकर उनके मरने की तारीखें कही थीं। बादशाह के पक्ष के लोगों ने ऐसी तारीखें कही थीं जो अकबर की विजय की सूचक थीं। एक कवि ने तो इन दोनों मृत भाइयों को अपनी तारीख में नमकहराम और बेदीन तक कह डाला था। इसका एक कारण था। बैरमखाँ भी तो शीया ही थे। पर उनके मरने पर प्रत्येक कवि और लेखक ने प्रशंसा के सिवा और कुछ भी नहीं कहा। पर ये दोनों भाई दूसरे संप्रदाय के लोगों को प्रायः गालियाँ दिया करते थे और जो मुँह में आता था, कह बैठते थे। इसी का यह परिणाम था कि लोग इनके मरने पर भी इन्हें गालियाँ ही देते थे। किसी मनुष्य या पदार्थ से प्रेम रखना और बात है। असभ्यता और गाली गलौज कुछ और ही बात है। इसलिये जैसा तुमने दूसरों को कहा था, वैसा ही तुम भी सुन लो। बेचारा बुर्जअली बुर्ज पर से इस प्रकार क्यों गिराया गया था? इसी बदजबानी के कारण। स्वयं आजाद पर यह विपत्ति क्यों आई? बस इसी कारण। खैर, आजाद को इन झगड़ों से क्या मतलब। वह तो बात में एक बात निकल आई थी, इसलिये कह दी।

खानजमाँ उदार श्रौर ऊँचे हौसले का श्रादमी था। वह श्रपना मिजाज श्रमीरों का सा रखता था। बहुत ही बुद्धिमान् श्रौर समझदार था। विद्वानों, कवियों श्रौर गुणवानों का बहुत श्रधिक श्रादर सत्कार करता था। गाजीपुर से छः कोस की दूरी पर जमानिया नामक जो कस्बा है, वह इसी का बसाया हुश्रा है। वहाँ श्राजकल रेल्वे स्टेशन भी है। मशहद का गजाली नामक प्रसिद्ध कवि अपने कुकर्मों श्रौर श्रनाचारों के कारण श्रपने देश को भाग गया था। वहाँ से लौटकर वह दक्षिण भारत में श्राया था। वहाँ भी वह बहुत दुःखी श्रौर तंग था। खानजमाँ ने उसे एक हजार रुपए खर्च भेजकर श्रपने पास बुला लिया था।

उलफती यजदी नामक एक कवि था जो गणित-विद्या में बहुत निपुण था। वह खानजमाँ के पास बहुत श्रानन्द से रहता था। उसका उपनाम सुलतान था। उसके यहाँ प्रायः श्रनेक कवि श्रादि उपस्थित रहा करते थे श्रौर कविता की चर्चा हुश्रा करती थी।

मुल्ला साहब ने कुछ कवियों का जो वर्णन किया है, उसमें सुलतान सबकली का भी उल्लेख है। उसमें लिखा है कि कंधार के इलाके में सबकल नामक एक गाँव है। सुलतान वहाँ का रहनेवाला था। लोग उसे छिपकिली कहा करते थे। वह लज्जित होता था श्रौर कहता था कि क्या करूँ, लोगों ने कैसा गंदा श्रौर रद्दी नाम रख दिया है। खानजमाँ का

उपनाम भी सुलतान था। उसने सबकली के पास बहुत बड़ी खिलअत भेजी और साथ में एक हजार रुपए भेज कर कहलाया कि मुल्ला, तुम हमारी खातिर से यह उपनाम छोड़ दो। उसने वह उपहार फेर दिया और कहा कि वाह, मेरे पिता ने मेरा नाम सुलतान मुहम्मद रखा है। मैं यह उपनाम किस प्रकार छोड़ सकता हूँ। मैं तुमसे बरसों पहले से इस उपनाम से कविता करता आया हूँ और इसी नाम से मैंने इतनी प्रसिद्धि प्राप्त की है। खानजमाँ ने उसे अपने पास बुलाकर समझाया। जब उसने किसी प्रकार नहीं माना, तब खानजमाँ ने बहुत बिगड़कर कहा कि यदि नहीं छोड़ते हो तो मैं तुम्हें हाथी के पैरों के नीचे कुचलवाता हूँ। उसने क्रुद्ध होकर हाथी भी मँगवा लिया। कवि ने कहा कि यदि मैं इस प्रकार शहीद हो जाऊँ तो यह मेरे लिये परम सौभाग्य की बात है। जब खानजमाँ ने उसे बहुत अधिक धमकाया, तब खानजमाँ के उस्ताद मौलाना अलाउद्दीन लारी ने कहा कि इसे मौलाना जामी की एक गजल दो। यदि यह तुरंत उसके जोड़ की गजल कह दे तो तुम इसे क्षमा कर दो। और नहीं तो फिर तुम्हें अधिकार है; जो चाहो सो करो। जामी का दीवान उस समय वहाँ उपस्थित था। उसमें से एक गजल निकालकर दी गई। उसने तुरंत उसके जोड़ की दूसरी गजल कह दी। यद्यपि वह गजल कुछ बहुत बढ़िया नहीं थी, पर फिर भी खानजमाँ बहुत प्रसन्न हुआ। उसकी बहुत प्रशंसा की

और यथेष्ट पुरस्कार आदि देकर बिदा किया। फिर सुलतान वहाँ न रह सका। खानजमाँ से बिदा होते ही वहाँ से निकल गया। मुल्ला साहब कहते हैं कि वास्तव में वे मुरौवती उसी की थी। खानजमाँ जैसा अमीर ऐसी सज्जनता से उपनाम माँगे और वह देने में आनाकानी करे, यह अनुचित था।

मुल्ला साहब बेलाग कहनेवाले हैं। चाहे राजा हो और चाहे मंत्री, चाहे गुरु हो और चाहे चेला, किसी से नहीं चूकते। और फिर धार्मिक मतभेद के कारण दोनों भाइयों से रुष्ट भी थे। यहाँ तक कि उनके मारे जाने की तारीख में उन्हें नमकहराम भी कहा और बेदीन भी कहा। पर फिर भी जहाँ खानजमाँ और बहादुरखाँ का उल्लेख करते हैं, वहाँ ऐसा जान पड़ता है कि बहुत ही प्रसन्नतापूर्वक लिखते हैं। जहाँ उन्होंने इन लोगों के विद्रोह का उल्लेख किया है वहाँ ईर्ष्या करनेवालों के षड्यंत्र का भी संकेत अवश्य किया है। इसका कारण क्या है? यही कि इन लोगों में अनेक गुण थे। ये लोग नेक, परोपकारी, गुणग्राही और वीर थे। बात यह है कि सच्चे गुणों में बहुत भारी प्रभाव होता है। चाहे अपना हो और चाहे पराया, उसके मुँह से सच्चा गुण अपनी प्रशंसा उसी प्रकार खींचकर निकालता है जिस प्रकार सुनार जंत्री में से तार निकालता है।

बहादुरखाँ भी अच्छी कविता किया करता था। उसका असली नाम मुहम्मद सईदखाँ था हुमायूँ के शासन-काल में

वह बैरमखाँ की सिफारिश से जमींदावर का हाकिम बनाया गया था। अकबर के शासन काल में उसका अपराध क्षमा किया गया था। उस समय बैरमखाँ का जमाना था; इसलिये वह मुलतान का हाकिम हो गया। सन् २ जलूसी में वह मानकोट के युद्ध में सहायता देने के लिये बुलाया गया था। अपने नाम की बहादुरी को उसने काम की बहादुरी से प्रमाणित कर दिखलाया। फिर मुलतान गया और वहाँ बलोचों पर विजय प्राप्त की। सन् ३ जलूसी में मालवे पर आक्रमण करने के लिये गया। बैरमखाँ वाले झगड़े के समय दरबार के लोगों ने इसे अपनी ओर मिलाकर वकील मुतलक बना दिया। थोड़े ही दिनों बाद यह इटावे का हाकिम बनाकर भेज दिया गया। पाठक यह तो अभी देख ही चुके हैं कि इसने अपने भाई के साथ कैसी योग्यता और चातुरी के साथ सब काम किए थे। उसके अंतिम समय की भी दशा देख ली कि शाहबाजखाँ कंबोह की बेदर्दी के कारण किस प्रकार कबूतर की तरह शिकार हो गया। जब यह इटावे में था, तब एक बादशाही कोरची वहाँ वली बेग जुल्कदर का सिर लेकर पहुँचा। इसने क्रोध में आकर उस कोरची को मरवा डाला। इसके शुभचिंतकों ने सोचा कि कहीं बादशाह इससे दुःखी और क्रुद्ध न हो, इसे पागल बना दिया और इस बहाने से वह बला टल गई।

मुनइमखाँ खानखानाँ

इस प्रसिद्ध सेनापति और पंज-हजारी अमीर का संबंध किसी पुराने अमीर के वंश से नहीं मिलता। परंतु यह बात इसके लिये और भी अधिक अभिमान की है। वह यह कि इसने स्वयं अपने पौरुष से अपने वंश में अमीरी की नींव डाली थी; और अकबर के अमीरों में इसने वह पद प्राप्त किया कि सन् ९७८ हि० में तुर्किस्तान के शासक अब्दुल्लाखाँ उजबक की ओर से राजदूत लोग जो भेंट आदि लेकर आए थे, उसमें स्वयं मुनइमखाँ के लिये आई हुई भेंटों की अलग सूची थी। वह जाति का तुर्क था और उसका वास्तविक नाम मुनइमबेग था। उसके पूर्वजों के संबंध में लोगों को केवल इतना ही हाल मालूम है कि उसके पिता का नाम बैरमबेग था। हुमायूँ की सेवा करने के कारण मुनइमबेग ने मुनइमखाँ की उपाधि प्राप्त की था और उसका तथा उसके भाई फजीलबेग का नाम भी इतिहास में लिपिबद्ध हुआ था। परंतु इसके आरंभिक वृत्तांतों में केवल इतना ही मालूम होता है कि यह एक अच्छा सेवक था। स्वामी जो कुछ आज्ञा देता था, उसका पूरा पूरा पालन करता था। शेर शाह के साथ जो युद्ध आदि हुए थे, उनमें भी यह साथ देता था। दुर्दशा और विपत्ति के समय यह अपने स्वामी के साथ था। सिंध से जोधपुर तक जो कष्टपूर्ण यात्रा हुई थी, उसमें और उसके उपरांत उसकी वापसी में यह भी विपत्तियाँ सहने में सम्मिलित था। जिस

समय अकबर सिंहासन पर बैठा था, उस समय मुनइमखाँ की अवस्था पचास वर्ष से अधिक की थी। इतने दिनों तक जो उसने कोई उन्नति नहीं की थी, उसका मुख्य कारण यही जान पड़ता है कि वह बहुत शांत स्वभाव का, दूरदर्शी और सदा सतर्क रहनेवाला आदमी था; और आगे बढ़ने में वह सदा आज्ञा की प्रतीक्षा किया करता था। प्राचीन काल के बादशाहों के शासन काल में सैनिकों और सेनापतियों आदि को अपनी उन्नति करने और आगे बढ़ने के लिये साहस करके तलवार चलाने और देशों पर विजय प्राप्त करने की आवश्यकता हुआ करती थी। उस समय वही मनुष्य उन्नति कर सकता था जो साहसी और वीर होता था, जिसकी उदारता के कारण बहुत से संगी साथी सदा साथ लगे रहते थे और जो हर काम में आगे पैर बढ़ाता था और निकलकर तलवार मारता था। मुनइमखाँ में भी ये सब गुण यथेष्ट परिमाण में थे और वह उनका उपयोग करना भी बहुत अच्छी तरह जानता था। पर वह जो कुछ करता था, वह अपनी जेब से पूछकर करता था और कभी आवश्यक या उचित सीमा का उल्लंघन नहीं करता था। कई बातों से यह जान पड़ता है कि उसे अपनी प्रतिष्ठा का सदा बहुत अधिक ध्यान रहा करता था। वह कभी उस स्थान पर पैर नहीं रखता था जहाँ से फिर पीछे हटना पड़े। यदि किसी का पतन होने लगता था तो वह कभी उसके उस पतन में और अधिक वृद्धि नहीं करना चाहता था। जहाँ कहीं

कोई झगड़ा बखेड़ा होता था, वहाँ वह नहीं ठहरता था। पाठकों को स्मरण होगा कि जब लोगों के चुगली खाने पर हुमायूँ संदेह करके काबुल से दौड़ा हुआ कंधार गया था, उस समय स्वयं बैरमखाँ ने यह चाहा था कि कंधार में मेरे स्थान पर बादशाह मुनइमखाँ को छोड़ जाय। परंतु जिस प्रकार यह बात हुमायूँ ने नहीं मानी थी, उसी प्रकार स्वयं मुनइमखाँ ने भी यह बात नहीं मंजूर की थी।

किसी की विपत्ति के समय उसका साथ देना बहुत बड़े मर्द का ही काम है। हुमायूँ जिस समय सिंध में शाह अरगून के साथ लड़ रहा था और विपत्ति के लश्कर तथा अभाग्य की सेना के सिवा और कोई उसका साथ नहीं देता था, दुःख है कि उस समय मुनइमखाँ ने भी अपने माथे पर कलंक का एक टीका लगा लिया था। उस समय लश्कर के लोग भाग भागकर जाने लगे थे। समाचार मिला कि मुनइमखाँ का भाई तो अवश्य ही और कदाचित स्वयं मुनइमखाँ भी भागने पर तैयार है। हुमायूँ ने कैद कर लिया। दुःख की बात यह है कि इस संदेह ने बहुत जल्दी विश्वास का रूप धारण कर लिया। मुनइमखाँ भी भाग गए, क्योंकि उनके भाई तो कैद हो ही चुके थे। इसी बीच में बैरमखाँ भी वहाँ आ पहुँचे। वे बादशाह को ईरान ले गए। जब उधर से लौटे, तब अफगानिस्तान में ये भी आ मिले। अस्तु; यदि सबेरे का भूला हुआ संध्या तक अपने घर आ जाय तो उसे भूला नहीं कहते।

परंतु इसकी एक उदारता बहुत ही प्रशंसनीय है। जब चुगलखोरों के चुगली खाने से हुमायूँ के मन में संदेह आ गया था और वह बैरमखाँ से कंधार लेकर मुनइमखाँ के सपुर्द करना चाहता था, तब मुनइमखाँ ने कंधार का शासक बनने से स्वयं ही इन्कार कर दिया था और कहा था कि इस समय भारतवर्ष का बहुत बड़ा झगड़ा सामने है। अभी शासकों आदि में इस प्रकार का उलट फेर करना नीतिसम्मत नहीं है।

सन् ९६१ हि० में हुमायूँ अफगानिस्तान की व्यवस्था कर रहा था। बैरमखाँ कंधार का हाकिम था। अकबर की अवस्था दस ग्यारह वर्ष की थी। हुमायूँ ने मुनइमखाँ को अकबर का शिक्षक नियुक्त किया। इसने इसके बदले में कृतज्ञता प्रकट करने के लिये शाही जशन की व्यवस्था की। दरबारियों समेत बादशाह को निमंत्रित करके उनकी दावत की और बहुत अच्छे अच्छे उपहार सेवा में उपस्थित किए। उस समय जैसी बादशाही थी, वैसा ही शाही जशन भी हुआ होगा और वैसे ही उपहार आदि भी भेंट किए गए होंगे।

इसी वर्ष में हुमायूँ सेना लेकर भारतवर्ष की ओर चला। मुहम्मद हकीम मिरजा केवल एक वर्ष का शिशु था। बादशाह ने इस सितारे को उसकी माता माह चूचक बेगम की गोद में छोड़कर काबुल का शासन उसके नाम किया। बेगमों आदि को भी वहीं छोड़ा; और सारा कारबार तथा व्यवस्था मुनइमखाँ के सपुर्द की।

जब अकबर सिंहासन पर बैठा, तब शाह अब्बुलमुआली का भाई मीर हाशिम इधर था। खमरू जहाक और गौरबंद इसकी जागीर में थे। इस बुद्धिमान सरदार ने मीर हाशिम को बहाने से वहाँ बुलवाकर कैद कर लिया। इधर बादशाह प्रसन्न हो गए, उधर अपने मार्ग का कंटक दूर हो गया। सारा अफगानिस्तान था और ये थे। चारों ओर शासन के नगाड़े बजाते फिरते थे।

जब हुमायूँ भारतवर्ष की ओर चलने लगा था, तब बदख्शाँ का प्रदेश मिरजा सुलेमान को दे आया था। साथ ही उसके पुत्र इब्राहीम मिरजा से अपनी कन्या बख्शी बेगम का विवाह भी कर दिया था। जब हुमायूँ मर गया, तब मिरजा सुलेमान और उसकी बेगम की नीयत बिगड़ी। बेगम उस समय हुमायूँ की मातमपुरसी के बहाने से काबुल आई। वह नाम के लिये ही महल में रहनेवाली बेगम थी। नहीं तो अपने स्वभाव की उग्रता के कारण सुलेमान को, बल्कि सच पूछो तो सारे परिवार को जोरू बनाकर रहती थी और उसने वली नेमत बेगम की उपाधि प्राप्त की थी। भारतवर्ष में जो कुछ हो रहा था, वह सब उसने सुना। काबुल में आकर देखा कि यहाँ तो मुनइमखाँ है और या बेगमें हैं। यह सब अवस्था देखकर अपने घर चली गई। उधर से मिरजा सुलेमान सेना लेकर आए। अपने पुत्र मिरजा इब्राहीम को साथ लेते आए थे। उसी के साथ हुमायूँ की कन्या ब्याही हुई थी। मिरजा

ने आकर काबुल को चारों ओर से घेर लिया। मुनइमखाँ ने उसके आने का समाचार सुनते ही बादशाह के नाम एक निवेदनपत्र लिख भेजा था। साथ ही उसने चटपट प्राकार और खाई आदि की आवश्यक मरम्मत भी कर ली थी और किला बंद करके बैठ गया था। फिर उपयुक्त समय देखकर बहुत ही सचेत होकर लड़ना आरंभ किया। इधर से बादशाह ने लिख भेजा कि तुम घबराना नहीं। बदखशाँवाले बाहर से आक्रमण करते थे। अंदरवाले तोपों और बंदूकों से उत्तर देते थे। उधर से संयोगवश अकबर ने कुछ अमीरों को बेगमों को लाने के लिये भेजा था। वे अमीर अभी अटक के पार भी न उतरे थे कि चारों ओर यह समाचार प्रसिद्ध हो गया कि भारतवर्ष से सहायता के लिये सेना आ गई। उस समय धार्मिक आचार्यों से बहुत बड़े बड़े काम निकलते थे। मिरजा सुलेमान घबरा गया। उसने काजी निजाम बदख्शी को काजीखाँ बनाया था। उसी के द्वारा अपना सँदेसा और निवेदन आदि मुनइमखाँ के पास भेजा। काजी साहब के पास अपना अभिप्राय प्रकट करने के लिये इससे अधिक और कोई युक्ति अथवा तर्क नहीं था कि मिरजा सुलेमान बड़ा ही धार्मिक, सदाचारी और आस्तिक बादशाह है। धार्मिक नियमों और आचारों आदि का बहुत अच्छी तरह पालन करता है। वह भी तैमूर के ही वंश का दीपक है; इसलिये उत्तम यही है कि तुम उसी की सेवा में आ जाओ; और देश उसके

सपुर्द कर दो। उसने लड़ाई में होनेवाली खराबियों, मनुष्यों के रक्तपात और उस रक्तपात के कारण होनेवाले पाप का वर्णन करके स्वर्ग और नरक के नकशे खींचकर दिखाए।

मुनइमखां भी पुराने और अनुभवी बुड्ढे थे। उन्होंने बातों के उत्तर बातों से दिए। यद्यपि उस समय उनके पास सामान और धन आदि की बहुत कमी थी, तथापि आतिथ्य-सत्कार, दावतों और रोशनी आदि में बहुत अधिक आदमी और सामान प्रस्तुत करके ऐसा दबदबा दिखलाया कि काजीखां की आँखें खुल गईं और वास्तविक दशा का उसे कोई ज्ञान ही नहीं हुआ। साथ ही उसने यह भी कह दिया कि यहाँ किलेदारी के लिये यथेष्ट सामग्री है। भंडार इतने भरे पड़े हैं कि बरसों के लिये काफी हैं। परंतु जो जो बातें आपने कही हैं, केवल उन्हीं का विचार करके अब तक अंदर बैठा हुआ हूँ। नहीं तो युद्ध क्षेत्र में उतरकर मुँहतोड़ उत्तर देता। सैनिक को सदा सब काम बहुत सोच समझकर करना चाहिए। दरबार से भी सहायता के लिये सेना चल चुकी है और पीछे से सब सामग्री बराबर चली आ रही है। परंतु आप भी मिरजा साहब को समझावें कि अभी तो हुमायूँ बादशाह का कफन भी मैला नहीं होने पाया है जरा उनकी प्रथाओं का तो ध्यान करो। उन कृपा करनेवालों के प्रति द्रोही बनकर अपने ऊपर व्यर्थ कलंक न लो। घेरा उठा लो। संसार के लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे। काजी साहब निराश होकर

संधि की ओर झुके। मुनइमखाँ भी अवसर देखकर राजी हो गए। परन्तु उधर का राजदूत कारगुजार था। उसने पहली शर्त यह की कि मिरजा के नाम का खुतबा पढ़ा जाय; और दूसरी यह कि हमारी सीमा बढ़ाई जाय। मुनइमखाँ ने नाम मात्र के लिये एक छोटी सी अप्रसिद्ध मसजिद में दो चार आदमियों को एकत्र करके खुतबा पढ़वा दिया। मिरजा सुलेमान उसी दिन घेरा उठाकर चले गए। नए इलाके में वह अपना एक विश्वसनीय आदमी छोड़ गए थे। परंतु अभी वह बदख्शाँ भी न पहुँचे थे कि उनका वह विश्वासपात्र एक नाक और दोनों कान सही सलामत लेकर उनके पास पहुँच गया। तात्पर्य यह कि मुनइमखाँ ने केवल युक्ति-बल से ही काबुल को नष्ट होने से बचा लिया।

दुःख की एक बात यह है कि जब बुड्ढे शेर मुनइमखाँ ने दूर तक मैदान साफ देखा, तब पहले आक्रमण में घर की बिल्ली का शिकार किया। बाबर बादशाह की सेवा करनेवालों में से ख्वाजा जलालुद्दीन महमूद नाम के एक दरबारी मुसाहब थे। उनका स्वभाव तो बहुत अच्छा था, पर वे बहुत बढ़ बढ़कर और प्रायः व्यर्थ बोला करते थे। फिर भी उनकी तबीयत और दिमाग दोनों ही बहुत अच्छे थे। उन्हें सबसे अधिक अभिमान इस बात का था कि हम शाहकुली हैं। उनके इस अभिमान और बहुत तीव्र हास परिहास से दरबार के सभी लोगों का नाक में दम था। विशेषतः मुनइमखाँ तो

जलकर कोयला हो रहा था। वह दरबार का हाल भी जानता था और उसे मालूम था कि बैरमखाँ नाराज हैं। भला हुमायूँ के समय में मुनइमखाँ में कहाँ इतनी सामर्थ्य थी जो ख्वाजा से बदला लेते। पर अब वे काबुल के अधिकार-प्राप्त शासक हो गए थे। कुछ तो वे स्वयं तैयार हुए और कुछ उपद्रव खड़ा करनेवालों ने उनको उभारा। ख्वाजा उस समय गजनी के हाकिम थे। खाँ ने उनसे मित्रता की बात चीत पक्की करके गजनी में बुलाया और कैद कर लिया। उसी दशा में उनकी आँखों में कई नश्तर लगवाए और समझ लिया कि अब ये आँखों से लाचार हो गए। यही सोचकर इन्होंने उस ओर अधिक परवा न की। पर ख्वाजा भी बड़े करामात-वाले आदमी थे। कोई दम चुराता है, ख्वाजा आँखें ही चुरा गए। वे थोड़े दिनों बाद अपने भाई जलालुद्दीन के पास गए और बंगश के रास्ते से कलात और कोयटे होते हुए अकबर के दरबार में जा पहुँचे। यह सुनते ही मुनइमखाँ ने अपने आदमी भी दौड़ाए। फिर बेचारे को पकड़वा मँगाया। पहले तो लोगों को दिखलाने के लिये यों ही कैद में रखा; फिर अंदर ही अंदर उन्हें मरवा डाला। ऐसे सुशील आदमी के द्वारा इस प्रकार की व्यर्थ की हत्या होना और वह भी ऐसी अप्रतिष्ठा और बेमुरौवती के साथ बहुत ही दुःख की बात है।

जिस समय दरबार में बैरमखाँ का सर्वस्व नष्ट करने के उपाय हो रहे थे, उस समय परामर्श देनेवालों ने अकबर से

कहा था कि पास और दूर के सभी पुराने सेवकों को इस कार्य में सम्मिलित करने की आवश्यकता है। इसलिये मुनइमखाँ भी काबुल से बुलाए गए थे। उन्होंने अपने पुत्र गनीखाँ को वहीं छोड़ दिया और जल्दी जल्दी लोधियाने पहुँचकर अकबर को सलाम किया। अकबर उस समय खानखानाँ का पीछा कर रहा था। शम्सुद्दीन मुहम्मदखाँ अतका आगे आगे थे। उन्होंने अकबर के दरबार से खानखानाँ की उपाधि और वकील मुतलक का पद प्राप्त किया था। परंतु उनकी नेक-नीयती का प्रमाण उस वर्णन से मिल सकता है जो वैरमखाँ के संबंध में किया गया है। वहाँ बतलाया गया है कि जब लड़ाई समाप्त होने पर वैरमखाँ से संधि की बात चीत होने लगी, तब वे किस प्रकार आपे से बाहर होकर वैरमखाँ के पास दौड़े चले गए थे।

जब खानखानाँ का झगड़ा निपट गया, तब मुनइमखाँ खानखानाँ थे। जब अकबर युद्ध से निवृत्त होकर आगरे गया, तब उसने वैरमखाँ का वह विशाल राजप्रासाद, जिसके पैरों में जमना का पानी लोट लोटकर लहरें मारता था, मुनइमखाँ को पुरस्कार स्वरूप दिया। मुनइमखाँ समझता था कि वैरमखाँ का पद और कुल अधिकार मुझे मिलेंगे; परंतु पासा पलट गया। उस समय तक अकबर की आँखें खुलने लग गई थीं। वह साम्राज्य का कुल कार बार अब अपनी ही इच्छा के अनुसार करने लगा था। माहम से वकालत के सब काम

छिन गए। मीर अतका वकील मुतलक हो गए। माहम और उसके साथियों आदि को ये बातें बुरी लगीं। माहम के पुत्र अहमदखाँ के दिल में अंदर ही अंदर आग लगी हुई थी। मुनइमखाँ ने उसे भड़काया और शहाबखाँ ने उस पर तेल डाला। वह नवयुवक भड़क उठा। उस अदूरदर्शी ने अमीरों के जलसे में पहुँचकर मीर अतका के प्राण ले लिए। पर जब वह इस प्रकार निहत हो गया, तब जो जो लोग इस षड्यंत्र में सम्मिलित थे, उन्हें बहुत अधिक भय हुआ। शहाबखाँ का रंग पीला पड़ गया। मुनइमखाँ भी घबराकर भागे। उस समय सन् ७ जलूसी था। अकबर ने मीर मुनशी अशरफखाँ को भेजा कि जाकर मुनइमखाँ को समझा बुझाकर और सब प्रकार से विश्वास दिलाकर यहाँ ले आओ। वे आए तो सही, पर थोड़े ही दिनों में जलसेना के सेनापति कासिमखाँ के साथ फिर आगरे से भागे। दो तीन आदमी साथ लिए। बौसा के घाट पर नाव की सैर का बहाना किया। वहाँ जाकर सबने संध्या समय की नमाज पढ़ी। फिर रास्ते से कटकर अलग हो गए। काबुल जाने का विचार किया। रोपड़ से होकर बजवाड़े में आए। होशियारपुर के इलाके में पहुँचकर पहाड़ की तराई का रास्ता पकड़ा। पहाड़ों पर चढ़ते, खड्डों में उतरते, भाग्य में लिखी हुई विपत्तियाँ सहते हुए दोआब के सरोत नामक इलाके में पहुँचे। वह इलाका मीर महमूद मुनशी की जागीर था। जंगल में उतरे हुए थे। वहाँ का

अधिकारी कासिमअली सीस्तानी गश्त करता हुआ कहीं से उधर आ निकला। वह इन्हें पहचनाता तो नहीं था; पर फिर भी रंग ढंग से उसने जान लिया कि ये कोई सरदार हैं और छिपकर कहीं भागे जा रहे हैं। वह तुरंत लौटकर अपने इलाके में चला गया और वहाँ से थोड़े से सिपाही और गाँव के कुछ जमींदार आदि साथ लेकर फिर आया और इन्हें गिरिफ़्तार कर ले गया। अकबर के लश्कर में सैयद महमूद बारहा नामक एक वीर और उदार सरदार था। उसी इलाके में उसको भी जागीर थी। वह भी किसी काम से उसी जगह कहीं आया हुआ था। उसके पास समाचार भेजा गया कि दो आदमी यहाँ गिरिफ़्तार किए गए हैं जो लक्षणों से बादशाही अमीर जान पड़ते हैं। वे इधर से जा रहे थे। उनके रंग ढंग से जान पड़ता है कि वे भयभीत हैं। आप आकर देखिए कि वे लोग कौन हैं। वह आठ पहर इनके साथ रहनेवाला था। आते ही उसने पहचान लिया। बहुत तपाक से भेंट हुई। उसने इस अवसर को बहुत ही अच्छा समझा। अपने घर ले आया और बहुत आदर सत्कारपूर्वक रखा। आतिथ्य के कर्तव्य का बहुत अच्छी तरह पालन किया। दो चार दिन बाद अपने लड़कों और भाई बंदों के साथ इन्हें लेकर आदरपूर्वक चला और स्वयं ही जाकर अकबर की सेवा में उपस्थित किया।

यहाँ अकबर को लोगों ने बहुत कुछ लगाया बुझाया था, बल्कि यहाँ तक संकेत किया था कि इसका घर जब्त कर

होना चाहिए। अकबर ने कहा कि मुनइमखाँ ने केवल भ्रम में पड़कर ऐसा किया है। वह कहीं जायगा नहीं। और यदि जायगा भी तो कहाँ जायगा। काबुल भी तो हमारा ही देश है। कोई उसके घर के आस पास फटकने न पावे। वह इस वंश का बहुत पुराना सेवक है। वह जहाँ जायगा, वहीं हम उसका सब असबाब भेजवा देंगे। जब मुनइमखाँ आ पहुँचे, तब सबके मुँह बंद हो गए। बादशाह ने उन्हें बहुत कुछ ढारस दिलाया और उस पर वैसी ही कृपा की, जैसी चाहिए थी। उनके लिये वकालत का पद और खानखानाँ की उपाधि बहाल रखी।

सन् ६७० हि० में मुनइमखाँ ने एक वीरोचित साहस किया; पर दुःख है कि उसमें उसने ठोकर खाई। बात यह हुई कि वह तो यहाँ था और उसका पुत्र गनीखाँ काबुल में प्रतिनिधि था। उस अयोग्य लड़के ने वहाँ अपने कठोर व्यवहारों से प्रजा को तथा अयोग्यता से अमीरों को ऐसा तंग किया कि हकीम मिरजा की माँ चूचक बेगम भी दिक हो गई। मुनइमखाँ का भाई फजील बेग था जिसके आँखें न थीं। (जिस समय हुमायूँ के भाइयों ने विद्रोह किया था, उस समय मुनइमखाँ हुमायूँ के साथ था। फजील बेग कहीं संयोग से कामरान के हाथ आ गया। वह तो लोगों को पीड़ित करने का अभ्यस्त था ही; इसलिये उसने फजील को अंधा करा दिया था।) परंतु फिर भी झगड़ा और उपद्रव खड़ा करने के लिये वह मानों

सिर से पैर तक आँखें ही था वह भी अपने अयोग्य भतीजे की मनमानी कार्रवाइयों से तंग आ गया था। उसने तथा कुछ दूसरे सेवकों ने बेगम को भड़काया। फजीलबेग और उसके पुत्र अब्बुलफतह के परामर्श से यहाँ तक नौबत पहुँची कि एक दिन जब गनीखाँ बाहर से सैर करके लौटने लगा, तब लोगों ने नगर का द्वार बंद कर लिया। वह कई द्वारों पर दौड़ा, पर अंत में उसने समझ लिया कि यह साहस करने का अवसर नहीं है। अब मेरे कैद होने का समय आ गया है। इसलिये उसने काबुल की ओर से हाथ उठाया और भारतवर्ष की ओर पैर बढ़ाया। वहाँ बेगम ने फजीलबेग को मिरजा का शिक्षक नियुक्त कर दिया। अँधेरे में बेईमानी के सिवा और क्या हो सकता था। उसने अच्छी अच्छी जागीरें आप ले लीं और कुछ अपने संबंधियों को दे दीं। उसका पुत्र अब्बुलफतह ही आज्ञाएँ आदि लिखने का काम करता था। वह अक्ल का अंधा था। पिता उस पर स्वार्थ-साधन, दुराचार और मद्यपान आदि के हाशिए चढ़ाता था। लोग पहले की अपेक्षा और भी अधिक तंग आ गए। अंत में अब्बुलफतह शराब की बदौलत छलपूर्वक मार डाला गया और उसका सिर कटकर भाले पर चढ़ गया; अंधा भागा, परंतु शीघ्र ही पकड़ मँगाया गया; और आते ही अपने पुत्र के पास पहुँचा दिया गया। अब वलीबेग काबुल के प्रधान अधिकारी हुए। ये भी पूरे वली ही थे। इन्होंने समझा

कि अकबर अभी लड़का है। ये स्वयं ही बादशाही की हवा में उड़ने लगे। वहाँ के इस प्रकार के उत्पात और उपद्रव आदि देखकर अकबर को यह भय हुआ कि कहीं काबुल हाथ से न निकल जाय। कुछ तो काबुल का जलवायु अच्छा था, कुछ वहाँ शारीरिक सुख भी अधिक मिलते थे और कुछ स्वतंत्रतापूर्वक शासन करने का भी चस्का था। इसलिये मुनइमखाँ सदा काबुल के शासक बनने की आकांक्षा किया करते थे। इसलिये अकबर ने उन्हीं को हकीम मिरजा का शिक्षक और काबुल का शासक बनाकर वहाँ भेज दिया। उनकी सहायता के लिये कुछ अमीर और सेनाएँ आदि भी साथ कर दीं। मुनइमखाँ तो पहले से ही काबुल के नाम पर जान दे रहे थे। काबुलियों के उपद्रव और उत्पात की उन्होंने कुछ भी परवा नहीं की। बादशाह की प्रत्यक्ष सेवा की भी उन्होंने कुछ कदर नहीं समझी। आज्ञा मिलते ही चल पड़े और कूच पर कूच करते हुए जलालाबाद के पास जा पहुँचे। जल्दी में उन्होंने अमीरों और सहायता देनेवाली सेना के आने की भी प्रतीक्षा नहीं की।

जब बेगम और उसके परामर्शदाताओं को यह समाचार मिला, तब उन्होंने सोचा कि मुनइमखाँ के पुत्र की यहाँ बहुत अधिक अप्रतिष्ठा हुई है। उसके भाई भतीजे भी बहुत दुर्दशा से मारे गए हैं। इसलिये वह यहाँ आकर न जाने किसके साथ किस प्रकार का व्यवहार करे। यह सोचकर उन लोगों

ने बहुत सी सामग्री और सैनिक आदि एकत्र किए। उन उपद्रवियों ने मिरजा को भी सेना के साथ लिया। आगे बढ़कर मुनइमखाँ के मुक़ाबले पर आ डटे। उन्होंने सोचा यह था कि यदि हम लोगों की विजय हुई तब तो ठीक ही है; और यदि हम हार गए तो फिर यहाँ न रहेंगे, बादशाह के पास चले जायँगे। बेगम ने एक सरदार को कुछ सेना देकर आगे बढ़ाया और उससे कहा कि तुम आगे चलकर जलालाबाद के क़िले की क़िलेबंदी करो। जब मुनइमखाँ को यह समाचार मिला, तब उसने एक अनुभवी योद्धा सरदार को उसे रोकने के लिये आगे भेजा। पर इस बीच में वह क़िले की सब व्यवस्था कर चुका था। मुनइमखाँ के भेजे हुए सरदार ने जलालाबाद के मैदान में ही युद्ध छेड़ दिया। इतने में समाचार मिला कि बेगम और मिरजा भी आ पहुँचे।

मुनइमखाँ चाहे कितने ही आवेश में क्यों न रहते हों, पर फिर भी अपनी होशियारी की चाल नहीं छोड़ते थे। बाबर के समय का जब्बार बुरदी नामक एक सरदार था जो उन दिनों फ़क़ीरी के भेस में अमीरी किया करता था। वह भी काबुल की हवा में मुनइमखाँ के साथ ही उड़ा चला जाता था। मुनइम ने उसे भेजा कि जाकर मिरजा से बातचीत करो और उसे समझाओ जिसमें व्यर्थ रक्तपात की नौबत न पहुँचे; बातों ही बातों में सब काम निकल आवे। और यदि यह मंत्र न चले तो लड़ाई कल तक के लिये स्थगित

कर दो, क्योंकि आज सितारा* सामने है। हरावलवाली सेना में यक्का या अहदी के वर्ग का समर नामक एक सैनिक था। वह घोड़ा दौड़ाता हुआ आया और कहने लगा कि शत्रु के सैनिकों की संख्या बहुत कम है। ऐसी अवस्था में कल तक के लिये युद्ध स्थगित करना ठीक नहीं। ऐसा न हो कि वह निराश होकर निकल जाय और बात बढ़ जाय। मुनइमखाँ और हैदर महमूदखाँ दोनों ही काबुल के बहुत बड़े प्रेमी थे। ये दोनों योद्धा तो अच्छे थे, पर अभिमानी थे। रिकाब में जो सेना थी, उसके तथा अपने साहस पर घोड़े बढ़ाते हुए चले गए और चारबाग के पास ख्वाजा रुस्तम के पड़ाव पर युद्ध क्षेत्र नियत हुआ। खानखानाँ जब कभी अपने सिद्धांत के विपरीत काम करते थे, तभी धोखा खाते थे। इनका जो सरदार हरावल बनकर गया था, वह मारा गया और ऐसा भीषण युद्ध हुआ कि सारी सेना ही नष्ट हो गई। इनकी हार हुई और इनके बहुत से साथी काबुलियों से जा मिले। बहुत सी सामग्री और तीस लाख का खजाना तथा तोशाखाना सब काबुली लुटेरों को देकर स्वयं बहुत ही दुर्दशा से वहाँ से भागे। यही कुशल समझिए कि शत्रु पक्ष के लोग लूट के माल पर ही गिर पड़े। और नहीं तो स्वयं ये लोग भी मारे जाते।

---

* तुर्कों में यह प्रसिद्ध है कि यलदोज नाम का एक सितारा है। वह युद्धक्षेत्र में जिस पक्ष के सामने होता है, उसी की हार होती है।

मुनइमखाँ बेहोश, बदहवास, पर झड़े, दुम नुचो पेशावर में पहुँचे। बहुत दिनों तक बैठे बैठे सोचते रहे कि क्या करना चाहिए। अंत में उन्होंने सारा हाल अकबर को लिख भेजा। साथ ही यह भी निवेदन किया कि इस सेवक ने श्रीमान् की सेवा में रहने और श्रीमान् की कृपाओं का मूल्य नहीं जाना। उसी अपराध का यह दंड था। अब मैं श्रीमान् के सामने मुँह दिखाने के योग्य नहीं रह गया। यदि श्रीमान् की आज्ञा हो तो मैं मक्के चला जाऊँ। जब मैं सब प्रकार के अपराधों से मुक्त हो जाऊँगा, तब फिर श्रीमान् की सेवा में उपस्थित होऊँगा। यदि इस सेवक का यह निवेदन श्रीमान् को स्वीकृत न हो तो फिर पंजाब में ही थोड़ी सी जागीर मिल जाय जिसमें मैं अपनी वर्तमान स्थिति सुधार और ठीक करके सेवा में उपस्थित होने के योग्य होऊँ।

मुनइमखाँ कुछ तो भय के कारण और कुछ लज्जा के कारण पेशावर में भी न ठहर सका। अटक उतरकर गक्खड़ों के इलाके में चला आया। सुलतान आदम गक्खड़ ने उसके साथ बहुत ही सज्जनतापूर्ण और उदारता का व्यवहार किया। बहुत धूमधाम से उसके पद और मर्यादा आदि के उपयुक्त आतिथ्य-सत्कार किया। मुनइमखाँ उस समय बहुत ही दुःखी और चकित होकर बैठा था। उसकी समझ में ही न आता था कि अब मैं क्या करूँ और क्या न करूँ। न चलने के लिये रास्ता था, न बैठने के लिये स्थान था

और न दिखाने योग्य मुँह ही था। अकबर ने अपने पुराने सेवक को उत्तर लिखा जिसमें उसे बहुत कुछ धैर्य दिलाया गया था। लिखा था कि तुम कुछ चिंता न करो। तुम्हारी पुरानी जागीर बहाल है। पहले की भांति अब भी तुम अपने इलाकों पर अपने आदमी भेज दो और स्वयं दरबार में चले आओ। तुम पर इतने अनुग्रह होंगे कि तुम्हारी समस्त हानियों की पूर्त्ति हो जायगी। यह दुःखी होने की कोई बात नहीं है। सैनिक अवस्था में प्रायः ऐसी बातें हुआ करती हैं। जो जो हर्ज हुए हैं, उन सबका प्रतिकार हो जायगा। अब मुनइमखां के जी में जी आया। बहुत कुछ धैर्य बँधा। दरबार में उपस्थित हुआ और शीघ्र ही आगरे का किलेदार हो गया। कई वर्षों तक यह सेवा उसी के नाम रही।

सन् ९७२ हि० में जब अकबर ने अलीकुलीखाँ सीस्तानी पर आक्रमण किया, तब कुछ दिनों पहले सेना देकर मुनइमखाँ को आगे भेज दिया। उसने अपने योग्यतापूर्ण व्यवहार से दोनों ओर की शुभ चिंतना करते हुए और दोनों ओर के दुर्भाव दूर करते हुए बहुत ही अच्छे और प्रशंसनीय कार्य किए। बादशाह भी उसकी इन सेवाओं से प्रसन्न हो गए। यद्यपि आग लगानेवाले बहुत थे, तथापि मुनइमखां यथासाध्य इसी बात का प्रयत्न करता रहा कि साम्राज्य का यह प्राचीन सेवक नष्ट न हो। अंत में उसका वह सद्विचार पूरा हुआ और उसका प्रयत्न सफल हुआ। उस झगड़े का अंत संधि

श्रौर सफाई में हुआ। उसके शत्रुओं ने बादशाह के मन में उसकी ओर से भी संदेह उत्पन्न करने का बहुत कुछ प्रयत्न किया, पर कुछ भी फल न हुआ।

जब सन् ९७५ हि० में खानजमाँ श्रौर बहादुरखाँ के रक्त से पृथ्वी रंजित हुई श्रौर पूर्व के झगड़ों का अंत हुआ, तब मुनइमखाँ राजधानी आगरे में ही थे, क्योंकि बादशाह उन्हें वहीं छोड़ गए थे। युद्ध की समाप्ति पर बादशाह ने उन्हें बुला भेजा। वृद्धावस्था में प्रताप का तारा उदित हुआ। बादशाह ने अलीकुलीखाँ का सारा इलाका, सारा जौनपुर, बनारस, गाजीपुर, चुनारगढ़ श्रौर जमानियाँ से लेकर चौसा के घाट तक का सारा प्रान्त मुनइमखाँ को प्रदान किया श्रौर शाही खिलअत तथा घोड़ा देकर बिदा किया। वह बहुत ही उदारता तथा युक्तिपूर्वक वहाँ शासन करता रहा। उन दिनों सुलेमान किरारानी श्रौर लोदी आदि अफगानों के सरदार अफगानों के शासनकाल से ही बंगाल तथा पूर्वी जिलों में स्थायी रूप से हाकिम बनकर रहते थे। उन लोगों के पास सेनाएँ आदि भी यथेष्ट थीं। मुनइमखाँ कुछ तो मेल मिलाप करके श्रौर कुछ युद्ध की सामग्री दिखलाकर उन्हें दबाता रहा। श्रौर यदि सच पूछो तो यही तीन वर्ष उसकी दीर्घ आयु के निचोड़ थे। इसी अवसर में इसे खानखानाँ की उपाधि मिली थी जिसके कारण इसके नाम को ताजदार कह सकते हैं। श्रौर यही बंगाल का युद्ध है जिसकी बदौलत वह फिर से

अकबर के दरबार में उपस्थित होने के योग्य हुआ था। उसी समय इसने सुलेमान से संधि करके अकबर के नाम का सिक्का चलवाया था।

अकबर चित्तौर की चढ़ाई में गया हुआ था। खानखानाँ को समाचार मिला कि जमानियाँ के शासक बादशाही सेवक असदउल्लाखाँ ने सुलेमान किरारानी के पास आदमी भेजा है और कहलाया है कि तुम आकर इस इलाके पर अधिकार कर लो। खानखानाँ ने तुरंत उसे डाँट डपटकर ठीक करने के लिये अपने विश्वसनीय आदमी भेजे। वह भी समझ गया और तुरंत खानखानाँ के गुमाश्ते कासिम मुश्की को वह इलाका सपुर्द करके आप सेवा में आ उपस्थित हुआ। अफगानों की जो सेना उस इलाके पर अधिकार करने के लिये आई थी, वह विफलमनोरथ होकर फिर गई।

सुलतान का मंत्री लोदी था जो उसका वकील मुतलक या अधिकारप्राप्त प्रतिनिधि था। वह सोन नदी तक सब काम अपने इसी अधिकार के कारण करता था। जब उसने देखा कि अकबर निरंतर विजय पर विजय प्राप्त करता चला जाता है और खानखानाँ बहुत ही शांतिप्रिय, शांत स्वभाव का और संधिप्रिय है, तब वह मित्रतापूर्ण बात चीत करने लगा। उसका मुख्य उद्देश्य यह था कि सुलेमान के अधिकृत प्रदेश में किसी प्रकार की बाधा न खड़ी होने पावे। इसलिये उसने पत्र और सँदेसे आदि भेजे। इस प्रकार मित्रता की नींव

डाली। उसी नींव पर वह उपहारों और भेंटों आदि की सहायता से मित्रता की इमारत खड़ी करने लगा।

चित्तौरवाला घेरा बहुत दिनों तक पड़ा रहा। उसके जल्दी उठने के लक्षण ही नहीं दिखाई देते थे। सुरंगों के उड़ने में बहुत सी बादशाही सेना नष्ट हो गई थी। इससे सुलेमान के विचार बदलने लगे। ये सब समाचार सुनकर उसने आसफ के द्वारा मुनइमखाँ को बुला भेजा। वह चाहता था कि बहुत ही प्रेमपूर्वक उससे भेंट करके मित्रता की नींव और भी दृढ़ कर ली जाय। मुनइमखाँ के शुभचिंतकों को यह बात कुछ ठीक नहीं जान पड़ी, इसलिये उन लोगों ने उसे रोका। परंतु वह नेकनीयत बहादुर बिना किसी प्रकार के संकोच के तुरंत चला गया। साथ में कुछ थोड़े से अमीर और केवल तीन सौ सैनिक होंगे। लोदी लेने के लिये आया। सुलेमान का बड़ा पुत्र बायजीद कई पड़ाव आगे चलकर स्वागत करने के लिये आया था। जब पटना पाँच छः कोस रह गया, तब सुलेमान स्वयं उसका स्वागत करने के लिये आया। उसने बहुत आदर और प्रतिष्ठार्वपूक भेंट की। पहले खान-खानाँ ने जशन करके उसे अपने यहाँ निमंत्रित किया। दूसरे दिन सुलेमान ने आतिथ्य-सत्कार करने के लिये उसे अपने यहाँ बुलाया। यह भी बहुत धूमधाम और ठाट बाट से गया। बहुमूल्य उपहार आदि दिए। मसजिदों में अकबर के नाम का खुतबा पढ़ा गया और उसके नाम के सोने तथा चाँदी के सिक्के ढले।

सुलैमान के दरबार में कुछ ऐसे मुसाहब भी थे जिनका स्वभाव देव या राक्षस के समान था। उन्होंने कहा कि अकबर तो इस समय युद्ध में फँसा हुआ है। इधर जो कुछ है, वह केवल मुनइमखाँ ही है। यदि इसे मार लें, तो यहाँ से वहाँ तक सारा देश खाली ही पड़ा है। लोदी को भी कहीं से यह समाचार मिल गया। उसी ने यह सफाई और भेंट कराई थी। उसने समझाया कि ऐसा नहीं करना चाहिए। यदि तुम अतिथि को अपने यहाँ बुलाकर इस प्रकार का कपटपूर्ण व्यवहार करोगे, तो सब छोटे बड़े हमें क्या कहेंगे। और फिर अकबर जैसे प्रतापी बादशाह के साथ बिगाड़ करना भी युक्तियुक्त नहीं है। मान लिया कि यह खानखानाँ नहीं रह जायगा। पर इससे क्या? अकबर दूसरा खानखानाँ बनाकर भेज देगा। इन गिनती के आदमियों को मारकर हमारे हाथ क्या आवेगा? और फिर स्वयं हमारे ही सिर पर भारी भारी शत्रु उपस्थित हैं जिन्हें रोकने के लिये हमने इस बड़े सेनापति का पल्ला पकड़ा है। इसकी हत्या करना दूर-दर्शिता के विरुद्ध है। वह तो ये सब बातें कह रहा था, पर अफगान फिर भी शोर मचाए जाते थे। मुनइमखाँ तक भी यह समाचार पहुँच गया। उसने लोदी को बुलाकर परामर्श किया। अपने लश्कर को तो वहीं छोड़ा और थोड़े से आद-मियों को लेकर आप वहाँ से उड़ निकला। जब बुढ़िया परी शीशे से निकल गई, तब उन देवों को समाचार मिला।

अपनी बदनीयती पर वे लोग बहुत पछताए। बहुत कुछ परामर्श हुए। अंत में बायजीद और लोदी दोनों चलकर खानखानाँ के पास आए और बहुत आदरपूर्वक मिलकर और सब झगड़े तै करके चले गए। खानखानाँ गंगा पार उतर-कर केवल तीन ही पड़ाव चले थे कि इतने में चित्तौर का विजय-पत्र पहुँचा। फिर तो उसका बल मानो दस गुना हो गया। परंतु इनकी बुद्धिमत्ता और सद्व्यवहार ने सुलेमान को निश्चित कर दिया था। वह अपने शत्रुओं के पीछे पड़ा। उसने उन सबको या तो बल से और या छल से नष्ट कर दिया। पर थोड़े ही दिनों में वह स्वयं भी मौत के मुँह में चला गया।

सुलेमान के उपरांत उसका पुत्र दाऊद गद्दी पर बैठा। उस समय उसके मन में अपने पिता की एक भी बात न रह गई। राजमुकुट सिर पर रखते ही वह बादशाही की हवा में उड़ने लगा। उसने अपने नाम का खुतबा पढ़वाया और अपने ही नाम का सिक्का भी जारी कराया। अकबर के पास निवेदनपत्र तक न भेजा। अकबर के दरबार के संबंध में जिन जिन नियमों का उसे पालन करना चाहिए था, उन सब नियमों को वह भूल गया।

अकबर गुजरात में विजय प्राप्त करके सूरत के किले पर था। इतने में उसे समाचार मिला कि पूर्व में ये सब बातें हो रही हैं। तुरंत मुनइमखाँ के नाम आज्ञा पहुँची कि दाऊद

को ठीक करो; अथवा बिहार प्रदेश पर तुरंत विजय प्राप्त कर लो। वह सेनापति अपने साथ बहुत बड़ी सेना लेकर चढ़ दौड़ा। जाते ही दाऊद को ऐसा दबाया कि अंत में उसे विवश होकर मुनइम के पुराने मित्र लोदी को बीच में डाल-कर दो लाख रुपए नगद और बहुत से बहुमूल्य उपहार आदि देने पड़े। मुनइमखाँ युद्ध के नगाड़े बजाते हुए गए थे, संधि के शुभ गीत गाते हुए चले आए।

अकबर जब सूरत के किले पर विजय प्राप्त करके लौटा, तब उसमें युवावस्था का साहस भरा हुआ था और उसके आवेश रूपी समुद्र में ऊँची ऊँची लहरें उठ रही थीं। एक पर एक विजय होती जाती थी जो लहरों की भाँति टकराती थी। टोडरमल को मुनइमखाँ के पास भेजा कि तुम स्वयं जाकर देश और देशवासियों की दशा देखो। साथ ही इस बात का भी पता लगाओ कि उन लोगों के विचार कैसे हैं। मुनइमखाँ से भी इस बात का पता लगाओ कि यह अवस्था देखकर तुम्हारी क्या सम्मति होती है। वे गए और तुरंत ही लौट आए। जो जो बातें वहाँ देखी सुनी थीं, सब कह सुनाईं। यहाँ से तुरंत मुनइमखाँ के नाम आज्ञापत्र निकलने लगे कि युद्ध आरंभ करने और अमीरों आदि को बंगाल की ओर भेजने की तैयारी करो।

दाऊद के दुर्भाग्य के कारण उसके दुष्ट और बिगाड़नेवाले सरदारों के साथ उसका इतनी जल्दी बिगाड़ हुआ जिसकी

स्वप्न में भी आशा नहीं थी। पेच तो सदा से चलते रहते थे। अब उन लोगों ने थोड़े से हाथियों के लिये दाऊद को लोदी से लड़ा दिया। लोदी ने ऐसे ही ऐसे अवसरों के लिये इधर का मार्ग निकाल रखा था। उसने मुनइमखाँ से सहायता माँगी। उन्होंने तुरंत कुछ सेना देकर एक सरदार को उधर भेज दिया। थोड़े दिनों बाद पत्र आए कि वह तो जाकर दाऊद से मिल गया; और हम लोगों को उसने वापस भेज दिया है। उस वृद्धावस्था में खानखानाँ सिर झुकाए सोच रहे थे कि अब क्या होगा और हमें क्या करना चाहिए। साथ ही उनके दूत यह भी समाचार लाए कि दाऊद ने लोदी को मरवा डाला। ये तो ऐसे ही अवसर की ताक में थे। चढ़ाई करने में यदि किसी का खटका था, तो वह इसी का था। बस तुरंत लश्कर लेकर पटने और हाजी-पुर जा पहुँचे। अब उस नवयुवक की आँखें खुलीं और लोदी की बात याद आई। परंतु अब हो ही क्या सकता था।

पटने के किले और प्राकार आदि की मरम्मत आरंभ कर दी गई। यहाँ भूल यह हुई कि तलवार म्यान से नहीं निकली, गोली बंदूक में नहीं पड़ी, और वह किले में बंद होकर बैठ गया। खानखानाँ ने घेरा डाला। साथ ही बादशाह के पास निवेदनपत्र भेजा कि इस प्रदेश में बिना जल-युद्ध की सामग्री के युद्ध नहीं हो सकता। उधर से झट बड़ी बड़ी जंगी नावें, जल-युद्ध की बहुत सी सामग्री तथा रसद आदि के साथ, रवाना की गईं। वृद्ध सेनापति स्वयं भी बहुत दिनों से तैयारी

कर रहा था। इधर उधर सेनाएँ दौड़ाता था। पर बहुत ही सतर्क होकर सब काम करता था। जहाँ वह कुछ भी भय देखता था, वहाँ जाने का साहस ही न करता था। झट वह पहलू बचा जाता था। रुपए की भी किफायत करता था। हाँ, यदि युद्ध की सामग्री अथवा रसद आदि की आवश्यकता देखता था तो लाखों रुपए लुटा देता था। इस प्रकार उसने गोरखपुर जीता। अफगानों की यह दशा थी कि एक जगह से घबराकर भागते थे तो दूसरी जगह पहले की अपेक्षा और भी अधिक आदमी एकत्र करके विशेष दृढ़तापूर्वक जम जाते थे। वह सरदारों को सेनाएँ देकर उनके मुकाबले के लिये भेजता था और समय पर स्वयं भी पहुँच जाता था। परंतु सदा उन्हें अपनी ओर मिला लेने की ताक में रहता था।

पटने पर बहुत दिनों तक घेरा पड़ा रहा, पर वह जीता न जा सका। खानखानाँ ने निवेदनपत्र लिखा कि यद्यपि युद्ध चल रहा है और जान निछावर करनेवाले सेवक नमक का हक अदा कर रहे हैं, तथापि वर्षा ऋतु आ पहुँची है। जितनी जल्दी इस युद्ध का निपटारा हो जाय, उतना ही अच्छा है। और जब तक श्रीमान् यहाँ नहीं पधारेंगे, तब तक यह आकांक्षा पूरी नहीं होगी। बादशाह ने उसी समय टोडरमल को रवाना किया और इधर उधर के दूसरे युद्धों की व्यवस्था करके आज्ञा दी कि सेना तैयार हो और यह यात्रा नदी में हो। सेना आगरे से स्थल मार्ग से चली। अकबर

अपनी बेगमों, शाहजादों और अमीरों आदि के साथ जल-मार्ग से चला। बादशाह भी जवान, प्रताप भी जवान और साम्राज्य के कार्यकर्ता भी जवान थे। अब्बुलफजल और फैजी भी इन्हीं दिनों दरबार में पहुँचे थे। विजय और प्रताप मानों संकेत की प्रतीक्षा किया करते थे। बड़े समारोह से चले। नदी में मानों सुख और विलास की नदी बही जा रही थी। इस यात्रा की पूरी शोभा का वर्णन मुल्ला साहब के विवरण में किया गया है। अकबर ही क्या, कदाचित् चगताई के वंश में किसी को भी ऐसा अवसर न प्राप्त हुआ होगा।

मुनइमखाँ सभी ओर युक्ति के घोड़े दौड़ाते थे। प्रायः अफगानों को अपनी ओर मिलाते थे। जो लोग वश में नहीं आते थे, उनको दबाते थे, उनकी सेना को बड़ी बड़ी विपत्तियाँ सहनी पड़ी थीं। परंतु हुसैनखाँ पुन्नी से, जो उधर से आकर इधर मिल गया था, यह बात मालूम हो गई थी कि वर्षा ऋतु में नदी बहुत बढ़ जायगी; इसलिये पुनपुना नदी का बंद तोड़ देना चाहिए जिसमें उसका पानी जाकर गंगा में मिल जाय। वह बंद लोगों ने इसी अभिप्राय से बाँधा था जिसमें पानी किले के आसपास आ जाय। यदि शत्रु यहाँ आवे तो ठहर न सके। पटने में हाजीपुर से बराबर रसद पहुँचा करती थी। सोचा कि पहले हाजीपुर पर ही विजय प्राप्त कर लें। परंतु साथ में सेना इतनी अधिक न थी कि यह काम हो सकता; इसलिये वह विचार रह गया।

दाऊद ने भी बाँध की रक्षा के लिये बहुत सतर्क होकर सेना रखी थी। परंतु मजनूँखाँ रात की काली चादर ओढ़कर इस फुरती से वह काम कर आया कि नींद में मस्त होकर सोनेवालों को खबर भी न हुई। जो लोग उसकी रक्षा के लिये नियुक्त थे, वे लज्जित होकर ऐसे भागे कि दाऊद के पास तक न जा सके। मारे मारे फिरते हुए घोड़ा घाट जा पहुँचे।

बादशाह बराबर जल और स्थल की सैर करते हुए शिकार खेलते चले जाते थे। एक दिन गंगा के किनारे दासपुर नामक स्थान में पड़ाव पड़ा हुआ था। इतने में युद्ध क्षेत्र से आया हुआ एतमादखाँ नामक ख्वाजासरा पहुँचा। उसने युद्ध का सब हाल निवेदन किया। उसकी बातों से जान पड़ा कि शत्रु का बल बहुत अधिक है। मीर अब्दुल करीम असफाहानी को बुलाकर पूछा गया कि इस युद्ध का क्या परिणाम होगा। उसने तुरंत गणना करके कहा कि आपका भाग्य प्रबल है और आप दाऊद के हाथ से देश छीन लेंगे। बल्कि जिस समय बादशाह फतहपुर से आगरे में आकर युद्ध की सामग्री भेज रहा था, उसी समय मीर ने कहा था कि यद्यपि शत्रु पक्ष में बहुत अधिक सैनिक हैं, तथापि विजय बादशाह के ही चरणों में आकर उपस्थित होगी।

शेरपुर में टोडरमल भी आकर सेवा में उपस्थित हुए। इन्होंने प्रत्येक मोरचे का विस्तृत विवरण कह सुनाया। यह

भी पूछा कि मुनइमखाँ कब और कहाँ आकर सेवा में उपस्थित हो। आज्ञा दी कि इनके स्वागत के लिये दो कोस से अधिक आने की आवश्यकता नहीं; क्योंकि घेरे की सब बातें उन्हीं पर निर्भर करती हैं। सब अमीर अपने अपने मोरचे पर डटे रहें। टोडरमल रात ही रात वहाँ से बिदा हुए। यह यात्रा दो महीने दस दिन में समाप्त हुई थी। कोई ऐसी विशेष या उल्लेख योग्य हानि नहीं हुई थी। हाँ, एक बार आँधी और तूफान आने के कारण कुछ नावें बताशों की तरह बैठ गई थीं। जिस समय बादशाह छावनी के सामने पहुँचा, उस समय खानखानाँ ने बहुत सी नावें और नवाड़े बहुत अच्छी तरह सजाए थे और उन पर सैनिक आतिशबाजी की व्यवस्था की थी। वह स्वयं बादशाह के स्वागत के लिये चला। तोपखानों पर गोलंदाज लोग बहुत ही नियम और व्यवस्थापूर्वक बैठे हुए थे। रंग बिरंगी पताकाएं लहरा रही थीं। वह बहुत धूमधाम से स्वागत के लिये आया था। आते ही बादशाह की रकाब चूमी। आज्ञा हुई कि सब तोपों को महताब दिखला दो। तोपखानों ने ऐसे ज़न्नाटे से सलामी उतारी कि पृथ्वी पर मानो भूचाल आ गया। नदी में कोसों तक धूआँधार हो गया। नगाड़ों का शोर, दमामों की गरज, करना की कड़क आदि सुनकर किलेवाले चकित होकर देखने लगे कि यह प्रलय का समय आ गया। छावनी पहाड़ों पर थी जो नदी से इसी ओर है। बादशाह मुनइमखाँ के ही डेरे

में आ गया। उसने भी खूब जी खोलकर सजावट की थी। सोने के थाल में जवाहिर और मोती लेकर खड़ा हुआ था और मुट्ठी भर भरकर निछावर करता जाता था। बहुत अच्छे अच्छे उपहार तथा बहुमूल्य जवाहिर आदि बादशाह की भेंट किए। वे सब इतने अधिक थे कि उनका हिसाब नहीं हो सकता था। वहाँ बाबर के समय से सेवाएँ करनेवाले बहुत पुराने पुराने अमीर भी उपस्थित थे और स्वयं अकबर के समय से ही सेवाएँ आरंभ करनेवाले बहुत से नवयुवक सरदार आदि भी थे। महीनों से उन लोगों को बादशाह के दर्शन नहीं हुए थे। उनके हृदय में निष्ठा, मन में अभिलाषा और मुँह पर मंगल-कामना के वचन थे। बच्चों की भाँति दौड़े हुए आते थे, झुक झुककर सलाम करते थे और मारे शौक के चरणों में लेट जाते थे। अकबर एक एक को देखता था। नाम ले लेकर हाल पूछता था। दृष्टियाँ कहती थीं कि हृदय में वही प्रेम लहरा रहा है जो माता की छाती से दूध बनकर प्यारे बालकों के मुँह में टपकता है। इस प्रकार सेवा में उपस्थित होने के उपरांत सब लोग बिदा होकर अपने अपने खेमों और मोरचों की ओर गए।

दूसरे दिन बादशाह स्वयं सवार होकर निकला। उसने सब मोरचों पर घूम घूमकर युद्ध का रंग और किले का ढंग देखा। अंत में यही सलाह हुई कि पहले हाजीपुर का झगड़ा निपटा लिया जाय। फिर पटने पर विजय प्राप्त करना बहुत

ही सहज हो जायगा। खान आलम को कुछ सरदारों के साथ नियुक्त किया। खानखानाँ ने दाऊद के पास एक दूत भेजा था। उसके द्वारा बहुत से उपदेश तथा शुभ परामर्श आदि कहलाए थे जिनका सारांश यह था कि अभी तक सब बातें तुम्हारे हाथ में ही हैं। जरा अपनी अवस्था और दशा देखो। यह भी समझो कि अकबर बादशाह का प्रताप कैसा है। इतने मनुष्य व्यर्थ नष्ट हो गए। उत्तम यही है कि अब और अधिक जन-हानि न हो। प्रजा की संपत्ति आदि पर दया करो। यौवन और उद्दंडता की भी एक सीमा होती है। बहुत हो चुका। अब बस करो, क्योंकि प्रजा का नाश सीमा से बहुत बढ़ चुका है। अब तुम बादशाह की सेवा में क्यों नहीं आ जाते कि जिसमें सब बातें पूरी हो जायँ। लड़का कुछ समझदार था। उसने बहुत कुछ सोच समझकर दूत को बिदा किया। अपना एक विश्वसनीय आदमी भी उसके साथ कर दिया। वह भी उसी दिन अकबर की सेवा में उपस्थित हुआ। दाऊद ने जो कुछ कहलाया था, उसका सारांश यही था कि मैं सहसा अपने सिर पर सरदारी का बोझ लेने के लिये तैयार नहीं था। मुझे तो लोदी ने इस आपत्ति में डाला था। उसे इसका दंड भी मिल गया। अब मेरे मन में बादशाह के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई है। मुझे जितनी जगह मिले, उतने में ही मैं संतोषपूर्वक अपना निर्वाह कर लूँगा और अपना परम सौभाग्य समझूँगा। मेरी अवस्था थोड़ी है

श्रौर यौवन के मद में श्राकर मैं ऐसा काम कर बैठा जिससे श्रब मैं मुँह दिखाने के योग्य नहीं रह गया। श्रब जब तक मैं कोई अच्छी श्रौर उपयुक्त सेवा न कर लूँ, तब तक मुझ से श्रीमान् की सेवा में उपस्थित नहीं हुश्रा जाता।

बादशाह समझ गया कि यह लड़का बहुत चालाक है श्रौर इसकी नीयत ठीक नहीं है। उसने दूत से कहा कि यदि दाऊद सचमुच मुझ पर श्रद्धा रखता है, तो वह अभी यहाँ श्रा जाय। यहाँ बदला लेने का कभी स्वप्न में भी ध्यान नहीं हुश्रा। यदि वह यहाँ नहीं श्राता है तो केवल तीन बातें हो सकती हैं। पहली बात तो यह हो सकती है कि या तो वह उधर से श्रावे श्रौर हम इधर से श्राते हैं। इधर का एक सरदार उधर जाय श्रौर उधर का एक सरदार इधर श्रावे। दोनों लश्करों को रोके रहें जिसमें श्रौर कोई वीर या योद्धा अपने लश्कर से बाहर न निकलने पावे। हम दोनों भाग्य की परीक्षा के मैदान में खड़े हो जायँ। वह जिस हरबे से कहे, उसी हरबे से हम दोनों लड़कर इस युद्ध का निपटारा कर लें। यदि उसे यह बात न मंजूर हो तो वह अपना एक ऐसा सरदार भेज दे जिसकी शक्ति श्रौर वीरता पर उसे पूरा पूरा विश्वास हो। इधर से भी एक ऐसा ही सरदार चला जायगा। दोनों लड़ लेंगे। जो जीतेगा, उसी की सेना की विजय होगी। यदि यह भी न हो सकता हो श्रौर तुम्हारी सेना में ऐसा भी कोई श्रादमी न हो तो एक हाथी इधर का लो श्रौर एक

हाथी उधर का लो। दोनों को लड़ा दो। जिसका हाथी जीते, उसी की विजय समझी जाय। परंतु वह एक बात पर भी राजी न हुआ। बादशाह ने तीन हजार चुने हुए सैनिक उस बढ़े हुए पानी और तूफान के समय नावों पर सवार कराए। उन लोगों को किले तोड़ने की सब सामग्री जंबूरक, रहकले, बान, तोप, बंदूक आदि अनेक विलक्षण हथियार तथा बहुत सा गोला बारूद दिया। यह सब सामग्री ऐसी धूमधाम और सजावट के साथ रूम और फिरंग के बाजों के साथ रवाना हुई कि कान गूँजते थे और आवेश के कारण हृदय भरा जाता था। बादशाह स्वयं पहाड़ी पर चढ़ गया और दूरबीन लगाई। युद्ध क्षेत्र में घमासान युद्ध हो रहा था। अकबरी बहादुर किला तोड़ने के लिये बराबर आक्रमण कर रहे थे। किलेवाले भी उनका उत्तर दे रहे थे। किले की तोपों के गोले इस जोर से आते थे कि बीच में नदी को पार करते हुए तीन कोस की दूरी पर सरा-परदा को पार करते हुए सिरों पर से निकल जाते थे। जान निछावर करनेवाले सेवकों ने सुन लिया था कि हमारा जौहरी दूरबीन लगाकर हमें देख रहा है। वे लोग इस प्रकार जान तोड़कर धावे करते थे कि यदि बस चलता तो गोले बनकर किले में जा पड़ते। यहाँ से लश्करों के रेले दिखाई देते थे। आदमी नहीं पहचाने जाते थे। बात यह थी कि चढ़ाव के मुकाबले में पानी तोड़कर नावों को ऊपर ले जाने में बहुत अधिक परिश्रम और समय

की आवश्यकता होती थी। परंतु पुराने मल्लाहों ने खान आलम को मार्ग दिखलाया। बड़े बड़े वीर सरदार और सिपाही चुनकर नावों पर सवार कराए गए। अभी कुछ दिन बाकी था; इतने में मल्लाहों ने पानी की छाती पर नावों को चढ़ाना आरंभ किया। पानी की चादर ओढ़ ली और मुँह पर नदी का पाट लपेटा। रातों रात एक ऐसी नहर में ले गए जो ठीक हाजीपुर के नीचे आकर गिरती थी। पिछली रात बाकी थी कि यहाँ से बेड़ा छूटा। प्रातःकाल होते ही जिस शोर को सुनकर किलेवाले जागे, वह प्रलय का सा शोर था। सब लोग आश्चर्य के भँवर में डूब गए कि इतनी सेना किधर से आई और कैसे आई। उन्होंने भी घबराकर नावें तैयार कीं। चट मुकाबले पर आ पहुँचे जिसमें इस आँधी को आगे न बढ़ने दें। पहले तोपों और बंदूकों ने पानी पर आग बरसाई। उस समय युद्ध बहुत जोरों पर हो रहा था। और फिर वास्तव में जान लड़ाने का इससे बढ़कर और कौन सा अवसर हो सकता था।

तीसरा पहर हो चुका था कि अकबर की कृपा रूपी नदी में चढ़ाव आया। बहुत से वीर चुने गए। चुनाव इसलिये हुआ था कि वे लोग नावों पर चढ़कर जायँ और युद्ध क्षेत्र का समाचार लावें। किलेवालों ने उनको देखते ही गोले बरसाना आरंभ किया और अठारह नावें उनको रोकने के लिये भेजीं। मँझधार में दोनों की टक्कर हुई। इधरवाले यह

देखते हुए गए थे कि हमारा बादशाह हमें देख रहा है। इसलिये उन्होंने नदी के धूएँ उड़ा दिए और आग बरसाते हुए पानी पर से हवा की भाँति निकल गए। शत्रु लोग देखते ही रह गए। फिर भी चढ़ाव की छाती तोड़कर जाना कोई सहज काम नहीं था। सहायता के लिये पीछे से जो और सेना आ रही थी, उसे शत्रु ने नदी में ही रोक रखा था। उन्होंने दूर से ही युद्ध क्षेत्र पर गोले बरसाना आरंभ कर दिया। उनके गोलों ने शत्रु के साहस का लंगर तोड़ दिया और नावें हटाने लगे। अब कुमकवाली सेना के मल्लाह कावा काटकर चले। यद्यपि किले पर से गोले बरस रहे थे, पर फिर भी ये लोग भागाभाग एक अच्छे घाट पर जा पहुँचे और वहाँ से इस प्रकार नावों को छोड़ा कि वे तीर की तरह सीधी युद्ध क्षेत्र में आ पहुँचीं। बादशाह की सेना किनारों पर उतरी हुई थी और मुकाबले पर डटकर हाथों हाथ युद्ध कर रही थी। अफगानी सरदारों ने कूचाबंदी करके भी युद्ध करना आरंभ कर दिया था। परंतु भाग्य के साथ कौन लड़ सकता है। तात्पर्य यह कि हाजीपुर जीत लिया गया और बादशाही सेना ने वहाँ के किले पर अधिकार कर लिया।

इस विजय से दाऊद का लोहा ठंढा हो गया। यद्यपि उसके पास बीस हजार अच्छे अच्छे योद्धा, बहुत से मस्त जंगी हाथी और आग बरसानेवाला तोपखाना था, पर फिर भी वह रात को ही नाव पर बैठा और पटने से निकलकर लौकर

की ओर भाग गया। मरहर बंगाली नाम का एक व्यक्ति था जिसके परामर्श से उसने लोदी को मारा था और जिसे विक्रमाजीत की उपाधि दी थी। उसने नावों पर खजाना लादा और पीछे पीछे चला। गूजरखाँ किरारानी भी, जिसे रुक्नउद्दौला की उपाधि मिली थी, जो कुछ उठा सका वह सब उठाकर और हाथियों को आगे करके स्थल के मार्ग से भाग गया। हजारों आदमियों की भीड़ नदी में कूद पड़ी और मृत्यु की आँधी के एक ही झकोले में इधर से उधर जा पहुँची। हजारों आदमी घबरा घबराकर बुरजों और फसीलों आदि पर चढ़ गए और वहाँ से कूदकर गहरी खंदकों का भराव हो गए। बहुत से लोग गलियों और बाजारों में घोड़ों और हाथियों के पैरों के नीचे आकर नष्ट हो गए। जब वे लोग इस प्रकार उजड़कर पुनपुना नदी के किनारे पहुँचे, तब गूजरखाँ ने हाथियों को आगे डाला और वह स्वयं पुल पर से होकर पार उतर गया। भीड़ इतनी अधिक थी कि पुल भी उसका बोझ न सँभाल सका और अंत में टूट ही गया। ऐसे अनेक प्रसिद्ध अफगान थे जिन्होंने अपने असबाब और हथियार आदि पानी में फेंक दिए थे। वे स्वयं नंगे होकर पानी में कूदे थे, पर मृत्यु के भँवर में चक्कर मारकर बैठ गए। सिर तक न निकाला। पिछला पहर था कि खानखानाँ ने आकर समाचार दिया। बहादुर बादशाह उसी समय तलवार पकड़-कर उठ खड़ा हुआ। खानखानाँ ने निवेदन किया कि श्रीमान्

प्रातःकाल के समय नगर में प्रवेश करें। तब तक इस समाचार की सत्यता का समर्थन भी हो जायगा। उस दशा में सतर्कता की बाग भी अपने हाथ में रहेगी; ठीक सूर्योदय के समय दिल्ली दरवाजे से अकबर ने पटने में प्रवेश किया। वहाँ पहुँचकर उसने दाऊद के महलों को ऐसी दृष्टि से देखा जिससे जान पड़ता था कि उसे दुःख हो रहा है और वह इससे कुछ शिक्षा ग्रहण करना चाहता है। कुछ लोगों ने अच्छी अच्छी तारीखें कहीं।

एकांत की वाटिका में आज्ञा पाकर परामर्श देने के लिये बुलबुलें आईं। प्रश्न यह उठा कि अब बंगाल के लिये क्या करना चाहिए। कुछ लोगों ने कहा कि वर्षा ऋतु में इस अधिकृत प्रदेश का प्रबंध किया जाय; और जब जाड़ा आ जाय, तब बंगाल में रक्तपात से बाग का खाका तैयार किया जाय। कुछ लोगों ने कहा कि शत्रु को दम न लेने देना चाहिए और स्वयं उड़कर छुरी कटारी हो जाना चाहिए, क्योंकि हमारे लिये यही वसंत ऋतु है। विजय के फूल चुननेवाले और साम्राज्य के माली ने कहा कि हाँ, यही ठीक सच्ची है। साथ ही खानखानाँ ने भी निवेदन किया। यह युद्ध भी उसी के सपुर्द हुआ। दस हजार बड़े बड़े और विकट योद्धा (मआसिर उल् उमरा में बीस हजार लिखा है) अमीर और बेग आदि सब सहायता के लिये साथ दिए और सेनापतित्व मुनइमखाँ के नाम पर निश्चित हुआ। बड़ी बड़ी नावें और तोपखाने

आदि जो साथ आए थे, वे सब उसी को प्रदान किए गए। बिहार प्रदेश उसकी जागीर हुआ। इसके उपरांत उसके जान निछावर करनेवाले और स्वामिनिष्ठ सेवकों के लिये प्रत्येक के पद और मर्यादा के अनुसार जागीरें, पुरस्कार, खिलअतें और उपाधियाँ आदि दी गईं। इतना सब कुछ करके अकबर नदी के जिस मार्ग से आया था, उसी मार्ग से विजय के वाद्य बजाता और पताकाएँ फहराता हुआ और आनंद की लहरें बहाता हुआ राजधानी की ओर चल पड़ा।

इधर अनेक वर्षों से वह देश बिलकुल अफगानिस्तान हो रहा था। दाऊद सिर पर पैर रखकर बंगाल की ओर भागा था। खानखानाँ और टोडरमल छावनी डालकर टाँड़े में बैठ गए। टाँड़ा गौड़ के सामने गंगा के दाहिने तट पर है। वही बंगाल का केंद्र है। वहाँ से इधर उधर चारों ओर सरदारों को फैला दिया जो जगह जगह लड़ते फिरते थे। अफगान लोग पराजित होते थे, दृढ़ स्थानों को छोड़ते जाते थे और जंगलों में घुसते जाते थे। कहीं पहाड़ों पर भी चढ़ जाते थे। एक जगह से भागते थे तो जाकर दूसरी जगह जम जाते थे। कहीं भागते थे, कहीं भगाते थे। इन लोगों ने पहले सूरजगढ़ जीता और फिर मूँगेर मारा। साथ ही भागलपुर और फिर खल-गाँव भी ले लिया। यद्यपि गढ़ी प्राकृतिक रूप से ही बहुत दृढ़ थी, तथापि वह बिना लड़े भिड़े ही हाथ आ गई। वह बंगाल प्रदेश का द्वार थी। उसके एक पार्श्व को पर्वत से

और दूसरे पार्श्व को जल से दृढ़ किया हुआ है। उन्होंने दोनों ओर से दबाकर ऐसा तंग किया कि वह बिना युद्ध के ही हाथ आ गई। खानखानाँ की जागीर पहले बिहार में थी, अब बंगाल में कर दी गई। उसने अपने दीवान ख्वाजा शाह मंसूर को वहाँ भेज दिया। इतने में समाचार आया कि दाऊद कटक-बनारस पहुँचा है। अब वहीं बैठेगा और आस पास के स्थानों को दृढ़ करेगा। मुहम्मदकुलीखाँ बरलास को, जो पुराना अमीर और अनुभवी योद्धा था, सेना देकर उधर भेजा। स्वयं टाँड़े में बैठकर देश की व्यवस्था करने लगा, क्योंकि वही बंगाल-प्रदेश का केंद्र था।

अफ़ग़ानों पर जो इतनी अधिक विपत्तियां आई थीं, वह केवल आपस की फूट के ही कारण आई थीं। लोदी को दाऊद ने मरवा डाला था और गूजर से बिगाड़ कर रखा था। पर एक ऐसा अवसर आ पड़ा जब कि दोनों ने एकता का लाभ समझ लिया और आपस में सफाई हो गई। सलाह यह ठहरी कि दोनों मिल जायँ और अपनी अपनी सेनाएँ मिलाकर बादशाही सेना का सामना करें। सम्भव है, भाग्य साथ दे जाय। दाऊद ने कटक-बनारस को दृढ़ करके अपने परिवार और बाल बच्चों को वहीं छोड़ा और दोनों सरदार एक बहुत बड़ा और भीषण दल तैयार करके शाही सेना के मुकाबले के लिये चले।

खानखानाँ ने भी सुनते ही टाँड़े से प्रस्थान किया। टोडर-मल के लश्कर के साथ मिलकर वह कटक-बनारस की ओर

चल पड़ा। मार्ग में ही दोनों लश्करों का सामना हो गया। अफगानों को शेर शाह का पढ़ाया हुआ पाठ याद था। उन्होंने अपने लश्कर के चारों ओर खाईं खोदकर वहीं किला बांध लिया। इस प्रकार कई दिनों तक युद्ध होता रहा। दोनों ओर के वीर निकलते थे। अफगान और तुर्क दोनों ही अपना अपना बल दिखलाते थे। युद्ध का कहीं अंत नहीं दिखाई देता था। दोनों पक्ष तंग आ गए थे। एक दिन युद्ध क्षेत्र में पैर जमाकर अंतिम निर्णय करने के लिये सन्नद्ध हो गए। हाथी बंगाल की हरी हरी घासें खा खाकर अफगानों से भी अधिक मस्त हो रहे थे। पहले वही बढ़े। खानखानां भी अकबरी अमीरों को दाहिने बाएँ और आगे पीछे जमाकर बीच में आप खड़ा हुआ था। पर सितारा उस दिन सामने था और वह सितारा पहले एक वार काबुल में उसे आँखें भी दिखला चुका था; इसलिये उस दिन उसने लड़ने की आज्ञा नहीं दी। कहा कि आज दूर ही दूर से शत्रु के आक्रमण रोको। हाथियों को तोपों और बंदूकों से रोको। भला आग की मार के आगे कौन ठहर सकता है। शत्रु के कई प्रसिद्ध हाथी जो आगे बढ़े थे, फिर पीछे लौट गए। उनमें से कई तो उड़ भी गए। उन पर कई बड़े बड़े और प्रसिद्ध अफगान सवार थे। दाऊद की सेना में गूजरखां सब से आगे रखा गया था। वह आक्रमण करके हरावल पर आया। इधर के हरावल का सरदार खान आलम एक नवयुवक सरदार

था। गूजरखाँ का यह साहस देखकर उससे न रहा गया और उसने आक्रमण कर दिया। पर वीरता के आवेश में आकर वह बहुत तेजी कर गया था। उसकी सेना अपनी बंदूकें खाली करती जाती थी। खानखाना रोक थाम की व्यवस्था में था। यह दशा देखकर उसने तुरंत आदमी को दौड़ाया और कहलाया कि सेना को रोको। यहाँ उसके वीर सैनिक शत्रु पर जा पड़े थे। वृद्ध सेनापति ने झुँझला-कर फिर सवार दौड़ाया और बहुत ही ताकीद के साथ कहला भेजा कि यह क्या लड़कपन कर रहे हो! अपनी सेना को तुरंत लौटाओ। पर वहाँ हाथा-बाँही की लड़ाई हो रही थी। अवस्था यह थी कि गूजरखाँ ने बहुत से हाथियों को सामने रखकर आक्रमण किया था। उसने हाथियों के चेहरों पर सुरागाय की दुमें और चीतों, शेरों तथा पहाड़ी बकरों आदि की खालें, जिनके चेहरों पर सींग और दाँत तक उपस्थित थे, चढ़ाई हुई थीं। तुर्कों के घोड़ों ने ऐसी सूरतें पहले नहीं देखी थीं; न कभी इस प्रकार के भयानक शब्द ही सुने थे। वे बिदक बिदककर भागे और किसी प्रकार न ठहर सके। हरावल की सेना हट और सिमटकर अपने लश्कर में आ घुसी। हरावल का सरदार खान आलम बहुत ही दृढ़तापूर्वक अपने स्थान पर खड़ा रहा। पर अंत में ऐसा गिरा कि अब प्रलय के दिन ही उठेगा; क्योंकि उधर से शत्रु पक्ष का हाथी आया था जो उसे पैरों तले कुचल गया। अफ-

गान लोग मारे प्रसन्नता के चिल्लाने लगे। उन्हें लेकर गूजर-खाँ ने इस जोर से आक्रमण किया कि सामने की सेना को रौंदता हुआ मध्य में आ पहुँचा।

यहाँ स्वयं खानखानाँ बड़े बड़े अमीरों को लिए हुए खड़ा था। वृद्धों ने नवयुवकों को बहुत सँभाला; पर वहाँ सँभले कौन! गूजर मारामार बगटुट चला आता था। वह सीधा चला आया। संयोग से खानखानाँ के ही साथ उसकी मुठभेड़ हो गई। पुलाव खानेवाले नमकहराम भाग गए। गूजर ने बराबर आकर तलवार के कई हाथ मारे। यहाँ खान-खानाँ देखते हैं तो कमर में तलवार ही नहीं है। जो गुलाम सदा उनकी तलवार लिए रहता था, वह ईश्वर जाने कहाँ का कहाँ जा पड़ा था। केवल एक कोड़ा हाथ में था। वह तलवारें मारता था और ये कोड़ा चलाते थे। सिर, गरदन और हाथ पर कई घाव खाए, और गहरे घाव खाए। अच्छा होने पर खानखानाँ प्रायः कहा भी करता था कि सिर का घाव तो अच्छा हो गया, पर दृष्टि कमजोर हो गई है। गरदन का घाव यद्यपि भर गया है, तथापि अब मैं पीछे मुड़कर देख नहीं सकता। कंधे के घाव ने हाथ निकम्मा कर दिया है। वह अच्छी तरह सिर तक नहीं जा सकता। इतना सब कुछ होने पर भी उसने वहाँ से पीछे हटने या लौटने तक का विचार नहीं किया। साथ में जो कई अमीर थे, वे भी घायल हो गए थे। इसी बीच में शत्रु के हाथी भी आ पहुँचे।

खानखानाँ का घोड़ा उन हाथियों को देखकर भड़कने लगा। रोका, परन्तु वह अधिकार से निकल गया। अंत में ठोकर भी खाई। कुछ नमकहलाल नौकरों ने बाग पकड़कर खींची, क्योंकि उस समय वहां ठहरने का अवसर नहीं था। इस बेचारे को यह चिन्ता थी कि यदि मैं सेनापति होकर भागूँगा, तो यह सफेद दाढ़ी लेकर किसी को मुँह कैसे दिखलाऊँगा। पर फिर भी उस समय उन लोगों की वह शुभचिंतना बहुत काम आई। वह इस प्रकार वहाँ से हटा मानों सेना एकत्र करने जा रहा हो। घोड़े दौड़ाए; तीन चार कोस तक भाग गए। अफगान भी बादशाही लश्कर तक दबाए हुए चले आए। सब खेमे और सारा बाजार लुट गया। पर जो बादशाही सरदार भागकर चारों ओर बिखर गए थे, वे कुछ दूर जाकर फिर होश में आए। उलट पड़े और जो अफगान मारामार च्यूँटियों की पंक्ति की भाँति चले आ रहे थे, उनके दोनों ओर लिपट गए। बराबर तीरों से छेदते चले जाते थे और इस लंबे ताँते की गँड़ेरियाँ काटते चले जाते थे। नौबत यहाँ तक पहुँची कि अपने पराए किसी में भी सामर्थ्य न रह गई। अफगान स्वयं थक गए थे। गूजर अपने पठानों को ललकारता था कि मार लो, मार लो! खानखानाँ को तो मार ही लिया है। अब बात ही क्या है! उसके साथ में जो मुसाहब थे, उनसे कहता था कि हमारी विजय हो गई। पर इतना होने पर भी उसके हृदय का कँवल नहीं खिलता

था। अब चाहे इसे दैवी सहायता कहो और चाहे अकबर का प्रताप समझो कि इतने में किसी कमान से एक तीर चला जो गूजरखाँ के प्राणों के लिये मृत्यु का तीर था। उस तीर ने उस सर्वजयी वीर को घोड़े पर से गिरा दिया। साथियों ने जब अपने सिर पर सरदार को न देखा, तब वे सिर पर पैर रखकर भागे। कहाँ तो अफगान मारामार चले आते थे, कहाँ अब वे स्वयं ही मरने लगे। इस उलट पुलट में खानजहाँ को जो थोड़ा सा अवकाश मिला तो वह ठहरकर सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए। इतने में उसका निशानची भी निशान लिए हुए आ पहुँचा। साथ ही शोर मचा कि गूजरखाँ मारा गया। खानखानाँ ने घोड़ा फेरा। इधर उधर जो वीर बिखरे हुए थे, वे भी आकर एकत्र हो गए। जो अफगान तीर के पल्ले पर दिखाई दिया, उसे इन लोगों ने गिराना आरंभ किया।

सेना के मध्य भाग की जो दशा हुई, वह तो हुई ही, पर बादशाही लश्कर में से टोडरमल अपने सैनिकों को लिए हुए दाहिनी ओर खड़े हुए थे। और शाहमखाँ जलायर बाईं ओर था। यहाँ खान आलम के साथ खानखानाँ के मरने का समाचार भी प्रसिद्ध हो गया था। लश्करवालों के दिल उड़े जाते थे और ये रंग जमाए जाते थे। उधर गूजर की सफलता देखकर दाऊद का दिल बढ़ गया था। उसने अपनी सेना को इस प्रकार संचालित किया कि दाहिनी ओर से धक्का देकर गूजर से

जा मिले। राजा और शाहम ने जब यह ढंग देखा, तब इस प्रकार चुपचाप खड़े रहना उचित न समझा। उन लोगों ने भी घोड़े उठाए और ईश्वर पर भरोसा रखकर अफगानों के दाहिने और बाएँ दोनों पार्श्वों पर जा पड़े। जिस समय टोडरमल और दाऊद की लड़ाई बराबर की हो रही थी, उस समय कुछ पुराने सरदार शत्रु के दाहिने पार्श्व पर टूट पड़े और उसे नष्ट करके अपने दाहिने पार्श्व की सहायता के लिये पहुँचे। यह आक्रमण इस जोर से हुआ कि शत्रु के दोनों पार्श्व टूटकर मध्य भाग में जा पड़े जहाँ दाऊद का सेनापतिवाला छत्र चमक रहा था। उसके प्रसिद्ध जंगी हाथी पंक्ति बाँधे खड़े थे। उन्हें तुर्कों ने तीरों से छलनी कर दिया। शत्रु की सेना में हलचल मच गई। इतने में नगाड़े का शब्द सुनाई पड़ा। खानखानाँ का झंडा, जो विजय का चिह्न था, दूर से दिखाई देने लगा। बादशाही अमीरों और सैनिकों के गए हुए होश फिर ठिकाने आ गए। जब दाऊद को समाचार मिला कि गूजरखाँ मारा गया, तब उसके बचे खुचे होश भी जाते रहे और उसकी सेना के पैर उखड़ गए। वह अपना सारा सामान और दल, बादल, हाथी आदि नष्ट करके सीधा कटक-बनारस की ओर भाग गया।

खानखानाँ ने ईश्वर को अनेकानेक धन्यवाद दिए, क्योंकि बिगड़ी हुई बात बनानेवाला वही है। टोडरमल को कई सरदारों के साथ उसके पीछे रवाना किया; और स्वयं उसी

स्थान पर ठहरकर अपने घायलों का तथा अपना इलाज करना शुरू किया। हजारों अफगान तितर बितर हो गए। सरदारों को चारों ओर फैला दिया और सबसे ताकीद कर दी कि कोई जाने न पावे। युद्ध क्षेत्र में उनके सिरों से आठ कल्ला मुनार बनवाए जिसमें वे इस विजय का समाचार ऊपर आकाश तक पहुँचावें।

दाऊद कटक-बनारस (मआसिर उल उमरा में कटक-उड़ीसा लिखा है) में पहुँचकर वहाँ किलेबंदी करने लगा। उपद्रवी फिर एकत्र होकर उसके साथ हो गए। बातचीत में यह भी कहा गया कि यह जो हार हुई है, वह कुछ भूलों के कारण और इसलिये हुई है कि हम लोग पहले से सतर्क नहीं थे। इस बार हम लोगों को सब बातों की पूरी और ठीक व्यवस्था कर लेनी चाहिए। उसने भी मन में ठान लिया कि मैं मर जाऊँगा, पर यहाँ से हटूँगा नहीं। परंतु खानखानाँ के सामने कुछ भीतरी कठिनाइयाँ आ उपस्थित हुई। एक तो बहुत दिनों से बादशाही लश्कर यों ही अनेक विपत्तियाँ सहता हुआ बाहर ही बाहर घूम रहा था। दूसरे सब लोग बंगाल की बीमारियों और सीड़ आदि से घबरा गए थे। इसलिये सिपाही से लेकर सरदार तक सभी विचलित हो गए। राजा टोडरमल ने अपनी ओर से दम दिलासे के बहुत से मंत्र फूँके। वीरता के नुसखों से उन्हें मर्द भी बनाया, पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। अंत में उन्होंने खानखानाँ को सब

समाचार लिख भेजा और कहलाया कि बिना तुम्हारे आए यहाँ कुछ नहीं हो सकता। बादशाह के प्रताप से सब काम बन चुका है। परंतु कामचोरों के निरुत्साहित होने से फिर कठिनता आ उपस्थित होगी। इन लोगों से कुछ भी आशा नहीं! खानखानाँ के घाव अभी तक भरे नहीं थे, हरे ही थे, इसलिये वह सिंहासन पर बैठकर चल पड़ा। सामने जाकर डेरे डाल दिए। जो लालची और भूखे थे, उनको रुपयों और अशर्फियों से परचाया और शीलवानों को ऊँच नीच समझा बुझाकर रास्ते पर लगाया। शत्रु को भी सामग्री के अभाव और दौड़ धूप ने तंग कर रखा था। सँदेसे भुगतने लगे। कई दिन तक दूत लोग इधर से उधर और उधर से इधर आते जाते रहे और बात चीत होती रही। यहाँ भी अमीरों के साथ परामर्श होते रहे। अधिकांश अमीर यही चाहते थे कि इस झगड़े का जहाँ तक जल्दी हो सके, निपटारा हो जाय और सब लोग राजी खुशी लौटकर घर चलें। परंतु टोडरमल नहीं मानते थे। वे कहते थे कि शत्रु की जड़ उखड़ गई है। वह खरगोश की भाँति चारों ओर भागा फिरता है। इस समय उसका पीछा नहीं छोड़ना चाहिए। दाऊद इसलिये बहुत अधिक तंग हो गया था कि उसके पास किलेदारी की सामग्री आदि कुछ भी नहीं थी और न युद्ध क्षेत्र में जमकर लड़ने के लिये बल ही था। तिस पर भागने का भी कोई मार्ग नहीं था। साथ ही उसे यह

भी समाचार मिला कि बादशाह की जो सेना घोड़ाघाट पर गई थी, वह भी विजय प्राप्त करके घोड़ों पर सवार हो गई। इस समाचार से दाऊद की जिरह ढीली हो गई। विवश होकर उसे झुकना पड़ा। उसने अपने कुछ वृद्ध सरदारों को भेजा। वे खानखानाँ तथा बादशाही अमीरों के पास आए। यँ स्वयं ही पहले से तैयार बैठे थे। फिर भी समस्त बादशाही अमीरों को एकत्र करके परामर्श किया। सब ने एक मत से यही कहा कि अब युद्ध का अंत करके संधि कर लेनी चाहिए। यद्यपि टोडरमल इस बात से बिगड़े हुए थे, परंतु बहुमत संधि के ही पक्ष में था। राजा साहब ने अपनी ओर से बहुत कुछ हाथ पैर मारे, पर बहुमत के सामने उनकी कुछ भी न चली। कुछ शर्तों पर संधि करना निश्चित हुआ। दाऊद उस समय इतना अधिक व्याकुल था कि उससे जो कुछ कहा गया, वह सब उसने विवश होकर स्वीकृत कर लिया और वह भी कृतज्ञता-पूर्वक स्वीकृत किया।

खानखानाँ ने बहुत धूमधाम से जशन की व्यवस्था की। लश्कर के बाहर एक बहुत बड़ा और ऊँचा चबूतरा बनवाया और उस पर शाही सरा-परदा खड़ा कराया। बहुत दूर तक सड़क की दागबेल डाली गई। दोनों ओर पंक्तियाँ बाँधकर बहुत ठाट बाट से शाही सेनाएँ खड़ी हुईं। सरा-परदे के अंदर वीर सैनिक अच्छी अच्छी खिलअतें तथा बहुमूल्य वस्त्र आदि पहनकर दाहिने बाएँ और आगे पीछे खड़े हुए। बड़े

बड़े अमीर और सरदार भी अपने अपने पद और मर्यादा के अनुसार उपयुक्त स्थान पर आकर बैठे। दो अमीर दाऊद को लेने के लिये गए। वह नवयुवक और परम सुंदर अफ-गान बहुत ठाट बाट से कई वृद्ध अफगानों को अपने साथ लेकर आया। खानखानाँ के लश्कर में से होकर उसने दर-बार में प्रवेश किया। वृद्ध सेनापति ने भी उसके साथ बहुत ही प्रतिष्ठा तथा आदरपूर्वक व्यवहार किया। पर ठीक वैसा ही व्यवहार किया जैसा बड़े अपने छोटों के साथ किया करते हैं। सरा-परदे में आधी दूर तक उसके स्वागत के लिये गया। दाऊद ने बैठते ही कमर से तलवार खोलकर खानखानाँ के सामने रख दी और फारसी भाषा में कहा—"आप सरीखे मेरे बंधु बांधव आदि घायल और पीड़ित हुए हैं और अब मैं युद्ध से घबरा गया हूँ; इसलिए अब मैं भी बादशाह को दुआ देने-वालों में सम्मिलित होता हूँ"।* खानखानाँ ने तलवार उठाकर अपने नौकर को दे दी और उसका हाथ पकड़कर उसे अपने बराबर तकिए के सहारे बैठा लिया। जिस प्रकार बड़ों का दस्तूर है, बहुत ही प्रेम तथा कृपापूर्वक उससे बातें करना और हाल चाल पूछना आरंभ किया। इतने में दस्तर-ख्वान आया। उस पर अनेक प्रकार के भोजन, अनेक रंगों के शरबत और अच्छी अच्छी मिठाइयाँ चुनी गईं। खानखानाँ

---

* چوں بمثال شما عزیزاں زخمی و آزارے رسد من از سپاہ گری بیزارم حالا داخل دعا گویان درگاہ شدم—

स्वयं एक एक चीज के विषय में उससे पूछता था और मेवों की तश्तरियाँ तथा मुरब्बों की प्यालियाँ उसके आगे बढ़ाता था। चिरंजीव और पुत्र आदि कहकर बातें करता था। दस्तरख्वान उठा। सब लोगों ने पान खाए। मीर मुनशी कलमदान लेकर सेवा में उपस्थित हुआ। संधिपत्र लिखा गया। खानखानाँ ने एक बहुमूल्य खिलअत और एक बढ़िया जड़ाऊ तलवार, जिसके मुट्ठे और साज में बहुमूल्य जवाहिर जड़े हुए थे, बादशाही खजाने से मँगाकर उसको दी; और कहा—अब मैं तुम्हारी कमर बादशाह की नौकरी के लिये बाँधता हूँ। (अर्थात् तुम्हें बादशाह का नौकर बनाता हूँ)।* जिस समय तलवार बाँधने के लिये उसके सामने रखी गई, उस समय उसने आगरे की ओर मुँह किया और झुक झुककर सलाम और आदाब करने लगा। खानखानाँ ने कहा—तुमने बादशाह की शुभचिंतना का मार्ग ग्रहण किया है। बादशाह की ओर से मिली हुई यह तलवार बाँध लो। मैं बादशाह से यह निवेदन करूँगा कि बंगाल का प्रदेश तुम्हें प्रदान कर दिया जाय। इसी के अनुसार बादशाह का आज्ञापत्र आ जायगा।† उसने

---

* حالا ما کمر شمارا بنوکري بادشاه مي بنديم-

† شما طريقه دولت خواهي اختيار کرده ايد اين شمشير از جانب شهنشاه بر بنديد و ولايت بنگاله را چنانچه التماس خواهم کرد موافق آن فرمان عاليشان خواهد آمد

तलवार की मूठ आँखों से लगाई और बादशाह के निवास-स्थान की ओर मुँह करके झुककर सलाम किया। अर्थात् इस प्रकार उसने यह स्वीकृत किया कि मैं बादशाह के सेवकों में सम्मिलित होता हूँ। तात्पर्य यह कि अनेक प्रकार के बहुत से उपक्रम करके और बहुमूल्य उपहार आदि दे तथा लेकर उसे बिदा किया। यह दरबार बहुत अच्छी तरह और प्रसन्नतापूर्वक समाप्त हुआ।

इसमें स्मरण रखने के योग्य बात यह है कि इतना बड़ा और ठाठ बाट का दरबार हुआ, पर अपनी बात के पूरे राजा टोडरमल ही थे जो उसमें सम्मिलित ही नहीं हुए। यहाँ तक कि उन्होंने उस संधिपत्र पर हस्ताक्षर भी नहीं किए। सेनापति यह युद्ध समाप्त करके गौड़ में आया। वहाँ आने का अभिप्राय यह था कि घोड़ाघाट, जो इन भिड़ों का छत्ता था, यहाँ से पास ही पड़ता था। उसने सोचा था कि अपनी छाती पर बादशाही छावनी देखकर अफगान लोग आपसे आप दब जायँगे। प्राचीन काल में गौड़ में ही राजधानी भी थी; और अब भी वह अपनी प्राकृतिक सुंदरता तथा हरियाली के कारण बहुत ही मनोहर बना हुआ है। उसका अद्भुत किला और अनुपम इमारतें अब गिरती जा रही हैं। अब सब नई होकर उठ खड़ी होंगी।

मुल्ला साहब लिखते हैं कि खानखानाँ इन सब झगड़ों से छुट्टी पाकर, ठीक वर्षा ऋतु में टाँड़ा छोड़कर, गौड़ में आया

था। वह भी अच्छी तरह जानता था कि टाँड़े का जलवायु अच्छा और स्वास्थ्यकर है और गौड़ का जलवायु बहुत ही खराब है। पर किसी ने कहा है कि जब शिकार की मौत आती है, तब वह आप से आप शिकारी की ओर चल पड़ता है*। अमीरों ने भी कहा, पर उसके ध्यान में कुछ भी न आया। उसने यही सोचा कि चलकर गौड़ को नए सिर से बसाना चाहिए। समस्त अमीरों और लश्करवालों को आज्ञा दी कि यहीं चले आओ। परंतु दुःख है कि इतने पर भी गौड़ न बसा। हाँ, बहुत सी कबरें अवश्य आबाद हो गईं। बहुत से ऐसे अमीर और सिपाही, जो वीरता के मैदान में तलवारें मारते थे, मृत्यु-शय्या पर स्त्रियों की तरह पड़े पड़े मर गए। हाजी मुहम्मदखाँ सीस्तानी और बैरमखाँ तथा खानजमाँ के समय के वृद्ध मीर मुनशी अशरफखाँ भी उन्हीं मरनेवालों में थे। ऐसे ऐसे विलक्षण रोग हुए थे जिनके नाम जानना भी कठिन है। नित्य बहुत से आदमी आपस में गले मिलते थे और प्राण दे देते थे। हजारों का लश्कर गया था। कदाचित् दो सौ आदमी जीते फिरे होंगे। यहाँ तक दशा पहुँच गई कि जीवित लोग मुरदों को गाड़ने के काम से तंग आ गए। जो मरता था, उसे पानी में बहा देते थे। क्षण क्षण भर पर खान-खानाँ के पास समाचार पहुँचते थे कि अभी वह अमीर मर गया, अभी वह अमीर ठंढा हो गया। पर फिर भी वह नहीं समझता

---

* صید را چون اجل آید سوے صیاد رود

था। वृद्धावस्था में स्वभाव भी चिड़चिड़ा हो जाता है। तिस पर उसका मिजाज योंही नाजुक था; इसलिये खुल्लमखुल्ला उससे कोई कुछ कह भी नहीं सकता था कि अब यहाँ से चले चलना ही बुद्धिमत्ता की बात है। संयोग यह कि इतने दिनों में एक वही आदमी ऐसा था जो कभी बीमार नहीं पड़ा था। इतने में अचानक समाचार मिला कि जुनैद अफगान ने बिहार प्रदेश में विद्रोह आरंभ किया है। इन्हें भी गौड़ से निकलने का बहाना मिल गया और सब लोग उधर चल पड़े। इधर टाँड़े में आकर, जहाँ का जल-वायु लोग बहुत अच्छा समझते थे, खानखानाँ कुछ बीमार हो गए। दस दिन बीमार रहे। ग्यारहवें दिन स्वर्ग सिधारे। अवस्था अस्सी वर्ष से अधिक थी। सन् ९८३ हि० में मृत्यु हुई थी। सारा ठाट बाट और आदर-प्रतिष्ठा धरी रह गई। कोई उत्तराधिकारी नहीं था। इतने दिनों की एकत्र की हुई सारी कमाई बादशाही खजानचियों ने आकर हिसाब करके सँभाल ली। कदाचित् इनकी कृपणता के कारण ही मुल्ला साहब ने इनकी मृत्यु का उल्लेख कुछ अच्छे ढंग से नहीं किया है; क्योंकि इनका और कोई अपराध तो नहीं जान पड़ता। उनके मर जाने के उपरांत मुल्ला साहब जो चाहें सो कह लें। भला उनकी जबान और कलम से कौन बचा है! और फिर एक बात यह भी है कि वे उस समय उन्हें आँखों से देख रहे थे। आज सैकड़ों बरसों की बात है। वास्तविक बात तक पहुँचना

तो दूर रहा, हमारा अनुमान आज एक भी बात का उत्तर नहीं दे सकता।

मुनइमखाँ का स्वभाव

बहुत सी बातों से प्रमाणित होता है कि मुनइमखाँ में मित्रता का भाव और आवेश बहुत अधिक था। मित्रों की विपत्ति का उन पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता था।

पाठकों को स्मरण होगा कि बैरमखां के विचार लड़ते लड़ते अचानक बदल गए थे और उसने अकबर की सेवा में उपस्थित होने के लिये सँदेसा भेजा था। यहाँ शत्रुओं ने अकबर के मन में फिर संदेह उत्पन्न करना आरंभ कर दिया था। उधर उसे भी भय हो रहा था। दूतों के आने जाने में बात बढ़ती जा रही थी। उस अवसर पर मुल्ला साहब कहते हैं कि अभी युद्ध हो ही रहा था और दूत आ जा ही रहे थे कि मुनइमखाँ थोड़े से आदमियों को अपने साथ लेकर बेतहाशा वहाँ चला गया और खानखानाँ को अपने साथ ले आया। यह उसके हृदय की स्वच्छता और सज्जनता ही थी। नहीं तो खानखानाँ का पद और पदवी तो उसे भी मिल ही चुकी थी। बहुत संभव था कि उसके मन में यह आशंका उत्पन्न होती कि बैरमखां के आ जाने से मेरा पद और पदवी न छिन जाय अथवा मेरा एक प्रतिद्वंद्वी न खड़ा हो जाय। पर उसके मन में इस बात का स्वप्न में भी विचार नहीं आया।

जरा अलीकुलीखाँ के संबंध की बातें याद कीजिए। मुनइमखाँ उसके अपराध क्षमा कराने के लिये किस प्रकार और कितने अधिक प्रयत्न करता था। और फिर वह बार बार उसके लिये प्रयत्न करता था। पहली ही बार क्षमा मिलने पर टोडरमल ने निवेदनपत्र लिखा कि खानजमाँ का भाई बहादुरखाँ अपनी करतूतों से बाज नहीं आता। बादशाह ने वह निवेदनपत्र सुनकर कहा कि हम उसे मुनइमखाँ की खातिर से क्षमा कर चुके हैं। लिख दो कि टोडरमल सेना लेकर चले आवें। खानजमाँ दूसरी बार फिर बिगड़ा और उसने फिर मुनइमखाँ से प्रार्थना की। मुनइमखाँ ने समझ लिया था कि स्वयं मेरे निवेदन करने के लिये स्थान नहीं रह गया है। उधर तो खानजमाँ को पत्र लिखा और इधर शेख अब्दुलनबी सद्र, मीर मुर्तजा शरीफी तथा मुल्ला अब्दुल्ला सुलतानपुरी के द्वारा फिर बादशाह की सेवा में निवेदन किया। वह स्वयं हाथ जोड़कर आँखें बंद करके सिर झुकाए हुए खड़ा था। अंत में अपराध क्षमा ही करा लिया। बात यह थी कि मुनइमखाँ जानता था कि कुछ ईर्ष्यालु अमीरों की चालाकी ने इन दोनों भाइयों को विपत्ति में फँसा दिया है। यह और वे दोनों साम्राज्य के पुराने सेवक और जान निछावर करनेवाले थे। इसी लिये वह बीच बीच में भी इस प्रकार की विपत्तियों आदि के समाचार और उनसे बचने के उपाय आदि उन दोनों भाइयों को बतला दिया करता था और उन्हें सदा शुभ परामर्श दिया करता था। वह सदा

यही चाहता था कि ये लोग शत्रुओं के आक्रमण से बचकर आज्ञाकारियों के मार्ग पर आ जायँ और नमकहराम न कहलावें। चुगली खानेवालों ने बादशाह की सेवा में निवेदन भी किया कि मुनइमखाँ अंदर ही अंदर खानजमाँ और बहादुरखाँ से मिला हुआ है; पर वह अपनी नेकनीयती से एक कदम भी पीछे न हटा।

पाठकों को स्मरण होगा कि जिस समय बैरमखाँ का झगड़ा चल रहा था, उस समय मुनइमखाँ काबुल से बुलवाया हुआ आया था। वह आते ही लोधियाने में बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। उसी ने मुकीमबेग को भी, जो तरदीबेग का भानजा था, बादशाह की सेवा में उपस्थित किया। ऐसे अवसर पर उसे बादशाह की सेवा में उपस्थित करना मानों उसे उठाकर उन्नति के शिखर पर फेंक देना था। पर वह तरदीबेग का भानजा था। जब वह दरबार में बराबर बैठकर बातचीत करने के योग्य हो गया और उसे शुजाअतखाँ की उपाधि मिल गई, तब एक दिन एकांत के दरबार में मुनइमखाँ को कुछ ऐसे शब्द कहे जो तुर्की और शाही दरबार के नियम के विरुद्ध थे। इस बात के लिये अकबर उसपर बहुत बिगड़ा था। मुनइमखाँ उन दिनों बंगाल में थे। शुजाअतखाँ को तुरंत उसके पास भिजवा दिया। तात्पर्य यह था कि इसने तुम्हारे संबंध में ऐसी ऐसी बातें कही हैं। अब तुम्हीं इससे समझ लो। परंतु धन्य है मुनइमखाँ जो उसके साथ बहुत

ही आदर और प्रतिष्ठापूर्वक मिला और बहुत अच्छी तरह उसकी आवभगत की। यही नहीं बल्कि स्वयं अपने पास से उसे उसके योग्य एक जागीर भी दे दी। वह भी अमीर का लड़का था और उदारहृदय था। न तो वह वहाँ रहने के लिये ही राजी हुआ और न उसने वह जागीर लेना ही मंजूर किया। खानखानाँ ने इस पर कुछ खयाल नहीं किया और बादशाह की सेवा में निवेदनपत्र लिख दिया कि इसे क्षमा कर दिया जाय। इसके उपरांत बहुत ही प्रतिष्ठापूर्वक उसे वहाँ से बिदा कर दिया।

ज्योतिष और शकुन आदि पर भी मुनइमखाँ का बहुत विश्वास रहता था। जब काबुल में उनके भाई-बंदों का झगड़ा हुआ था और मुनइमखाँ यहाँ से गए थे, तब अटक के किले के पास युद्ध की छावनी पड़ी हुई थी। उस दिन इन्होंने युद्ध रोकना चाहा था, क्योंकि जानते थे कि मनहूस सितारा सामने है। गूजरखाँ की जिस लड़ाई में ये स्वयं भी जखमी हुए थे, उस लड़ाई के समय भी प्याले में यही शरबत मौजूद था। मजा यह कि दोनों जगह विवश होकर इन्हें वही शरबत पीना पड़ा।

यद्यपि मुनइमखाँ के हृदय में सहानुभूति, दया और कृपा बहुत अधिक थी, तथापि काबुल में ख्वाजा जलालुद्दीन महमूद के साथ उन्होंने जो व्यवहार किया, उसके कारण उनकी विमल कीर्त्ति पर एक बहुत बड़ा और भद्दा कलंक लग गया था।

पूरब के जिलों में मुनइमखाँ अपनी उदारता की स्मृति के रूप में बड़ी बड़ी मसजिदें और विशाल भवन छोड़ गए हैं। जौनपुर

में भी कई इमारतें थीं। परंतु सन् ६७५ हि० में वहाँ उन्होंने गोमती पर जो पुल बनवाया था, वह अभी तक ज्यों का त्यों मौजूद है। यद्यपि उसे बने तीन सौ वर्ष हो चुके, परंतु काल के आघात और नदी के चढ़ाव उसका एक कंकड़ भी नहीं हिला सके। उसकी बनावट का ढंग और तराश की खूबियाँ भारत की प्राचीन वास्तु-विद्या की शोभा बढ़ानेवाली हैं। दूर दूर से आनेवाले बड़े बड़े यात्री भी उसकी प्रशंसा करते हैं। लोग कहते हैं कि उनका एक दास था जिसका नाम फहीम था। उसी फहीम के निरीक्षण में उन्होंने यह पुल बनवाया था।

मुनइमखाँ जिस प्रकार अपने वंश में आप ही पहले सबसे बड़े और प्रसिद्ध आदमी थे, उसी प्रकार वे उस बड़प्पन और प्रसिद्धि का आप ही अंत भी कर गए। उनकी संतान में गनीखाँ नामक केवल एक पुत्र था। परंतु पिता जितना ही अधिक योग्य था, पुत्र उतना ही अधिक अयोग्य निकला। सुयोग्य पिता उसे अपने पास भी न रख सका। काबुल के झगड़े के उपरांत वह कुछ दिनों तक इधर उधर मारा मारा फिरता था। फिर दक्षिण की ओर चला गया। वहाँ इब्राहीम आदिल शाह की सरकार में नौकर हो गया। फिर ईश्वर जाने उसका क्या हुआ और वह कहाँ चला गया। (देखो मआसिर उल् उमरा।) मुल्ला साहब कहते हैं कि वह जौनपुर के इलाके में झख मारता फिरता था। उसी दशा में वह दुर्दशापूर्ण जीवन के बंधन से मुक्त हो गया।

गाजीपुर जमानियाँ में मौलवी अजीमउल्ला साहब रग्मी नामक एक सज्जन रहते हैं, जो कई पीढ़ियों के बहुत पुराने रईस, विद्वान् और सज्जन हैं। उनके माता पिता अनेक प्रकार की विद्याओं में बहुत ही निपुण थे और काव्य आदि के बहुत बड़े प्रेमी तथा जानकार थे। वे इसी विद्याप्रेम के कारण और विशेषत: शेख इमामबख्श नासिख के प्रेम से प्राय: घर छोड़कर लखनऊ जाते थे और महीनों वहीं रहते थे। मौलाना रग्मी जब पाँच बरस के थे, तभी से अपने पिता के साथ लखनऊ जाया करते थे और बाल्यावस्था से ही शेख इमामबख्श की सेवा में रहा करते थे। बहुत दिनों तक उनकी सेवा में रहकर उन्होंने अनेक प्रकार के लाभ उठाए थे। अपने काव्य का वे उन्हीं से संशोधन आदि भी कराया करते थे। बल्कि उनका 'रग्मी' उपनाम भी उन्होंने रखा था। रग्मी साहब ने उर्दू और फारसी में अनेक ग्रंथों की रचना की है। अँगरेजी राज्य में वे कई बड़े बड़े पदों पर रह चुके हैं और इसी लिये अँगरेज सरकार से उन्होंने पेंशन पाई है। वे अपने प्रांत का बहुत अच्छा ऐतिहासिक और भौगोलिक वृत्तांत जानते हैं। आबे हयात नामक ग्रंथ लिखने के समय आजाद को भी उनकी सेवा में उपस्थित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उन्होंने कृपा करके जौनपुर और गाजीपुर जमानियाँ के संबंध में अनेक ऐसी बातें बतलाई थीं जो उनके पूर्वजों को कई पीढ़ियों से मालूम होती चली आती थीं। उन्होंने मुझसे कहा था कि

अकबर बादशाह सन् ९७२ हि० में यहाँ आया था और वहा ठहरा था जहाँ यह पुल है। उसी अवसर पर उसने यह पुल बनवाने की आज्ञा दी थी। खानखानाँ ने कारीगरों को बुलवाकर वहाँ पुल बनाने के लिये कहा। उन लोगों ने निवेदन किया कि इस स्थान पर पानी बहुत गहरा है और सदा गहरा ही रहता है। इब्राहीम लोदी ने भी एक बार यहाँ पुल बनवाने का विचार किया था। उस समय यहाँ से आध कोस पूरब की ओर बदीअ मंजिल नामक स्थान के पास पुल बनवाना निश्चित हुआ था; क्योंकि गरमी में वहाँ पानी कम हो जाता है। खानखानाँ ने कहा कि बादशाह को यही जगह पसंद है, क्योंकि किला यहाँ से पास पड़ता है। उत्तम यही है कि यहीं पुल बने। इसलिये उन लोगों ने पहले दक्षिण की ओर पाँच मेहराबों का एक बहुत ही दृढ़ और विशाल पुल बनाया था। किसी ने उस पुल की तारीख़ भी कही थी; पर उसके अक्षर बहुत कुछ मिट गए थे। उक्त मौलवी साहब ने बहुत परिश्रम से वह तारीख ढूँढ़ निकाली और पढ़ी थी।

खान आजम मिरज़ा अजीज कोकलताश खाँ

सभी इतिहास और वर्णन आदि इन खानखानाँ की अमीरी, महत्त्व, वीरता और योग्यता की प्रशंसा से अलंकृत हैं। परंतु इस प्रकार के वर्णन कम हैं, जिनसे ये नगीने उसकी अँगूठी पर ठीक आ जायँ। हाँ, ये अकबर के समवयस्क थे और उसके साथ खेल कूदकर बड़े हुए थे। यह अवश्य जान पड़ता है कि अकबर की कृपा और अनुग्रह ने इनके पद और मर्यादा में बहुत अधिक वृद्धि की थी। एक तो खानखानाँ की प्रकृति ही युद्धप्रिय थी; दूसरे अकबर इनके बहुत नाज उठाया करता था। इसलिये इन सब बातों ने इनको लाड़ले बच्चे की भाँति बहुत ही हठी और बदमिजाज कर दिया था। अस्तु। मैं उनकी सब बातें लिखता हूँ। पाठक स्वयं ही उनसे परिणाम निकाल लेंगे। परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि इनकी सब बातें बहुत ही मनोहर और विलक्षण हैं।

इनके पिता मीर शम्सुद्दीन मुहम्मदखाँ थे जिनका वर्णन परिशिष्ट में दिया गया है। वे अकबर के शासन काल में खान आजम और अतकाखाँ कहलाते थे। जब अकबर का जन्म भी नहीं हुआ था, तभी उसकी माता बादशाह बेगम ने मिरजा अजीज की माता से कह दिया था कि यदि मेरे यहाँ लड़का होगा तो तुम उसे दूध पिलाना। अकबर का जन्म तो हो गया, पर उसके यहाँ अभी तक कोई संतान नहीं हुई थी। इस बीच में और और स्त्रियाँ तथा दाइयाँ आदि अक-

बर को दूध पिलाती रहीं। फिर जब उसको बच्चा हुआ, तब उसने दूध पिलाना आरंभ किया और बहुत से अंशों में यह सेवा उसी के सपुर्द रही। जब हुमायूँ भारतवर्ष से बिलकुल निराश हो गया और कंधार के मार्ग से ईरान की ओर चला, तब वह इन पति-पत्नी को अकबर के पास छोड़ गया। ईश्वर के भरोसे पर दोनों दुःख सहते रहे। अंत में हुमायूँ वहाँ से लौट आया। उसने काबुल पर विजय प्राप्त की और अकबर के प्रताप के साथ साथ उनका भी भाग्य चमका। उन्हीं के कारण और उन्हीं के विचार से अकबर उनके वंश के सभी लोगों के साथ बहुत ज्यादा रिआयत करता था और सदा उन्हें बहुत ही उच्च तथा प्रतिष्ठापूर्ण स्थान दिया करता था। ये भी सदा विकट अवसरों पर जान देने के लिये पैर आगे ही बढ़ाए रहते थे। खान आजम की माता को अकबर 'जीजी' कहा करता था और अपनी माता से भी बढ़कर उनका आदर करता था। आगे चलकर परिशिष्ट में इन लोगों के और जो विवरण दिए गए हैं, उन सबसे और भी बहुत सी बातों का पता चलेगा।

सन् ९६९ हि० में जब खान आजम मुहम्मद शम्सुद्दीन मुहम्मदखाँ अतका शहीद हुए, तब अकबर ने उनके छोटे पुत्र मिरजा अजीज को बहुत अधिक सान्त्वना दी। सारे वंश को उन्होंने बहुत अधिक आश्वासन दिलाया। थोड़े दिनों बाद खान आजम की उपाधि दी। परंतु प्यार से सदा उन्हें मिरजा

अजीज या मिरजा कोका कहा करता था। ये हर दम उसके पास रहा करते थे। अकबर जब हाथी पर बैठता था, तब प्राय: इन्हीं को अपनी खवासी में बैठाया करता था। यदि ये कोई धृष्टता या उद्दंडता कर बैठते थे, तो वह उसी प्रकार सहन कर लेता था जिस प्रकार लोग अपने भाइयों या पुत्रों आदि की इस प्रकार की बातें सह लिया करते हैं। बल्कि कभी कभी अकबर प्रसन्न होकर कहा करता था कि जब इस पर क्रोध आता है, तब मैं देखता हूँ कि मेरे और इसके बीच में दूध की नदी बह रही है। इसलिये मैं चुप रह जाता हूँ। वह प्राय: कहा करता था कि यदि मिरजा अजीज तलवार खींचकर भी मेरे सामने आ जाय तो जब तक वह पहले मुझ पर वार न कर ले, तब तक मेरा हाथ उस पर नहीं उठेगा। खान आजम को भी इस बात का बहुत अधिक अभिमान था कि हम अकबर के बहुत ही पास के रिश्तेदार बल्कि भाई हैं। इनके इस संबंध के समाचार बहुत दूर दूर तक पहुँचे थे। यहाँ तक कि सन् ९७८ हि० में जब अब्दुल्लाखाँ उजबक की ओर से राजदूत उपहार आदि लेकर आया, तब बादशाह के लिये जो उपहार आए थे, उनके अतिरिक्त इनके और मुनइमखाँ खानखानाँ के नाम अलग अलग उपहार आए थे। परंतु फिर भी हम यह कह देना चाहते हैं कि इतना अधिक प्रेम होने पर पाठक यह न समझ लें कि अकबर किसी का हाल नहीं जानता था, अथवा उससे किसी की कोई बात छिपी हुई थी। जब मुहम्मद

हकीम मिरजा काबुल से विद्रोह करके आया था, तब भी और उसके उपरांत जब सन् ६७४ में अकबर चित्तौड़ को घेरे हुए पड़ा था, तब भी उसे समाचार मिला कि अतका वंश के लोग एकमत नहीं हैं। उनमें से कुछ तो मेरे पक्ष में हैं और कुछ मेरे विरोधी हैं। उस समय साम्राज्य का यह नियम भी था कि जब कोई हाकिम बहुत दिनों तक एक स्थान पर रह चुकता था, तब उसकी जागीर बदल दी जाती थी। इसलिये उसने अतका वंश के सभी लोगों को पंजाब से बुला लिया। पंजाब हुसैनकुलीखाँ को मिल गया। मिरजा अजीज सदा बादशाह की सेवा में रहा करता था; इसलिये दीपालपुर पहले की ही भाँति उनकी जागीर रहा। और लोगों को थोड़े दिनों के उपरांत संभल और कन्नौज आदि के इलाके मिल गए।

दीपालपुर का इलाका खास खान आजम की जागीर था। सन् ६७८ में बादशाह पाकपटन से जियारत करके इधर आ रहा था। इन्होंने निवेदन किया कि शाही लश्कर बहुत दिनों से निरंतर यात्रा में रहने के कारण कष्ट पा रहा है। श्रीमान् थोड़े दिनों तक यहीं आराम करें। बादशाह कई दिनों तक वहाँ ठहरा रहा। शाहजादों और अमीरों समेत उनके घर भी गया। खान आजम ने दावतों और आतिथ्य-सत्कार आदि में बहुत अधिक उदारता दिखलाई। बिदाई के दिन बहुत अधिक मूल्यवान् उपहार आदि भेंट किए। अरबी और ईरानी घोड़े, जिन पर सोने और रूपे के जीन थे, बहुत बड़े बड़े हाथी

जो सूँड़ों में चाँदी और सोने की जंजीरें हिलाते थे और जिन पर कारचोबी की मखमली झूलें पड़ी हुई थीं और जिनके अंकुश सोने और चाँदी के थे, मोतियों और दूसरे बहुमूल्य रत्नों से जड़ी हुई कुरसियाँ, पलंग, चाँदी और सोने की चौकियां, सोने और चाँदी के सैंकड़ों बरतन, बहुत बड़े बड़े और बहुमूल्य जवाहिरात तथा फिरंग, रूम, खता, यज्द आदि देशों के बहुत से अद्भुत पदार्थ—जिनका कोई अंत और कोई अनुमान नहीं हो सकता—बादशाह की सेवा में उपस्थित किए। शाहजादों और बेगमों को भी बहुत अधिक मूल्य के वस्त्र तथा गहने आदि दिए। जितने दरबारी, अमीर, सरदार आदि साथ थे, उन सबको बल्कि लश्कर के प्रायः सभी लोगों को, जो बादशाह की सेवा में और उसके साथ थे, अनेक प्रकार के उपहार और पुरस्कार आदि दिए। उदारता की नदी में पानी की जगह दूध के तूफान उठाए। आखिर वह बादशाह का दूध-भाई था। उसे ऐसा ही उदार होना चाहिए था। मुल्ला साहब ने इस आतिथ्य-सत्कार के संबंध में केवल इतना ही लिखा है कि ऐसा आतिथ्य सत्कार किसी ने कम किया होगा। बस पाठक इसी से समझ लें कि जब मुल्ला साहब ने इतना लिखा है, तब खान आजम ने क्या कुछ किया होगा। अकबर यद्यपि अशिक्षित बादशाह था, तथापि देशों पर विजय प्राप्त करने तथा उन पर शासन करने की विद्या में वह बहुत अधिक निपुण था। वह अपने अमीरों को शासन आदि कार्यों की उसी

प्रकार शिक्षा दिया करता था जिस प्रकार कोई अच्छा मौलवी या शिक्षक अपने विद्यार्थियों से पुस्तक के पाठ याद कराया करता है। उनमें से टोडरमल्ल, खानखानाँ, मानसिंह और खान आजम बहुत अच्छे विद्यार्थी निकले थे।

सन् ९७९ हि० में जो गुजरात का सूबा जीता गया था, वह इन्हें जागीर में प्रदान हुआ था। कहा गया था कि तुम्हीं इसकी व्यवस्था करो। लेकिन अकबर तो इधर आया और उधर मुहम्मद हुसैन मिरजा तथा शाह मिरजा ने फौलादखाँ दक्खिनी आदि अराजक अफगानों से मेल मिलाप बढ़ाकर लश्कर एकत्र किया और पाटन नामक स्थान पर आकर डेरे डाल दिए। मआसिर उल् उमरा में लिखा है कि हुसैन मिरजा की वीरता की यह दशा थी कि युद्ध क्षेत्र में अपने समय के सभी वीरों से आगे बढ़कर वीरतापूर्ण आक्रमण किया करता था। खान आजम ने चारों ओर से शाही अमीरों को एकत्र किया। अकबर के कुछ ऐसे अमीर भी थे जो उसकी आज्ञा पाकर अपनी अपनी नौकरी पर जा रहे थे। वे समाचार पाते ही आप से आप दौड़ आए और आकर सम्मिलित हो गए। सेना सज धजकर बाहर निकली। उधर से शत्रु भी अपनी सेना लेकर आगे बढ़ा। जब सब लोग ठीक युद्ध क्षेत्र में पहुँचे, तब दोनों ओर के लश्कर परे बाँधकर खड़े हुए। प्रत्येक पक्ष के लोगों ने आगे पीछे और क्रम से खड़े होकर शतरंज की बाजी की भाँति ऐसा स्थान ग्रहण किया

जिससे एक से दूसरे को यथेष्ट बल पहुँचे। इतने में समाचार मिला कि शत्रु का विचार पीछे की ओर से आक्रमण करने का है। इन्होंने कुछ अमीरों को अलग सेना दे दी और उस ओर की व्यवस्था से भी निश्चिंत हो गए।

जब खान आजम ने युद्ध क्षेत्र में आकर अपनी सेना जमाई, तब शत्रु ने बादशाही लश्कर के सैनिकों की अधिकता तथा व्यूह-रचना की व्यवस्था देखकर लड़ाई को टालना चाहा। उसने एक सरदार के द्वारा संधि का सँदेसा भेजा। बादशाही अमीर संधि करने के लिये तैयार हो गए। इतने में एक अमीर घोड़ा मारकर खान आजम के पास पहुँचा और बोला कि आप कदापि संधि करना स्वीकृत न कीजिएगा, क्योंकि यह आपके साथ छल हो रहा है। जब आपकी सब सेनाएँ अपने अपने स्थान पर चली जायँगी, तब ये लोग फिर सिर उठावेंगे। खान आजम ने उस अमीर की इस दूरदर्शिता की बहुत अधिक प्रशंसा की और शत्रु को उत्तर में कहला भेजा कि हमें संधि करना मंजूर है। पर यदि तुम्हारे मन में किसी प्रकार का कपट नहीं है और तुम्हारी नीयत साफ है तो तुम पीछे हट जाओ जिसमें हम तुम्हारे स्थान पर आ उतरें। पर शत्रु पक्ष के लोगों ने यह बात नहीं मानी।

खान आजम ने अपनी सेना को आगे बढ़ाया। शत्रु के दाहिने पार्श्व ने इनके बाएँ पार्श्व पर आक्रमण किया। वह ऐसी कड़क दमक से आगे बढ़ा कि खान की सेना का पार्श्व

ही उखड़ गया। उस समय कुतुबउद्दीन नामक एक बहुत पुराना सरदार वहाँ उपस्थित था। वह अपने साथियों को लेकर वहीं गड़कर खड़ा हो गया। उसकी वीरता भी प्रशंसनीय है। जब शत्रु के हाथी ने आक्रमण किया, तब उसने बढ़कर उसके मस्तक पर तलवार का एक ऐसा हाथ मारा कि मस्तक का पेट खोल दिया। आश्चर्य की बात यह है कि जब हरावलवाली सेना पर जोर पड़ा, तब वह भी मुकाबले में न ठहर सकी। आगेवाली सेना भी तितर बितर होकर पीछे हटी। भागनेवाले भागते भी थे और लड़ते भी थे। शत्रु उनके पीछे घोड़े बढ़ाए हुए चले आते थे।

खान आजम सेना के मध्य भाग को लिए हुए खड़े थे। वे किसी दैवी संयोग की प्रतीक्षा में थे। इतने में पाँच सौ सवारों का एक परा उन पर भी आ टूटा। परंतु वे टक्कर खाकर पीछे हट गए। शत्रु ने जब देखा कि मैदान हमारे हाथ रहा और दाहिने पार्श्व में इतनी शक्ति नहीं है कि बाएँ पार्श्व को आकर सहायता दे सके और बादशाही सरदार दूर से खड़े हुए तमाशा देख रहे हैं, तब वह निश्चिंत होकर ठहर गया और सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए। इसी बीच में उसकी सेना लूट पर टूट पड़ी। परंतु बाएँ पार्श्व में कुतुबउद्दीनखाँ पर भारी आपत्ति आई हुई थी। खान आजम अपनी सेना को लेकर उधर पहुँचे और उसके वीर सैनिक घोड़े उठाकर बाज की तरह जा झपटे। उस ओर शत्रु की

सेना तितर बितर हो गई, क्योंकि और सेनाओं के कुछ लोग तो भागते हुए लोगों के पीछे जा रहे थे और कुछ लोग लूट पर गिरे हुए थे। सरदार लोग अपनी सेना के फैलाव को समेट न सके। यह अकबर का ही प्रताप था कि उसकी हारी हुई सेना भी जीत गई और बिगड़ी हुई बात बन गई। खान आजम अपनी सेना लेकर एक ऊँचे स्थान पर आ खड़ा हुआ।

इतने में शोर मचा कि मिरजा फिर इधर पलटे। खान आजम की सेना भी सँभलकर खड़ी हो गई। शत्रु पक्ष से पहली भूल यह हुई कि उसने भागते हुए लोगों का पीछा किया। जब वह पहले ही आक्रमण में सफल हुआ था तब उसे उचित था कि साथ ही खान आजम पर आ टूटता। यदि वह ऐसा करता तो मैदान मार लेता। या जिस प्रकार वह बाएँ उठकर गया था, यदि उसी प्रकार सीधा जाकर गुजरात नगर में प्रवेश करता तो खान आजम को और भी कठिनता होती।

जब दोबारा वह आगे बढ़ने लगा, तब इस ओर के सब लोग सँभल चुके थे। कुछ भागे हुए लोग भी लौट रहे थे। वे भी आकर अपनी सेना में मिल गए। एक अमीर ने कहा कि बस यही अवसर है। इस समय आक्रमण कर देना चाहिए। खान आजम बाग उठाना ही चाहता था कि इतने में एक सरदार ने कहा कि इतने अमीर यहाँ उपस्थित हैं। ऐसी दशा में यह कहाँ का नियम है कि सेनापति स्वयं आक्रमण करने के लिये जाय। अभी आक्रमण की नौबत

ही नहीं आई थी कि पता चला कि शत्रु स्वयं ही पीछे हट रहा है और उसकी सेना घूमकर मैदान से निकल गई। शत्रु की सेना में एक मस्त हाथी था जिसका फीलवान मारा जा चुका था। हाथी अपने पराए सब को रौंदता फिरता था। जिस ओर नगाड़े का शब्द सुनता था, उसी ओर दौड़ पड़ता था। जब बादशाही सेना में विजय के डंके बजने लगे, तब वह और भी बौरा गया। खान आजम ने आज्ञा भेजकर नगाड़े बंद करा दिए और उस मस्त हाथी को घेरकर पकड़ लिया।

खान आजम विजय-पताका फहराता हुआ गुजरात जा पहुँचा। पर फिर भी उसने शत्रु का पीछा छोड़ना उचित न समझा। वह सेना लेकर चला। जब यह समाचार दरबार में पहुँचा, तब अकबर को बहुत अधिक प्रसन्नता हुई। उसने एक अमीर के हाथ इनके पास प्रशंसापूर्ण आज्ञापत्र भेजा और उसी के द्वारा इन्हें बुलवा भी भेजा। ये भी मारे आनंद के फूले न समाए और सिर पर पैर रखकर दरबार की ओर दौड़े।

सन् ६८० हि० में ये एक बहुत ही विकट फंदे में फँस गए थे। यदि अकबर की तलवार और फुरती इनकी सहायता न करती तो ईश्वर जाने क्या हो जाता। खान आजम गुज-रात में बैठे हुए थे। कभी राजसी शासन के और कभी अमीरों की उदारता के आनंद लेते थे। इस बीच में वही मुहम्मद हुसैन मिरजा किसी प्रकार अख्तियार उल्मुल्क दक्खिनी के साथ मिल गया। दक्षिण के और भी कई सरदार आ

मिले। वे सब अहमदनगर आदि में चारों ओर फैल गए। परिणाम यह हुआ कि खान आजम भागकर अहमदाबाद में घुस बैठे। उन्होंने यही बहुत समझा कि नगर तो हमारे हाथ में है। शत्रु चौदह हजार सैनिक एकत्र करके गुज़रात पर चढ़ आया और आते ही उसने खान आजम को घेर-कर ऐसा दबोचा कि वे तड़प भी न सके।

एक दिन फाजिलखाँ अपनी सेना लेकर खानपुर दरवाजे से निकले और लड़ने लगे। शत्रु के सैनिक इस प्रकार उमड़-कर आए कि उन्होंने इन सब लोगों को समेटकर फिर किले में घुसेड़ दिया। फाजिलखाँ बहुत अधिक घायल हुए। इसी को कुशल समझो कि किसी प्रकार जान लेकर भागे। सुलतान ख्वाजा घोड़े से गिरकर खाई में जा पड़े। जब प्राकार में से रस्से में बाँधकर टोकरा लटकाया गया, तब कहीं जाकर निकले। सब लोगों का साहस छूट गया। उन्होंने कह दिया कि इस शत्रु का सामना करना हमारी शक्ति के बाहर है। इन लोगों ने निवेदनपत्र आदि दौड़ाना आरंभ किया। सब निवेदनपत्रों और सँदेसों आदि में यही एक बात थी कि यदि श्रीमान् यहाँ पधारेंगे तब तो हम लोगों की जान बचेगी; और नहीं तो यहीं हम सब लोगों का अंत हो जायगा। महल में जीजी आती थीं और रोती थीं। कहती थीं कि किसी प्रकार जाकर मेरे बच्चों को ले आओ। अकबर अच्छे अच्छे सिपाहियों और सरदारों को लेकर सवार हुआ और इस तेजी

से चला कि सत्ताईस दिनों का मार्ग सात दिनों में चलकर उसने सातवें ही दिन गुजरात से तीन कोस के पास पहुँचकर दम लिया। फैजी ने सिकंदरनामे के जोड़ का जो अकबरनामा लिखना चाहा था, उसमें इस चढ़ाई का बहुत अच्छा वर्णन किया था।

अलाउद्दौला ने तजकिरः में लिखा है कि जब अकबर ने गुजरात पर विजय प्राप्त की, तब उसने शाहजादा सलीम को दो करोड़ साठ लाख रुपए दिए थे और राजधानी अहमदाबाद से उठाकर गुजरात में स्थापित की थी।

दूसरे वर्ष बंगाल की विजय के कारण दरगाह में धन्यवाद देने के लिये बादशाह फतहपुर से अजमेर गए। दो बड़े बड़े नगाड़े, जो लूट में हाथ आए थे, वहाँ भेंट के रूप में चढ़ाए। खान आजम पहले से ही सेवा में उपस्थित होने के लिये निवेदनपत्र दौड़ा रहे थे। इस अवसर पर वे चट अहमदाबाद से चलकर अजमेर पहुँचे। बादशाह उन्हें देखकर बहुत अधिक प्रसन्न हुआ। उसे देख उठ खड़ा हुआ और कई कदम आगे बढ़कर उसे गले लगाया।

सन् ९८२ हि० में मिरजा सुलेमान के आगमन का समय था। उनके आतिथ्य-सत्कार आदि के लिये अभूतपूर्व सामग्री प्रस्तुत हो रही थी। खान आजम के पास भी आज्ञा पहुँची कि तुम भी इस समय आकर दरबार में उपस्थित हो, और अमीरों के समुदाय में उनके सामने उपस्थित किए जाओ। खान आजम डाक बैठाकर फतहपुर में हाजिर हुए।

अकबर भारतवर्ष के लोगों को अच्छे अच्छे पद और विश्वसनीय सेवाएँ बहुत अधिकता से देने लगा था। इसके कई कारण थे। कुछ तो यह कारण था कि उसके बाप दादा ने बुखारा और समरकंद के लोगों से सदा धोखा खाया था; और उनसे भी बढ़कर विद्रोह तुर्कों ने किया था। एक कारण यह भी था कि इस देश के लोग विद्वान्, योग्य और बुद्धिमान् होते थे और अपने देश की दशा से भली भाँति परिचित होते थे। ये लोग सेवा भी सच्चे हृदय से किया करते थे। कुछ कारण यह भी था कि यह देश इन्हीं लोगों का था और इसलिये इससे लाभ उठाने के सबसे पहले अधिकारी भी यही लोग थे। तुर्क लोग अकबर की इन सब बातों से बहुत अधिक जलते और इसके लिये अकबर को अनेक प्रकार से बदनाम करते थे। कभी तो वे लोग कहते थे कि अकबर धर्मभ्रष्ट हो गया है। कभी कहते थे कि यह अपने पूर्वजों की सेवा करने-वाले लोगों को भूल गया है। इस अवसर पर जब कि मिरजा सुलेमान आनेवाला था, बुद्धिमान् अकबर उसे यह दिखलाना चाहता था कि देखो, जो लोग मेरे साथ निष्ठापूर्ण व्यवहार करते हैं और मेरे लिये जान देते हैं, उनको तथा उनके वंशजों को मैं कितना बढ़ाता हूँ और कितना प्रिय समझता हूँ। मिरजा अजीज को देखो कि किस ऊँचे पद पर पहुँचाया है, क्योंकि वह मुझे दूध पिलानेवाली का लड़का है। इसके अतिरिक्त और भी बहुत से पुराने तथा अनुभवी

वीर और विद्वान् आदि थे जिन्हें उसने मिरजा सुलेमान के सामने उपस्थित किया था।

इन्हीं दिनों दाग का नियम प्रचलित हुआ था। अमीरों को यह कानून नापसंद था। बादशाह ने मिरजा अजीज को अपना समझकर कहा कि पहले खान आजम ही अपनी सेना की हाजिरी करावेगा। उन दिनों हठीले नवाब की आँखों पर यौवन के मद ने परदा डाल रखा था। एक तो मियाँ बावले; ऊपर से पी ली भंग। फिर भला क्या पूछना है! सदा के लाड़ले तो थे ही; हठ कर बैठे। नए कानून से होने-वाली बुराइयाँ स्पष्ट शब्दों में कहने लग गए। बादशाह ने कुछ समझाया बुझाया। कुछ और अमीरों ने भी बादशाह के पक्ष में कुछ बातें कहीं। पर ये उत्तर देने में किससे रुकते थे! बादशाह ने तंग आकर कहा कि तुम हमारे सामने न आया करो। कई दिन बाद आगरे भेज दिया कि जाकर अपने बाग में रहें। वहाँ न ये किसी के पास जा सके और न इनके पास कोई जा सका। उस बाग का नाम जहानआरा था। उसे स्वयं ही बहुत शौक से नहरों आदि से हरा भरा किया था।

सन् ९८३ में स्वयं ही बादशाह को कुछ ध्यान आया। उसने इनका अपराध क्षमा करके इन्हें फिर गुजरात के सूबे में भेजना चाहा। परंतु ये तो पूरे हठी थे। किसी प्रकार न माना। बादशाह ने फिर कहला भेजा कि वह प्राचीन काल के बड़े बड़े बादशाहों की राजधानी है। ऐसा अच्छा स्थान

पाने के लिये श्रीमान् की कृपा के लिये धन्यवाद दो और वहाँ चले जाओ। इन्होंने कहला भेजा कि मैंने सिपाही का काम छोड़ दिया। अब मुझे आप दुआ करनेवालों के समुदाय में ही रहने दीजिए। अकबर ने उनके सगे चचा कुतुबुद्दीनखाँ को इन्हें समझाने बुझाने के लिये भेजा। बुड्ढे ने बहुत कुछ ऊँच नीच दिखलाकर समझाया बुझाया। माँ ने भी कहा। यहाँ तक कि वह झुँझलाई और बिगड़ी भी। पर ये किसकी सुनते थे! उधर मिरजाखाँ का भाग्य जोर कर रहा था और उसे खानखानाँ होना था। बादशाह ने उसे भेज दिया। वह अनेकानेक धन्यवाद देता हुआ उधर चल पड़ा। इनका अपराध तो सदा ही क्षमा रहता था। परंतु यह कहो कि सन् ९८६ हि० में इन्होंने भी अपराध क्षमा कराना स्वीकृत कर लिया।

सन् ९८७ हि० में मिरजा पर से एक बहुत बड़ी आई हुई आपत्ति टली। बादशाह एकांत में था। अचानक महलों में बहुत अधिक शोर मचा। पता लगा कि मिरजा कोका घायल हो गए हैं। बात यह थी कि इटावे का राजा भूपत चौहान विद्रोही होकर बंगाल की ओर चला गया था। जब बंगाल पर अकबरी सेना की विजय हो गई, तब वह फिर अपने इलाके में आ गया और प्रजा को पर्चाने तथा चोरों, डाकुओं को दबाने लगा। बादशाही अधिकारियों ने उसे दबाया और दरबार में निवेदनपत्र भेजा। आज्ञा हुई कि वह प्रदेश मिरजा की जागीर है। वे वहाँ जाकर उचित व्यवस्था करें।

वह भागकर राजा टोडरमल और बीरबल के पास पहुँचा और अपना अपराध क्षमा कराने का मार्ग ढूँढ़ने लगा। जब मिरजा को यह बात मालूम हुई; तब उन्होंने बादशाह की सेवा में निवेदन किया। आज्ञा हुई कि शेख सलीम चिश्ती के खलीफा शेख इब्राहीम उसे बुलावें, और उससे पूछें कि क्या मामला है। वह ऊपर से देखने में तो अधीनता स्वीकृत करता था, पर अंदर ही अंदर वह मिरजा की घात में था। वह बहुत से राजपूतों को साथ लेकर लश्कर में आया और शेख से बोला कि मिरजा मुझे अपनी शरण में ले लें और मेरा अप-राध क्षमा कराने का भार लेकर मुझे बादशाह की सेवा में ले चलें; नहीं तो मैं अपनी जान दे दूँगा। शेख उसे तथा मिरजा को अपने साथ लेकर बादशाह की सेवा में उपस्थित हुए। नियम यह था कि बिना बादशाह की आज्ञा के किसी को हथियार लेकर बादशाह के सामने नहीं जाने देते थे। उसकी कमर में जमधर था। पहरेवाले ने उस जमधर पर हाथ रखा। उसे बुरा लगा। उसने चट जमधर खींच लिया और वार करना चाहा। मिरजा ने उसका हाथ पकड़ लिया। उसने उन्हें घायल कर दिया। वे पालकी में चढ़कर घर गए। दूसरे दिन अकबर ने जाकर आँसू पोंछे और दम दिलासे की मरहम पट्टी चढ़ाई।

सन् ९८८ हि० में फिर नहूसत आई। उसकी कहानी भी सुनने ही योग्य है। मिरजा का दीवान कुछ रुपए खा

गया था। उन्होंने उसे तालिब नामक अपने गुलाम के सपुर्द किया कि तुम इससे रुपए वसूल करो। उसने दीवानजी को बाँधकर लटका दिया। ऊपर से लकड़ियों से मारना आरंभ किया और ऐसा मारा कि मार ही डाला। दीवान का पिता रोता पीटता बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। उस बुड्ढे की दशा देखकर बादशाह को बहुत दुःख हुआ। लश्कर के काजी को आज्ञा मिली कि जाकर तहकीकात करो। खान आजम ने निवेदन किया कि मैंने अपने गुलाम को दंड दे दिया है। मेरा मुकदमा श्रीमान् काजी के हाथ में न दें, क्योंकि इसमें मेरी अप्रतिष्ठा है। बादशाह ने यह निवेदन स्वीकृत न किया। ये फिर नाराज होकर घर जा बैठे। कई महीनों के उपरांत बादशाह ने अपराध क्षमा किया। जब सन् ६८८ हि० में बंगाल में उपद्रव खड़ा हुआ और सेनापति मुजफ्फरखाँ मारा गया, तब बादशाह ने इन्हें पंज हजारी मंसब प्रदान किया। अभी तक इनके पिता की खान आजमवाली उपाधि भी अमानत में ही रखी हुई थी। वह उपाधि भी इन्हें प्रदान कर दी गई और राजा टोडरमल के स्थान पर ये बंगाल के युद्ध के सेनापति बना दिए गए। अनेक पुराने अमीर तथा सैनिक तलवार चलानेवाली सेनाओं के साथ इनके सपुर्द किए गए। उन सब लोगों को भी भारी भारी खिलअतें और अच्छे अच्छे घोड़े दिए गए थे और इस प्रकार उन्हें सम्मानित किया गया था। पूर्व के अमीरों के नाम आज्ञापत्र प्रचलित हुए थे

कि मिरजा जाते हैं। सब लोग इनकी आज्ञा का पालन करना और इनकी आज्ञा के विरुद्ध कोई काम न करना।

मुनइमखाँ खानखानाँ और हुसैनकुलीखाँ खानजहाँ उस देश में बरसों तक रहे। तलवारों ने रक्त और युक्तियों ने पसीने बहाए। परंतु उस देशवासियों का हाल बराबर खराब ही रहा। एक ओर तो अफगान जो उसे अपना देश समझते थे, चारों ओर उपद्रव करते फिरते थे। दूसरी ओर कुछ ऐसे नमकहराम बादशाही अमीर भी थे जो कभी तो स्वयं आप ही और कभी अफगानों के साथ मिलकर मार धाड़ करते फिरते थे। खान आजम सेनाएँ भेजकर उनका प्रबंध करते फिरते थे। जब उन पर कोई बस न चलता था, तब अपने साथी अमीरों पर बिगड़ते थे। जब बहुत क्रोध में आते थे तब एक छावनी छोड़कर दूसरी छावनी में चले जाते थे। अमीर लोग बहुत चाहते थे कि इन्हें प्रसन्न रखें; पर ये किसी प्रकार प्रसन्न ही न होते थे। टोडरमल भी साथ थे। कमर बाँधे हुए कभी इधर और कभी उधर फिरते थे। प्राय: दो वर्ष तक ये बंगाल में ही रहे। रात दिन इसी फेर में पड़े रहते थे। अमीरी भी खर्च की और धन देकर भी विद्रोहियों को परचाया। पर बंगाल के झगड़े ऐसे नहीं थे जो इस प्रकार निपट सकते। जब सन् ९९० हि० में बादशाह काबुल पर विजय प्राप्त करके फतहपुर आया, तब ये सन् ९९१ वाले जशन के दरबार में आकर उपस्थित हुए। इनके इधर आते ही उधर

फिर विद्रोह मच गया। बंगाल से लेकर हाजीपुर तक विद्रोहियों ने ले लिया। खान आजम बंगाल पर चढ़ाई करने के लिये दोबारा खिलअत और सेना लेकर चले और वहाँ जाकर कुछ व्यवस्था भी की। पर सन् ९९२ हि० में ही निवेदनपत्र लिख भेजा कि यहाँ का जलवायु मेरे अनुकूल नहीं है। यदि मैं और थोड़े दिनों तक यहाँ रह गया तो फिर मेरे जीवित रहने में भी संदेह ही समझिएगा। बादशाह ने बुला लिया।

अकबर का मन बहुत दिनों से दक्षिण की हवा में लहरा रहा था। सन् ९९३ हि० में उधर के जिलों से उपद्रव और विद्रोह आदि के समाचार आए। दक्षिण के अमीर मीर मुर्तजा और खुदावंदखाँ बरार से अहमदनगर पर चढ़ गए, क्योंकि वहीं निजामुलमुल्क की राजधानी थी। वहाँ से पराजित होकर वे लोग खानदेश के शासक राजा अलीखाँ के पास आए। प्रकट यह किया कि हम लोग अकबर के पास जाते हैं। मुर्तजा निजाम शाह ने राजा अलीखाँ के पास आदमी भेजे और कहलाया कि इन लोगों को समझा बुझाकर रोक लो। परंतु उन आदमियों के आने से पहले ही ये लोग वहाँ से प्रस्थान कर चुके थे। वहाँ से भी इन खानों को रोकने के लिये और आगे आदमी भेजे गए। परंतु वे लोग नहीं रुके, इसलिये मारकाट तक की नौबत पहुँची। परिणाम यह हुआ कि वह लोग इन आए हुए आदमियों को लूट खसोटकर बहुत सी सामग्री एकत्र करते हुए आगरे पहुँचे।

राजा अलीखाँ बहुत ही दूरदर्शी तथा चतुर आदमी था। उसने सोचा कि कहीं अकबर को यह बात बुरी न लगे। वह यह भी जानता था कि अकबर को हाथियों से बहुत अधिक प्रेम है। इसलिये उसने अपने पुत्र के साथ पंद्रह हाथी दरबार में भेजे। नौरोज के जलसे के दिन उसने और भी बहुत से बहुमूल्य उपहारों आदि के साथ वे हाथी बादशाह की सेवा में उपस्थित किए। साथ ही दक्षिण पर विजय प्राप्त करने के अनेक मार्ग भी बतलाए। खानखानाँ तो अहमदाबाद में पहले से ही उपस्थित थे। सब अमीरों और सरदारों आदि के नाम आज्ञापत्र लिखे गए। कुछ अमीरों को उधर भेज भी दिया और खान आजम को "पुत्र" की उपाधि देकर और सेनापति नियुक्त करके आज्ञा दी कि बरार लेते हुए अहमदनगर पर अधिकार करो। वह हँडिया नामक स्थान में जाकर ठहरे। साथ ही सेना भेजकर साँवलगढ़ पर अधिकार किया। नाहरराव सेवा में उपस्थित हुआ। और राजा लोग भी कमर बाँधे हुए सदा प्रस्तुत रहने लगे। अब प्रांतों पर विजय प्राप्त करने के उपाय होने लगे। बादशाह ने मालवे के कई अच्छे अच्छे स्थान अपने प्रिय कोका की जागीर कर दिए। जब अमीरों के पास आज्ञा पहुँची कि तुम लोग खान आजम का साथ दो, तब वे भी चारों ओर से आ आकर उपस्थित होने लगे। भाग्य देखिए कि संयोग से उन लोगों में आपस में फूट हो गई। सेनापति को संदेह होने लगा। वह ऐसा घबराया कि कुछ

ठीक ठीक व्यवस्था ही न कर सका। माहम बेगम की निशानी शहाबुद्दीन अहमदखाँ उपस्थित ही थे। उनकी शकल देखते ही पिता का खून आँखों में उतर आया। खान आजम प्राय: बैठकों में उस बुड्ढे की अनेक प्रकार से दुर्दशा करने लगे। शाह फतहउल्लाह शीराजी को बादशाह ने इसलिये खान आजम के साथ कर दिया था कि जिसमें समय पड़ने पर ये उपाय और युक्तियाँ आदि बतलावें और कोई बात बिगड़ने न दें। शाह साहब उस ओर के प्रदेश और वहाँ के निवासियों से भी भली भाँति परिचित थे। उनकी युक्तियों का भी वहाँ के लोगों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता था। ये पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष आदि की अग्नि को दबाते थे और समझाते थे कि यह अवसर आपस में शत्रुता करने का नहीं है। इससे इस युद्ध और आक्रमण का सारा काम ही बिगड़ जायगा। सबका पिता अकबर बादशाह है। उसकी बात में फरक आ जायगा। देश देश में बदनामी होगी। खान आजम उनसे भी नाराज हो गए। यद्यपि शाह फतहउल्लाह उनके शिक्षक थे, तथापि अपने प्रतिद्वंद्वी का शुभचिंतक ठहराकर उनके बड़प्पन को ताक पर रख दिया। स्वयं खान आजम और उनके मुसाहब मजलिसों में अनेक प्रकार की हँसी और ठट्ठे करके शाह साहब को भी दु:खी करने लगे। परंतु शाह साहब भी युक्ति लड़ाने में अरस्तू और बुद्धि में अफलातून थे। वे अनेक बहानों से इन सब बातों को टालते थे और किसी प्रकार समय बिताते

थे। वृद्ध सरदार शहाबुद्दीन अहमदखाँ की तो इतनी अधिक दुर्दशा हुई कि वह बिगड़कर अपनी सेना समेत अपने इलाके रायसेन की ओर चला गया। उन्होंने उसे संतुष्ट और प्रसन्न करने के बदले उलटे उस पर अपराध लगाया। कहा कि मैं एक तो बादशाह का भाई, और दूसरे सेनापति। बिना मेरी आज्ञा के इस प्रकार चले जाना क्या अर्थ रखता है? ये सेना लेकर उसके पीछे दौड़ पड़े। तौलकखाँ कोची बहुत बड़ा वीर और योद्धा था। सेना के दाहिने पार्श्व का वह सेनापति भी था। उस पर कुछ अपराध लगाया और औचट में जाकर उसे पकड़कर कैद कर लिया। उधर तो पहले शत्रु मन ही मन डर रहा था। उसे आशंका थी कि बादशाही सेना न जाने कब और किस प्रकार कहाँ से आक्रमण कर बैठे। पर अब उसने देखा कि बराबर विलंब हो रहा है। फिर उसे यह भी समाचार मिला कि वहाँ सरदारों और अमीरों आदि में आपस में ही झगड़े बखेड़े चल रहे हैं। यह सुनकर वह और भी शेर हो गया। कुछ अमीरों के साथ बीस हजार सैनिक आगे बढ़ाए। मुहम्मद तकी को उनका सेनापति नियुक्त किया। वे लोग इनके मुकाबले को चले। मिरजा मुहम्मद तकी स्वयं चलकर राजा अलीखाँ के पास गए। कुछ दक्षिणी सरदार ऐसे भी थे जो हवा का रुख देख रहे थे। वे भी बेरुख हो गए। अकबरी साम्राज्य की बदनामी की नौबत पहुँच ही चुकी थी। पर मीर फतह-

उल्लाह ने फिर बीच में पड़कर आपस में मेल मिलाप करा दिया और फिर शत्रु का मुकाबला करने के उपाय सोचे जाने लगे। बड़ी बात यही हुई कि परदा रह गया।

खानदेश का शासक राजा अलीखाँ दक्षिण का एक बड़ा सरदार और बहुत वीर था। वह खान आजम का साथ देने के लिये तैयार हो गया था। यह दशा देखकर उसे भी अवसर मिल गया। वह बरार और अहमदनगर के अमीरों तथा उनकी सेनाओं को साथ लेकर चला। मिरजा अजीज ने यह सुनकर इधर से शाह फतहउल्लाह को भेजा कि जाकर उसे समझावें और बुझावें। परंतु वह दक्षिण के जंगलों का शेर था। अब किसकी सुनता था! वह सीधा बढ़ा चला आया। शाह फतहउल्लाह वहाँ से विफलमनोरथ होकर लौटे और दुःखी होकर खानखानाँ के पास गुजरात चले गए। राजा अलीखाँ को आते हुए देखकर खान आजम घबराए। अमीरों को परामर्श के लिये एकत्र किया। भला जो आदमी अपने शत्रु और मित्र को न पहचाने और अवसर कुअवसर न देखे, उसके लिये शुभ परामर्श कर ही क्या सकता है? और उसे परामर्श दे ही कौन? कई दिन ँडिया में दोनों पक्ष आमने सामने पड़े रहे। खान आजम ने देखा कि मुझमें मुकाबला करने की शक्ति नहीं है। अपने साथियों पर भी उन्हें भरोसा नहीं था। एक रोज रात के समय चुपचाप किसी अप्रसिद्ध मार्ग से निकलकर बरार की ओर मुँह किया।

एलिचपुर वहाँ का राजनगर था। उसे तथा और जिन नगरों को पाया, लूट खसोटकर सत्यानाश कर दिया। बहुत अधिक सम्पत्ति हाथ लगी। उधर का राजा हतियाराव (?) साथ हो गया था। बेढब रास्तों में वही मार्गदर्शक का काम करता था। मार्ग में ही खान आजम को संदेह हुआ कि यह अंदर अंदर शत्रु से मिला हुआ है। इसी संदेह की तलवार से क्रोध की वेदी पर उसका भी बलिदान हो गया।

एलिचपुर में पहुँचकर कुछ अमीरों की सम्मति हुई कि इसी प्रकार बागें उठाए चले चलो और अहमदनगर तक साँस न लो, क्योंकि वही दक्षिण की राजधानी है। कुछ लोगों ने कहा कि यहीं डेरे डाल दो। जो प्रदेश ले लिया है, उसकी व्यवस्था करो। पर इन्हें किसी की बात पर विश्वास ही न था। न तो यहीं ठहरे और न दरबार का ही रुख किया। शत्रु सोचता रह गया कि बुद्धिमान् सेनापति सेना लिए हुए देश को छोड़कर चला गया। ईश्वर जाने उसने इसमें क्या पेच खेला है। परंतु यहाँ अंदर कुछ भी न था। वह इनके पीछे दौड़ा।

इस मार्ग में भी बहुत दुर्दशा हुई। पैर बढ़ाए चले जाते थे। भद्दे भद्दे हाथी और भारी भारी बोझ पीछे छूटते जाते थे। ये हाथियों को बहुत अधिक घायल कर करके छोड़ते जाते थे कि यदि शत्रु के हाथ लगें तो भी उनके काम न आवें। शत्रु को मार्ग में हँडिया नगर मिला जो बादशाही

इलाके में था। उसने एलिचपुर के बदले में उसे लूट मार करके ठीकरा कर दिया। शत्रु के चंदावल (सेना के पिछले भाग) से लड़ाई होती चली आती थी। मार्ग में आराम लेने का भी समय न मिला। एक स्थान पर कुछ थमकर लड़ाई हुई। उसमें भी इनका उपहास ही हुआ। तात्पर्य यह कि अनेक प्रकार के कष्ट उठाकर दरबार की सीमा में लश्कर को छोड़ा और स्वयं अहमदाबाद की ओर चले। यह इस धुन में गए थे कि खानखानाँ मेरा बहनोई है। मैं चलकर सहायता के लिये उससे सेना ले आऊँगा; और यहाँ आते ही शत्रु को मारकर नष्ट कर दूँगा। परंतु खानखानाँ भी अकबर के दरबार की बहुत बड़ी रकम थे। वे बड़ौदे जा रहे थे। तुरंत महमूदाबाद के पड़ाव में निजामुद्दीन अहमद के डेरों में आकर मिले। उस समय ये लोग जिस तपाक से मिले, उसका क्या वर्णन हो सकता है! दिन भर परामर्श होते रहे। अंत में निश्चय यह हुआ कि इस समय अहमदाबाद चले चलो। बहन भी वहीं है। उससे भी मिल लो। फिर मिलकर दक्षिण की ओर चलो। ये दोनों आदमी उधर गए। अमीरों और सेनाओं आदि को लेकर निजामुद्दीन अहमद बड़ौदे की ओर चल पड़े। बड़ौदे में फिर दोनों खान आए। खान आजम यह कहकर फिर आगे बढ़ गए कि जब तक खानखानाँ अहमदाबाद से लश्कर लेकर आते हैं, तब तक मैं दरबार चलकर वहाँ अपना लश्कर तैयार करता हूँ।

खानखानाँ फिर अहमदाबाद गए और निजामुद्दीन ने अहमद को लिख भेजा कि जब तक मैं न आऊँ, तब तक तुम बड़ौदे से आगे न बढ़ना। थोड़े दिनों में वे सेना सुसज्जित करके आ पहुँचे और भड़ौच की ओर चले। वहाँ पहुँचते ही खान आजम के पत्र आए कि अब तो बरसात आ गई। इस वर्ष लड़ाई बंद रखनी चाहिए। अगले वर्ष सब लोग मिलकर चलेंगे। राजा अलीखाँ तथा दूसरे दक्षिणी सरदार अपने अपने घर चले गए। ये सब को गालियाँ देते हुए नदरबार से चलकर दरबार में आ उपस्थित हुए।

सन् ९९५ में परामर्श हुआ कि दूध में मिठास मिलाओ तो और भी आनंद देगा। खान आजम की कन्या से शाहजादा मुराद का विवाह हो जाय। उस समय शाहजादे की अवस्था सत्रह वर्ष की थी। अकबर की माता मरियम मकानी के घर में यह ब्याह रचा गया था। अकबर को तो खान आजम का महत्व बढ़ाना था। वह स्वयं बरात लेकर गया और धूमधाम से दुलहिन को ब्याह लाया। सन् ९९६ हि० में पुत्र भी उत्पन्न हुआ। उसका नाम मिरजा रुस्तम रखा गया।

सन् ९९७ हि० में खानखानाँ से अहमदाबाद और गुजरात लेकर फिर इन्हें दिया गया। यह कहते थे कि मालवे का प्रदेश अच्छा है। मैं तो वही लूँगा। परंतु वह भी अकबर बादशाह था। ईश्वर जाने उसने अपने मन में और क्या क्या बातें सोच रखी थीं। परामर्श के लिये लोगों को

एकत्र किया। परामर्श में भी वही निश्चय हुआ जिससे इनकी जिद रह गई। ये सब तैयारी करके उधर चल पड़े।

सन् ९९९ हि० में खान आजम ने ऐसा मैदान मारा कि वह किसी विजयी से पीछे न रहा। जाम सरसाल उस प्रदेश के बहुत बड़े बड़े शासकों में था और सदा उपद्रव की ही चिंता में रहता था। उसने मुजफ्फर गुजराती को नेता बनाकर निकाला। सोरठ का शासक दौलतखाँ* और कच्छ का शासक राजा कंकार भी आकर सम्मिलित हो गया। वे लोग बीस हजार सैनिक एकत्र करके लड़ने के लिये आए थे। खान आजम ने इधर उधर पत्र आदि भेजवाए, पर कोई सहायता के लिये नहीं आया। पर यह साहसी निरुत्साहित नहीं हुआ। जिस प्रकार हो सका, कुछ आदमियों को एकत्र करके निकला। शत्रु ने बहुत हौसले से अपनी सेना को आगे बढ़ाया था। खान आजम ने कुछ सरदारों को सेनाएँ देकर आगे बढ़ा दिया था। इनसे अदूरदर्शिता यह हुई कि इन्होंने पहले ही शत्रु से संधि की बात चीत आरंभ कर दी थी। इस कारण उन लोगों का मिजाज और भी आसमान पर चढ़ गया था। वे युद्ध के नगाड़े बजाते हुए आगे बढ़े। जिद्दी सेनापति को क्रोध आ गया। यद्यपि इनके पास दस हजार से अधिक सैनिक नहीं थे और शत्रु के साथ तीस हजार सैनिक

* यह दौलतखाँ सोरठ का राजा और अमीनखाँ गोरी का पुत्र था। यह अपने आपको गोर के सुलतानों का वंशज बतलाया करता था।

थे, तथापि ये जाकर उनके सामने डट गए। अपने लश्कर को इन्होंने सात भागों में विभक्त किया। मध्य भाग में इनका पुत्र खुर्रम था और चारों ओर से शाही अमीर अपनी अपनी सेना लिए हुए किला बाँधकर खड़े हुए। पीछे की ओर कुछ और सैनिक रखकर उन्हें और भी जोर पहुँचाया। अपने पुत्र अनवर को छः सौ सवार देकर अलग किया। स्वयं भी बहुत से वीर सैनिकों और चार सौ सवारों को लेकर इस विचार से एक ओर खड़े हुए कि जब जिस ओर आवश्यकता होगी, तब उस ओर जा पड़ेंगे। उधर से मुजफ्फर ने भी रण-क्षेत्र में अपनी सेना स्थापित की। इतने में अचानक वर्षा होने लगी। पानी का तार लग गया। जिस ढंग से युद्ध आरंभ हुआ था, वह ढंग तो नहीं रह गया। हाँ, छुट फुट आक्रमण होते रहे। शत्रु कुछ ऊँचे स्थान पर था और ये कुछ नीचे स्थान पर थे। बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं। सब से बड़ी कठिनता यह हुई कि रसद बंद हो गई। दो बार रात के समय भी छापे मारे; परंतु विफल-मनोरथ होकर ही लौटे।

जब इस प्रकार के कष्ट सीमा से बहुत बढ़ गए, तब खान आजम ने उस मैदान में सेना को लड़ाना उचित न समझा। वे चार कोस कूच करके जाम के इलाके में घुस गए। वहाँ पहुँचने पर वर्षा से कुछ रक्षा हुई। जंगल ने जानवरों के लिये घास दी। लूट मार ने गल्ले की रसद पहुँचाई। मुज-

फ्फर को विवश होकर उधर कूच करना पड़ा। नदी को बीच में डालकर डेरे खड़े कर दिए गए। बड़ी बात यह हुई कि घर से निकले हुए बहुत समय हो जाने के कारण सैनिकों को बाल बच्चों की चिंता हुई। वे लश्कर छोड़ छोड़कर घर की ओर भागने लगे। पर मुजफ्फरखाँ कब किस की सुनता था! वह जिस दशा में था, उसी दशा में वहाँ उपस्थित रहा। सेनाओं में नित्य थोड़ी बहुत छीना झपटी हो जाती थी। पर अंत में एक दिन मैदान हुआ और वह भी ऐसा मैदान हुआ कि अंतिम निर्णय भी हो ही गया।

दोनों सेनापति अपनी अपनी सेना लेकर निकले। किले बाँधकर सामने हुए। सब से पहले खान आजम के बाएँ पार्श्व की सेना आगे बढ़ी और ऐसी बढ़ी कि हरावल से भी आगे निकल गई। वहाँ पहुँचते ही वह पल के पल में शत्रु की सेना से छुरी कटारी हो गई। सरदारों ने स्वयं आगे बढ़कर तलवारें चलाईं और वे ऐसे लड़े कि मर ही गए। दुःख की बात यह हुई कि खान आजम ने सहायता के लिये जो सेनाएँ बचा रखी थीं, वे अपना पल्ला बचाकर पीछे आ गईं और शत्रु उनका पीछा करता हुआ डेरों तक चला आया। वहाँ पहुँचकर उसे उचित तो यह था कि पार्श्व भाग पर आक्रमण करके उसे नष्ट करने का प्रयत्न करता। पर उसने वहाँ गठरियाँ बांधना आरंभ कर दिया। हाँ, हरावल से हरावल खूब टकराया। बाकी सेनाएँ भी आगे बढ़कर हाथ साफ करने

लग गई। शत्रु के लश्कर में के राजपूत घोड़ों पर से कूद पड़े और आपस में कमर-पटके बाँध बाँधकर सब लोग पहाड़ की तरह अड़कर खड़े हो गए। अब तीर और बंदूक आदि चलाने का अवसर ही न रह गया और हाथा बाँहीं की नौबत आ पहुँची। बादशाही लश्कर की दुर्दशा होना ही चाहती थी कि इतने में आगे की सेना ने बढ़कर शत्रु के बाएँ पार्श्व को उलट दिया। खान आजम उपयुक्त समय की प्रतीक्षा में खड़ा ही हुआ था। उसने झट लश्कर को ललकारा और घोड़े उठाए। इसे कुछ ईश्वर की कृपा ही कहना चाहिए कि इधर उसने बाग उठाई और उधर शत्रु के पैर उखड़ गए। मुजफ्फर और जाम बदहवास होकर भागे। उसके कई सरदार दो हजार सवारों के साथ मैदान में खेत रहे। थोड़ी ही देर में सामना साफ हो गया। नगद, सामग्री, तोपखाने, हाथी और वैभव के अनेक प्रकार के साधन आदि जो कुछ हाथ लगे, सब बादशाही सैनिकों ने ले लिए। इतना माल हाथ आया कि उसका कोई हिसाब ही नहीं हो सकता। अकबरी लश्कर के सौ वीरों ने अपनी प्रतिष्ठा के ऊपर प्राणों को निछावर कर दिया; और पाँच सौ सिपाहियों ने घावों से अपना चेहरा भर लिया।

उदारता में खान आजम बहुत अधिक बढ़े चढ़े थे। और फिर क्यों न बढ़े चढ़े होते? बादशाह के भाई ही थे। अपने लश्कर के अमीरों को खिलअत, हाथी, घोड़े, नगद और

सामग्री आदि बहुत अधिक दिए थे। लिखनेवाले भी बहुत अच्छे थे। बादशाह को इस युद्ध के समाचार खूब बना बनाकर और बहुत अच्छी तरह लिखे थे। वहाँ भी अंदर महलों में और बाहर दरबारों में खूब जलसे हुए। खान आजम के सरदार शत्रुओं के पीछे दौड़े। उनका पुत्र खुर्रम अपने साथ सेना लेकर मुजफ्फर का पता लगाता हुआ उसके पीछे पीछे चला। मार्ग में उसने कुछ किलों को जीतना चाहा, परंतु साथ के अमीरों की सुस्ती के कारण यह काम न हो सका। खान आजम ने भी उस समय सेना को बढ़ाना और प्रदेश का विस्तार करना उचित नहीं समझा। भला जब हाथ पैर ही साथ न दें तो फिर अकेला मन क्या करे? अमीर और सैनिक अपने अपने इलाके में जाकर आराम करने लगे।

सन १००० हि० में समाचार मिला कि दौलतखाँ, जो जाम के युद्ध में तीर खाकर भागा था, अब मर गया। खान आजम अपनी सेना सजाकर निकला। वह जूनागढ़ को विजय करना चाहता था, क्योंकि सोरठ का हाकिम उस समय वहीं ठहरा हुआ था। पहला शकुन यह हुआ कि जाम के पुत्र अपने साथ अपने देश के कुछ सरदारों को लेकर आए और इस ओर मिल गए। साथ ही कोका, बंगलौर, सोमनाथ तथा सोलह बंदरगाह भी बिना लड़े भिड़े अधिकार में आ गए। जूनागढ़ के किले की दृढ़ता बहुत चढ़ी बढ़ी थी। खान आजम ने ईश्वर पर भरोसा रखकर घेरा डाला। मालूम हो गया था

कि काठी लोग किले में रसद पहुँचा रहे हैं। एक सरदार को भेजकर उनका प्रबंध किया। जरा अकबर का प्रताप देखो कि उसी दिन किले की मेगजीन में आग लग गई। यद्यपि शत्रु की बहुत अधिक हानि हुई, तथापि उसका साहस तनिक भी कम नहीं हुआ। वे लोग और भी गरम हो गए। सौ तोपों पर फतीले पड़ते थे और बराबर डेढ़ डेढ़ मन के गोले गिरते थे। पुर्तगाली तोपची ने गोले चलाने में ऐसी जान लड़ाई कि गोली की तरह हौसले से निकल पड़ा और खाई में गिरकर ठंढा हो गया। खान आजम ने भी सामने एक पहाड़ी ढूँढ़ निकाली। उस पर तोपें चढ़ाईं और किले में गोले उतारना आरंभ किया। किले में मानों भूचाल आ गया और किलेवालों में आफत मच गई। तात्पर्य यह कि किलेवाले तंग हो गए। अंत में दौलतखाँ के पुत्र मियाँखाँ और ताजखाँ ने किले की तालियाँ खान आजम के सपुर्द कर दीं। बड़े बड़े पचास सरदार आकर सेवा में उपस्थित हुए। खान आजम ने उनका अच्छा स्वागत किया। उन्हें भारी खिलअत, ऊँचे पद और बड़ी बड़ी जागीरें देकर प्रसन्न किया। स्वयं भी अच्छे जशन किए। जो बादशाह के भाई होते हैं, वे ऐसा ही करते हैं। और फिर प्रसन्न क्यों न होते! सोमनाथ अधिकार में आया था। अब तो महमूद गजनवी हो गए थे। और वास्तव में बात भी यही है कि बहुत काम किया था। अकबर के साम्राज्य का बाट

समुद्र के घाट तक पहुँचा दिया था। यह कुछ कम प्रसन्नता की बात नहीं थी। अकबर के मन में इस बात की बहुत दिनों से और बहुत अधिक आकांक्षा थी; क्योंकि उसे अपनी जलशक्ति बढ़ाने का बहुत अधिक ध्यान रहता था।

अब खान आजम ने समझ लिया कि जब तक मुजफ्फर हाथ न आवेगा, तब तक यह झगड़ा नहीं मिटेगा। उन्होंने सेनाएँ देकर कई प्रसिद्ध सरदार भेजे और अपने पुत्र अनवर को भी उनके साथ किया। मुजफ्फर ने हार देश के राजा के यहाँ जाकर शरण ली थी; क्योंकि द्वारका का मंदिर भी वहीं है। राजा भी उसकी सहायता करने के लिये तैयार हो गया था। परंतु ये सेनाएँ इस तेजी के साथ वहाँ पहुँचीं कि द्वारका पर उनका बिना लड़े भिड़े ही अधिकार हो गया। राजा ने मुजफ्फर को परिवार सहित एक टापू में भेज दिया था। जब इन लोगों ने पहुँचकर राजा को दबाया, तब वह भी भाग गया। उसके पीछे पीछे चलकर इन लोगों ने भी उसे रास्ते में ही जा पकड़ा। वह पलटकर अड़ा और खूब जान तोड़कर लड़ा। वह स्थान एक नदी का तट था। जमीन कहीं ऊँची और कहीं नीची थी। सवारों का वहाँ काम नहीं था। अकबरी वीरों ने घोड़े छोड़ दिए और जमीन पर उतरकर खूब तलवारें चलाईं। राजा और उसकी सेना ने भी कमी नहीं की। संध्या तक तलवार की आँच से मैदान में आग लगी रही। परंतु मृत्यु से कौन लड़े? गले में छोटा

सा तीर लगने के कारण राजा का इस जीवन से गला छूटा।
परंतु मुजफ्फर गड्ढों में गिरता पड़ता कच्छ पहुँचा। वहाँ के राजा ने उसे छिपा रखा और प्रसिद्ध कर दिया कि वह नदी में डूबकर मर गया।

जब खान आजम को यह समाचार मिला, तब उन्होंने अपने पुत्र अब्दुल्ला को कुछ और सेना देकर भेजा। जाम यह समाचार सुनकर घबराया। वह अपने बाल बच्चों को लेकर दौड़ा। उसने सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि लोग मुझ पर संदेह करके मेरा घर बार ही नष्ट कर दें। वह मार्ग में ही अब्दुल्ला से आ मिला। बात चीत करके उसने सद्व्यवहार की नींव दृढ़ की। कच्छ के राजा ने भी वकील भेजे। बहुत कुछ मिन्नत तथा प्रार्थना की और कहा कि मैं पुत्र को तो दरबार में उपस्थित करता हूँ और मुजफ्फर की तलाश करता हूँ। यह समाचार खान आजम के पास जूनागढ़ में पहुँचा। उसने लिखा कि यदि तुमने सच्चे हृदय से बादशाह की अधीनता और शुभ चिंतना स्वीकृत की हो तो मुजफ्फर को हमारे हवाले कर दो। परंतु उसने फिर भी एच पेंच के लिफाफे में बंद करके बहुत सी लंबी चौड़ी बातें लिख भेजीं। खान आजम ने कहा कि यहाँ इस प्रकार की बातों से काम नहीं चल सकता। शत्रु को मेरे सपुर्द कर दो; नहीं तो मैं तुम्हें नष्ट कर दूँगा और तुम्हारा देश जाम को दे दूँगा। इस प्रकार बातें करने में राजा का केवल यही उद्देश्य था कि किसी प्रकार कुछ

समय और बीते। वह सोचता था कि कदाचित् इसी प्रकार निकास का कोई मार्ग निकल आवे। जब उसने सब मार्ग बंद पाए, तब कहा कि मोरवी का जिला बहुत दिनों से मेरे अधिकार में था। वह मुझे दे दो और मैं स्थान बतला देता हूँ। तुम वहाँ जाकर उसे पकड़ लो। खान आजम ने बहुत प्रसन्नतापूर्वक यह बात मान ली। इधर से कुछ सवार भेजे गए। जाम के आदमी भी साथ गए। मुजफ्फर उस समय बेखबर बैठा हुआ था। किसी ने उससे जाकर कहा कि अमुक सरदार तुमसे भेंट करने के लिये आया है। वह बिना किसी संकोच के बाहर निकल आया। खान आजम के सिपाहियों ने उसे चारों ओर से घेरकर पकड़ लिया। उस समय उनकी प्रसन्नता का आवेश तो यह कहता था कि इसे अभी यहाँ से ले उड़ना चाहिए। परंतु दूरदर्शिता कहती थी कि यदि मार्ग में ही इसके लिये अपनी जान लड़ानेवाले सेवक आकर जान पर खेल जायँ तो क्या होगा? अंत में उन्होंने अँधेरे के परदे की प्रतीक्षा की और रातों रात उसे लेकर खान आजम की ओर दौड़े। प्रातःकाल होते ही मुजफ्फर नमाज के बहाने उतरा और तहारत तथा वजू करने (हाथ मुँह आदि धोने) के लिये एक वृक्ष के नीचे गया। जब वह देर तक नहीं आया, तब लोगों ने उसे पुकारा। जब कोई उत्तर नहीं आया, तब जाकर देखा। बकरे की तरह जबह किया हुआ पड़ा था। उसे भी इसी प्रकार के दुर्भाग्य के दिनों का

भय था। इसलिये वह हजामत बनाने की सब सामग्री सदा अपने पास रखा करता था, जिसमें उस्तरा भी होता था। आज वही काम आया था। उसका सिर कटकर खान आजम के पास गया। उसने दरबार में भेज दिया। चलो झगड़े की जड़ मिट गई।

सन् १००१ हि० में खान आजम से वह काम हुआ जिसकी प्रशंसा सभी इतिहासलेखक करते हैं। और मुल्ला साहब ने तो उसकी धर्मनिष्ठा पर बहुत कुछ लिखकर सेहरे चढ़ाए हैं। परंतु बिना थोड़ी सी भूमिका के इस बात का आनंद ही न आवेगा। यह तो पाठकों ने कई बार सुन लिया कि अकबर ने उसे पुत्र की उपाधि दी थी और अपनी सेवा में रखकर उसे शिक्षा आदि दिलवाई थी। जिस प्रकार अजीज उसका नाम था, उसी प्रकार अकबर उसे अजीज (प्रिय) भी रखता था; और अपने सभी अमीरों में उसे बहुत अधिक प्रतिष्ठित भी किया करता था। अपने साथ अपनी खवासी में बैठाया करता था। विशिष्ट विशिष्ट अवसरों पर भी उसे अवश्य स्मरण किया करता था। परंतु उसकी प्रकृति ही ऐसी थी कि वह सदा कूढ़ और अदूरदर्शी रहा। बल्कि लाडले और हठी बच्चों की भाँति बात बात पर बिगड़ बैठता था। और उस पर तमाशा यह कि अकबर उसकी इस प्रकार की धृष्टताओं पर भी कुछ ध्यान न देता था। बल्कि प्राय: स्वयं ही उसे मनाया करता था और पुरस्कार आदि

देकर प्रसन्न किया करता था। एक पेच यह भी था कि खान आजम समझता था कि शेख अब्बुल फजल अकबर की अक्ल की कुंजी है। वह यह भी जानता था कि शेख किसी को कोई चीज ही नहीं समझता। दरबार से खान आजम के पास प्रायः ऐसी आज्ञाएँ भी पहुँचा करती थीं जो उसे अप्रिय होती थीं और उसकी इच्छा के विरुद्ध होती थीं। खान आजम समझता था कि यह सब शेख की ही शरारत है। उसका तुर्कों का सा स्वभाव और सैनिकों की सी प्रकृति थी, इसलिये वह अपना यह दुःख छिपा भी न सकता था। स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया करता था।

खान आजम सैनिक की संतान थे और स्वयं सैनिक थे। ऐसे लोगों को जब धर्म का कुछ ध्यान होता है, तब उसके साथ उनमें कट्टरपन भी बहुत अधिक होता है। दरबार में धर्म संबंधी अनेक प्रकार के वाद विवाद और तत्त्वान्वेषण हो रहे थे और इस्लाम धर्म में सुधार करने के उपाय सोचे जा रहे थे। इस सुधार में दाढ़ियों पर कुछ ऐसी आपत्ति आई थी कि कई अमीरों बल्कि कई धार्मिक विद्वानों तक ने अपनी अपनी दाढ़ी मुँड़वा डाली थी। दाढ़ी की जड़ ढूँढ़कर पाताल से निकाली गई थी। इन्हीं दिनों में खान आजम बंगाल से चलकर फतहपुर में आए हुए थे। यहाँ दिन रात इन्हीं बातों पर विचार और वाद विवाद हुआ करते थे। इनके सामने भी किसी विषय पर बातचीत होने लगी। वहाँ अच्छे अच्छे विद्वानों

की दिल्लगियाँ उड़ जाती थीं। भला ये कौन चोज थे ! इन्होंने बहुत जोर किया होगा तो मौलाना रूम की कोई मसनवी पढ़ दी होगी। वहाँ ऐसी ढाल क्या काम आती होगी ? इसपर खान आजम बिगड़ उठे। द्वेष तो पहले से ही मन में भरा हुआ था। नौबत यहाँ तक पहुँची कि बादशाह के सामने ही शेख और बीरबल को लपेटना आरंभ किया। यद्यपि साधारणतः ये धर्मभ्रष्ट लोगों की ही निंदा करते थे, तथापि बात की बौछार उन्हीं दोनों की ओर पड़ती थी। परंतु वह जलसा किसी प्रकार ऐसी ही मुग्ध बातों में समाप्त हो गया।

इसके अतिरिक्त बादशाह ने एक यह नियम बाँधा था कि सीमा प्रांत के अमीरों को कुछ निश्चित समय के उपरांत हाजिरी देने के लिये दरबार में उपस्थित होना चाहिए। खान आजम के नाम भी बुलाहट गई। ये पुराने लाडले थे। आज्ञापत्र पर आज्ञापत्र पहुँचते थे, परंतु ये आने का नाम ही न लेते थे। अकबर की आज्ञाएँ, अब्बुलफजल का लेख-कौशल सभी कुछ हाथ जोड़े इनके सामने उपस्थित रहते थे। ईश्वर जाने क्या क्या इन्हें लिखा गया। परंतु उसका इन पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। इनकी दाढ़ी बहुत लंबी थी और उसके संबंध में कई बार बातें भी हो चुकी थीं, बल्कि लिखा पढ़ी भी हो चुकी थी। कदाचित् जाम के युद्ध के समय यह निश्चित हुआ था कि तुम यह मिन्नत मानो कि यदि यह युद्ध हम जीत लेंगे तो अकबर की दरगाह में अपनी दाढ़ी चढ़ावेंगे (अर्थात् मुँड़वा

डालेंगे)। जब वहाँ इनकी जीत हो गई, तब इधर से तगादे होने लगे। इन्होंने उत्तर में दाढ़ी से भी लंबी अरजी लिखी और वह भी बहुत कड़ी अरजी लिखी। यह सब कुछ होता था, पर ये स्वयं दरबार में उपस्थित नहीं होते थे। अनेक प्रकार के सैकड़ों मुकदमे थे। दरबार से और भी बहुत सी आज्ञाएँ गई थीं जिनमें से कुछ तो उनके अनुकूल थीं और कुछ उनके प्रतिकूल पड़ती थीं। ईश्वर जाने इसमें शेख की कुछ शरारत थी या खान आजम को ही झूठ मूठ संदेह हो गया था। खान आजम के कुछ पत्रों से प्रकट होता है कि ये सीधे सादे और स्वच्छ हृदय के सैनिक थे। इस प्रकार की बातों से बहुत अधिक असंतोष प्रकट करते थे। कभी कभी उनमें यह भी लिखा रहता था कि अब मैं संसार को छोड़ चुका और हज को चला जाऊँगा। अब अकबर को खबरनवीस के द्वारा भी और कुछ अमीरों के निवेदनपत्रों से भी यह पता लगा कि इस हठीले ने हज जाने का दृढ़ विचार कर लिया है। बादशाह ने आज्ञापत्र लिखे। बुड्ढी माता ने भी बहुत से पत्र भेजे जिनमें सदा यही लिखा रहता था कि खबरदार, कभी इस प्रकार का विचार मत करना। पर भला यह कब सुनने-वाले थे! जो कुछ इन्हें करना था, वह कर ही गुजरे।

मुल्ला साहब ने मिरजा कोका के हज जाने का समाचार लिखकर अकबर के धर्मभ्रष्ट होने के संबंध में अनेक प्रकार के अनुचित और भद्दे आक्षेप किए हैं। उन्हें पढ़कर पहले

मैंने भी यही समझा था कि यह धर्मनिष्ठ अमीर केवल अपनी धर्मनिष्ठा के कारण ही भारतवर्ष छोड़कर निकल गया था। पर जब बहुत दिनों में बहुत सी पुस्तकें देखने में आईं, तब मालूम हुआ कि इन सब बातों में से कुछ भी बात नहीं थी। जहाँ इनकी और बहुत सी बच्चों की सी जिदें थीं, वहाँ एक यह भी जिद थी। इनका कथन प्रायः इस प्रकार का हुआ करता था कि आज्ञापत्रों की पीठ पर जहाँ पहले मेरी मोहर हुआ करती था, वहाँ अब कुलीचखाँ की मोहर क्यों होती है? पहले जो काम मैं किया करता था, वह अब कुलीचखाँ और टोडरमल क्यों किया करते हैं? अब्बुलफजल के लेखों में एक बहुत बड़ा पत्र है जो उन्होंने खान आजम के नाम लिखा था। आरंभ में डेढ़ दो पृष्ठ तक नीति और दर्शन आदि के संबंध की अनेक बड़ी बड़ी बातें कहकर भूमिका बाँधी है। उसके उपरांत जो कुछ लिखा गया है, उसका जहाँ तक हो सकता है, ठीक ठीक अनुवाद यहाँ दिया जाता है। यद्यपि वह पत्र देखने में शेख की ओर से लिखा हुआ जान पड़ता है, परंतु वास्तव में वह बादशाह के संकेत से ही लिखा गया है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक पत्र हैं जिनसे प्रकट होता है कि बादशाह हर बात में इनका मन रखना चाहते थे और किसी प्रकार इन्हें असंतुष्ट नहीं होने देना चाहते थे। अस्तु। इस पत्र में शेख ने लिखा है कि जो कुछ मैं समझता हूँ, उसके लिखने से पहले मैं वह घटना नहीं भूल सकता जो

वास्तव में हुई है। चिरंजीव शम्सुद्दीन अहमद तुम्हारे पुत्र ने तुम्हारा पत्र श्रीमान् की सेवा में पहुँचाया। तुम्हारे प्रति श्रीमान् का भाव बहुत ही कृपापूर्ण था, इसलिये उसे देख-कर वे चकित हो गए। यद्यपि पहले सदा एकांत में तुम्हारे पुराने प्रेम और सद्व्यवहार की चर्चा किया करते थे और जब कोई अदूरदर्शी तुम्हारे संबंध में कोई अनुचित बात कहता था, तब श्रीमान् तुम पर इतनी अधिक कृपा प्रकट किया करते थे कि वह स्वयं ही लज्जित हो जाता था। जब तुम्हारा दिमाग खुश्क * हो गया था, तब एकांत में भी और दरबार में भी श्रीमान् तुम्हारे प्रति बहुत अधिक अनुग्रह दिखाया करते थे; विशेषत: इन दिनों जब कि तुम बादशाह के अनुग्रह और ईश्वर की कृपादृष्टि से अनेक प्रकार की सेवाएँ करने में समर्थ हुए हो। क्या जाम की विजय और क्या जूनागढ़ की विजय और क्या मुजफ्फर आदि का गिरिफ़्तार होना। अब मैं क्या कहूँ कि इस समय श्रीमान् तुम्हें देखने के लिये कितने अधिक उत्सुक हो रहे हैं! दिन रात तुम्हें ही स्मरण किया करते हैं। वे सदा इस बात के इच्छुक रहते हैं कि वह दिन

* यहाँ दिमाग खुश्क होने से तात्पर्य है—राजा और राज्य के विरुद्ध आचरण करना। जब कभी कोई अमीर कैद करके छोड़ दिया जाता था, तब उसके कैद के समय के संबंध में यही कहा जाता था कि इनका दिमाग खुश्क हो गया था जिसकी चिकित्सा के लिये ये कुछ दिनों तक अलग रखे गए थे। कैद से मानों दिमाग की इस खुश्की का इलाज हुआ करता था।

कब आवेगा, जब तुम उनके सामने आओगे और वे तुम्हें अपनी कृपाओं से मालामाल कर देंगे।

जो कुछ तुमने अपनी पूजनीया माता तथा प्रिय पुत्रों को लिखा था, उससे तो ऐसा जान पड़ता था कि श्रीमान् की सेवा में उपस्थित होने की तुम्हारी इतनी उत्कट इच्छा है कि तुम इसी नौरोज में अपने आपको यहाँ पहुँचाओगे। और नहीं तो मेष-संक्रमण के समय तो तुम अवश्य ही यहाँ पहुँच जाओगे। इतने में अचानक एक व्यक्ति ने निवेदन किया कि तुम प्रस्तुत सेवा को अपूर्ण छोड़कर स्वयं इस विचार से टापू को चले गए हो कि उसे जीतोगे। श्रीमान् को बहुत आश्चर्य हुआ। साम्राज्य के इस शुभचिंतक से (मुझसे) पूछा। मैंने निवेदन किया कि इस प्रकार की बातें शत्रु के सिवा और कोई नहीं कह सकता। वहाँ किसी प्रकार का धोखा या संदेह होगा। वे स्वयं ही श्रीमान् की सेवा में उपस्थित होने के लिये आनेवाले हैं। यदि गए होंगे तो केवल इसलिये गए होंगे कि जाकर वहाँ सारा झगड़ा सदा के लिये मिटा दें और तब निश्चिंत होकर श्रीमान् की सेवा में उपस्थित हों। भला यह कब हो सकता है कि तुम्हारी स्वामिनिष्ठा में किसी प्रकार का अंतर आवे! मेरी बात श्रीमान् को पसंद आ गई और कहनेवाला लज्जित हो गया। अब तुम्हारे प्रति श्रीमान् का अनुराग सीमा से कहीं अधिक बढ़ गया है। तुम्हारे प्रति श्रीमान् की कृपा दिन पर दिन बढ़ती हुई दिखाई देती है।

कम हौसले के लोगों में न तो अधिक सामर्थ्य है और न वे कुछ कर ही सकते हैं; इसलिये वे मन ही मन कुढ़कर रह जाते हैं। संयोगवश किशनदास तुम्हारा वकील पहुँचा। जो पत्र तुमने मुझे लिखा था, वह पत्र उसने बिना मुझसे परामर्श किए और मेरे कहे सुने ही श्रीमान् के शुभ हाथों में दे दिया। श्रीमान् के आज्ञानुसार चिरंजीव शम्सुद्दीन ने वह पत्र पढ़ सुनाया। सुनकर श्रीमान् को बहुत अधिक आश्चर्य हुआ। इस सेवक से कहा कि देखो, हमारी कृपा किस सीमा तक है; और अजीज अब भी इस प्रकार लिखता है! जहाँ उसकी मोहर होती थी, वहाँ पहले मुजफ्फरखाँ और राजा टोडरमल तथा और और लोग मोहर किया करते थे। यदि यही शिकायत थी तो यह शिकायत उसी समय करनी चाहिए थी। और फिर इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि साम्राज्य के बाहुबल (अर्थात् श्रीमान) की कृपा कुछ कम हो गई है। बात केवल यही है कि घर के काम आखिर किसी से लेने चाहिएँ; और उनको कुछ सेवाएँ सौंपी जानी चाहिएँ। किसी स्थान पर मोहर करना भी उसी सेवा का एक अंग है। यदि आजम खाँ घर में हो और इस सेवा पर नियुक्त हो तो इससे बढ़कर और क्या बात हो सकती है। जिस प्रकार वह अमीर उल् उमरा है, उसी प्रकार वह अमीर मामला भी रहेगा। ये सब लोग उसके अधीन होंगे। तुम्हारा इस प्रकार व्यर्थ संदेह करके कुछ नाराज होना श्रीमान् को जरा बुरा मालूम हुआ।

पवित्र दरबार के शुभचिंतक (मैं) ने अवसर के उपयुक्त बातें निवेदन करके बहुत अच्छी तरह श्रीमान् के हृदय से वह बात दूर कर दी। तुमने चिरंजीव को जो कुछ लिखा था और जो घटना तुमने देखी थी और इन विजयों को जो तुमने उसका परिणाम समझा था, उन सबका जिक्र कर दिया गया। जो भेंट तुमने भेजी थी, उससे स्वयं बादशाह के विचारों का भी समर्थन हुआ और उन लोगों के कथन का भी समर्थन हुआ जिन्होंने तुम्हारा पक्ष ग्रहण करके बातें की थीं।

फिर बहुत सी लंबी चौड़ी बातों के उपरांत प्रायः दो पृष्ठों तक अनेक प्रकार के नीतिपूर्ण उपदेश लिखे हैं और भिन्न भिन्न प्रकृतियों के मनुष्यों के विभाग आदि करके कहते हैं कि कुलीचखाँ के संबंध में तुम्हारा शिकायत करना व्यर्थ है। तुम और कोटि के आदमी हो, वह और विभाग का आदमी है। और फिर मंसब, अवस्था तथा विश्वास आदि के विचार से वह तुम्हारे सामने भी नहीं है। इसके अतिरिक्त तुम कोका ठहरे। तुम बादशाह के पुत्र-तुल्य हो। बादशाह प्रायः अपने मुँह से तुम्हें अपना पुत्र कहा करते हैं। यदि इस बात को भी छोड़ दिया जाय तो भी तुमसे और तुम्हारे पूर्वजों से इस साम्राज्य की अनेक बहुत बड़ी बड़ी सेवाएँ हुई हैं। भला कौन सा अमीर ऐसा है जो इन सब बातों में तुम्हारी बराबरी कर सकता है! तब भला तुम्हें यह बात कब शोभा देती है कि तुम उसका नाम अपने पूज्य पिता के सामने

लाकर उसकी शिकायत करो ! और मिरजा तथा राजा का नाम लेकर उन्हें अपने बराबर करो ! हाँ, यह सब क्रोध की कृपा है। पर यह भी गजब ही है कि तुम्हारे जैसे बड़े और योग्य को भी क्रोध आ जाय और तुम उससे ऐसे दब जाओ।

और यदि इसी कारण तुम सब कामों से अलग हो जाना ठीक समझते हो तो आखिर पहले भी तो यही दशा थी; क्योंकि तुमसे पहले और लोग उस स्थान पर काम करते थे। फिर तुमने उनकी जगह काम करना क्यों स्वीकृत कर लिया ? और फिर बात तो वही है जो अनेक बार श्रीमान् के मुँह से निकली है। वह यह कि मजलिसों में कैसे कैसे आदमी कैसी कैसी जगह पर बैठते हैं। यदि क्रोध में आकर शिकायत ही करना हो तो वहाँ भी करो कि कैसा आदमी कैसे आदमी की जगह बैठ गया है। मोहर तो नाम का केवल एक चिह्न है, जो दूसरे चिह्न के स्थान पर हो जाता है। देखो तो सही कि इसमें और उसमें कितना अंतर है।

फिर प्राय: डेढ़ पृष्ठ तक बहुत सी लंबी चौड़ी बातें बनाकर अंत में लिखते हैं कि तुम तो इस दरबार के सच्चे शुभचिंतक हो। इसी लिये मैंने इतना बढ़ाकर ये सब बातें कही हैं। अब मैं दो वाक्य और लिखकर यह पत्र समाप्त करता हूँ। अब तुम किसी बात के बंधन में न रहो और श्रीमान् की सेवा में उपस्थित होने का विचार करो। अपने आपको श्रीमान् की सेवा में पहुँचाओ। यहाँ तुम बहुत अच्छी तरह और

प्रसन्न रहोगे। मैं तो यही समझता हूँ कि इस समय तक तुम वहाँ से चल चुके होगे। तुम बड़े और योग्य हो। यदि तुम्हारी प्रवृत्ति हो तो मैं कुछ और बातें भी कहूँ जो तुम्हारे लिये इस लोक और परलोक दोनों में काम आवें। और नहीं तो सदा दृढ़ रहनेवाली शुभचिंतना तो है ही जो उस ईश्वर ने हृदय को प्रदान की है। उस हृदय ने हाथ को दी है। हाथ ने इस कलम को दी है। कलम ने उसे कागज पर लिखा है। ईश्वर तुम्हें और हमें उन बातों से रक्षित रखे जो न तो होने योग्य हैं और न होती हैं।

खान आजम ने भी उत्तर में खूब इनकी मूँछें पकड़ पकड़कर हिलाई हैं। एक पुराने संग्रह में मुझे उसका वह असली निवेदनपत्र मिल गया था जो मैंने परिशिष्ट में दे दिया है।

एक निवेदनपत्र ठीक चलने के समय लिखा गया था। उसमें और भी बहुत सी बातें हैं। पर इस संबंध की जो थोड़ी सी बातें हैं, उनका अनुवाद यहाँ दे दिया जाता है। "धर्म तथा राज्य के अशुभचिंतकों ने आपको सीधे रास्ते से हटाकर ऐसे रास्ते में लगा दिया है जिससे मनुष्य का अंत बिगड़ता है और इस प्रकार आपको बदनाम कर दिया है। वे लोग नहीं जानते कि किस किस बादशाह ने नबी होने का दावा किया है। क्या कुरान आपके ही लिये ऊपर से उतरा है या चाँद को दो टुकड़े करने की करामात आपने ही दिखलाई थी? जैसे चार मित्र मुहम्मद साहब के थे, क्या वैसे ही

आप के भी शुद्धहृदय मित्र हैं ? जो इस प्रकार अपने ऊपर ऐसी बदनामी लेते हैं, ये लोग शुभचिंतक नहीं बल्कि वास्तव में अशुभचिंतक हैं। अजीज कोका अब यह दासत्व छोड़ता है और हज जाने का विचार करता है। और वह भी इस विचार से कि वहां पहुँचकर यह ईश्वर से इस बात की प्रार्थना करेगा कि वह आपको ठीक मार्ग पर ले आवे। आशा है कि इस अपराधी की प्रार्थना उस ईश्वर की सेवा में स्वीकृत होगी और प्रभाव उत्पन्न करेगी; और वह ईश्वर आपको सीधे रास्ते पर ले आवेगा।"

इन दिनों उसकी युक्ति और तलवार के प्रभाव से समुद्र के किनारे तक अकबर की अमलदारी पहुँच गई थी और पंद्रह बंदरगाह उसके अधिकार में आ गए थे। ज्यों ज्यों बादशाह कृपा और प्रेम से भरे हुए पत्र लिखता गया, त्यों त्यों उसका संदेह और भी बढ़ता गया। ईश्वर जाने उसने अपने मन में क्या समझा कि उसने किसी प्रकार आना उचित ही न समझा। उसने वहाँ के लोगों पर यह प्रकट किया कि मैं बंदर देव (ड्यू ?) को देखने के लिये जाता हूँ। अपने थोड़े से विश्वसनीय मुसाहबों पर ही वास्तविक भेद प्रकट किया था; और किसी से जिक्र तक न किया था। पहले पोरबंदर पहुँचा। वह स्थान समुद्र के तट पर था। वहाँ बहुत बड़ा और दृढ़ संगीन किला था। और भी बहुत से संगीन मकान थे। वहाँ से चलकर बँगलौर पहुँचा। वहाँ के लोगों से यह कहा

कि मैं देव बंदर को दबाने के लिये जा रहा हूँ। बादशाही अमीरों को छुट्टी देकर उनकी जागीरों पर भेज दिया। बंदर के अधिकारियों से इस बात के इकरारनामे लिखवा लिए कि बिना आपकी आज्ञा के हम विदेशी व्यापारियों को देव के बंदरगाह में न आने देंगे। उसका अभिप्राय यह था कि पुर्तगाली लोग दबे रहें और उनके लिये एक धमकी हाथ में रहे। उसका आतंक भी उस समय ऐसा ही फैल रहा था कि उस समय वे सब लोग दब गए। खान आजम जो जो शरतें चाहता था, वही वही शरतें उन्होंने इकरारनामे में लिख दीं। मिरजा ने कई बादशाही जहाज बनवाए थे। उनमें से एक जहाज का नाम इलाही था। यह भी इकरार हो गया कि इलाही जहाज आधा तो देव बंदर में भरा जायगा और बाकी आधा उसका कप्तान जहाँ चाहेगा, वहाँ भर लेगा। उसका व्यय दस हजार महमूदी होता था। यह भी निश्चय हो गया था कि वह जहाज जहाँ जी चाहेगा, वहाँ आया जाया करेगा। कोई उसे रोक न सकेगा और न उससे कभी कुछ माँगा जायगा। जाम और भार इधर के बड़े शासकों में थे। उन्हें इसी धोखे में रखा कि हम यहाँ से समुद्र के मार्ग से ही सिंध पहुँचेंगे। वहाँ से मुलतान होते हुए श्रीमान् के दरबार में जाकर उपस्थित होंगे। तुम्हें साथ चलना होगा। इस बीच में वह किनारे किनारे बढ़ता हुआ चला जाता था। इतने में पुर्तगालियों का संधिपत्र भी हस्ताक्षर होकर आ

गया। सोमनाथ के घाट पर पहुँचकर बादशाही बख्शी आदि कुछ आदमियों को कैद कर लिया। इसमें युक्ति यह थी कि कहीं ये लोग सेना को समझा बुझाकर अपनी ओर न मिला लें और इस प्रकार मुझे रोक न लें।

सोमनाथ के पास बलादर बंदर के पास पहुँचकर खान आजम अपने इलाही नामक जहाज पर सवार हुए। खुर्रम, अनवर, अब्दुल रसूल, अब्दुल लतीफ, मुर्तजा कुली और अब्दुल कवी नामक अपने छः पुत्रों और छः पुत्रियों को तथा अपने महल की स्त्रियों, नौकर, चाकरों और लौंड़ी-गुलामों को उस पर बैठाया। नौकर चाकर भी सौ से अधिक थे। जितनी संपत्ति और सामग्री आदि अपने साथ ले सका, वह सब ली। खाने पीने के लिये भी सब चीजें अपने साथ रख लीं; और तब भारतवर्ष को भारतवासियों के हवाले कर दिया।

जिस समय खान आजम अपने खेमे से निकलकर जहाज की ओर चले थे, उस समय एक ऐसा करुणाजनक दृश्य उपस्थित हुआ जिसे देखने से देखनेवालों की आँखों में आँसू और हृदय में आकांक्षा तथा आवेश की नदी लहराती थी। सारा लश्कर और सेनाएँ सजी सजाई खड़ी थीं। जब वह लश्कर के सामने आकर खड़े हुए, तब नगाड़ों पर चोट पड़ी और पलटनों तथा रसालों ने सलामी दी। अनेक प्रकार के फिरंगी, अरबी और भारतीय बाजे बजने लगे। जो सैनिक सदा युद्ध और विदेश में, सुख और दुःख में, सरदी और गरमी में,

उसके साथ रहा करते थे और जो उसकी कृपाओं से सदा दबे हुए और पुरस्कारों से मालामाल रहते थे, वे बहुत ही दुःखित हृदय से खड़े हुए थे। जिन लोगों को उसने कैद किया था, उन्हें छोड़ दिया और उनसे क्षमा माँगकर अपने आपको क्षमा कराया। सबसे प्रार्थना की कि मेरे लिये दुआ करो। और तब लंबे लंबे हाथों से सबको सलाम करता हुआ जहाज में जा बैठा। मल्लाह से कहा कि मक्के की ओर रुख करके पाल खोल दो।

जब यह समाचार नाज उठानेवाले बादशाह के पास पहुँचा तो उसे कुछ तो बुरा मालूम हुआ और कुछ दुःख भी हुआ। उसके हृदय के विचार अनेक प्रकार के विलक्षण वाक्यों के रूप में मुँह से बाहर निकलने लगे। उसने कहा कि मैं मिरजा अजीज को इतना अधिक चाहता हूँ कि यदि वह तलवार खींचकर मुझ पर वार करने के लिये भी आता, तो भी मैं अपने आपको सँभाले रहता। पहले उसके हाथ से मैं घायल हो लेता, तब उस पर हाथ चलाता। परंतु दुःख है कि इसने अपने प्रेमी की कदर नहीं की और यात्रा कर बैठा। ईश्वर करे वह सफलमनोरथ हो और सकुशल तथा प्रसन्नतापूर्वक लौट आवे। मैं तो यहूद तथा नसारावालों और पराए लोगों से भी अपनायत का व्यवहार रखता हूँ। वह तो भला ईश्वर के रास्ते पर जा रहा है। मेरे मन में उसके प्रति विरोध का विचार कैसे हो

सकता है! मुहम्मद अजीज के साथ मुझे इतना अधिक प्रेम है कि यदि वह मुझसे टेढ़ा भी चले तो भी मैं उसके साथ सीधा ही चलूँगा। मैं कभी उसकी बुराई नहीं करना चाहूँगा। मुझे सब से अधिक ध्यान इस बात का है कि यदि उसके चले जाने के दुःख के कारण माता के प्राण निकल गए तो फिर उसका क्या परिणाम होगा! ईश्वर करे, अब भी वह अपने किए पर पछताए और लौट आवे। इसी दुःख और चिंता की दशा में एक दिन अकबर ने कहा था कि थोड़े दिन हुए, जीजी मेरे पास आईं। मेरे सिर के ऊपर से एक कटोरा पानी का वारकर पीया और पूछने पर कहा कि आज रात को मैंने एक बुरा सा स्वप्न देखा है। मुझे भी उस बात का ध्यान था। जान पड़ता है कि कदाचित् मेरे शरीर में अपने पुत्र को देखा था। जीजी तो मारे दुःख के मरने को हो गई थीं। बादशाह ने उसे बहुत कुछ धैर्य दिलाया। उसके बड़े बेटे शम्सुद्दीन ने बाल्यावस्था से ही बादशाह की सेवा में रहकर शिक्षा पाई थी और वहीं उसका पालन पोषण आदि हुआ था। बादशाह ने उसे हजारी मंसब दिया। शादमान को पाँच सदी मंसब प्रदान किया। बढ़िया और बसी हुई जागीरें दीं। और उधर जो प्रदेश खाली पड़ा हुआ था, उसका शासन मुराद के नाम करके बंदोबस्त कर दिया।

जिस समय खान आजम यहाँ से चलने लगे थे, उस समय उनके दिमाग में बड़ी बड़ी बातें भरी हुई थीं। वह सोचते

थे कि हम अकबर बादशाह के भाई हैं। उसका प्रताप और वैभव देखकर लोग उसे पैगंबर या ईश्वरी दूत बल्कि स्वयं ईश्वर ही मान लेते हैं। और मैं ऐसा धर्मनिष्ठ और आस्तिक हूँ कि उसका दरबार छोड़कर चला आया हूँ। परंतु वह भी ईश्वर का दरबार था। वहाँ उन्हें किसी ने पूछा भी नहीं। उन्होंने उदारता को अपनी सहायता के लिये बुलाया। वह हजारों और लाखों से हाजिर हुई। परंतु उस द्वार पर ऐसी ऐसी बहुत सी वर्षा हो जाया करती थी। मक्के के शरीफ और पुजारियों तथा विद्वानों आदि ने इन्हें कोई चीज ही न समझा। इसके अतिरिक्त स्वभाव का कड़ुआपन और बुरा मिजाज वहाँ भी मुसाहबी में उनके साथ ही रहता था। बच्चों की सी जिदें भी हर दम साथ लगी रहती थीं। इन साथियों के कारण वहाँ भी इन्हें लज्जित होना पड़ा। मक्के में उन्होंने बहुत से कष्ट उठाए। ईश्वर के सच्चे घर में उनका निर्वाह न हो सका। वही पुराना नकली घर फिर भी उन्हें बहुत कुछ गनीमत जान पड़ने लगा। मक्के और मदीने में उन्होंने कई मकान आदि खरीदकर इसलिये उत्सर्ग कर दिए थे कि जिसमें हाजी आदि आकर उनमें ठहरा करें। मदीने के वार्षिक व्यय का हिसाब लगाकर पचास वर्ष का व्यय वहाँ के अधिकारियों को दिया और तब वहाँ से बिदा हुए। यहाँ लोग समझे बैठे थे कि अब खान आजम यहाँ कदापि न आवेंगे। सन् १००२ हि० में

अचानक समाचार आया कि खान आजम आ गए और गुजरात में पहुँच भी गए। अब श्रीमान की सेवा में चले आ रहे हैं। बादशाह फूल की तरह खिल गए। एक आज्ञा-पत्र के साथ बहुमूल्य खिलअत और बहुत से घोड़े भेजे। महल में खूब आनंद मनाए गए। उधर खान आजम से कब रहा जाता था। उन्होंने गुजरात से अब्दुल्ला को साथ लिया और मलावल के मार्ग से होते हुए चौबीसवें दिन लाहौर में बादशाह की सेवा में आ उपस्थित हुए। खुर्रम से कह दिया कि तुम सब लोगों को साथ लेकर धीरे धीरे हर पड़ाव पर ठहरते हुए आओ। बादशाह के सामने पहुँचते ही जमीन पर सिर रख दिया। अकबर ने उठाया। वह "मिरजा अजीज, मिरजा अजीज" कहता था और उसकी आँखों से आँसू बहते थे। खूब कसकर गले से लगाया। जीजी को वहीं बुला भेजा। बेचारी बुढ़िया से चला नहीं जाता था। अपने पुत्र के वियोग में वह मरने को हो रही थी। थरथराती हुई सामने आई। बराबर रोती जाती थी। वह इस प्रकार विकल होकर दौड़कर लिपटी कि देखनेवाले भी रोने लगे। बादशाह भी रो रहे थे और चकित होकर देख रहे थे। खान आजम ने ईश्वर से लड़ झगड़कर अपनी प्रार्थना स्वीकृत कराई थी। अकबर ने फिर से, हजारी मंसब और खान आजम की उपाधि प्रदान की; और उसके सब पुत्रों को भी इस प्रकार मंसब प्रदान किए—

शम्सुद्दीन............................हजारी १०००

खुर्रम...................... ... हश्तसदी ८००

अनवर............. ....शशसदी ६००

शादमान...... ....पाँचसदी ५००

अब्दुल्ला .... चारसदी ४००

अब्दुल लतीफ......................दोसदी २००

मुर्तजाकुली..................सद व पंजाही १५०

अब्दुल कवी ... .सद व पंजाही १५०

अब खान आजम को अच्छी शिक्षा मिल चुकी थी। आते ही बादशाह के विशिष्ट चेलों में प्रविष्ट हो गए। बादशाह के सामने खड़े होकर उसी प्रकार सिर झुकाया जिस प्रकार कोई धर्मनिष्ठ मुसलमान ईश्वर-प्रार्थना आदि के समय अपने आपको ईश्वर के समक्ष समझकर सिर झुकाया करता है। बादशाह की दरगाह में अपनी दाढ़ी भी चढ़ा दी। पूर्ण निष्ठा, श्रद्धा और भक्ति दिखलाने के लिये जिन जिन बातों की आवश्यकता थी, वे सब बातें कर दिखलाईं। फिर तो सब बातों में सबसे आगे रहने लगे। हाजीपुर और गाजीपुर दोनों जागीर में मिल गए। सन् १००३ हि० में ऐसे बढ़े और चढ़े कि वकील मुतलक होकर सबसे ऊँचे हो गए। थोड़े दिनों बाद अँगूठीवाली मोहर और फिर उसके उपरांत दरबारवाली मोहर भी उन्हीं के सपुर्द हो गई। उसका घेरा दो इंच का था। उसके चारों ओर हुमायूँ से लेकर अमीर

तैमूर तक कुल चगताई बादशाहों के नाम के चिह्न थे। और बीच में जलालुद्दीन अकबर बादशाह का नाम था। जब किसी को कोई मंसब या जागीर प्रदान की जाती थी, किसी को किसी प्रदेश पर आक्रमण करने का अधिकार दिया जाता था अथवा जब इसी प्रकार का और कोई महत्त्वपूर्ण आज्ञापत्र प्रचलित होता था, तब उस पर यह दरबारी मोहर लगाई जाती थी। यह उस समय की कारीगरी का एक बहुत अच्छा नमूना थी। मैंने कई आज्ञा-पत्रों पर यह मोहर की हुई देखी है और वास्तव में देखने योग्य है। कई ऐतिहासिक ग्रंथों में इसका उल्लेख है और इसे मुल्ला अली अहमद की कारीगरी का प्रमाण कहा गया है।

शाहजहाँ बादशाह ने अपने राजकवि मलिक उश्शोअरा (कवि सम्राट्) हकीम अबू तालिब को मुहरदारी की सेवा प्रदान करने का विचार किया। उसने तुरंत यह शेर पढ़ा—

چو مہر تو دارم چہ حاجت بہ مہرم
مہرا مہر داری بہ ز مہر داری

अर्थात् जब मुझ पर आपकी कृपा ही है, तब मुझे मोहर की क्या आवश्यकता है। मेरे लिये मोहर के अधिकारी बनने की अपेक्षा आपकी कृपा का अधिकारी बनना कहीं अधिक श्रेष्ठ है। इसमें मेह्र (कृपा और मुह्र = मोहर) शब्द के कारण बहुत अधिक चमत्कार आ गया है।

इस पर शाहजहाँ ने आज्ञा दी कि साम्राज्य संबंधी आज्ञाएँ आदि प्रचलित करने का काम भी इन्हीं के सपुर्द

हो। सप्ताह में दो दिन प्रधान कार्यालय में बैठा करें। दीवान, बख्शी आदि सब लोग इन्हीं की आज्ञा के अनुसार सब काम किया करें।

सन् १००७ हि० में जब स्वयं बादशाह ने आसीर के किले पर घेरा डाला था, तब ये भी साथ थे। मोरचों पर जाते थे। चारों ओर देखते थे और आक्रमण के रुख आदि निश्चित करने में अब्बुलफजल के साथ बुद्धि लड़ाते थे। आक्रमण के दिन इन्होंने और इनकी सेना ने आगे बढ़कर बहुत अधिक काम किया था।

सन् १००८ हि० में वहीं जीजी का देहांत हो गया। जीजी बाल्यावस्था से ही इन्हें कंधों से लगाए फिरती थीं। बादशाह को बहुत अधिक शोक हुआ। कई कदम तक चलकर उसकी रत्थी को कंधा दिया। सिर, मूँछें और दाढ़ी आदि मुँड़वाई, क्योंकि यही चंगेजी नियम था। खान आजम और उनके संबंधियों ने भी इस सफाई में साथ दिया था। यद्यपि अकबर ने आज्ञा दे दी थी कि इस अवसर पर सब लोगों को हमारा साथ देने की आवश्यकता नहीं है, तथापि जब तक लोगों के पास यह समाचार पहुँचे, तब तक वहाँ हजारों दाढ़ियों की सफाई हो चुकी थी।

सन् १०१० हि० में हफ्तं (सात) हजारी और शश (छः) हजारी सवार का मंसब प्रदान किया गया; और जहाँगीर के पुत्र खुसरो से उनकी कन्या का विवाह होना निश्चित हुआ।

साचक की एक रस्म होती है जिसमें दुलहे की ओर से दुलहिन के लिये कुछ उपहार आदि भेजे जाते हैं। उसकी जो सवारी निकली थी, वह बिल्कुल बादशाही सवारी थी। उसका अनुमान इसी से कर लेना चाहिए कि जहाँ उसमें सजावट के हैजारों बहुमूल्य पदार्थ थे, वहाँ एक लाख रुपए नगद भी थे। दरबार के सब अमीर साचक लेकर उनके घर गए थे। इसी वर्ष खान आजम के पुत्र शम्सुद्दीनखाँ को दो हजारी मंसब प्रदान करके गुजरात भेजा गया था।

सन् १०११ हि० में शादमान और अब्दुल्ला को हजारी मंसब प्रदत्त हुए। अनवर इन दोनों से बड़ा था, पर बहुत भारी शराबी था। इसी लिये वह नंबर में सबसे पीछे पड़ गया था। पर अब वह कुछ कुछ सँभल चला था। अकबर के दरबार में तो इन बालकों के लिये केवल एक बहाना होना चाहिए था। बस वह भी हजारी हो गया।

सन् १०१४ हि० में अभाग्य का सितारा फिर काली चादर ओढ़कर सामने आया। अकबर बीमार हुआ और उसकी दशा से निराशा के चिह्न प्रकट होने लगे। इन्होंने और मानसिंह ने कुछ विश्वसनीय व्यक्तियों के द्वारा बादशाह की हार्दिक इच्छा जानने का उद्योग किया और उन्हीं के द्वारा यह भी संकेत कराया कि यदि आज्ञा हो तो खुसरो के यौवराज्याभिषेक की रस्म पूरी कर दी जाय। वास्तव में जहाँगीर से अकबर को बहुत अधिक प्रेम था। पर फिर भी अकबर बहुत

बड़ा दूरदर्शी, बुद्धिमान् और अनुभवी था। उसने समझ लिया कि इस समय यह नई नींव डालकर उस पर इमारत खड़ी करना बरफ के खंभों पर गुंबद तैयार करना है। वह ताड़ गया कि ये लोग क्या और क्यों कहते हैं। उसने आज्ञा दी कि मानसिंह इसी समय अपनी जागीर पर बंगाल चले जायँ और वहाँ जाकर इस इस प्रकार व्यवस्था करें। मआसिर-उल् उमरा में लिखा है कि अकबर का संकेत पाकर जहाँगीर नगर के एक सुरक्षित मकान में जम बैठा था। वहाँ शेख फरीद बख्शी तथा साम्राज्य के कुछ और शुभचिंतक जा पहुँचे और शेखजी उसे अपने साथ अपने घर ले आए।

जब खान आजम ने यह सुना कि मानसिंह जाते हैं और खुसरो को भी साथ लिए जाते हैं, तब उन्होंने उसी समय अपने घर के लोगों को राजा के घर भेज दिया और कहला भेजा कि अब मेरा यहाँ रहना ठीक नहीं। परंतु क्या करूँ। बिना खजाने और दूसरी सामग्री आदि साथ लिए काम नहीं चल सकता; और लादने के लिये मेरे पास जानवर आदि नहीं हैं। राजा ने कहा कि चाहता तो इस समय मैं भी यही हूँ कि किसी प्रकार तुमसे अलग न होऊँ। परंतु मुझसे स्वयं अपनी ही सामग्री आदि नहीं सँभाली जा सकती। विवश होकर खान आजम किले में ही रह गए। अंत में अकबर का देहांत हो गया। जिस बादशाह को लोग कभी दुल्हा बना-कर जशन के सिंहासन पर बैठाते थे और कभी खवासी में

बैठकर जिसे युद्धक्षेत्र में ले जाते थे, उसे और उसकी रत्थी को अपने कंधे पर उठाकर ले गए।

जहाँगीर सिंहासन पर बैठा। अमीरों ने दरबार में उपस्थित होकर बधाइयाँ दीं और नजरें कीं। नए बादशाह ने बहुत ही कृपापूर्वक खान आजम का महत्त्व बढ़ाया और कहा कि तुम जागीर पर मत जाओ; यहीं मेरे पास रहो। कदाचित् उसका उद्देश्य यह रहा हो कि यदि यह दरबार से दूर होगा तो विद्रोह के साधन प्रस्तुत करेगा और इसके लिये उसे यथेष्ट उपयुक्त अवसर मिलेगा। अंत में खुसरो ने विद्रोह किया ही। उस समय जहाँगीर के मन में यह बात बहुत ही दृढ़तापूर्वक बैठ गई कि भला इस लड़के का इतना अधिक साहस कहाँ से हो सकता था। इसे यह साहस खान आजम के उसकाने से ही हुआ है। जब जहाँगीर ने उसके विद्रोह आदि का दमन करके उससे छुट्टी पाई, तब इन पर उसका क्रोध बढ़ा। इसमें कोई संदेह नहीं कि खान आजम को इस बात की बहुत बड़ी आकांक्षा थी कि खुसरो बादशाह हो। इस आकांक्षा में वह इतना आपे से बाहर हो गया था कि वह अपने विश्वसनीय आदमियों से कहा करता था कि क्या ही अच्छा होता कि कोई आकर मेरे कान में कह जाता कि खुसरो बादशाह हो गया; और ठीक उसी समय दूसरे कान में हजरत इजराइल (मृत्यु के फरिश्ते) आकर कहते कि चलो, तुम्हारी मौत आ गई। यदि ये दोनों बातें एक साथ ही होतीं तो

मुझे अपने मरने का कुछ भी दुःख न होता। पर हाँ, मैं इतना अवश्य चाहता हूँ कि एक बार अपने कानों से यह समाचार सुन लूँ कि खुसरो बादशाह हो गया।

तात्पर्य यह कि अब यहाँ तक नौबत पहुँच गई कि जब दरबार में जाते थे, तब कपड़ों के नीचे कफन पहनकर जाते थे। सोचते थे कि देखो जीता जागता वहाँ से लौटता भी हूँ या नहीं। इनमें सबसे बड़ा दोष यह था कि ये बातचीत करते समय किसी को कोई चीज ही नहीं गिनते थे। इनकी जबान ही इनके वश में नहीं रहती थी। जब जो कुछ मुँह में आता था, साफ कह बैठते थे। अवसर कुअवसर कुछ भी न देखते थे। इस बात से जहाँगीर बहुत तंग आ गया था और प्रायः दरबार के सब लोग भी इनके शत्रु हो गए थे। इसी अवसर पर एक बार कहीं खान आजम के मुँह से कोई बात निकल गई थी जिस पर बादशाह को भी बहुत बुरा मालूम हुआ और सब लोग भी बहुत नाराज हुए। जहाँगीर ने अपने खास खास अमीरों को ठहरा लिया और उन्हें एकांत में ले जाकर खान आजम के संबंध में उनसे परामर्श किया। जब बातचीत होने लगी, तब अमीर उल् उमरा ने कहा कि इसे खतम कर देने में कितनी देर लगती है। बादशाह की इच्छा देखकर महाबतखाँ ने कहा कि मैं तो सिपाही आदमी हूँ। मुझे परामर्श आदि कुछ भी नहीं आता। मैं सिरोही रखता हूँ। कमर का हाथ मारता हूँ। दो टुकड़े न कर दें तो मेरे

दोनों हाथ काट डालिएगा। खानजहाँ ने (जो या तो खान आजम का शुभचिंतक था और या स्वभावतः सज्जन था) कहा कि श्रीमान्, मैं तो इसके भाग्य को देखता हूँ और चकित होता हूँ। इस सेवक ने एक बहुत बड़ा संसार देखा है। मैंने जहाँ देखा, वहीं मुझे श्रीमान् का नाम प्रकाशमान दिखलाई दिया। पर उसके साथ ही खान आजम का नाम भी तैयार मिलता है। इसे मार डालना कोई बहुत कठिन काम नहीं है। परंतु कठिनता यह है कि प्रत्यक्ष रूप से देखने में कोई अपराध नहीं दिखाई देता। यदि श्रीमान् ने इसे मरवा डाला तो सारे संसार में यही कहा जायगा कि उसके साथ अत्याचार किया गया। जहाँगीर इस पर जरा धीमा हुआ। इतने में परदे के पीछे से सलीमा सुलतान बेगम पुकारकर बोल उठीं—हुजूर, महल की बेगमें उनकी सिफारिश करने के लिये आई हैं। यदि श्रीमान् इधर आवें तो ठीक है; नहीं तो सब परदे के बाहर निकल पड़ेंगी। इस पर बादशाह घबराकर उठ खड़े हुए और महल में चले गए। वहाँ सब लोगों ने मिलकर उन्हें ऐसा समझाया कि उनका अपराध क्षमा हो गया। खान आजम ने अभी तक अफीम नहीं खाई थी। बादशाह ने स्वयं अपने खाने की गोलियाँ देकर उन्हें बिदा किया। यह आग तो किसी प्रकार दब गई, पर थोड़े ही दिनों बाद एक और नया झगड़ा खड़ा हुआ। ख्वाजा अब्बुल-हसन तुरबती ने बहुत दिनों से स्वयं खान आजम के हाथ का

लिखा हुआ एक पत्र अपने पास रख छोड़ा था। वह पत्र उस समय उसने बादशाह की सेवा में उपस्थित किया। जहाँगीर ने अपनी तुजुक में स्वयं अपने हाथ से उस पत्र के संबंध में और उसकी घटना के संबंध में जो कुछ लिखा है, उसका अनुवाद यहाँ पर दे दिया जाता है। उसने लिखा है—"मेरा हृदय कहता था कि खुसरो उसका दामाद है और वह नालायक मेरा शत्रु है। इसी कारण मेरी ओर से खान आजम के मन में अवश्य द्वेष है। अब उसके एक पत्र से विदित हुआ कि अपनी प्रकृति की दुष्टता को उसने कभी किसी अवसर पर भी नहीं छोड़ा। बल्कि वह मेरे पूज्य पिताजी के साथ भी वही दुष्टता का व्यवहार किया करता था। एक अवसर पर उसने एक पत्र राजा अलीखाँ के नाम लिखा था। उसमें आदि से लेकर अंत तक ऐसी ऐसी बुरी और दुष्टतापूर्ण बातें लिखी हैं जो साधारणतः कोई अपने शत्रु के लिये भी नहीं लिख सकता, और किसी के प्रति नहीं लिख सकता। स्वर्गवासी पूजनीय पिताजी जैसे गुणग्राहक और सुयोग्य के संबंध में लिखना तो बहुत दूर की बात है। यह लेख बुरहानपुर में राजा अलीखाँ के दफ्तर से प्राप्त हुआ था। उसे देखकर मेरे रोएँ खड़े हो गए। यदि कुछ विशेष बातों का और उसकी माँ के दूध का ध्यान न होता तो बहुत ही उचित होता कि मैं स्वयं अपने हाथ से उसकी हत्या करता। अस्तु; मैंने उसे बुलाया और उसके हाथ में वह पत्र

देकर कहा कि इसे सबके सामने जोर से पढ़ो। मैं समझता था कि उसे देखते ही उसकी जान निकल जायगी। परंतु यह निर्लज्जता की पराकाष्ठा है कि वह उसे इस प्रकार पढ़ने लगा मानों वह उसका लिखा हुआ ही नहीं है; किसी और का लिखा हुआ उससे पढ़वाया जा रहा है। वह पढ़ रहा है और सुननेवाले चकित और स्तंभित हो रहे हैं। जिसने वह पत्र देखा और सुना, उसने बहुत ही घृणापूर्वक उस पर लानत भेजी। मैंने उससे पूछा—"मेरे साथ तुमने जो कुछ द्वेष किया, वह तो किया ही और उसके लिये तुमने अपने निकृष्ट विश्वास के संबंध में कुछ कारण भी निश्चित कर लिए। परंतु स्वर्गीय पूज्य पिता जी ने तो तुझको और तेरे वंश को मार्ग की धूल में से उठाकर इतने ऊँचे पद तक पहुँचाया कि जिसके लिये संग साथ के और लोग ईर्ष्या करते हैं। उनके साथ जो तूने ऐसा व्यवहार किया, उसका क्या कारण हुआ? स्वर्गीय सम्राट् के शत्रुओं और विरोधियों को जो तूने इस प्रकार की बातें लिखीं सो क्यों लिखीं? और तूने क्यों अपने आपको हरामखोरों और अभागों में स्थान दिया? सच है, कोई अपनी असलियत और प्रकृति को क्या करे। जब तेरी प्रकृति का पोषण ही ईर्ष्या द्वेष के जल से हुआ हो, तब इन सब बातों के सिवा और हो ही क्या सकता है। तूने जो कुछ मेरे साथ किया था, उसका ध्यान मैंने जाने दिया था और तुझे तेरे मंसब पर फिर से नियुक्त किया था। मैंने सोचा

था कि तेरा द्वेष केवल मेरे ही साथ होगा। पर अब जब यह मालूम हुआ कि तूने ईश्वर-तुल्य अपने अभिभावक के साथ भी इस प्रकार का व्यवहार किया, तब मैं तुझे तेरे कुकर्मों और धर्म पर ही छोड़ता हूँ"। ये बातें सुनकर वह चुप रह गया। मुँह में कालिख लगानेवाली ऐसी बातों के उत्तर में भला वह कह ही क्या सकता था! मैंने आज्ञा दे दी कि इसकी जागीर छीन ली जाय और आगे के लिये बंद कर दी जाय। इस कृतघ्न ने जो कुछ किया था, उसमें यद्यपि क्षमा करने और उसकी उपेक्षा करने के लिये स्थान नहीं था तो भी कई बातों का ध्यान करके मैंने उस बात को जाने ही दिया। कुछ इतिहास-लेखक कहते हैं कि ये नजरबंद भी रहे।

सन् १०१७ हि० में खुसरो के यहाँ पुत्र (खान आजम का नाती) उत्पन्न हुआ। बादशाह ने बुलंदअख्तर नाम रखा। खान आजम को गुजरात प्रदान किया गया। साथ ही यह भी आज्ञा हुई कि खान आजम दरबार में ही उपस्थित रहें और उनका बड़ा लड़का जहाँगीर कुलीखाँ जाकर उस प्रदेश का प्रबंध करे।

सन् १०१८ हि० में वे खुसरो के पुत्र दावरबख्श के शिक्षक बनाए गए। इसी सन् में बड़े बड़े अमीर दक्षिण भेजे गए थे, पर वहाँ का सब काम बिगड़ गया था। मालूम हुआ कि इस खराबी का कारण यह था कि खानखानाँ के कारण सब लोगों में परस्पर द्वेष और फूट उत्पन्न हो गई थी। इसलिये

खान आजम को कुछ अमीर और मंसबदार देकर सहायता के लिये भेजा गया। दस हजार सवार और दो हजार अहदी कुल बारह हजार आदमी थे। व्यय के लिये तीस लाख रुपए दिए गए थे और बहुत से हाथी भी साथ किए गए थे। उन्हें बहुत बढ़िया खिलअत पहनाई गई थी। कमर में जड़ाऊ तलवार बँधाई गई थी और घोड़ा, फीलखाना तथा पाँच लाख रुपए सहायता के रूप में प्रदान किए गए थे। इसी वर्ष खान आजम के पुत्र खुर्रम को जूनागढ़ का शासक बनाकर भेजा गया था। उसे कामिलखाँ की उपाधि मिली थी।

सन् १०२० हि० में खान आजम के पुत्र को शादमानखाँ की उपाधि देकर एक हजारी हफ्तसदी मंसब और पाँच सौ सवारों के साथ अलम प्रदान किया गया था।

अभी खान आजम का सितारा अच्छी तरह नहूसत के घर में से निकलने भी न पाया था कि फिर उलटकर उसी ओर बढ़ा। वह बुरहानपुर में आराम से बैठा हुआ अमीरी की बहारें लूट रहा था। पता लगा कि बादशाह उदयपुर पर आक्रमण करना चाहता है। वृद्ध सेनापति वीरता के कारण आवेश में आ गया। बादशाह की सेवा में निवेदन-पत्र लिखा कि श्रीमान् को स्मरण होगा कि दरबार में जब कभी राणा पर आक्रमण करने का जिक्र आता था, तब यह सेवक निवेदन किया करता था कि परम आकांक्षा है कि यह आक्रमण हो और यह सेवक अपनी जान निछावर करे। श्रीमान्

को भी यह विदित है कि यह वह आक्रमण है जिसमें यदि सेवक मारा भी जाय तो मानों ईश्वर के मार्ग में शहीद हो जायगा। और यदि विजयी हुआ तो फिर गाजी होने में क्या संदेह है। इन बातों से जहाँगीर भी बहुत प्रसन्न हो गया: सहायता के लिये उसने तोपखाने और खजाने आदि जो कुछ माँगे, वे सब दे दिए गए। इन्होंने प्रस्थान किया। उदयपुर के पहाड़ी प्रांत में जाकर युद्ध आरंभ किया। वहाँ से निवेदनपत्र लिख भेजा कि जब तक श्रीमान् का प्रतापी झंडा इधर की हवा में न लहरावेगा, तब तक इस समस्या का निराकरण होना कठिन है। जहाँगीर भी अपने स्थान से उठा। यहाँ तक कि सब लोग अजमेर में जा पहुँचे। शाहजादा खुर्रम (शाहजहाँ) को बढ़िया बढ़िया घोड़ों के दो हजार सवार, पुराने अनुभवी अमीर तथा बहुत सी आवश्यक सामग्री देकर आगे भेज दिया। ये सब लोग वहाँ पहुँचे और कार्य आरंभ हुआ।

यह एक निश्चित नियम है कि पिता के लिये जान निछावर करनेवाले योग्य व्यक्ति पुत्र के समय में मूर्ख और उद्दंड समझे जाते हैं। फिर यदि दादा के समय के ऐसे आदमी हों तो पूछना ही क्या है। और उसमें भी खान आजम! इनकी सम्मति ने शाहजादों की सम्मति के साथ मेल नहीं खाया। काम बिगड़ने लगे। उधर शाहजादे के निवेदनपत्र आए; इधर खबरनवीसों के परचे पहुँचे। लश्कर के अमीरों के लेखों से इनके कथन का समर्थन भी हुआ। और

सबसे बढ़कर इनका दुष्ट स्वभाव था। परिणाम यह हुआ कि बादशाह के मन में यह बात अच्छी तरह बैठ गई कि यह सारा झगड़ा खान आजम की ही ओर से है। यदि यह विचार यहीं तक रहता तो भी कोई बहुत बड़ी बात नहीं थी। बहुत होता तो बुलाकर उनके इलाके पर भेज देते। इनकी ओर से सबसे बड़ो चुगली खानेवाला इनका वह रिश्ता था कि ये खुसरो के ससुर थे। और स्वयं खुसरो पर भी विद्रोह के कारण बादशाह की अवकृपा थी। इसी लिये शाहजादा खुर्रम ने स्पष्ट लिख दिया कि खान आजम उसी खुसरो के विचार से यह काम खराब करना चाहता है। इसलिये इसका किसी कारण से भी यहाँ उपस्थित रहना उचित नहीं है। मस्त बादशाह ने तुरंत महाबतखाँ को रवाना किया और आज्ञा दी कि खान आजम को अपने साथ लेकर आओ। वह गया और खान को उसके पुत्र अब्दुल्ला समेत दरबार में ला उपस्थित किया। आसफखाँ के सपुर्द कर दिए गए और उनसे कह दिया गया कि इन्हें ग्वालियर के किले में कैदियों की भाँति बंद रखो। आरंभ में तो कुछ दिनों तक माता और बहनों आदि के प्रार्थना करने पर खुसरो के लिये इस बात की आज्ञा हो गई थी कि बादशाह की सेवा में आया जाया करे। पर अब उसे भी आज्ञा हो गई कि तुम्हारा भी आना जाना बिलकुल बंद।

ईश्वर शक्कर खानेवाले को शक्कर ही देता है। आसफखाँ ने बादशाह की सेवा में निवेदन किया कि खान आजम कैद-

खाने में मेरे लिये, मुझे नष्ट करने के लिये, कुछ मंत्र आदि पढ़ता है। मंत्र पढ़नेवाले के लिये यह आवश्यक है कि वह पशुओं और स्त्रियों आदि से अलग और एकांत में रहा करे। सो ये सब बातें वहाँ उसे आपसे आप प्राप्त हैं। बादशाह ने आज्ञा दी कि गृहस्थी की सारी सामग्री और भोग विलास के सब साधन वहीं भेज दो। अब तो उसके दस्तरख्वान पर भी सब प्रकार के भोजन—यहाँ तक कि मुरगाबी और तीतर आदि के कबाब भी—लगने लगे। खान आजम कहता था कि मुझे तो मंत्र आदि का कहीं स्वप्न में भी कोई ध्यान नहीं था। ईश्वर ही जाने कि बीच ही बीच में आपसे आप यह बात कहाँ से उत्पन्न हो गई।

कुछ दिनों के उपरांत खान आजम तो छूट गए, पर खुसरो उसी प्रकार कैद रहे। परंतु छोड़ने के समय खान आजम से यह इकरार (प्रतिज्ञापत्र) लिखवा लिया गया था कि बिना पूछे किसी से बात भी न किया करूँगा। बादशाह जदरूप (यदुरूप) गोसाईं के साथ बहुत प्रेम से मिलते थे और उनकी साधुओं की सी बुद्धिमत्तापूर्ण बातें सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुआ करते थे। जो कुछ उनकी आज्ञा होती थी, उसे कभी टालते नहीं थे। खान आजम उनके पास गए और बहुत ही नम्रतापूर्वक निवेदन किया। इसके उपरांत जब एक दिन जहाँगीर गोसाईं जी के पास गया, तब उन्होंने बहुत ही निर्लिप्त और सुंदर भाव से अपना अभिप्राय प्रकट किया। बादशाह

पर उसका पूरा पूरा प्रभाव पड़ा। उसने आते ही आज्ञा दी कि खुसरो पहले की भाँति दरबार में उपस्थित हुआ करे। दुःख की बात यह है कि अंतिम अवस्था में मरते मरते खान आजम ने अपनी एक कन्या के वैधव्य का कष्ट भोगा। अर्थात् सन् १०३० हि० में खुसरो का देहांत हो गया। शाहजहाँ दक्षिण पर आक्रमण करने के लिये जा रहा था। वहीं आकर पिता से अपने इस अभागे भाई की सिफारिश किया करता था। इस अवसर पर जहाँगीर ने उससे कहा कि मैं देखता हूँ कि खुसरो सदा दुःखी और चिंतित रहता है। किसी प्रकार उसका चित्त प्रसन्न नहीं होता। उसे तुम अपने साथ लेते जाओ; और जिस प्रकार उचित समझो, उसे अपनी रक्षा में रखो। वह दक्षिण में भाई के साथ था कि अचानक उसके पेट में शूल उठा और वह मर गया। कुछ इतिहासलेखक यह भी कहते हैं कि वह रात के समय अच्छी तरह सोया था। प्रातःकाल लोगों ने देखा तो वह फर्श पर निहत पड़ा हुआ था।

सन् १०३२ हि० (सन् अठारह जलूसी) में खुसरो के पुत्र दावरबख्श को गुजरात प्रांत प्रदान किया गया। इन्हें भी उसी के साथ भेजा गया।

सन् १०३३ हि० (सन् उन्नीस जलूसी) में दुःशीलता और सुशीलता, वैमनस्य और एकता सब के झगड़े मिट गए। सब बातें जीवन के साथ हैं। जब मर गए, तब कुछ भी नहीं। गुजरात के अहमदाबाद नगर में खान आजम का देहांत हो

गया। उसका शव लोग दिल्ली लाए। वहाँ अतकाखाँ की कब्र के पास उनके पुत्र खान आजम की भी कब्र बनी और वे भी पृथ्वी को सौंप दिए गए।

खान आजम के साहस, शूरता, उदारता और योग्यता आदि के संबंध में सभी इतिहास और सभी वर्णन एकमत हैं। सबसे पहले इस विषय में जहाँगीर का मत लिखा जाता है। उसने तुजुक में लिखा है कि मैंने और मेरे पूज्य पिताजी ने उसकी माँ के दूध का ध्यान करके उसे सब अमीरों से बढ़ा दिया था। हम लोग उसकी और उसकी संतान की विलक्षण विलक्षण बातें सहन किया करते थे। साहित्य और इतिहास में उसका ज्ञान बहुत बढ़ा चढ़ा था। उसके लेख और भाषण अनुपम हुआ करते थे। अक्षर बहुत ही सुंदर और स्पष्ट लिखता था। मुल्ला मीरअली के पुत्र मुल्ला बाकर का शिष्य था। इसमें कोई संदेह नहीं कि अच्छे अच्छे विद्वान् उसकी कविताओं को बड़े बड़े कवियों की कविताओं से कम महत्त्व नहीं देते थे। वह अभिप्राय प्रकट करने में बहुत अच्छी योग्यता रखता था। चुटकुले और शेर बहुत अच्छे कहता था।

इन सब बातों से समझनेवाला स्वयं ही परिणाम निकाल सकता है। परंतु मआसिर उल् उमरा आदि इतिहासों से यह बात स्पष्ट रूप से प्रकट है कि उसकी अहंमन्यता और उच्चाकांक्षा बल्कि दूसरों की अशुभचिंतना सीमा से बढ़ी हुई थी। और अकबर की नाजबरदारी ने उसकी इन सब बातों को बहुत

अधिक बढ़ा दिया था। जिसके संबंध में जो कुछ चाहता था, कह बैठता था। यह नहीं देखता था कि मैं किसके संबंध में, किस अवसर पर और क्या कह रहा हूँ अथवा मेरे इस कहने का क्या परिणाम होगा। इसी लिये सब लोग कहा करते थे कि इसकी जबान वश में नहीं है। अंत में यहाँ तक हुआ कि इससे इस बात का प्रतिज्ञापत्र लिखा लिया गया कि जब तक कोई बात न पूछी जायगी, तब तक मैं कुछ न बोलूँगा।

एक दिन जहाँगीर ने इनके पुत्र जहाँकुली से कहा कि तुम अपने पिता के जिम्मेदार बनो। उसने कहा कि मैं और सब बातों में तो पिताजी का जिम्मा ले सकता हूँ, पर उनकी जबान के संबंध में जिम्मा नहीं ले सकता।

चगताई बादशाहों के यहाँ का नियम था कि जब कोई अमीर बादशाह की कोई आज्ञा लेकर किसी दूसरे अमीर के पास जाता था, तब वह उसका स्वागत करता था और बहुत ही आदरपूर्वक उससे मिलता था। आज्ञा ले जानेवाला जिस समय आज्ञा सुनाता था, उस समय वह दूसरा अमीर निश्चित नियमों के अनुसार खड़ा होकर कोरनिश और तसलीम करता था। विशेषतः जब किसी के पद या मर्यादा आदि में कोई वृद्धि होती थी अथवा उस पर और किसी प्रकार की कृपा होती थी, तब बहुत बहुत धन्यवाद और बहुत बहुत दुआएँ देता था। और जो अमीर आज्ञा लेकर आते थे, उन्हें वह अनेक प्रकार के उपहार आदि देकर बिदा किया करता था।

जब जहाँगीर ने इनका अपराध क्षमा किया और इन्हें फिर पंज हजारी मंसब देने के लिये दरबार में बुलाया, तब शाहजहाँ से कहा कि बाबा, (वह शाहजहाँ को बाबा या बाबा खुर्रम कहा करता था) मुझे स्मरण है कि जब तुम्हारे दादा ने इन्हें दो हजारी मंसब प्रदान किया था, तब शेख फरीद बख्शी और राजा रामदास को भेजा था कि जाकर उन्हें इस मंसब प्राप्त करने के लिये बधाई दो। जब वे लोग पहुँचे, तब ये हम्माम में स्नान कर रहे थे। वे ड्योढ़ी पर बैठे रहे। ये एक पहर बाद निकले। दीवानखाने में आकर बैठे और इन्हें सामने बुलाया। बधाई ली। बैठे बैठे सिर पर हाथ रखा। बस मानों यही आदाब हुआ और यही कोरनिश हुई। और कहा तो केवल यही कहा कि अब इसके लिये सेना रखनी पड़ेगी। उन लोगों का कुछ भी आदर सत्कार न किया और उन्हें यों ही बिदा कर दिया। बाबा, मुझे लज्जा आती है कि मिरजा कोका खड़े होकर आदाब करें। खैर; तुम उनकी ओर से खड़े होकर आदाब करो।

यद्यपि इन्होंने बहुत अधिक विद्याध्ययन नहीं किया था और ये कोई बहुत बड़े विद्वान् नहीं थे, तथापि दरबारदारी और मुसाहबी के लिये इनकी विद्या अनुपम ही थी। इनकी प्रत्येक बात एक चुटकुला होती थी। फारसी के बहुत अच्छे लेखक थे और उसमें अपना अभिप्राय बहुत अच्छी तरह प्रकट किया करते थे। अरबी भाषा इन्होंने पढ़ी तो नहीं थी, पर फिर भी उसका थोड़ा बहुत ज्ञान रखते थे।

. खान आजम प्रायः कहा करते थे कि जब कोई व्यक्ति किसी विषय में मुझसे कुछ कहता है, तब मैं समझता हूँ कि ऐसा ही होगा और उसी के आधार पर मैं अपने कर्तव्य का स्वरूप निश्चित करने लगता हूँ। जब वह कहता है कि नवाब साहब, आप इसमें और किसी प्रकार का छल कपट न समझें, तब मुझे संदेह होने लगता है। और जब शपथ खाकर कहने लगता है, तब समझ लेता हूँ कि यह झूठा है।

मुसाहबी करने और मजलिस में बैठकर लोगों को प्रसन्न करने में ये अपना जोड़ नहीं रखते थे, अनुपम थे। सदा बहुत बढ़िया और मजेदार बातें किया करते थे।

प्रायः कहा करते थे कि अमीर के लिये चार स्त्रियां होनी चाहिएँ। पास बैठने और बातचीत करने के लिये ईरानी, घर गृहस्थी का काम करने के लिये खुरासानी, सेज के लिये हिन्दोस्तानी और एक चौथी तुरकानी जिसे हर दम केवल इसलिये मारते पीटते रहें कि जिसमें और स्त्रियाँ डरती रहें।

आजाद को कुछ वाक्य ऐसे लिखने पड़े हैं कि जिनके कारण वह खान आजम की आत्मा के सामने लज्जित है। पर इतिहासलेखक का काम हर एक बात लिखना है। इसी लिये वह अपनी सफाई में मआसिर उल् उमरा का भी अपने समर्थन में उल्लेख करता गया है, जिससे सिद्ध होता है कि वे लड़ाई झगड़ा करने और कटु बातें कहने में अपने समय के सब लोगों से बढ़े चढ़े थे। जब कोई कर्मचारी इनके यहाँ

पदच्युत होकर आता था और उसके जिम्मे सरकार का कुछ रुपया बाकी होता था, तब वह रुपया उससे माँगा जाता था। यदि उसने दे दिया तो ठीक ही है; और नहीं तो उसे इतनी मार पड़ती थी कि वह मर जाता था। पर मजा यह है कि यदि वह मार खाने पर भी जीता बच निकलता, तब फिर उससे कुछ भी नहीं कहा जाता था। चाहे उसके जिम्मे लाख ही रुपए क्यों न हों।

कोई ऐसा वर्ष नहीं बीतता था कि इनके क्रोध का छुरा एक दो बार इनके हिंदू मुनशियों के सिर और मुँह न साफ करता हो। राय दुर्गादास इनके खास दीवान थे। एक अवसर पर और मुनशियों ने गंगास्नान करने के लिये छुट्टी ली। नवाब उस समय कुछ प्रसन्नचित्त थे। कहा कि दीवानजी, तुम प्रति वर्ष स्नान करने के लिये नहीं जाते। उसने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि मेरा स्नान तो हुजूर के कदमों में ही हो जाता है। तात्पर्य यह कि वहाँ भद्र न हुआ, यहीं हो गया। नवाब साहब समझ गए। उस दिन से वह नियम तोड़ दिया।

खान आजम नमाज तो नियमित रूप से नहीं पढ़ते थे, पर हाँ उनमें धार्मिक कट्टरपन बहुत अधिक था।

वे हाँ में हाँ मिलाना और दुनियादारी की बातें करके सबको प्रसन्न करना नहीं जानते थे। नूरजहाँ का इतना बढ़ा चढ़ा जमाना था और उसी की बदौलत एतमादउद्दौला और

असफजाह के दरबार में भी लोगों की भीड़ लगी रहा करती थी। पर ये कभी उसके यहाँ नहीं गए। बल्कि कभी नूरजहाँ के द्वार तक जाने के लिये इनका पैर ही नहीं उठा। खानखानाँ की दशा इनके बिलकुल विपरीत थी। वे आवश्यकता पड़ने पर एतमादउद्दौला के दीवान राय गोवर्धन के घर पर भी जा पहुँचते थे।

जहाँगीर के शासन काल में भी खान आजम के पुत्र बहुत प्रतिष्ठापूर्वक रहते थे। सबसे बड़ा शम्सुद्दीन था जिसे जहाँगीर कुली की उपाधि मिली थी। यह तीन हजारी मंसब तक पहुँचा था। शादमान को शादमाँखाँ की उपाधि मिली थी। खुर्रम पहले अकबर के शासन काल में जूनागढ़ का शासक था, गुजरात में अपने पिता के साथ था। जहाँगीर के शासन काल में उसे कामिलखाँ की उपाधि मिली थी। जब शाहजहाँ ने राणा उदयपुर पर चढ़ाई की थी, तब यह उसके साथ था। मिरजा अब्दुल्ला को जहाँगीर ने सरदारखाँ की उपाधि दी थी। जिस समय कोका ग्वालियर के किले में कैद हुए, उस समय यह भी उनके साथ था। मिरजा अनवर के साथ जैनखाँ कोका की कन्या ब्याही थी। ये सब दो हजारी और तीन हजारी मंसब तक पहुँचे थे।

खान आजम के विवरण से जान पड़ता है कि वह एक अशिक्षित मुसलमान या निरा सिपाही या हठीं अमीर था। उससे कुछ बातें ऐसी भी हो जाती थीं जिनके कारण लोग उसे निरा

मूर्ख समझते थे। इस संबंध में बहुत सी बातें प्रसिद्ध हैं, पर वे किसी ग्रंथ में नहीं पाई जातीं, इसलिये यहाँ नहीं दी गईं। हाँ, इसे चाहे सीधापन कहो और चाहे नासमझी कहो, यह गुण इनके वंश के रक्त में ही सम्मिलित था। इनके चचा मीर मुहम्मदखाँ को लोग अतकाखाँ और खाँ कलाँ कहा करते थे। अकबर ने उन्हें कमालखाँ गक्खड़ के साथ भेजा। गक्खड़ के भाई बन्दों ने लड़ भिड़कर उसे घर से निकाल दिया था। इनसे कहा गया था कि तुम सेना लेकर जाओ और इसका अंश इसे दिलवा दो। कुछ अमीर और सैनिक भी साथ थे। बादशाही सरदारों ने जाकर पहाड़ों को हिला डाला और कमालखाँ का चाचा आदमखाँ कैद हो गया। उसका पुत्र लश्करखाँ भागकर काश्मीर चला गया और फिर पकड़ा गया। दोनों अपनी मौत से मर गए। बादशाही अमीरों ने वह प्रदेश कमालखाँ को सौंप दिया। आगरे आकर दरबार में सलाम किया। खाँ कलाँ सबसे आगे थे। बादशाह ने उनकी सलामी लेने के लिये बहुत अच्छा दरबार किया। उस दिन सभी अमीरों, विद्वानों और कवियों आदि को दरबार में उपस्थित होने की आज्ञा दी गई थी। खान ने सोचा कि यदि ऐसे बढ़िया दरबार के अवसर पर मेरा कसीदा पढ़ा जाय तो बहुत बहार हो। बादशाह भी इस वंश को बढ़ाना ही चाहता था; बल्कि इसी लिये उसने यह दरबार किया था। अच्छी तरह दरबार लग गया। सब लोग यहाँ तक कि स्वयं बादशाह

भी बहुत ध्यान से कान लगाकर यह सुनने के लिये उत्सुक हुआ कि देखिए, खान क्या कहते हैं। इन्हें भी बहुत बड़े पुरस्कार की आशा थी। इन्होंने पहला ही मिसरा पढ़ा—

بحمدالله که دیگر آمدم فتح گکر کرده

अर्थात् ईश्वर को धन्यवाद है कि मैं गक्खड़ की दूसरी विजय करके आया हूँ।

लोग तो इन्हें पहले से ही जानते थे। सब लोगों की आपस में निगाहें लड़ीं। लोग मुस्कराए और सोचने लगे कि देखिए आगे क्या होता है। इतने में इनका दामाद अब्दुल मलिकखाँ वहाँ आ पहुँचा और आगे बढ़कर बोला— खान साहब यह मत कहिए कि "मैं आया" बल्कि यह कहिए कि "हम लोग आए"; क्योंकि आपके साथ और भी बहुत से नामर्द थे। इतना कहना था कि एक ठहाका उड़ा और सब लोग मारे हँसी के लोट गए। बड़े खाँ ने अपनी पगड़ी जमीन पर दे मारी और कहा—ऐ बादशाह, इस नालायक की तारीफ ने तो मेरा सारा परिश्रम ही व्यर्थ कर दिया।

अब्दुल मलिकखाँ का भी हाल सुन लीजिए। इन्होंने एक पद्य में अपने नाम की फब्ती आप उड़ाई थी और उसे दरबारी मुहर के नगीने पर खुदवाकर अपने आपको बदनाम किया था। भारतीय कवि मुल्ला शीरीं ने इनकी प्रशंसा में एक कसीदा कहा था जो आदि से अंत तक श्लिष्ट था।

हुसैनखाँ टुकड़िया

यह सरदार नौरतन की श्रेणी में आने के योग्य नहीं है; लेकिन यह अपने धर्म का पक्का अनुयायी था और इसके विचार ऐसे थे जिनसे मालूम होता है कि उस समय के सीधे सादे मुसलमानों की रहन सहन कैसी थी। सबसे बढ़कर बात यह है कि मुल्ला साहब के विचारों और वर्णनों से इसका बड़ा संबंध है। जहाँ इसका जिक्र आता है, बड़े प्रेम से लिखते हैं। मआसिर उल् उमरा से मालूम होता है कि यह वीर अफगान पहले बैरमखाँ खानखानाँ का नौकर हुआ और उसी समय से हुमायूँ के साथ था। जिस समय इसने ईरान से आकर कंधार पर घेरा डाला और विजय पाई, उस समय वीरता इसे हर युद्ध में बेधड़क करके आगे बढ़ाती रही और परिश्रम इसका पद बढ़ाता रहा। महदी कासिमखाँ एक प्रतिष्ठित सरदार था जो इसका मामा था; और इससे उसकी कन्या का भी विवाह हुआ था।

अकबर के शासन काल में भी यह विश्वसनीय रहा। जब सिकंदर सूर को अकबर के लश्कर ने दबाते दबाते जालंधर के पहाड़ों में घुसेड़ दिया और फिर भी उसका पीछा न छोड़ा, तब सिकंदर मानकोट के किले में बैठ गया था। सब अमीर रोज लड़ते थे और अपनी अपनी योग्यता दिखलाते थे। उस समय उन युद्धों में इस वीर ने वह वह काम किए कि रुस्तम भी होता तो प्रशंसा करता। इसका भाई हसनखाँ एक कदम

और आगे बढ़ गया और नाम पर अपनी जान निछावर कर दी। हुसैनखाँ ने वह वह तलवारें मारीं कि इधर से अकबर और उधर से सिकंदर दोनों देखते थे और धन्य धन्य करते थे। बादशाह दिन पर दिन उसे अच्छे और उपजाऊ इलाके जागीर में देते थे। इन आक्रमणों में इसका भाई जान निछावर करनेवाले वीरों में सम्मिलित होकर इस संसार से प्रस्थान कर गया। जब सन् ९६५ हिजरी में इस युद्ध के उपरांत बादशाह हिंदुस्तान की ओर चले, तब इसे पंजाब का सूबा प्रदान किया।

जब ये लाहौर के हाकिम थे, तब एक दिन बड़ी दिल्लगी हुई। एक लंबी दाढ़ीवाला भला आदमी इनके दरबार में आया। ये इसलाम के पक्षपाती उसका स्वागत करने के लिये उठकर खड़े हो गए। कुशल-प्रश्न से मालूम हुआ कि वह हिंदू है। उस दिन से आज्ञा दी गई कि जो हिंदू हों, वे कंधे के पास एक रंगीन कपड़े का टुकड़ा टँकवाया करें। लाहौर भी एक विलक्षण स्थान है। वहाँ के लोगों ने इनका नाम टुकड़िया रख दिया। इससे यह मालूम होता है कि जिस तरह आजकल पैवंद को पंजाब में टाकी कहते हैं, उस तरह उन दिनों उसे टुकड़ा कहते थे।

सन् ९६६ हि० में ये इंदरी से आगरे में आए और कई प्रसिद्ध सरदारों के साथ सेनाएँ लेकर रणथंभौर पर आक्रमण करने गए। सोपर नामक स्थान पर छावनी पड़ी। बहादुर

पठान धावे का शेर था। निरंतर ऐसे आक्रमण किए कि राणा सुरजन किले में घुस गया। यह उसे दबा रहा था कि खानखानाँ के साथ संसार ने धोखा किया। दुनिया का सारा रंग ढंग ही बदलता हुआ दिखाई देने लगा। जिन लोगों के रंग जमते जाते थे, उन लोगों में पहले से ही लाग डाँट चली आती थी; जैसे सादिक मुहम्मदखाँ आदि। इसलिये इसका दिल टूट गया और उस आक्रमण को अपूर्ण छोड़कर ग्वालियर चला आया। मालवे जाने का विचार था कि खानखानाँ ने आगरे से पत्र लिखा और अपने पास बुला भेजा। कठिन समय में कोई किसी का साथ नहीं देता। पहले बड़े बड़े सरदार खानखानाँ का पल्ला पकड़े रहते थे। उनमें से पचीस तो पंजहजारी थे। बाकी की संख्या आप स्वयं समझ लें। उनमें से केवल छः अमीर ऐसे निकले जिन्होंने बात पर जान और माल निछावर करके खानखानाँ का साथ दिया। उन्हीं में से एक यह हुसैनखाँ भी था; और एक शाह कुलीखाँ महरम था।

जब गनाचूर के मैदान में खानखानाँ का अतकाखाँ की सेना से सामना हुआ तो निष्ठावान् साथियों ने खूब खूब जौहर दिखलाए। चार वीर सरदार युद्ध-क्षेत्र में घायल होकर गिरे और शाही सेना के हाथ गिरिफ्तार हो गए। इन्हीं में उक्त खाँ भी था। एक घाव इसकी आँख पर लगा था। वह आँख का घाव क्या था वीरता के चेहरे पर घाव के रूप में

आँख थी। महदी कासिमखाँ और उसका पुत्र दोनों दरबार में बहुत विश्वसनीय थे। और जान पड़ता है कि बादशाह भी हुसैनखाँ के निष्ठावाले गुण से भली भाँति परिचित था, इसी लिये इससे प्रेम रखता था। साथ ही वह उन मुसाहबों से भी भली भाँति परिचित था जिनकी नीयत अच्छी नहीं थी। इसलिये हुसैनखाँ को उसके साले के सपुर्द कर दिया। इसमें अवश्य यही उद्देश्य था कि यह अशुभचिंतकों की बुराइयों से बचा रहे। जब यह अच्छा हुआ तब दरबार की सेवाएँ करने लगा। थोड़े दिनों बाद इसे पतियाली का इलाका मिला जो गंगा के किनारे था। अमीर खुसरो का जन्म इसी स्थान पर हुआ था।

सन् ९७४ हि० में महदी कासिमखाँ हज को चले। हुसैनखाँ उसका भानजा भी होता था और दामाद भी। अपनी धार्मिक निष्ठा के कारण यह उन्हें समुद्र के किनारे तक पहुँचाने के लिये गया। लौटते समय मार्ग में इसने देखा कि तैमूर वंश के इब्राहीम हुसैन मिरजा आदि शाहजादों ने उधर के शहरों और जंगलों में आफत मचा रखी है। एक स्थान पर शोर मचा कि उक्त शाहजादा अपनी सेना लिए लूट मार करता चला आ रहा है। हुसैनखाँ के साथ कोई युद्ध-सामग्री या सेना आदि तो थी ही नहीं; इसलिये उसने मुकरबखाँ नामक एक दक्खिनी सरदार के साथ सतवास नामक स्थान में जाकर शरण ली। किले में कोई रसद नहीं थी,

इसलिये घोड़ों और ऊँटों के मांस तक की नौबत पहुँची। सब काटकर खा गए। मुकरबखाँ को कहां से सहायता न पहुँची। इब्राहीम मिरजा संधि के सँदेसे भेजा करता था, पर किले-वालों के सिर पर वीरता खेल रही थी। वे किसी प्रकार संधि करने के लिये राजी ही नहीं होते थे। उधर मुकरबखाँ का बाप और भाई दोनों हँडिया नामक स्थान में घिरे हुए थे। मिरजा की सेना ने हँडिया को तोड़ डाला और बुड्ढे का सिर काटकर भेज दिया। मिरजा ने वही सिर भाले पर चढ़ाकर मुकरबखाँ को दिखलाया और किलेवालों से कहा कि मुकरबखाँ के घरवालों की तो यह दुर्दशा हुई। तुम लोग किस भरोसे पर लड़ते हो? हँडिया के ठीकरे तो यह मौजूद हैं। मुकरबखाँ ने विवश होकर शहर उसके हवाले कर दिया और स्वयं भी जाकर उसे सलाम किया। हुसैनखाँ को भी अभय वचन दिया और शपथ खाकर बाहर निकाला। यह एकरुखा बहादुर अपनी बात का पूरा था। किसी तरह न माना और उसके सामने न गया। इसने सोचा कि अपने बादशाह के विद्रोही को सलाम करना पड़ेगा। उसने बहुत कहा कि तुम मेरे साथ रहा करो; पर इससे भला कब ऐसा हो सकता था! अंत में उसने आज्ञा दे दी कि जहाँ जी चाहे, चले जाओ। अकबर को सब समाचार पहले ही मिल चुके थे। जिस समय यह दरबार में पहुँचा, उस समय खानजमाँ वाली समस्या उपस्थित थी। उस समय

.क़द्रदानी और दिलदारी के बाजार गरम थे। इसलिये इन पर भी बादशाह की बहुत कृपा हुई। किले में बंद रहने के कारण यह बहुत दरिद्र हो गया था और दशा बहुत खराब हो गई थी। सन् ९७४ हि० में तीन हजारी मंसब और शम्साबाद का इलाका भी मिला। लेकिन दानशीलता की अव्यवस्था इसका हाथ सदा तंग रखती थी। वह यहाँ अपने इलाके का प्रबंध देख रहा था और सेना ठीक कर रहा था कि अकबर ने खानजमाँ पर चढ़ाई कर दी। यह बात तीसरी बार हुई थी। इस बार अकबर का विचार था कि इनका बिलकुल फैसला ही कर दिया जाय। इस आक्रमण में जितनी फुरती थी, उतनी ही गंभीरता और दृढ़ता भी थी। मुल्ला साहब लिखते हैं कि पहले लश्कर की हरावली इसी हुसैनखाँ के नाम हुई थी; परंतु यह सतवास से किलेबंदी उठाकर आया था और दरिद्रता के कारण इसकी अवस्था बहुत खराब हो रही थी, इसलिये इसे कुछ विलंब हो गया। बादशाह ने इसके स्थान पर कबाखाँ गंग को हरावल नियुक्त किया। मुल्ला साहब कहते हैं कि मैं उन दिनों उसके साथ था। मैं शम्साबाद में ठहर गया और वह वहाँ से आगे बढ़ गया।

इस आक्रमण में हुसैनखाँ के सम्मिलित न होने का वही कारण है जो मुल्ला साहब ने बतलाया है। लेकिन एक बात और भी हो सकती है। खानजमाँ और अलीकुलीखाँ आदि सब बैरमखानी संप्रदाय के थे। हुसैनखाँ एकरुखा सिपाही

था और वह यह बात भली भाँति जानता था कि ईर्ष्यालु झगड़ा लगानेवालों ने खानजमाँ को व्यर्थ ही विद्रोही बना दिया है। इसलिये यह भी संभव है कि वह इस आक्रमण में सम्मिलित न होना चाहता हो और अपने निर्दोष मित्र पर तलवार खींचने की इसकी इच्छा न रही हो। और देखने की बात यह है कि वह खानजमाँ के साथ होनेवाले किसी युद्ध में सम्मिलित नहीं हुआ।

मीर मग्रज उल् मुल्क के साथ बहादुरखाँ की लड़ाई में सम्मिलित थे। मुहम्मद अमीन दीवाना भी था जो स्वयं बैरमखाँ का पाला हुआ हरावल का सरदार था। हुसैनखाँ भी अपनी सेना में उपस्थित था। मुल्ला साहब लिखते हैं कि इस युद्ध में बड़े बड़े वीर उपस्थित थे; लेकिन मग्रज उल् मुल्क के दुष्ट स्वभाव और लाला टोडरमल के रूखेपन से सब लोग बहुत दुःखी थे। उन लोगों ने लड़ाई में तन नहीं दिया; नहीं तो बीच मैदान में इस प्रकार दुर्दशा न होती।

सन् ९७७ हि० में लखनऊ का इलाका इसकी जागीर में था। उस समय इसका ससुर महदी कासिम हज से लौटा। बादशाह ने लखनऊ महदी कासिमखाँ को दे दिया। हुसैन-खाँ यह नहीं चाहता था कि यह इलाका मेरी जागीर में से निकल जाय। इसकी यह इच्छा थी कि महदी कासिमखाँ स्वयं बादशाह से यह कहें कि मैं लखनऊ का इलाका नहीं लेना चाहता। लेकिन कासिमखाँ ने वह इलाका ले लिया।

.हुसैनखाँ बहुत नाराज हुआ। यद्यपि यह महदी कासिमखाँ की बेटी को बहुत चाहता था, पर फिर भी अपने ससुर को जलाने के लिये इसने अपने चाचा की बेटी से निकाह कर लिया। उसे तो अपने पास पतियाली में रखा और कासिम-खाँ की लड़की को खैराबाद भेज दिया जहाँ उसके भाइयों की नौकरी थी। साथ ही अपनी नौकरी से भी इसका चित्त हट गया और इसने कहा कि अब तो मैं ईश्वर की नौकरी करूँगा और जहाद करके धर्म की सेवा करूँगा।

हुसैनखाँ ने कहीं सुन लिया था कि यदि अवध के इलाके से शिवालिक पहाड़ में प्रवेश करें तो ऐसे ऐसे मंदिर और शिवालय मिलते हैं जो सोने और चाँदी की ईंटों से चुने हुए होते हैं। इसलिये यह सेना तैयार करके पहाड़ की तराई में चला। पहाड़ियों ने अपने साधारण पेंच खेले। उन्होंने गाँव छोड़ दिए और थोड़ी बहुत मार पीट करके ऊँचे ऊँचे पहाड़ों में घुस गए। हुसैनखाँ बढ़ता हुआ वहाँ भी जा पहुँचा जहाँ सुलतान महमूद का भानजा पीर मुहम्मद शहीद हुआ था। वहाँ शहीदों का एक मकबरा भी बना हुआ था। उसने शहीदों की पवित्र आत्माओं पर फातिहा पढ़ा। कबरें टूट फूट गई थीं। उन सबका चबूतरा बाँधा और आगे बढ़ा। दूर तक निकल गया। जाता जाता जजायल नामक स्थान पर जा पहुँचा और वहाँ तक चला गया जहाँ से राजनगर अजमेर दो दिन का रास्ता रह गया।

वहाँ सोने और चाँदी की खानें हैं और रेशम, कस्तूरी तथा तिब्बत के अनेक उत्तम और विलक्षण पदार्थ होते हैं। इस प्रांत में यह प्राकृतिक विशेषता है कि नगाड़े की दमक, मनुष्यों के कोलाहल और घोड़ों के हिनहिनाने से बरफ पड़ने लगती है। उस समय भी यही आफत बरसने लगी। घास के पत्ते तक अप्राप्य हो गए। रसद आने का कोई मार्ग ही न था। भूख के मारे लोगों के होश हवास गुम हो रहे थे। लेकिन वीर हुसैनखाँ में दृढ़ता ज्यों की त्यों थी। उसने लोगों को बहुत उत्साहित किया, जवाहिरात और खजानों के लालच दिए। सोने चाँदी की ईंटों की कहानियाँ सुनाईं। लेकिन सिपाही हिम्मत हार चुके थे, इसलिये किसी ने पैर आगे न बढ़ाया। बल्कि वे लोग जबरदस्ती स्वयं उसी के घोड़े की बाग पकड़कर उसे वापस खींच लाए। लौटते समय पहाड़ियों ने रास्ता रोका। वे चारों ओर से उमड़ आए और पहाड़ों की चोटियों पर चढ़ खड़े हुए। वहाँ से वे लोग तीर बरसाने लगे। उन तीरों पर जहरीली हड्डियाँ चढ़ी हुई थीं। पत्थरों की वर्षा तो उन लोगों के लिये कोई बात ही नहीं थी। बड़े बड़े बहादुर सूरमा शहीद हो गए। जो लोग जीते लौटे, वे घायल थे। पाँच पाँच छः छः महीने बाद वे लोग भी उसी जहर के प्रभाव से मर गए।

हुसैनखाँ फिर दरबार में हाजिर हुआ। अकबर को भी उसकी दशा देखकर दुःख हुआ। हुसैनखाँ ने निवेदन

किया कि मुझे कांतगोला का इलाका जागीर में मिल जाय, क्योंकि वह पहाड़ की तराई में है। मैं उन लोगों से बदला लिए बिना न छोड़ूँगा। प्रार्थना स्वीकृत हुई। उसने भी कई बार पहाड़ की तराई को हिला दिया, लेकिन अंदर न जा सका। अपने जिन पुराने सिपाहियों को वह पहली बार बचाकर लाया था, अबकी बार उन्हें मौत का जहरीला पानी पिलाया। पहाड़ का पानी ऐसा लगा कि बिना लड़े मर गए।

सन् ९८० हि० में खान आजम की सहायता के लिये अकबर स्वयं चढ़कर गया था। युद्धक्षेत्र का चित्र आप लोग देख ही चुके हैं। रुस्तम और अस्फंदयार की लड़ाइयाँ आँखों के सामने फिर जाती थीं। मुल्ला साहब लिखते हैं कि इस अवसर पर हुसैनखाँ सबसे आगे था। अकबर उसके तलवार के हाथ देख देखकर प्रसन्न हो रहा था। उसी समय उसे बुलवाया और अपनी वह तलवार उसे प्रदान की जिसके काट और घाट की उत्तमता के कारण और शत्रुओं की हत्या करने के गुण के कारण "हलाकी" (हिंसक) नाम रखा गया था।

इब्राहीम हुसैन मिरजा लूट मार करता हुआ भारत की ओर आया। उसने सोचा था कि अकबर तो गुजरात में है और इधर मैदान खाली है। संभव है कि कुछ काम बन जाय। उस समय हुसैनखाँ की जागीर कांतगोला ही थी; और वह पतियाली तथा बदाऊँ के विद्रोहियों को दबाने के लिये

इधर आया हुआ था। इब्राहीम के आने से मानो भारत में भूचाल आ गया। मखदूम उल् मुल्क और राजा भाड़ामल फतहपुर में प्रधान राजप्रतिनिधि थे। अचानक उनका पत्र हुसैनखाँ के पास पहुँचा कि इब्राहीम दो जगह परास्त होकर दिल्ली के पास जा पहुँचा है। दिल्ली राजधानी है और खाली पड़ी है। आपको उचित है कि आप तुरंत वहाँ पहुँच जायँ। यह तो ऐसे कामों का आशिक ही था। पत्र देखते ही उठ खड़ा हुआ। मार्ग में समाचार मिला कि औलेर का राजा, जो अकबर के राज्यारोहण के समय से ही सदा आगरे के आस पास लूट मार और उपद्रव करता रहता है, डाकू बना फिरता है और बड़े बड़े नामी अमीरों पर आक्रमण करके अच्छे अच्छे वीरों के प्राण ले चुका है, इस समय नौराहे के जंगल में छिपा हुआ बैठा है। उस दिन रमजान की १५ वीं तारीख थी। हुसैनखाँ और उसके लश्कर के सब आदमी रोजे से थे और बेखबर चले जा रहे थे। ठीक दोपहर का समय था कि अचानक बंदूक का शब्द सुनाई पड़ा। तुरंत लड़ाई छिड़ गई। औलेर का राजा जंगलियों और गँवारों को अपने साथ लिए हुए था। वह और उसके सब साथी पेड़ों पर तख्ते बाँधकर बैठ गए और जंगलों तथा पहाड़ों को तीरों और गोलियों के मुँह पर धर लिया।

लड़ाई छिड़ते ही हुसैनखाँ की जाँघ के नीचे गोली लगी। वह गोली रान में दौड़ गई थी और अंदर जाकर घोड़े की

जीन पर उसने निशान कर दिया था। उसे गश आ गया था और वह गिरना ही चाहता था कि वीरता ने उसे सँभाल लिया। मुल्ला अब्दुल कादिर भी साथ थे। वह लिखते हैं कि मैंने पानी छिड़का। आस पास के लोगों ने समझा कि रोजे के कारण ही यह दुर्बलता है। मैंने बाग पकड़कर चाहा कि किसी वृक्ष की ओट में ले जाऊँ। आँखें खोलीं और अपने स्वभाव के विरुद्ध माथे पर बल लाकर मुझे देखा और झुँझलाकर कहा कि यह बाग पकड़ने का कौन सा अवसर है। बस उतर पड़ो। उसे वहीं छोड़कर सब लोग उतर पड़े। ऐसी घमासान लड़ाई हुई और दोनों ओर से इतने अधिक आदमी मारे गए कि कल्पना भी उनकी गिनती में असमर्थ है। संध्या के समय इस छोटी सी टुकड़ी पर ईश्वर ने दया की। विजय की वायु चली। विरोधी लोग इस प्रकार सामने से हटने लगे जिस प्रकार बकरियों के रेवड़ चले जाते हैं। सिपाहियों के हाथों में शक्ति न रह गई। जंगल में शत्रु और मित्र गटपट हो गए। दोनों एक दूसरे को पहचानते थे, पर मारे दुर्बलता के किसी का हाथ नहीं उठता था। कुछ दृढ़ सेवकों ने जहाद का पुण्य भी लूटा और रोजा भी रखा। इसके विरुद्ध जब उस फकीर की दुर्बलता बहुत अधिक बढ़ गई, तब उसने एक घूँट पानी पीकर गला तर किया। कुछ बेचारों ने तो प्यासे रहकर ही जान दे दी। अच्छे लोग थे जिन्होंने अच्छी शहादत पाई।

बुड्ढा सरदार हुसैनखाँ विजयी होकर कांतगोला चला गया। वहाँ वह अपना सब सामान ठीक करना चाहता था और इलाके का प्रबंध भी करना चाहता था। इतने में सुना कि हुसैन मिरजा लखनऊ के प्रांत में संभल से पंद्रह कोस पर है। सुनते ही पालकी पर बैठकर उसी ओर बढ़ा। मिरजा बाँस बरेली को कतरा गया। यह उसके पीछे बढ़ा। मिरजा भी खाँ की वीरता से भली भाँति परिचित था। लखनऊ के पास पहुँचने में केवल सात कोस रह गया। यदि लड़ाई होती तो ईश्वर जाने भाग्य का पाँसा किस बल पड़ता। परंतु उस समय हुसैनखाँ और उसके लश्कर की जो दशा थी, उसके विचार से मिरजा ने भूल ही की जो न आ पड़ा और बचकर निकल गया। सच तो यह है कि उसकी धाक काम कर गई।

हुसैनखाँ संभल गया। आधी रात थी। नगाड़े की आवाज पहुँची। वहाँ कई पुराने सरदार लश्कर लिए हुए उपस्थित थे। उन्होंने समझा कि मिरजा आ पहुँचा। सब लोग किले के दरवाजे बंद करके अंदर बैठ रहे। मारे आतंक के उनके हाथ पैर फूल गए। अंत में उसने स्वयं किले के नीचे खड़े होकर पुकारा—हुसैनखाँ है। तुम्हारी सहायता के लिये आया है। उस समय उन्हें धैर्य हुआ और वे स्वागत करने के लिये निकलकर बाहर आए। दूसरे दिन सब अमीरों को एकत्र करके परामर्श किया। उस समय गंगा के किनारे अहार के किले में और भी कई अमीर सेनाएँ लिए बैठे थे।

सबकी सम्मति थी कि वहीं चलकर उन लोगों के साथ मिलना चाहिए और वहाँ जो कुछ परामर्श निश्चित हो, वही किया जाय। हुसैनखाँ ने कहा—"वाह! मिरजा थोड़े से आदमियों के साथ इतने दूर देश में आया है। तुम्हारे पास इतनी सेना और बीसियों पुराने सरदार इस किले में हैं। उधर अहार के किलेवाले सरदार भी हैं जो असंख्य सैनिकों को लेकर चूहे की तरह बिलों में छिपे बैठे हैं। अब दो ही बातें हो सकती हैं। या तो तुम लोग गंगा पार उतर चलो और अहारवाले पुराने वीरों को साथ लेकर मिरजा का मार्ग रोको जिसमें वह पार न उतर सके। मैं पीछे से आता हूँ। फिर जो कुछ ईश्वर करेगा, वह होगा। या मैं झटपट पार उतरा जाता हूँ। तुम उसे पीछे से दबाओ। शाहंशाह का नमक इसी तरह अदा होना चाहिए।" लेकिन उनमें से एक भी इस बात पर राजी न हुआ। विवश होकर हुसैनखाँ उन्हीं सवारों को, जो उसके साथ थे, लेकर भागा भाग अहार पहुँचा। वहाँ के अमीरों को भी उसने बाहर निकालना चाहा। जब वे बाहर आए तो उन्हें एकत्र करके बहुत फटकारा और कहा कि शत्रु इस समय हमारे देश में आ पड़ा है। और यहाँ इतनी बद-हवासी छाई है कि मानो लश्कर में खरगोश आ गया है। अगर तुम लोग जल्दी करोगे तो कुछ काम हो जायगा। वह जीता ही हाथ आ जायगा और विजय तुम्हारे नाम होगी। उन्होंने कहा कि हमें तो दिल्ली की रक्षा करने की आज्ञा मिली

था। वहाँ से उसे रेलते हुए हम लोग यहाँ तक ले आए। अब व्यर्थ उसका सामना करने की क्या आवश्यकता है। ईश्वर जाने क्या परिणाम हो।

उधर मिरजा अमरोहे को लूटता हुआ चौमाले के घाट से गंगा पार हुआ और लाहौर का रास्ता पकड़ा। हुसैनखाँ-मिरजा सब अमीरों पर अपनी साम्राज्य-शुभाकांक्षा प्रमाणित करता हुआ उनसे अलग हुआ और गढ़मुक्तेश्वर पर इस तरह झपट-कर आया कि शत्रु से भिड़ जाय। अमीरों में से तुर्क सुभान कुली और फर्रुख दीवाने ने उसका साथ दिया था। पीछे अहार-वाले अमीरों के भी पत्र आए कि जरा हमारी प्रतीक्षा करना; क्योंकि नौ से ग्यारह अच्छे होते हैं। मिरजा के सामने मैदान खाली था। जिस तरह खाली शतरंज में रुख फिरता है, उसी तरह उस मैदान में मिरजा फिरता था; और बसे हुए शहरों को लूटता मारता और बरबाद करता हुआ चला जाता था। अंबाले के पास पायल नामक स्थान में निर्दोष व्यक्तियों के बाल-बच्चों की दुर्दशा हद से बढ़ गई। हुसैनखाँ पीछे पीछे दबाए हुए चला आता था और उसके पीछे दूसरे अमीर थे। सरहिंद में आकर सब रह गए। अकेला हुसैनखाँ ही बढ़ता हुआ चला आया। उस समय उसके साथ सौ से अधिक सवार नहीं थे। लोधियाने में उसे समाचार मिला कि लाहौरवालों ने दरवाजे बंद कर लिए। यह भी सुना कि मिरजा शेरगढ़ और दीपालपुर की ओर चला गया।

बैरमखाँ का भानजा हुसैनकुलीखाँ काँगड़े को घेरे पड़ा था। उसने मिरजा के आने का समाचार सुनते ही पहाड़ियों से संधि करने का ढंग निकाला। उन्होंने भी स्वीकृत कर लिया। बहुत सा धन, जिसमें पाँच मन सोना भी था, उनसे लिया और वचन ले लिया कि बादशाह के नाम का सिक्का और खुतबा जारी रहेगा। उसके साथ कई नामी सरदार थे जिनमें राजा बीरबल भी सम्मिलित थे। सबको लेकर बाढ़ के प्रवाह की तरह नीचे उतरा। हुसैनखाँ सुनते ही तड़प गया और शपथ खाई कि जब तक मैं हुसैनकुलीखाँ से न जा मिलूँ, तब तक रोटी हराम है। यह पागलपन, जो कि बुद्धिमानों की बुद्धिमत्ता से हजार दरजे बढ़कर है, उसे उड़ाए लिए जाता था। शेरगढ़ के इलाके में जहनीवाल नामक एक स्थान है। वहाँ शेख दाउद रहते थे जो बड़े पहुँचे हुए फकीर थे। वहाँ उनसे भेंट की। जब भोजन आया, तब उन्होंने आपत्ति की। उन्होंने कहा कि मित्रों का दिल दुखाना मूर्खता है और शपथ का प्रायश्चित्त करना सहज है। इस धर्मनिष्ठ ने आज्ञा के पालन में ही अपनी बड़ाई समझी और उसी समय दासों को स्वतंत्र करके भोजन किया।

इस यात्रा में फाजिल बदाऊनी भी साथ थे। वह कहते हैं कि रात को सब लोग वहीं रहे और कुल रसद शेख के यहाँ से मिली। मैं लाहौर से तीसरे दिन वहाँ पहुँचा और उन फकीर महोदय की सेवा में वह बातें आँखों से देखीं जिनका

कभी अनुमान भी नहीं किया गया था। जी में आया था कि संसार का सब काम काज छोड़कर उनके यहाँ झाड़ू दिया करूँ। परंतु आज्ञा हुई कि अभी हिंदुस्तान जाना चाहिए। मैंने ऐसी बुरी मानसिक दशा में वहाँ से प्रस्थान किया जैसी ईश्वर किसी को न करे। चलते समय अंदर ही अंदर आप से आप रुलाई आती थी। जब श्रीमान् को इस बात का समाचार मिला, तब यद्यपि किसी को वहाँ तीन दिन से अधिक ठहरने की आज्ञा नहीं थी, पर फिर भी मुझे चौथे दिन भी वहाँ रखा और मुझे बहुत से लाभ पहुँचाए। ऐसी ऐसी बातें कहीं कि मन अब तक मजे लेता है।

हुसैनकुलीखाँ मिरजा से छुरी कटारी हुआ ही चाहता था। हुसैनखाँ उसके पीछे था। तलुंबा वहाँ से एक पड़ाव था। उसने हुसैनखाँ को पत्र लिखा कि मैं चार कोस का धावा मारकर इस स्थान तक आ पहुँचा हूँ। यदि इस विजय में मुझे भी सम्मिलित कर लो और एक दिन के लिये लड़ाई रोक रखो तो इससे मुझ पर तुम्हारा प्रेम ही प्रकट होगा। वह भी आखिर बैरमखाँ का भानजा था। उसने ऊपर से तो कह दिया कि यह तो बड़ी प्रसन्नता की बात है; और उधर घोड़े को एक कमची और लगाई। उसी दिन मारा-मार तलुंबे के मैदान में, जहाँ से मुलतान चालीस कोस है, तलवारें खींचकर जा पड़ा। मिरजा को उसके आने की खबर भी न थी। वह शिकार खेलने के लिये बाहर गया हुआ

था। सेना के कुछ लोग तो कूच की तैयारी कर रहे थे और कुछ लोग योंही इधर उधर बिखरे हुए थे। युद्ध-क्षेत्र में पहुँचकर लड़ने की कोई व्यवस्था न हो सकी। मिरजा का छोटा भाई आगे बढ़कर हुसैनकुलीखाँ की सेना पर आ पड़ा। वहाँ की जमीन ऊबड़खाबड़ थी, इसलिये उसका घोड़ा ठोकर खाकर गिर पड़ा। नवयुवक पकड़ा गया। इतने में मिरजा शिकार खेलकर लौटा। यद्यपि उसने वीरों की भाँति अनेक प्रयत्न किए और सूरमाओं के उपयुक्त आक्रमण किए, पर कुछ भी न हो सका। अंत में मिरजा भाग निकला। दूसरे दिन हुसैनखाँ पहुँचा। हुसैनकुलीखाँ ने उसे युद्धक्षेत्र दिखलाया और हर एक के जी तोड़कर परिश्रम करने का हाल सुनाया। हुसैनखाँ ने कहा कि शत्रु जीता निकल गया है। तुम्हें उसका पीछा करना चाहिए था, जिसमें उसे जीता पकड़ लेते। अभी कार्य अपूर्ण है। उसने कहा कि मैं नगरकोट से धावा मारकर आया हूँ। लश्कर को वहाँ बहुत कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी थीं। अब लोगों में शक्ति नहीं रह गई। यही बड़ी भारी विजय हुई। इस समय यहाँ लोगों का हाल कुछ और ही हो रहा है। हुसैनखाँ इस आशा पर कि शायद मिरजा को जीते जी पकड़ने की भी नौबत आ जाय और पाँच सौ कोस के धावे का परिश्रम और कठिनाइयाँ भूल जायँ, उससे विदा होकर चल पड़ा। अपने थके माँदे आदमियों को हाथी और नगाड़े समेत लाहौर भेज दिया और स्वयं बेचारे मिरजा

के पीछे पीछे चला। जिस स्थान पर व्यास और सत-लज का संगम है, उस स्थान पर अभागे मिरजा पर रात के समय जंगल के डाकुओं ने छापा मारा। एक तीर उसकी गुद्दी में ऐसा लगा कि मुँह में निकल आया। जब उसकी दशा बहुत खराब हो गई, तब उसने भेस बदला। उसके साथी साथ छोड़कर अलग हो गए। वे सब लोग जिधर गए, उधर ही मारे गए। मिरजा ने दो तीन पुराने सेवकों के साथ फकीरों का भेस बदला और शेख जकरिया नामक एक फकीर के पास शरण ली। वह भी पूरे और पहुँचे हुए थे। ऊपर से तो उन्होंने दया दिखलाई और अंदर अंदर मुलतान के हाकिम सईदखाँ को समाचार भेज दिया। उसने झट अपने दास को भेजा। वह मिरजा और उसके साथियों को कैद करके ले गया। हुसैनखाँ उसकी तलाश में इधर उधर घूम रहा था। उसकी गिरिफ्तारी का समाचार सुनते ही मुल-तान पहुँचा और सईदखाँ से मिला। उसने कहा कि मिरजा से भी मिलो। हुसैनखाँ ने कहा कि यदि मैं भेंट के समय उसे झुककर सलाम करूँ तो शाहनशाही के व्यवहार के विरुद्ध होगा। और यदि सलाम नहीं करूँगा तो मिरजा अपने दिल में कहेगा कि इस डाकू को देखो। जब सतवास के घेरे में से मैंने इसे अभय-दान देकर छोड़ा था, तो इसने किस तरह झुककर सलाम किए थे। आज जब हम इस दुर्दशा में हैं तो यह हमारी परवाह भी नहीं करता। जब मिरजा ने यह

बेतकल्लुफी की बात सुनी तो कहा कि आइए, बिना तसलीम किए ही मिलिए। हमने आपको क्षमा कर दिया। लेकिन फिर भी जब हुसैनखाँ उसके सामने पहुँचा, तब उसने मिरजा को झुककर सलाम किया। मिरजा ने दुःख प्रकट करते हुए कहा कि हमने तो कभी विद्रोह और युद्ध का विचार भी नहीं किया था। जब जान पर बन आई तो सिर लेकर पराए देश में निकल आए। लेकिन यहाँ भी रक्षा नहीं हुई। भाग्य में तो यह दुर्दशा बदी थी। क्या अच्छा होता कि हम तेरे सामने से भागते, क्योंकि तू हमारे ही वर्ग का था।

हुसैनखाँ वहाँ से अपनी जागीर काँतगोले पहुँचा। वहाँ से होता हुआ वह दरबार में पहुँचा। उधर से हुसैनकुलीखाँ भी दरबार में पहुँचा। मसऊहुसैन मिरजा की आँखों में टाँके लगाए और बाकी लोगों में से हर एक के मुँह पर उसके पद और मर्यादा के अनुसार तरह तरह की खालें सींगों समेत चढ़ाईं। किसी के मुँह पर गधे की, किसी के मुँह पर सूअर की, किसी के मुँह पर कुत्ते की और किसी के मुँह पर बैल की खाल सींगों समेत चढ़ाई और अजब मसखरेपन के साथ दरबार में हाजिर किया। प्रायः तीन सौ आदमी थे। मिरजा के साथियों में प्रायः सौ आदमी थे जो दावे के बहादुर थे और जिनके नामों के साथ खान और बहादुर की पदवियाँ थीं। हुसैनखाँ उन सबको अपनी शरण में करके जागीर पर ले गया। वहाँ उसे समाचार मिला कि इन लोगों की खबर

दरबार में पहुँच गई है। इसलिये हुसैनखाँ ने उन सब लोगों को अपने यहाँ से छोड़ दिया। हुसैनकुलीखाँ बैरमखाँ का भान्जा था। जब उसने युद्ध का विस्तृत विवरण सुनाया तब इन लोगों के नाम भी लिए। पर साथ ही यह भी कहा कि कैदियों के संबंध में मेरी यह प्रार्थना नहीं है कि इनकी हत्या की जाय। इसी लिये मैंने उन सबको हुजूर के सदके में छोड़ दिया है। अकबर ने भी कुछ नहीं कहा और हुसैनखाँ से भी कुछ न पूछा। हुसैनकुलीखाँ को उसकी नेकनीयती का फल मिला कि खानजहान की उपाधि मिली।

सन् ९८२ हि० में पटने पर चढ़ाई हुई थी। अकबर उस युद्ध की व्यवस्था में दिल जान से लगा हुआ था। मुनइमखाँ खानखानाँ का सेनापतित्व था। बादशाह भोजपुर के इलाके में दौरा करता फिरता था। कासिम अलीख़ाँ को भेजा कि जाकर अपनी आँखों से लड़ाई का हाल चाल देख आओ; और जो लोग जैसा काम करते हों, वह सब आकर मुझसे कहो। वह जाकर देख आया और आकर सब हाल कहा। जब हुसैनखाँ का हाल बादशाह ने पूछा, तब उसने कहा कि उसका भाई कोचकखाँ तो ठीक तरह से सेवा-धर्म का पालन कर रहा है। परंतु हुसैनखाँ काँतगोले से अवध में आकर लूटता फिरता है। बादशाह बहुत नाराज हुए। इसका परिणाम यह हुआ कि जब कुछ दिनों के बाद दौरा करते हुए बादशाह दिल्ली में पहुँचे, उस समय हुसैनखाँ भी पतियाली

श्रौर भैागाँव में श्राया हुश्रा था। सलाम करने के लिये हाजिर हुश्रा। पर मालूम हुश्रा कि उसका मुजरा बंद है श्रौर वह सेवा में सलाम करने के लिये उपस्थित नहीं हो सकता। साथ ही यह भी मालूम हुश्रा कि उसके संबंध में शहबाजिखाँ को श्राज्ञा मिली है कि उसे दौलतखाने की तनाब की सीमा से बाहर निकाल दो। इस पुराने जान निछावर करने-वाले सेवक को बहुत दुःख हुश्रा। इसके पास हाथी, ऊँट, घोड़े श्रादि श्रमीरी का जो कुछ सामान था, वह सब लुटा दिया। कुछ तो हुमायूँ के रोजे के मुजावरों को दे दिया, कुछ मदरसों श्रौर खानकाहों के गरीबों को बाँट दिया श्रौर श्राप गले में कफनी डालकर फकीर हो गया। उसने कहा कि हुमायूँ बादशाह ने ही मुझे नौकर रखा था श्रौर वही मेरी कदर जानता था। श्रब मेरा कोई नहीं रहा। श्रब मैं केवल हुमायूँ की कब्र पर झाड़ू दिया करूँगा। जब यह समाचार श्रकबर की सेवा में पहुँचा, तब वह दयालु हो गया। उसने स्वयं श्रपना शाल श्रौर साथ ही खास श्रपने तरकस में का तीर परवानगी के लिये दिया। साथ ही श्राज्ञा दी कि काँतगोला श्रौर पतियाली की जागीर पर श्रौर एक फसल तक पहले की ही भाँति नियुक्त रहे। ये दोनों जागीरें एक करोड़ बीस लाख दाम की होती थीं। जब दाग के लिये सवार हाजिर करेगा, तब वेतन के लिये उपयुक्त जागीर पावेगा। वह लखलुट मसखरा दस सवार

भी नहीं रख सकता था। किसी तरह वह समय बिताकर अपनी जागीर पर जा पहुँचा।

सन् ६८२ हि० में फाजिल बदाऊनी लिखते हैं कि हुसैनखाँ सिपाहीपेशा बहादुरों में से था। उसके साथ मेरा बहुत पुराना और घनिष्ठ संबंध था; और सच्चा तथा हार्दिक प्रेम था। दाग और महल्ले की सेवा सिपाही की गरदन तोड़नेवाली और सब सुखों को मिट्टी में मिलानेवाली है। अंत में वह सेवा भी न कर सका। इसलिये ऊपर से देखने में तो पागलों की भाँति पर अंदर से होशियारी के साथ अपनी जागीर पर से चल पड़ा। अपने उन खास खास साथियों को भी ले लिया जो आग की वर्षा या नदी की बाढ़ के सामने भी मुँह मोड़नेवाले नहीं थे और जो किसी दशा में भी उसका साथ नहीं छोड़ सकते थे। इलाकों के उन जमींदारों को, जिन्होंने कभी स्वप्न में भी जागीरदारों को नहीं देखा था, पैरों से रौंदता हुआ उत्तरी पहाड़ की ओर चल पड़ा। इसे जन्म से उस पहाड़ के प्रति बहुत अनुराग था। वहाँ की सोने और चाँदी की खानें इसकी आँखों के सामने फिर रही थीं और उसके विस्तृत हृदय में चाँदी और सोने के मंदिरों का बहुत शौक था।

बसंतपुर एक प्रसिद्ध स्थान है और बहुत ऊँचाई पर बसा है। जब हुसैनखाँ वहाँ पहुँचा, तब आस पास के जमींदारों और करोड़पतियों ने, जो उसके सामने चूहों की तरह बिलों में

छिपे हुए थे, यह प्रसिद्ध किया कि हुसैनखाँ विद्रोही हो गया है। इसी आशय के निवेदनपत्र अकबर की सेवा में भो पहुँचे। उसने कुछ अमीरों से पूछा। जमाने की वफादारी देखिए कि जो लोग उसके बहुत निकट के संबंधी थे, उन्होंने भी सच कहने से पहलू बचा लिया और जो कुछ बोले, बुरे ही बोले।

इधर तो उसके अपने संबंधी यह अपनापन दिखला रहे थे और उधर उसने बसंतपुर जा घेरा। वहाँ उसके बहुत से अनुभवी साथी काम आए। स्वयं उसे भी कंधे के नीचे भारी घाव लगा। वह विवश और विफल होकर लौटा और नाव पर चढ़कर गंगा के रास्ते गढ़मुक्तेश्वर पहुँचा। उसका विचार था कि पतियाली पहुँचकर अपने बाल बच्चों में जा रहे और अपनी चिकित्सा करे। मआसिर उल् उमरा में लिखा है कि मुनइमखाँ के पास चला था, क्योंकि वह उसका मित्र था और अकबर का पुराना बुड्ढा सेवक था। उसने सोचा था कि उसी के द्वारा मैं अपना अपराध क्षमा कराऊँगा। लेकिन सादिक मुहम्मदखाँ फुरती करके जा पहुँचा और बारहा नामक कस्बे में उसे जा पकड़ा। यह उनके नमकहलाल मित्र मुल्ला साहब ने लिखा है। पर अकबरनामे में अब्बुलफजल ने लिखा है कि हुसैनखाँ देशों को लूटता फिरता था। बादशाह सुनकर उस पर दोबारा नाराज हुए। एक सरदार को रवाना किया। उसकी मस्ती उतर गई और वह कुछ होश में आया। कुछ घाव के कारण भी वह हतोत्साह हो रहा था। किसी

तरह समझाने बुझाने से रास्ते पर आया। जो आवारे उसके साथ थे, वे शाही सेना का समाचार सुनते ही भाग गए। खान ने विचार किया कि बंगाल में चलकर अपने पुराने मित्र मुनइमखाँ खानखानाँ से मिलूँ और उसके द्वारा बादशाह से अपना अपराध क्षमा कराऊँ। गढ़मुक्तेश्वर के घाट से सवार होकर चलने ही लगा था कि बारा नामक स्थान पर पकड़ा गया।

सादिक मुहम्मदखाँ एक अमीर था जो भारत की विजय से बल्कि कंधार के युद्ध से अपने नाजुक मिजाज के कारण, और कुछ धार्मिक द्वेष के कारण भी, हुसैनखाँ से बुरा मानता था। बादशाह की आज्ञा के अनुसार वह उसी के यहाँ लाकर उतारा गया। उसकी चिकित्सा के लिये फतहपुर से शेख महना नामक एक चिकित्सक आया। उसने देखकर बादशाह की सेवा में निवेदन किया कि इसका घाव घातक है। हकीम जैन उलमुल्क को भेजा। मुझसे और उनसे यह पहला ही साबिका था। साथ ही छुट्टी लेकर मैं आया। भेंट की। पुराना प्रेम और उन दिनों की बातें स्मरण हो आईं। सब बातें मानों आँखों के सामने फिरने लगीं। आँसू भर आए। देर तक बातें होती रहीं। इतने में बादशाही जर्राह पट्टी बदलने के लिये आए। बालिश्त भर सलाई अंदर चली गई। जोर से कुरेदते थे कि देखें घाव कितना गहरा है। परंतु वह वीरों की भाँति सब सहन करता जाता था और त्योरी पर बल नहीं लाता था। मजे में मुसकराता था और बातें करता जाता

था। दुःख है कि वह अंतिम भेंट थी। जब हम फतहपुर में पहुँचे, तब चार दिन बाद सुना कि पहले दस्त आने लगे और फिर देहांत हो गया।

जिस उदार ने बड़े बड़े खजाने उपयुक्त पात्रों को प्रदान कर दिए, उसके पास मरने के समय कुछ भी न था जो उसके कफन और दफन में लगाया जाता। उन दिनों ख्वाजा मुहम्मद नाम के कोई बड़े और प्रसिद्ध पीर थे। उन्होंने बड़ी प्रतिष्ठा और सत्कार के साथ अपने स्थान पर पहुँचाया। वहाँ से उसका शव पतियाली में लाया गया और वहीं गाड़ा गया; क्योंकि वहाँ उसके और भी रिश्तेदार गाड़े गए थे। मुल्ला साहब ने गंज बख्शी कहकर सन् ६८५ हि० तारीख निकाली थी। फाजिल बदाऊनी लिखते हैं कि जिस दिन उसकी मृत्यु का समाचार मिला, उस दिन मीरअदल भक्खर के लिये प्रस्थान कर रहे थे। मैं उन्हें पहूँचाने के लिये गया था। उनसे यह हाल कहा। वे सुनते ही फूट फूटकर रोने लगे और बोले कि यदि कोई संसार में रहे तो उसी प्रकार रहे जिस प्रकार हुसैनखाँ।

संयोग यह कि मीरअदल से भी मेरी वही अंतिम भेंट थी। उन्होंने स्वयं भी कहा था कि सब मित्र चले गए। देखें फिर आपसे भी भेंट होती है या नहीं। अजब बात उनके मुँह से निकली थी। और अंत में वही हुआ भी।

फाजिल बदाऊनी ने इस वीर अफगान की धर्मनिष्ठा, उदारता और वीरता की इतनी अधिक प्रशंसा की है कि यदि इन

गुणों के साथ पैगंबर न कह सकें तो भी पद में उनके बाद के साहबों से किसी तरह कम नहीं कह सकते। वह कहते हैं कि जिस समय हुसैनखाँ लाहौर का स्थायी हाकिम था, उस समय उसके यहाँ के पानी पिलाने और भोजन करानेवाले लोगों से सुना गया था कि यद्यपि उसके यहाँ संसार भर के उत्तमोत्तम पदार्थ भरे रहा करते थे, तथापि वह स्वयं जौ की रोटी खाता था। और वह भी केवल इस विचार से कि स्वयं मुहम्मद साहब ने कभी ये सब मजेदार भोजन नहीं किए। फिर मैं ऐसे स्वादिष्ठ भोजन कैसे करूँ! वह पलंग और कोमल बिछौनों पर नहीं सोता था और कहता था कि हजरत ने कभी इस प्रकार विश्राम नहीं किया। फिर मैं कैसे इस प्रकार के सुखों का भोग करूँ! हजारों मकबरों और मसजिदों की प्रतिष्ठा और जीर्णोद्धार कराया था।

प्रायः बड़े बड़े विद्वान् शेख और सैयद इसके साथ रहा करते थे, इसलिये यात्रा में चारपाई पर न सोता था। नित्य समय से नमाज पढ़ा करता था। यद्यपि लाखों और करोड़ों की जागीर थी, तथापि उसके तबेले में उसके निज के एक घोड़े से अधिक नहीं था। कभी कभी कोई ऐसा दानपात्र भी आ निकलता था कि वह भी ले जाता था। प्रायः यात्रा अथवा पड़ाव में पैदल ही रह जाता था। नौकर चाकर अपने घोड़े कसकर उसके लिये ले आते थे। किसी कवि ने उसकी प्रशंसा में एक कविता कही थी जिसका एक चरण यह भी था और वास्तव में सच था--

خان مفلس غلام با سامان

अर्थात् खान स्वयं तो दरिद्र है और उसके दास सब प्रकार की सामग्री से संपन्न हैं।

हुसैनखाँ ने शपथ खाई थी कि मैं कभी धन एकत्र नहीं करूँगा। वह कहा करता था कि जो रुपया मेरे पास आता है उसे मैं जब तक खर्च नहीं कर लेता, तब तक वह मेरे पार्श्व में तीर की तरह खटकता रहता है। इलाके पर से रुपया आने भी नहीं पाता था; वहीं चिट्ठियाँ पहुँच जाती थीं और लोग ले जाते थे। निश्चित था कि जो दास देश में आवे, वह पहले ही दिन स्वतंत्र हो जाय। शेख खैराबादी उन दिनों एक अच्छे महात्मा कहलाते थे। वे एक दिन मितव्यय के लाभ बतलाने लगे और धन एकत्र करने के लिये उपदेश देने लगे। खान ने क्रुद्ध होकर उत्तर दिया—क्या पैगंबर साहब ने भी कभी ऐसा किया था? महानुभाव, हमें आशा तो यह थी कि यदि कभी हम लोगों में लालसा या लोभ उत्पन्न होता तो आप हमें उससे बचने के लिये उपदेश करते; न कि सांसारिक पदार्थों का हमारी दृष्टि में महत्त्व देते।

फाजिल बदाऊनी कहते हैं कि वह बड़ा हट्टा कट्टा, लंबा चैाड़ा, रोबीला और देखने योग्य जवान था। मैं सदा युद्ध-क्षेत्र में उसके साथ नहीं रहा, पर कभी कभी जब जंगलों में लड़ाइयाँ हुईं, तब मैं वहाँ उपस्थित था। सच तो यह है कि जो वीरता उसमें पाई, वह कदाचित् ही उन पहलवानों

में हो जिनके नाम कहानियों में सुने जाते हैं। जब लड़ाई के हथियार सजता था, तब प्रार्थना करता था कि हे परमात्मा! या तो मैं वीरगति प्राप्त करके शहीद होऊँ या विजय पाऊँ। कुछ लोगों ने पूछा था कि आप पहले ही विजय के लिये क्यों नहीं प्रार्थना करते? उस समय उसने उत्तर दिया था कि अपने स्वर्गीय प्रिय बंधुओं को देखने की लालसा अपने वर्तमान सेवकों को देखने की लालसा से अधिक है। उदार ऐसा था कि यदि सारे संसार के खजाने और सारी दुनिया का साम्राज्य इसे मिल जाता तो भी दूसरे ही दिन कर्ज-दार दिखाई देता।

कभी कभी ऐसा अवसर आता था कि सौदागर लोग चालीस चालीस और पचास पचास ईरानी और तुरकी घोड़े लाते थे। यह उनसे केवल इतना कह देता था कि तुम जानो और तुम्हारा परमेश्वर जाने। बस दाम तै हो गया। और फिर वे सब घोड़े एक शाही जलसे में बाँट देता था। और जिन लोगों को घोड़े नहीं मिलते थे, उनसे बहुत सज्जनतापूर्वक क्षमा-प्रार्थना करता था। पहले पहल मेरी और उसकी भेंट आगरे में हुई थी। पाँच सौ रुपए और एक ईरानी घोड़ा, जो उसी समय लिया था, मुझे दे दिया।

जिस समय खान मरा, उस समय डेढ़ लाख से अधिक कर्ज न निकला। वह जिन लोगों से ऋण लिया करता था, उनके साथ बहुत उत्तम और सच्चा व्यवहार करता था। इस-

लिये वे सब लोग आए और बड़ी प्रसन्नता से अपने अपने तमस्सुक फाड़कर और उसकी आत्मा की शांति के लिये प्रार्थनाएँ करके चले गए। और लोगों के उत्तराधिकारियों से कर्ज देनेवाले महाजनों के अनेक प्रकार के झगड़े हुआ करते हैं; परंतु उसके पुत्रों से कोई कुछ न बोला।

आगे चलकर फाजिल यह भी कहते हैं कि मैं भला कहाँ तक उसकी प्रशंसा कर सकता हूँ! परंतु युवावस्था आयु की वसंत ऋतु है और वह युवावस्था इसकी सेवा में बीती थी; और उसी की कृपा से मेरी अवस्था बहुत कुछ सुधर गई थी और सारे संसार में मेरी प्रसिद्धि हुई थी। उसी के अनुग्रह से मैंने यह शक्ति पाई थी कि लोगों को विद्या और ज्ञान के लाभ पहुँचा सकता हूँ। इसी लिये मैंने अपने ग्रंथ में इसके गुण कहे हैं जो हजार में से एक और बहुत में से थोड़े हैं। दुःख है कि इस समय वृद्धावस्था की दुर्दशा और नहूसत की ऋतु है। इसी प्रकार के विचारों से कई पृष्ठ भरकर फाजिल कहते हैं कि हम लोगों ने परस्पर पुराने संबंध को बहुत अधिक दृढ़ किया था। इसलिये आशा है कि जब न्याय का अंतिम दिन आवेगा, तब वहाँ भी ईश्वर मेरा और उनका साथ करा-वेगा। और उसके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है।

अब्बुलफजल ने उसे तीन हजारी की सूची में लिखा है। उसका पुत्र यूसुफखाँ जहाँगीर के दरबार में अमीर था। उसने मिरजा अजीज कोका के साथ दक्षिण में बड़ी वीरता दिख-

लाई थी। जहाँगीर के राज्यारोहण के पाँचवें वर्ष वह शाहज़ादा परवेज की सहायता के लिये गया था। यूसुफखाँ का पुत्र इज्जतखाँ था। वह शाहजहाँ के साम्राज्य में सेवा और धर्म का पालन करता था।

राजा महेशदास (बीरबल)

अकबर के नाम के साथ इनका नाम उसी तरह आता है जिस तरह सिकंदर के साथ अरस्तू का नाम आता है। लेकिन जब इनकी प्रसिद्धि का विचार करते हुए इनके कार्यों आदि पर ध्यान दो तो मालूम होता है कि इनका प्रताप अरस्तू के प्रताप से बहुत अधिक था। असल में देखो तो ये भाट थे। विद्या और पांडित्य स्वयं ही समझ लो कि भाट क्या और उसकी विद्या तथा पांडित्य की बिसात क्या। पुस्तक तो दूर रही, आज तक एक श्लोक भी नहीं देखा जो गुणवान् पंडितों की सभा में अभिमान के स्वर से पढ़ा जाय। एक दोहरा न सुना जो मित्रों में दोहराया जाय। यदि योग्यता को देखो तो कहाँ राजा टोडरमल और कहाँ ये। यदि आक्रमणों और विजयों को देखो तो किसी मैदान में कब्जे को नहीं छूआ। और उस पर यह दशा है कि सारे अकबरी नौरतन में एक दाना भी पद और मर्यादा में उनसे लग्गा नहीं खाता।

कुछ इतिहासज्ञ लिखते हैं कि इनका वास्तविक नाम महेशदास था और ये जाति के ब्राह्मण थे। और कुछ लोग कहते

हैं कि भाट थे और इनका उपनाम बिरोहि या बिरही था। मुल्ला साहब भाट के साथ ब्रह्मदास नाम लिखते हैं। जन्मस्थान काल्पी था। पहले रामचंद्र भट्ट की सरकार में नौकर थे। जिस प्रकार और भाट नगरों में फिरा करते हैं, उसी प्रकार ये भी फिरा करते थे; और उसी प्रकार कवित्त भी कहा करते थे।

अकबर के राज्यारोहण के उपरांत शीघ्र ही ये कहीं अकबर से मिल गए थे। ईश्वर जाने बादशाह को इनकी क्या बात भा गई। बातों ही बातों में कुछ से कुछ हो गए।

इसमें संदेह नहीं कि सामीप्य और पारिषदता के विचार से कोई उच्चपदस्थ अमीर या प्रतिष्ठित सरदार उनके पद को नहीं पहुँचता। परंतु साम्राज्य के इतिहास के साथ उनका जो संबंध है, वह बहुत ही थोड़ा दिखाई देता है।

जरा देखिए, मुल्ला साहब इनका हाल किस प्रकार लिखते हैं। सन् ९८० हि० में नगरकोट हुसैनकुलीखाँ की तलवार की बदौलत जीता गया। इस कथानक की पूरी व्याख्या इस प्रकार है कि बादशाह को बचपन से ही ब्राह्मणों, भाटों और अनेक प्रकार के हिंदुओं के प्रति विशेष अनुराग था और ऐसे लोगों की ओर उनकी विशेष प्रवृत्ति थी। एक ब्राह्मण भाट मंगता, जिसका नाम ब्रह्मदास था और जो काल्पी का रहनेवाला था और हिंदुओं का गुण गाना जिसका पेशा था, लेकिन जो बड़ा सुरता और सयाना था; बादशाह के राज्यारोहण के आरंभिक दिनों में ही आया और उसने नौकरी कर ली। सदा पास

रहने और बराबर बातचीत करने के कारण उसने बादशाह का मिजाज अच्छी तरह पहचान लिया और उन्नति करते करते इतने उच्च पद को पहुँच गया कि—

من تو شدم تو من شدی من تن شدم تو جان شدی

अर्थात् मैं तो तू हो गया और तू मैं हो गया। मैं शरीर हो गया और तू प्राण हो गया।

पहले कविराज राजा बीरबल की उपाधि मिली।

इस युद्ध की जड़ यह थी कि बादशाह ने किसी बात पर नाराज होकर काँगड़े पर विजय प्राप्त करने की आज्ञा दी और इन्हें राजा बीरबल बनाकर उक्त प्रदेश इनके नाम कर दिया। हुसैनकुलीखाँ के नाम आज्ञापत्र भेजा गया कि काँगड़े पर अधिकार करके उसे राजा बीरबल की जागीर कर दो। इसमें यही मसलहत होगी कि यह हिंदुओं का पवित्र तीर्थ है। बीच में एक ब्राह्मण का नाम लगा रहे। हुसैन-कुलीखाँ ने पंजाब के अमीरों को एकत्र किया। लश्कर और तोपखाने जमा किए। पहाड़ की चढ़ाई और किले तोड़ने की सारी सामग्री साथ में ली। राजाजी को निशान का हाथी बनाकर आगे रखा और चल पड़ा। सेनापति जिस परिश्रम से घाटियों में उतरा और चढ़ाइयों पर चढ़ा, उसका वर्णन करने में इतिहासलेखकों की कलमें लँगड़ी होती हैं। कहीं लड़ झगड़कर और कहीं मेल मिलाप करके किसी प्रकार काँगड़े पहुँचा। मैं कहता हूँ कि ऐसे कठोर परिश्रम के अव-

सर पर भला राजा जी क्या करते होंगे। चिल्लाते और शोर मचाते होंगे। मसखरेपन के घोड़े दौड़ाते फिरते होंगे। कुलियों और मजदूरों को गालियाँ देते होंगे और हँसी हँसी में काम निकालते होंगे। काँगड़े का घेरा बहुत कड़ा हुआ था। उस सेना में क्या हिंदू, क्या मुसलमान, सभी सम्मिलित हुए थे। धावे के आवेश में जो कठोर व्यवहार हुए, उनके कारण राजाजी बहुत बदनाम हुए। उधर इब्राहीम मिरजा विद्रोही होकर पंजाब पर चढ़ आया था; इसलिये हुसैन-कुलीखाँ ने संधि करके घेरा उठा लिया। काँगड़े के राजा ने भी इसे गनीमत समझा। हुसैनकुली ने जो जो शर्तें कहीं, वह सब उसने प्रसन्नतापूर्वक मान लीं। सेनापति ने चौथी शर्त यह बतलाई थी कि हुजूर ने यह प्रदेश राजा बीरबल को प्रदान किया था; इसलिये कुछ उनकी भी खातिर होनी चाहिए। यह भी स्वीकृत हुआ और जो कुछ हुआ, वह इतना ही हुआ कि अकबरी तौल से पाँच मन सोना तौलकर उन्हें दिया गया। इसके अतिरिक्त हजारों रुपए के अद्भुत तथा उत्तम पदार्थ बादशाह के लिये भेंट स्वरूप दिए। बीरबलजी को और झगड़ों से क्या मतलब था। अपनी दक्षिणा ले ली और घोड़े पर चढ़कर हवा हुए। अकबर उस समय गुजरात और अहमदाबाद की ओर मारामार कूच करने के लिये तैयार हो रहा था। इन्होंने उसे सलाम किया और आशीर्वाद देते हुए लशकर में सम्मिलित हो गए।

सन् ९९० हि० के अंत में राजा बीरबल ने बादशाह की दावत करने के लिये निवेदन किया। बादशाह भी स्वीकृत करके उनके घर गए। जो चीजें बादशाह ने उन्हें समय समय पर प्रदान की थीं, वही सेवा में उपस्थित कीं और कुछ नगद निछावर किया। और सिर झुकाकर खड़े हो गए।

आजाद कहता है कि वास्तविक बात कुछ और ही होगी। संभव है कि दरबारियों और पार्श्ववर्तियों ने उन पर तगादे शुरू किए हों कि सब अमीर हुजूर की दावत करते हैं; तुम क्यों नहीं करते? लेकिन स्पष्ट है कि और अमीर तो लड़ाइयों पर जाते थे, मुल्क मारते थे, हुकूमतें करते थे, धन कमाते थे और पारितोषिक आदि भी पाते थे। वे लोग जब बादशाह की दावत करते थे, तब राजसी ठाठ-बाट से घर सजाते थे। एक छोटी सी बात यह थी कि सवा लाख रुपए का चबूतरा बाँधते थे। मखमल, जरबफ्त और कमखाब रास्ते में बिछाते थे; और जब बादशाह समीप आते थे, तब सोने और चाँदी के फूल उन पर बरसाते थे। जब दरवाजे पर पहुँचते थे, तब थाल के थाल भर भरकर मोती निछावर करते थे। लाखों रुपए के पदार्थ सेवा में भेंट स्वरूप उपस्थित करते थे जिनमें लाल, जवाहिर, मखमल, जरबफ्त, मूल्यवान् अस्त्र शस्त्र, सुंदर लौंडियाँ और दास, हाथी, घोड़े आदि इतने पदार्थ होते थे कि कहाँ तक उनका वर्णन किया जाय। मतलब यह कि जो कुछ कमाते थे, वह सब लुटा देते थे। परंतु राजा बीरबल के

लिये ये सभी मार्ग बंद थे। उन्होंने मुँह से कुछ न कहा। जो कुछ बादशाह ने दिया था, वही उसके सामने रखकर खड़े हो गए। लेकिन वह लज्जित होनेवाले नहीं थे। कुछ न कुछ कहा भी अवश्य होगा। वह तो हाजिरजवाबी की फुल-झड़ी थे। आजाद होता तो इतना अवश्य कहता—

عطائے شما بہ لقائے شما

(त्वदीयं वस्तु गोविंद तुभ्यमेव समर्पये।)

बीरबल दरबार से लेकर महल तक हर जगह और हर समय रमे हुए थे। अपनी बुद्धिमत्ता और स्वभाव परखने के गुण के कारण हर बात पर अपने इच्छानुसार आज्ञा प्राप्त कर लेते थे। इसी लिये बड़े बड़े राजा, महाराज, अमीर और खान आदि लाखों रुपए के उपहार उनके पास भेजा करते थे। बादशाह भी प्रायः राजाओं के पास इन्हें अपना दूत बनाकर भेजा करते थे। ये बड़े बुद्धिमान् और समझदार थे। कुछ तो अपने जातीय संबंध, कुछ दूतत्व के पद और कुछ अपने चुटकुलों से वहाँ पहुँचकर भी घुल मिल जाते थे; और वहाँ से ऐसे ऐसे काम निकाल लाते थे जो बड़े बड़े लश्करों से भी न निकलते थे। सन् ९८४ हि० में बादशाह ने राजा लूणकरण के साथ इन्हें डूँगर-पुर के राजा के पास भेजा। राजा अपनी कन्या को अकबर के महल में भेजना चाहता था, लेकिन कुछ कारणों से रुका हुआ था। इन्होंने जाते ही ऐसा मंतर मारा कि उसके सब सोच

विचार भुला दिए। हँसते खेलते और मुबारक सलामत करते हुए सवारी ले आए।

सन् ६६१ हि० में जैनखाँ कोका के साथ राजा रामचंद्र के दरबार में गए। उसका पुत्र वीरभद्र आने में हिचकता था। इन्होंने उसे भी बातों में लुभा लिया; इत्यादि इत्यादि। इसी प्रकार के अनेक कार्य किए।

इसी सन् में राजा बीरबल के सिर से बड़ी भारी बला टली। अकबर नगरचीन के मैदान में चौगान खेल रहा था। राजाजी को घोड़े ने फेंक दिया। ईश्वर जाने चोट के कारण बेहोश हो गए थे या मसखरेपन से दम चुरा गए थे। बादशाह ने बहुतेरा पुकारा और बड़े प्रेम से सिर सहलाया; और अंत में उठवाकर घर भेजवा दिया।

इसी सन् में चौगानबाजी के मैदान में बादशाह हाथियों की लड़ाई का तमाशा देख रहे थे कि इतने में एक और तमाशा हो गया। दिलचाचर नाम का एक हाथी था जो उद्दंडता और दुष्ट स्वभाव के लिये बहुत प्रसिद्ध था। वह अचानक दो प्यादों पर दौड़ पड़ा। वे प्यादे आगे आगे भागे जाते थे और दिलचाचर उनके पीछे पीछे भागा जाता था। इतने में कहीं से बीरबल उसके सामने आ गए। उन दोनों को छोड़कर वह इन पर झपटा। राजाजी में भागने तक का होश न रहा। बदन के लद्धड़ थे। बड़ी विलक्षण अवस्था हो गई। सब लोग जोर से चिल्लाने लगे। अकबर घोड़ा मारकर स्वयं बीच

में आ गया। राजाजी तो गिरते पड़ते हाँपते काँपते भाग गए और हाथी बादशाह के कई कदम पीछे पहुँचकर रुक गया। वाह रे अकबर तेरा प्रताप !

पेशावर के पश्चिम में सवाद और बाजौड़ का एक विस्तृत इलाका है। वहाँ की भूमि भारतवर्ष की ही भूमि की भाँति उपजाऊ है। वहाँ का जलवायु औसत दरजे का है; और उस पर विशेषता यह है कि सरदी अधिक पड़ती है। उसके उत्तर में हिंदूकुश, पश्चिम में सुलेमान पहाड़ और दक्षिण में खैबर की पहाड़ियाँ हैं जो सिंध नद तक फैली हुई हैं। यह प्रदेश भी अफगानिस्तान का ही एक अंश है। यहाँ के हट्टे कट्टे और वीर अफगान बरदुर्रानी कहलाते हैं। देश की परिस्थिति ने उन्हें उपद्रवी और उद्दंड बनाकर आस पास की जातियों में विशेष प्रतिष्ठित कर दिया है और हिंदूकुश की बरफानी चोटियों तक चढ़ा दिया है। इस इलाके में तीस तीस और चालीस चालीस मील के मैदान और घाटियाँ हैं। और हर मैदान में पहाड़ों को चीरकर दर्रे निकलते हैं। ये दर्रे दूसरी ओर और मैदानों तथा घाटियों से मिलते हैं। वायु की कोमलता, जमीन की हरियाली और जल का प्रवाह काश्मीर को जवाब देता है। ये घाटियाँ या तो दर्रों में जाकर समाप्त हो जाती हैं जिनके इधर उधर ऊँचे ऊँचे पहाड़ हैं अथवा जो घने जंगलों में जाकर गायब हो जाती हैं। आक्रमणकारियों के लिये इस प्रकार का प्रदेश बहुत ही अगम्य

और दुरूह होता है। परंतु वहाँ के निवासियों के लिये तो कोई बात ही नहीं है। वे चढ़ाई और उतराई के बहुत अभ्यस्त होते हैं। सब रास्ते भी भली भाँति जानते हैं। झट एक घाटी में से दूसरी घाटी में जा निकलते हैं। वहाँ अपरिचित आदमी कई कई दिनों बल्कि सप्ताहों तक पहाड़ों में टक्करें मारता फिरे।

यद्यपि वहाँ के अफगान उपद्रव और डकैती को अपना जातीय गुण समझते हैं, पर फिर भी वहाँ के एक चालाक आदमी ने पीरी का परदा तानकर अपना नाम पीर रोशनाई रखा और उक्त अफगानी वर्गों के बहुत से मूर्खों को अपने पास एकत्र कर लिया। यह पहाड़ी प्रदेश, जिसका एक एक टुकड़ा प्राकृतिक दुर्ग है, उनके लिये रक्षा का बहुत अच्छा स्थान हो गया। वे लोग अटक से लेकर पेशावर और काबुल तक रास्ता मारते थे; और लूट मार करके बस्तियाँ उजाड़ते थे। जब बादशाही हाकिम सेनाएँ लेकर दौड़ते थे, तब वे उद्दंडतापूर्वक भली भाँति उनका सामना करते थे; और जब दबते थे, तब अपने पहाड़ों में घुस जाते थे। इधर ज्यों ही बादशाही सेना पीछे लौटती थी, त्यों ही वे लोग फिर निकल आते थे और पीछे से इन पर आक्रमण करके इनकी विजय को परास्त में परिवर्तित कर देते थे। सन् ९९३ हि० में अकबर ने चाहा कि इन लोगों की कड़ी गरदनें तोड़ डाली जायँ। वह उस प्रदेश का ठीक ठीक प्रबंध भी करना चाहता था। उसने

जैनखाँ कोकलताश को कई अमीरों के साथ सेनाएँ देकर भेजा। वे लोग शाही सेना और पहाड़ की चढ़ाई आदि की सब सामग्री लेकर और रसद आदि की सब व्यवस्था करके उस प्रदेश में प्रविष्ट हुए। पहले बाजौड़ पर हाथ डाला।

मेरे मित्रो, यह पहाड़ी प्रदेश ऐसा बेढंगा है कि जिन लोगों ने उधर की यात्राएँ की हैं, वही वहाँ की कठिनाइयाँ जानते हैं। अपरिचितों की समझ में तो वहाँ पहुँचने पर कुछ आता ही नहीं। जब वे पहाड़ में प्रवेश करते हैं, तब पहले जमीन थोड़ी थोड़ी चढ़ती हुई जान पड़ती है। फिर दूर पर बादल सा मालूम होता है। ऐसा जान पड़ता है कि हमारे सामने दाहिने से बाएँ तक बादल छाया हुआ है और उठता चला आता है। ज्यों ज्यों आगे बढ़ते चले जाओ, त्यों त्यों छोटे छोटे टीलों की श्रेणियाँ दिखाई पड़ती हैं। उनके बीच में से घुसकर आगे बढ़ो तो उनकी अपेक्षा और अधिक ऊँची पहाड़ियाँ आरंभ होती हैं। एक श्रेणी को लाँघा। थोड़ी दूर तक चढ़ता हुआ मैदान मिला और फिर एक दूसरी श्रेणी सामने आ गई। या तो दो पहाड़ बीच में से फटे हुए जान पड़ते हैं और उनके बीच में से होकर निकलना पड़ता है या किसी पहाड़ की कमर पर चढ़ते हुए ऊपर होकर पहाड़ उतरना पड़ता है। चढ़ाई और उतराई में तथा पहाड़ की धारों पर दोनों ओर गहरे गहरे गड्ढे दिखाई देते हैं। वे इतने गहरे होते हैं कि देखने को जी नहीं चाहता।

जरा सा पैर बहका और आदमी गया। फिर यमपुरी से इधर ठिकाना नहीं लगता। कहीं मैदान आया। कहीं कोस दो कोस जिस प्रकार चढ़े थे, उसी प्रकार उतरना पड़ा। कहीं बराबर चढ़ते गए। रास्ते में जगह जगह दाहिने बाएँ दर्रे मिलते हैं। कहीं किसी और तरफ को रास्ता जाता है और दर्रों के अंदर कोसों तक बराबर आदमी पड़े बसते हैं जिनका हाल किसी को मालूम ही नहीं। कहीं दो पहाड़ों के बीच कोसों तक गली गली चले जाते हैं। कहीं चढ़ाई है, कहीं उतराई है, कहीं पहाड़ के नीचे से होकर रास्ता है, कहीं दो पहाड़ों के बीच में गली है, कहीं पहाड़ की ढाल पर रास्ता है और कहीं पहाड़ के उतार का मैदान है। इन सब बातों का ठीक ठीक अभिप्राय वहीं जाने पर समझ में आ सकता है। यदि घर में बैठे बैठे कल्पना करें तो नहीं समझ सकते।

ये सब पहाड़ बड़े बड़े और छोटे छोटे वृक्षों से छाए हुए हैं। दाहिने और बाएँ पानी के सोते ऊपर से उतरते हैं; और जमीन पर कहीं पतली धार के रूप में और कहीं बड़ी नहर के रूप में बहते हैं। कहीं दो पहाड़ियों के बीच में होकर बहते हैं जहाँ बिना पुल या नाव के उतरना कठिन होता है। वह पानी बहुत ऊँचाई से गिरता हुआ आता है और पत्थरों से टकराता हुआ बहता है; इसलिये उसमें इतना अधिक बहाव होता है कि वह कम गहरा होने पर भी पैरों चलकर पार नहीं किया जा सकता। यदि

थोड़ा साहस करे तो पत्थरों पर से उसके पैर फिसलते हैं। इसी तरह के बेढंगे रास्तों में दाहिने बाएँ, सब जगह दर्रों में और पहाड़ों के नीचे अफगान लोग बसे हुए होते हैं। वे लोग दुंबों और ऊँटों की पशम के कंबल, नमदे, शतरंजियाँ और टाट बुनते हैं; और उन सबको मिलाकर छोटी छोटी तँबूटियाँ खड़ी कर लेते हैं। पहाड़ के नीचे कोठे और कोठरियाँ बना लेते हैं। वहीं खेती करते हैं। सेब, बिही, नाशपाती और अंगूर के जंगल उनके प्राकृतिक बाग हैं। वही खाते हैं और आनंद से जीवन व्यतीत करते हैं। जब कोई बाहरी शत्रु आकर अक्रमण करता है तो सामने होकर उसका मुकाबला करते हैं। उस समय वे लोग एक ऊँची पहाड़ी पर चढ़कर नगाड़ा बजाते हैं। जहाँ जहाँ तक उसकी आवाज पहुँचती है, वहाँ वहाँ के लोगों के लिये तुरंत आ पहुँचना आवश्यक होता है। दो दो तीन तीन समय का भोजन कुछ रोटियाँ और कुछ आटा बाँधे हथियार लगाए और आ पहुँचे। जब सामने पहाड़ियों पर वह टिड्डी-दल छाया हुआ दिखलाई देता है तब बादशाही लश्कर के लोग, जो मैदान के लड़नेवाले होते हैं, उन्हें देखकर हैरान हो जाते हैं। और जब उन्हें इस बात का ध्यान आता है कि हम कितने और कैसे पहाड़ पार करके आए हैं, पीछे तो वे पहाड़ रहे और आगे यह बला है, अब हम न जमीन के रहे और न आसमान के, तो उस समय उन्हें बस ईश्वर ही याद आता है!

जिस समय लड़ाई होती है, उस समय अफगान लोग बड़ी वीरता से लड़ते हैं। जब वे आक्रमण करते हैं तब तोपों पर आ पड़ते हैं। लेकिन बादशाही लश्करों के सामने ठहर नहीं सकते। जब दबते हैं, तब पहाड़ों पर चढ़ जाते हैं और दाहिने बाएँ दर्रों में घुस जाते हैं। वे लोग हट्टे कट्टे और बलिष्ठ होते हैं। देश के लोगों को केवल ऊँची जमीन पर चढ़ना ही भारी विपत्ति जान पड़ती है। पर उनकी यह दशा है कि यदि सिर, दिल या जिगर में गोली या तीर लग गया तब तो गिर पड़े। लेकिन यदि बाँह, रान, हाथ या पैर में लगे तो उसे ध्यान में भी नहीं लाते। बंदरों की तरह वृक्षों में घुसते हुए और पहाड़ों पर चढ़ते हुए चले जाते हैं। यदि उस दशा में उन्हें गोली लगी तो बहुत हुआ तो उन्होंने जरा सा हाथ मारा और खुजला लिया। मानों किसी बर्रे ने डंक मारा हो, बल्कि मच्छड़ ने काटा हो।

बादशाही लश्कर के लिये सबसे बड़ी कठिनता एक बात की होती है। वह यह कि ये लोग जितना ही आगे बढ़ते जाते हैं, उतना ही समझते हैं कि सामने मैदान खुला है। पर वास्तव में वे मौत के मुँह में घुसते चले जाते हैं। जो अफ-गान पहले सामने से हटकर आगे भाग गए थे या दाहिने बाएँ दर्रों में घुस गए थे, वे पहाड़ियों के नीचे जाकर फिर सामने ऊपर चढ़ आते हैं। दर्रों के अंदर रहनेवाले और लोग भी वहाँ आ पहुँचते हैं। ऊपर से गोलियाँ और तीर बरसाते हैं।

और वह भी न हुआ तो पत्थर तो हैं ही। वास्तविक बात तो यह है कि ऐसे अवसर पर जहाँ सेना समझ चुकी थी कि हम मैदान साफ करके आगे बढ़े हैं, उन लोगों का केवल शोर मचाना ही यथेष्ट होता है। और सामने की लड़ाई तो कहीं गई हो नहीं। वह मैदान तो हर दम तैयार रहता है। जब तक कमर में आटा बँधा है, लड़ रहे हैं। जब खतम हो गया तब घरों को भाग गए। कुछ लोग रह गए, कुछ लोग और भोजन-सामग्री बाँध लाए। कुछ और नए लोग भी आकर सम्मिलित हो गए। मतलब यह कि बादशाही लश्कर जितना ही आगे बढ़ता जाता है और पिछली दूरी बढ़ती जाती है, उतना ही घर का रास्ता बंद होता जाता है। और जब वह रास्ता बंद हुआ, तब समझ लो कि खबर बंद, रसद बंद, मानो सभी काम बंद।

जैनखाँ ने लड़ाई की शतरंज बहुत योग्यतापूर्वक फैलाई। बादशाह को लिख भेजा कि प्रताप के लश्कर को आगे बढ़ने से अब कोई रोक नहीं सकता। अफगानों के बुड्ढे बुड्ढे सरदार गले में चादरें डालकर अपना अपराध क्षमा कराने के लिये उपस्थित हो गए हैं। परंतु जिन स्थानों पर विशेष रक्षा और चौकसी की आवश्यकता है, उनके लिये और लश्कर प्रदान होना चाहिए। उस समय बीरबल की आयु का जहाज, जो कामनाओं और उनकी पूर्त्तियों की हवा में भरा हुआ चला जाता था, अचानक भँवर में पड़कर डूब गया। दरबार में यह

विषय विचाराधीन था कि किस अमीर को भेजना चाहिए जो ऐसे कुढब रास्तों में लश्कर को ले जाय; और वहाँ जो जो कठिनाइयाँ उपस्थित हों, उन्हें अच्छे ढंग से सँभाले। अब्बुल-फजल ने प्रार्थना की कि इस सेवक को आज्ञा मिले। बीरबल ने कहा कि यह सेवक उपस्थित है। बादशाह ने काग़ज के टुकड़ों पर दोनों के नाम लिखकर उठाए। यम के दूतों ने बीर-बल का नाम सामने ला रखा। उसके चुटकुलों से बादशाह बहुत प्रसन्न होते थे। वे क्षण भर के लिये भी बीरबल का वियोग सहन नहीं कर सकते थे। लेकिन ईश्वर जाने किस ज्योतिषी ने कह दिया या स्वयं ही बादशाह को इस बात का ध्यान आ गया कि यह लड़ाई बीरबल के नाम पर जीती जायगी। यद्यपि बादशाह का जी बिलकुल नहीं चाहता था, पर फिर भी विवश होकर आज्ञा दे ही दी। और आज्ञा दी कि खास बादशाही तोपखाना भी साथ जाय। जरा इस प्रेम का ध्यान कीजिए कि जब बीरबल चलने लगे, तब बादशाह ने उनकी बाँह पर हाथ रखकर कहा कि बीरबल, जल्दी आना! जिस दिन बीरबल वहाँ से चले, उस दिन बादशाह शिकार से लौटते समय स्वयं उनके खेमे में गए। उन्हें ऊँच नीच की बहुत सी बातें समझाईं। बीरबल यथेष्ट सेना और सामग्री लेकर वहाँ से चल पड़े। ढोक के पड़ाव पर पहुँचे तो सामने एक कठिनता उपस्थित हुई। अफगान दोनों ओर पहाड़ों पर चढ़ खड़े हुए। बीरबल तो दूर से खड़े हुए शोर मचाते रहे; लेकिन और अमीर

लोग जोर देकर आगे बढ़े। पहाड़ के निवासी बिलकुल उजड्ड और जंगली तो होते ही हैं। उनकी बिसात ही क्या। लेकिन फिर भी उन लोगों ने ऐसे जोरों से बादशाही सेना का सामना किया कि यद्यपि बहुत से अफगान मारे गए, लेकिन फिर भी बादशाही सेना बहुत सी भारी चोटें खाकर पीछे हटी। उस समय संध्या होने में अधिक विलंब नहीं रह गया था; इसलिये यही उचित समझा गया कि लौटकर दश्त को चले आवें।

बादशाह भी समझते थे कि एक विदूषक से क्या होना है। कुछ समय के उपरांत हकीम अब्बुलफतह को भी सेना देकर रवाना किया और कह दिया कि दश्त में पहुँचकर वहाँ की सेना ले लेना और मलकंड पहाड़ की घाटी में से निकल-कर जैनखाँ के लश्कर से जा मिलना। जैनखाँ यद्यपि भारत-वर्ष की ही जलवायु में पला था, लेकिन फिर भी वह सिपाही-जादा था और उसके बाप दादा वहीं की मिट्टी से उत्पन्न हुए थे और उसी जमीन पर तलवारें मारते और खाते हुए इस संसार से गए थे। हकीम जब बाजौड़ देश में पहुँचा तो वहाँ जाते ही उसने चारों ओर लड़ाई मचा दी। ऐसे धावे किए कि पहाड़ में भूचाल डाल दिया। हजारों अफगानों को मार डाला और कबीले के कबीले घेर लिए। उनके बाल बच्चे कैद कर लिए और उन्हें ऐसा तंग किया कि उनके मालिक और सरदार आदि गले में चादरें डालकर आए और बोले कि हम आपकी सेवा करने के लिये उपस्थित हुए हैं।

अब जैनखाँ सवाद प्रदेश की ओर झुका। सामने के टीलों और पहाड़ियों पर से अफगान लोग टिड्डियों की भाँति उमड़कर दौड़े। उन्होंने ओलों की तरह गोलियाँ और पत्थर बरसाने शुरू किए। हरावल को हटना पड़ा, लेकिन मुख्य सेना ने साहस किया। मुँह के आगे ढालें कर लीं और तलवारें सूत लीं। मतलब यह कि जिस प्रकार हो सका, उस कठिनता से वह निकल गई। उन्हें देखकर औरों के हृदयों में भी साहस उत्पन्न हुआ। मतलब यह कि जैसे तैसे सेना ऊपर चढ़ गई। अफगान लोग भागकर सामने के पहाड़ों पर चढ़ गए। जैनखाँ ऊपर जाकर फैला। चकदरे में छावनी डालकर चारों ओर मोरचे तैयार किए और किला बाँध लिया। चकदरा उस प्रदेश का केंद्रस्थान है और वहाँ से चारों ओर जोर पहुँच सकता है; इसलिये सामने कराकर का पहाड़ और बनेर का इलाका रह गया। बाकी और सब जिले अधिकार में आ गए।

इसी बीच राजा बीरबल और हकीम भी आगे पीछे आ पहुँचे। यद्यपि बीरबल और जैनखाँ में पहले से मनमुटाव था, लेकिन जब उनके आने का समाचार मिला तो जैनखाँ सेनापतित्व के हौसले को काम में लाया। स्वागत करने के लिये वह आगे बढ़ा और रास्ते में ही आकर उनसे मिला। बहुत शुद्ध हृदय और प्रेम से बातें कीं। फिर वहाँ से वह आगे बढ़ गया और दिन भर खड़ा खड़ा लश्कर के लाने का प्रबंध करता रहा। समस्त सैनिकों और बारबरदारीवालों को उन

बरफ से ढके हुए पहाड़ों से उतारा और आप वहीं ठहर गया। रात उसी जगह बिताई जिसमें पठान पीछे से न आ पड़ें। हकीम सेना लेकर पहले ही चकदरे के किले में जा पहुँचा। सवेरे सब लोग किले में सम्मिलित हुए। कोकलताश ने वहाँ जशन किया और इन लोगों को अपना अतिथि बनाकर इनकी बहुत खातिर-दारी की। आतिथ्य-सेवा का यथेष्ट प्रबंध करके उन्हें अपने खेमों में बुलाया। विचार यह था कि वहीं सब लोग मिलकर यह निश्चय करें कि आगे किस प्रकार क्या करना चाहिए। राजा बीरबल उस जगह फूट बहे। बहुत सी शिकायतें कीं और कहा—हमारे साथ बादशाही तोपखाना है। बादशाह के सेवकों को उचित था कि उसी तोपखाने के पास आकर एकत्र होते और वहीं सब बातचीत और परामर्श होता।

यद्यपि उचित तो यह था कि कोकलताश के सेनापतित्व के विचार से राजा बीरबल तोपखाना उसके हवाले कर देते और सब लोग उसके पास एकत्र होते, लेकिन फिर भी जैनखाँ बिना किसी प्रकार का तकल्लुफ किए वहाँ चला आया और सब सरदार भी उसके साथ चले आए। पर मन में उसे कुछ बुरा अवश्य लगा। इससे भी बढ़कर बुरा संयोग यह हुआ कि हकीम और राजा में भी सफाई नहीं थी। यहाँ हकीम और राजा में बात बहुत बढ़ गई और राजा ने गालियों तक नौबत पहुँचा दी। धन्य है कोकलताश का हौसला कि उसने भड़कती हुई आग को दबाया और दोनों में मेल और सफाई

कराके निश्चय करा दिया कि सब लोग मिलकर काम करेंगे। लेकिन फिर भी तीनों सरदारों में विरोध ही रहा। बल्कि दिन पर दिन वह विरोध और वैमनस्य बढ़ता ही गया। कोई किसी की बात नहीं मानता था। हर एक आदमी यही कहता था कि जो कुछ मैं कहूँ, वही सब लोग करें।

जैनखाँ सिपाहीजादा था। सिपाही की हड्डी थी। वह लड़ाइयों में ही बाल्यावस्था से युवावस्था तक पहुँचा था। इस देश से भी वह भली भाँति परिचित था। वह अच्छी तरह जानता था कि इधर के लोगों से किस प्रकार मैदान जीता जा सकता है। हकीम यद्यपि बहुत बुद्धिमान् आदमी था, पर फिर भी वह दरबार का ही बहादुर था, न कि ऐसे कुढब पहाड़ों और जंगलों का। वह तरकीबें खूब निकालता था, पर दूर ही दूर से। और यह तो स्पष्ट ही है कि कहने और करने में कितना अंतर है। इसके अतिरिक्त उसे इस बात का भी ध्यान था कि मैं बादशाह का खास मुसाहब हूँ। स्वयं बादशाह बिना मेरे परामर्श के काम नहीं कर सकते; फिर ये लोग क्या चीज हैं! बीरबल जिस दिन से आए थे, उसी दिन से पहाड़ों और जंगलों को देख देखकर घबराते थे। हर दम उनका मिजाज बदला हुआ ही रहता था। और अपने मुसाहबों से कहते थे कि देखो, हकीम का साथ और कोका की पहाड़ की कटाई कहाँ पहुँचाती है। रास्ते में भी जब भेंट हो जाती तो बुरा भला कहते और लड़ते थे। आजाद की

समझ में इसके दो कारण थे। एक तो यह कि वह महलों के शेर थे, तलवार के नहीं। दूसरे यह कि वह बादशाह के लाडले थे। उन्हें इस बात का दावा था कि हम ऐसी जगह पहुँच सकते हैं जहाँ कोई जा ही नहीं सकता। बादशाह के मिजाज में हमारा इतना दखल है कि ठहरी ठहराई सलाह तोड़ दें। जैनखाँ क्या चीज है और हकीम की क्या हकीकत है! तात्पर्य यह कि उनके आत्माभिमान ने वह सारी लड़ाई और चढ़ाई खराब कर दी।

जैनखाँ की यह सम्मति थी कि मेरी सेना बहुत समय से लड़ रही है; अतः तुम्हारी सेना में से कुछ तो छावनी में रहे और आस पास के प्रदेश का प्रबंध करती रहे और कुछ मेरे साथ सम्मिलित होकर आगे बढ़े। अथवा तुम दोनों में से जिसका जी चाहे, वह आगे बढ़े। परंतु राजा और हकीम दोनों में से एक भी इस बात पर राजी नहीं हुए। उन्होंने कहा कि बादशाह की यह आज्ञा है कि इन्हें लूट मारकर नष्ट कर दो। देश को परास्त करके उस पर अधिकार करना अभीष्ट नहीं है। हम सब लोग एक लश्कर बनकर इधर से मारते धाड़ते आए हैं। दूसरी ओर से निकलकर बादशाह की सेवा में जा उपस्थित हों। जैनखाँ ने कहा कि कितने परिश्रम और कठिनता से यह देश हाथ में आया है। यदि इसे यों ही मुफ्त में छोड़ देंगे तो बड़ा पछतावा रहेगा। यदि तुम लोग और कुछ नहीं करते हो तो कम से कम यही करो कि जिस मार्ग

से आए हो, उसी मार्ग से लौटकर चलो जिसमें की हुई व्यवस्था और दृढ़ हो जाय।

राजा तो अपने घमंड में थे। उन्होंने एक न सुनी। दूसरे दिन वे अपने ही रास्ते से चल पड़े। विवश होकर जैनखाँ भी तथा उनके साथ के और सब सरदार और लश्करवाले सब सामग्री की व्यवस्था करके उनके पीछे पीछे हो लिए। दिन भर में पहाड़ का पाँच कोस काटा। दूसरे दिन यह निश्चय हुआ कि रास्ता बहुत बीहड़ है, बहुत ही सँकरी घाटियाँ और बड़ा पहाड़ सामने है और तेज चढ़ाई है। बारबरदारी, बहेर, बुंगा सभी कुछ चलने को हैं; इसलिये आध कोस चलकर पड़ाव डालें। दूसरे दिन सवेरे सवार हों जिसमें आराम से बरफानी पहाड़ पार करते हुए सब लोग उस ओर जा उतरें और निश्चिंत होकर पड़ाव डाल दें। यही परामर्श सब लोगों ने निश्चित किया; और इसी के अनुसार सब अमीरों में चिट्ठियाँ भी बँट गईं।

प्रभात के समय लश्कर रूपी नदी का प्रवाह चला। हरावल की सेना ने एक टीले पर चढ़कर निशान का झंडा दिखलाया था कि इतने में अफगान लोग दिखाई दिए। देखते देखते वे लोग ऊपर नीचे, दाहिने बाएँ सब जगह इकट्ठे हो गए। खैर, पहाड़ों में ऐसा ही होता है। बादशाही लश्कर ने उनका सामना किया और उन्हें मारते हटाते आगे बढ़ गए। जब निश्चित स्थान पर पहुँचे, तब हरावल

और उसके साथ जो डेरे खेमेवाले थे, वहीं रुक गए और उन्होंने पड़ाव डाल दिया।

जरा भाग्य का फेर देखिए। बीरबल को किसी ने खबर कर दी थी कि यहाँ इस बात का डर है कि रात के समय कहीं अफगान लोग छापा न मारें। अगर यहाँ से चार कोस आगे निकल चला जाय तो फिर कुछ भय नहीं है। इसलिये राजा साहब पड़ाव पर नहीं उतरे, आगे बढ़ते चले गए। उन्होंने अपने मन में समझा कि अभी बहुतेरा दिन है। चार कोस चले चलना कौन बड़ी बात है। अब वहाँ पहुँचकर निश्चिंत हो जायँगे। आगे मैदान आ जायगा; फिर कुछ परवाह नहीं। बाकी अमीर लोग पीछे से आते रहेंगे। चलो, आगे बढ़ चलो। लेकिन उन्होंने तो पहले केवल आगरे और फतहपुर सीकरी का रास्ता देखा था। यह पहाड़ कब देखे थे और इनकी मंजिलें कब काटी थीं। जो लोग बादशाही सवारी के साथ डोलों, पालकियों और तामजामों में घूमे हों, उन्हें क्या मालूम कि यहाँ क्या मामला है और यहाँ रात के समय छापा मारने का क्या अवसर है। और मान लिया कि यदि छापा मारेंगे भी तो क्या कर लेंगे! लेकिन ये सब बातें समझना तो सैनिक लोगों का ही काम है, न कि भाटों का। उन्होंने समझा कि जो कुछ है, वह बस यही चार कोस का मामला है। अंत में तीन बड़े बड़े लश्कर आगे पीछे चले।

लेकिन मेरे मित्रो, उस प्रांत का तो संसार ही नया है। मैं कैसे लिखूँ कि आप लोगों की कल्पना में वहाँ की दशा का ठीक ठीक चित्र खिंच जाय। चारों ओर पहाड़ और सघन वृक्षों के वन। घाटी इतनी तंग कि कठिनता से दो तीन आदमी साथ चल सकें। रास्ता ऐसा कि पत्थरों के उतार चढ़ाव पर एक लकीर सी पड़ी है। बस उसी को सड़क समझ लो। घोड़ों का ही दिल है और उन्हीं के पैर हैं कि चले जाते हैं। कहीं दाहिनी ओर, कहीं बाईं ओर और कहीं दोनों ओर खड्ड हैं। और वे भी ऐसे गहरे कि देखने तक को जी नहीं चाहता। जरा पैर इधर उधर हुआ, आदमी लुढ़का और गया। यह दशा होती है कि सब को अपनी अपनी जान की पड़ी रहती है। एक भाई लुढ़का जाता है और दूसरा भाई देखता है और क़दम आगे बढ़ाता जाता है। क्या मजाल कि उसे सँभालने का विचार तक मन में आ जाय। चलते चलते जरा खुला मैदान और खुला आसमान आया तो सामने पहाड़ों की एक दीवार दिखाई दी जिसकी चोटियाँ आकाश से बातें करती हैं। आदमी समझता है कि यदि इसे पार करके निकल जायँगे तो सारी कठिनता दूर हो जायगी। दिन भर की मंजिल मारकर ऊपर पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर कुछ मैदान आया। दूर दूर पर चोटियाँ दिखाई दीं। उतरकर एक और घाटी में जा पड़े, जहाँ फिर वही आकाश से बातें करनेवाली दीवारें मौजूद हैं। वे पहाड़ छाती पर दुःख

का पहाड़ हो जाते हैं। आदमी सोचता है कि हे ईश्वर, यह दुःख का पहाड़ कैसे कटेगा! मन कहता है कि हम तो यहीं मर गए। कभी कभी एक ओर कुछ छोटे छोटे टीले दिखाई देते हैं। यात्री का मन हरा हो जाता है और वह सोचता है कि बस अब इन टीलों में से निकलकर मैदान में पहुँच जायँगे। उनको पार करके आगे बढ़ने पर एक और मैदान आया। कई कोस बढ़कर फिर एक दर्रे में घुसना पड़ा। झरनों की चादरें गिरने के शब्द सुनाई देने लगे। कोस आध कोस बढ़ने के बाद फिर वही अंधेर। पूरब पच्छिम तक का पता नहीं लगता। यह किसे मालूम हो कि दिन चढ़ रहा है या ढल रहा है। और बस्ती की तो बात ही न करो। खैर। बीरबल तो इसी भुलावे में आगे बढ़ गए कि साहस करके आगे निकल जायँगे तो आज ही सब कठिनाइयों का अंत हो जायगा। पीछेवाले आप ही चले आवेंगे। लेकिन यह आना कोई ईदगाह के दरबार से घर आना तो था ही नहीं। कुछ लोग उतर पड़े थे और खेमे लगा चुके थे। जब उन लोगों ने देखा कि राजा बीरबल की सवारी चली और वह आगे जा रहे हैं, तब उन्होंने समझा कि शायद हमें गलत आज्ञा मिली है; या संभव है कि राय ही बदल गई हो। सब लोगों के हाथ पैर फूल गए। जो लोग अभी आकर खड़े हुए थे, वे दौड़ पड़े; और जो लोग खेमे लगा चुके थे या लगा रहे थे, वे घबरा गए।

वे सोचने लगे कि अब इन सबको समेटें और बगल में दबा-कर भाग चलें। अंत में उन लोगों ने खेमे गिरा दिए। कुछ लपेटे और कुछ बाँधे और पीछे पीछे चल पड़े। भारतवर्ष के रहनेवाले लोग थे। पहाड़ों की चलाई और रात दिन की मारामार, तिस पर हर दम भय और आशंका बनी रहती थी। इसलिये इन सब बातों से ये लोग तंग आ गए थे। यह दशा देखकर उन लोगों में भी घबराहट फैल गई जो निश्चिंत होकर चले आ रहे थे। वे लोग भी बेतहाशा आगे की ओर भागे। अफगानों के आदमी भी उन्हीं के साथ लगे हुए चले आ रहे थे और उनके दाहिने बाएँ पहाड़ों पर चल रहे थे। जब उन्होंने शाही सेना में यह हलचल देखी तो उसे लूटना आरंभ कर दिया।

यदि शाही लश्कर के लोग अपना होश हवास ठीक रखते या बीरबल को ईश्वर इतनी सामर्थ्य देते कि वह वहाँ बाग रोककर खड़े हो जाते तो उन लुटेरों को मार लेना और हटा देना कुछ बड़ी बात नहीं थी। लेकिन लाडले राजा ने अवश्य ही यह समझा होगा कि इतना बड़ा लश्कर है, निकल ही जायँगे। जो मर जायँ सो मर जायँ; तुम तो निकल चलो। कोसों की पंक्ति में जो लश्कर एक नदी के रूप में चढ़ाव में चला आता था, उसमें हलड़ा आ गया। अफगानों की यह दशा थी कि लूट मार बाँध अपना काम किए जाते थे। रास्ता बेढब और घाटियाँ बहुत तंग थीं। बड़ी बुरी दशा हुई। बेचारा जैनखाँ

खूब अड़ा। आगे बढ़कर और पीछे हटकर सब लोगों को सँभालकर जान लड़ाई। लेकिन क्या कर सकता था। स्थान बेढब था। लदे फँदे बैल, खच्चर और ऊँट आदि सब लूट लिए गए। असंख्य आदमी भी नष्ट हुए; और जो उनके हाथ आए, उन्हें वे लोग पकड़कर ले गए। इसी प्रकार लड़ते भिड़ते और मरते मारते छः कोस तक आए।

दूसरे दिन जैनखाँ इसलिये ठहर गया कि लोग टूटे फूटे की मरहम पट्टी कर लें और जरा ठहरकर दम ले लें। वह स्वयं चलकर राजा बीरबल के डेरे पर गया और वहाँ सब अमीरों को एकत्र करके परामर्श किया। लश्कर के अधिकांश सैनिक हिंदुस्तानी ही थे। उस देश और वहाँ की दशा से सब लोग घबरा गए थे। बहुमत इसी पक्ष में हुआ कि यहाँ से निकल चलो। जैनखाँ ने कहा कि आगे पहाड़ और टीले बेढब हैं। लश्करवालों के दिल टूट गए हैं। यहाँ दाना पानी और लकड़ी चारा बहुत मिलता है। मेरी सम्मति तो यही है कि सब लोग कुछ दिनों तक यहाँ ठहरें और अपनी स्थिति ठीक रखके इन विद्रोहियों को ऐसा दंड दें कि इनके दिमाग ठिकाने हो जायँ। और यदि यह परामर्श ठीक न हो तो भी उनके भाई बंद, बाल बच्चे और चौपाए आदि हमारे अधिकार में हैं। वे लोग इनके लिये संधि का सँदेसा भेजेंगे ही और हमसे क्षमा-प्रार्थना करके हमारी आज्ञा के अनुसार चलेंगे। उस दशा में हम लोग युद्ध के कैदी उन्हें सौंपकर

श्रौर निश्चिंत होकर यहाँ से चलेंगे। यदि यह सलाह भी पसंद न हो तो फिर सारा हाल लिखकर बादशाह की सेवा में भेज दिया जाय श्रौर वहाँ से सहायता के लिये सेना मँगाई जाय। उधर से सेना आकर पहाड़ों को रोक ले श्रौर हम लोग इधर प्रवृत्त हों। लेकिन ये हिंदुस्तानी दाल खानेवाले। इनके हटाए पहाड़ कैसे हट सकता था। एक बात पर भी सलाह नहीं ठहरी। मतलब यही कि यहाँ से निकल चलो श्रौर चलकर तोरी फुलके उड़ाश्रो।

दूसरे ही दिन बड़ी घबराहट में जैसे तैसे खेमे-डेरे उखाड़कर वहाँ से चल पड़े। बहेर, बुंगाह सदा पीछे होता है। श्रौर श्रफगानों का यह नियम है कि सदा उन्हीं पर गिरते हैं। इसलिये जैनखाँ श्राप चंदावल हुए। पड़ाव से उठते ही युद्ध श्रारंभ हुश्रा। श्रफगान लोग सामने पहाड़ों पर से उमड़े चले श्राते हैं। कुछ खड्डों, घाटियों श्रौर मारपेचों में छिपे हुए बैठे हैं। श्रचानक निकल खड़े होते हैं। हिंदुस्तानी चीखते चिल्लाते हैं श्रौर एक दूसरे पर गिरे पड़ते हैं। जहाँ कोई घाटी या दर्रा श्राता था, वहाँ तो मानों प्रलय ही श्रा जाता था। कोई यह नहीं देखता था कि श्रादमी है या जानवर, जीता है या मरा हुश्रा। उन्हें सँभालने या उठाने की तो बात ही क्या है, सब लोग उन्हें पैरों तले रौंदते हुए चले जाते थे। सरदार श्रौर सिपाही कोई पूछता नहीं था। बेचारा जैनखाँ जगह जगह दौड़ता फिरता था श्रौर ढाल की

तरह अपनी जान आगे रखता फिरता था जिसमें लोग सरलता से निकल जायँ।

जब संध्या हुई, तब अफगानों का साहस बढ़ गया। इधर इन लोगों के दिल टूट गए। वे लोग चारों ओर से उमड़कर इन लोगों पर आ गिरे और तीर तथा पत्थर बरसाने लगे। बादशाही लश्कर और बहेर में कोलाहल मच गया। पहाड़ में उथल पुथल मच गई। रास्ता इतना तंग था कि दो सवार भी बराबर बराबर न चल सकते थे। अँधेरा हो जाने पर अफगानों को और भी अच्छा अवसर मिला। वे आगे पीछे और ऊपर नीचे से गोली, तीर तथा पत्थर की वर्षा करने लगे। हाथी, आदमी, ऊँट, गौ, बैल सब एक पर एक गिरते थे। बिलकुल प्रलय का सा दृश्य उपस्थित हो रहा था। उस दिन बहुत से आदमी नष्ट हुए। रात हो गई। मारे लज्जा के जैनखाँ ने चाहा कि एक स्थान पर अड़कर मार्ग में अपने प्राण निछावर कर दें। इतने में एक सरदार दौड़ा हुआ वहाँ आया। उसने बाग पकड़कर उसे उस भीड़ में से निकाला। घाटियों में इतने आदमी, घोड़े और हाथी पड़े हुए थे कि रास्ता बंद हो गया था। विवश होकर वह घोड़ा छोड़कर पैदल चल पड़ा और बिना रास्ते के ही एक पहाड़ी पर चढ़कर भागा। सहसा सहस्रों कठिनाइयाँ झेलकर अपने आपको पड़ाव पर पहुँचाया। लोग भी घबराहट में कहीं के कहीं जा पड़े। कुछ लोग जीते जागते पहुँचे और कुछ लोग कैद हो गए।

हकीम अब्बुलफतह भी बहुत कठिनता से पड़ाव पर पहुँचे। लेकिन दुःख है कि राजा बीरबल का कहीं पता न लगा। और एक वही क्या, हजारों आदमी जान से गए। उनमें से बहुतेरे ऐसे भी थे जो बादशाह का मिजाज बहुत अच्छी तरह पहचानते थे और दरबारी मंसबदार थे। और कैदियों की तो कोई गिनती ही नहीं। तात्पर्य यह कि ऐसी गहरी और भारी हार हुई कि अकबर के समस्त शासन काल में कभी इस दुर्दशा के साथ सेना नहीं भागी थी। चालीस पचास हजार सैनिकों में से कुछ भी आदमी बाकी न बचे। जैनखाँ और हकीम अब्बुलफतह ने बहुत ही दुर्दशा के साथ अटक पहुँचकर दम लिया। पठानों के हाथ में इतनी लूट आई कि उन्हें सात पीढ़ी तक भी नसीब न हुई होगी। इस पराजय का समाचार सुनकर और विशेषतः राजा बीरबल के मरने का समाचार सुनकर—जो अकबर का बहुत अधिक प्रेमपात्र तथा सबसे अधिक पास रहनेवाला मुसाहब था—उसे इतना अधिक दुःख हुआ कि जितना राज्यारोहण के समय से लेकर आज तक कभी नहीं हुआ था। दो रात और दिन उसने नियमित सरूर नहीं किया, बल्कि भोजन तक नहीं किया। जब मरियम मकानी ने बहुत समझाया और स्वामिनिष्ठ सेवकों ने बहुत अनुनय विनय की, तब अंत में विवश होकर खाने पीने की ओर ध्यान दिया। जैनखाँ और हकीम आदि दरबार में उपस्थित होने और सलाम करने से वंचित किए

गए। बीरबल का शव बहुत ढुँढ़वाया गया, लेकिन दुःख है कि वह भी न मिला।

मुल्ला साहब इस बात पर बहुत नाराज हैं कि बीरबल के मरने का इतना दुःख क्यों किया। वह लिखते हैं और बड़ी शेखी के साथ लिखते हैं कि जो लोग सलाम करने से वंचित किए गए थे, उनके अपराध पीछे से क्षमा कर दिए गए। बीरबल जैसे मुसाहब को आपस के ईर्ष्या द्वेष ने नष्ट किया था (और ईर्ष्या द्वेष तो प्रमाणित ही था) इसलिये वे लोग दरबार में आने और सलाम करने से वंचित रहे। पर फिर वही पद मिल गए, बल्कि उनसे भी आगे बढ़ गए। किसी अमीर के मरने का इतना दुःख नहीं किया जितना बीरबल के मरने का दुःख किया। अकबर कहा करता था कि दुःख है कि लोग बीरबल की लाश भी घाटी से न निकाल सके। उसे आग तो मिल जाती। फिर आप ही यह कहकर अपना संतोष कर लिया करता था कि खैर, वह सब प्रकार के बंधनों से मुक्त और अलग था। सूर्य का प्रकाश ही उसे पवित्र करने के लिये यथेष्ट है। और उसे पवित्र करने की तो कोई ऐसी आवश्यकता भी न थी।

लोग जानते थे कि बीरबल सदा से अकबर के आठ पहर का दिल का बहलावा रहा है। जब उन्होंने देखा कि उसके मरने से बादशाह इतना अधिक दुःखी और बेचैन हो रहा है, तब वे अनेक प्रकार के समाचार लाने लगे। कोई यात्री आता

श्रौर कहता कि मैं ज्वालाजी से आता हूँ। वहाँ योगियों के एक झुंड में बीरबल चला जाता था। कोई कहता था कि मैंने उसे देखा था। वह संन्यासियों के साथ बैठा हुआ कथा बाँच रहा था। बादशाह के दिल की बेचैनी हर एक बात की जाँच कराती थी। वह स्वयं कहा करता था कि बीरबल सब प्रकार के सांसारिक बंधनों से अलग और बहुत लज्जा-शील था। यदि वह इस पराजय के कारण लज्जित होकर साधु होकर निकल गया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। दरबारी मूर्ख इस प्रकार के विचार और भी अधिक फैलाते थे और इनमें बहुत कुछ नमक मिर्च भी लगाते थे।

लाहौर में नित्य नई हवाई उड़ती थी। अंत में यहाँ तक हुआ कि बादशाह ने एक आदमी काँगड़े भेजा और उससे कहा कि जाकर बीरबल को ढूँढ़ लाओ। वहाँ जाकर देखा गया तो कहीं कोई नहीं था। उसकी जिंदगी का ढकोसला और बादशाह का उस पर विश्वास इतना प्रसिद्ध हुआ कि जगह जगह उसी की चर्चा होने लगी। यहाँ तक कि कालिंजर से, जो बीरबल की जागीर था, मुनशियों के इस आशय के निवेदन-पत्र आए कि बीरबल यहाँ था। एक ब्राह्मण उसे पहले से बहुत अच्छी तरह जानता था। उसने तेल मलने में बीरबल को पहचाना था। वह यहाँ अवश्य है, पर कहीं छिपा हुआ है। बादशाह ने तुरंत करोड़ी के नाम आज्ञापत्र भेजा। उस मूर्ख ने एक दरिद्र पथिक को या तो मूर्खता के कारण

और या दिल्लगी के विचार से बीरबल बनाकर अपने यहाँ रखा हुआ था। अब जब शाही आज्ञापत्र पहुँचा और जाँच हुई, तब उसने समझा कि दरबार में मुझे बहुत लज्जित होना पड़ेगा। बल्कि नौकरी छूटने का भी भय है। इसलिये उसने हँज्जाम को तो लौटा दिया और उस बेचारे पथिक को मुफ्त में मार डाला। और उत्तर में प्रार्थनापत्र लिखकर भेज दिया कि यहाँ बीरबल था तो अवश्य, परंतु मृत्यु ने उसे श्रीमान् की सेवा में उपस्थित होने से वंचित रखा। दरबार में दोबारा मातमपुरसी हुई। फिर उसकी मृत्यु के शोक मनाए गए। वहाँ के करोड़ी और दूसरे नौकर चाकर इस अपराध में पकड़ बुलवाए गए कि बादशाह को उसके होने का समाचार क्यों नहीं भेजा गया। वे कैद किए गए और उन्हें दंड दिया गया। हजारों रुपए जुरमाने के दिए, तब कहीं जाकर छूटे। वाह! मरने में भी एक मसखरापन रहा। और लोगों की जान व्यर्थ साँसत में डाली।

यद्यपि बीरबल का मंसब दो हजारी से अधिक नहीं था, लेकिन बादशाह की उन पर इतनी अधिक कृपा रहती थी कि हजारों और लाखों के जवाहिरात साल में नहीं बल्कि महीनों में उन्हें प्रदान किए जाते थे। साहब उस्सैफ व उल्कलम उनकी उपाधि थी जिस का अर्थ होता है—तलवार और कलम का स्वामी। मतलब यह कि बीरबल तलवार और कलम दोनों के चलाने में बहुत कुशल समझे जाते थे। शाही

आज्ञापत्रों आदि में पहले इनकी उपाधि और प्रशंसा आदि की सूचक आठ आठ पंक्तियाँ लिखी जाती थीं और तब कहीं जाकर इनका नाम पृष्ठ पर टपकता था। बादशाह ने स्वयं अपने हाथ से लिखकर बड़े बड़े अमीरों को इनके मरने का समाचार भेजा था। अब्दुल रहीम खानखानाँ के नाम छः पृष्ठों का एक लंबा चौड़ा आज्ञापत्र लिखा था जो अबुलफजल के पहले दफ्तर में उद्धृत है। अकबर उसके साथ बहुत अधिक घनिष्ठता का व्यवहार करता था और किसी बात में उससे परदा नहीं करता था। हद है कि आराम करने के समय उसे अंत:पुर के अंदर भी बुला लेता था। और यदि सच पूछो तो इनके चुटकुलों और चुहलों का वही समय था जब कि बिलकुल एकांत रहता था और किसी प्रकार के तक-ल्लुफ की आवश्यकता नहीं होती थी।

बीरबल अकबर के दीन इलाही में भी सम्मिलित थे और उस संप्रदाय के परम निष्ठ अनुयायियों में से थे। उसके अधिवेशनों में ये सबसे आगे दौड़े जाते थे। मुल्ला साहब इनसे बहुत नाराज जान पड़ते हैं। लेकिन यह बुरा करते हैं कि नीच, काफिर, पतित और कुत्ता आदि शब्दों से जबान खराब करते हैं। यह अवश्य है कि बीरबल जी हँसी में इस्लाम धर्म और उसके अनुयायियों को भी जो कुछ चाहते थे, वह कह जाते थे। मुसलमान अमीरों को यह बात अप्रिय जान पड़ती होगी। एक बार शहबाजखाँ कंबोह ने, जो चार

हज़ारी मंसबदार था और कई युद्धों में सेनापति भी हुआ था, (शाहरअल्लाह नाम था और लाहौर के रहनेवाले थे) दरबार खास के अवसर पर बीरबल को ऐसा बुरा भला कहा कि बादशाह की तबीयत भी बे-मजे हो गई। उस समय बादशाह बीरबल का पक्षपाती हो गया था। ये लोग समझते थे कि बीरबल ही बादशाह को हिंदू धर्म की ओर सबसे अधिक आकृष्ट करते हैं।

पहले भाग में इस बात का उल्लेख हो चुका है कि बादशाह ने शैतानपुरा बसाया था। बादशाह गुप्त रूप से इस बात का बराबर पता लगाता रहता था और बहुत ध्यान रखता था कि अमीरों में से कोई वहाँ न जाय। एक बार समाचार देनेवालों ने समाचार दिया कि बीरबल जी का पल्ला भी वहाँ अपवित्र हुआ है। बीरबल जानते थे कि बादशाह इस अपराध पर बहुत क्रुद्ध होते हैं; इसलिये ये अपनी जागीर कौड़ा घाटमपुर में चले गए थे। इनके चरों ने भी इन्हें समाचार दे दिया था कि भाँड़ा फूट गया है। यह सुनकर बीरबल बहुत घबराए और बोले कि अब तो मैं जोगी होकर निकल जाऊँगा। जब बादशाह को यह समाचार मिला, तब उसने खातिरदारी और परचाने के आज्ञापत्र लिखकर बुला लिया।

बीरबल के मरने पर अकबर को जितनी बेचैनी हुई थी और वह इन्हें जितना याद करता था, उसे देखकर लोग बहुत आश्चर्य करते हैं और कहते हैं कि ऐसे ऐसे पंडित, विद्वान्,

अनुभवी और वीर सरदार तथा दरबारी आदि उपस्थित थे और उनमें से अनेक स्वयं बादशाह के सामने ही मरे थे। फिर क्या कारण है कि बीरबल के मरने का जितना अधिक दुःख हुआ, उतना अधिक दुःख और किसी के मरने का नहीं हुआ? परंतु इस विषय में बहुत अधिक विचार या चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। यह स्पष्ट है कि प्रत्येक अमीर अपने काम और करतब का पक्का था और प्रत्येक कार्य के लिये विशिष्ट अवसर होता है। उदाहरणार्थ यदि विद्वानों और पंडितों की सभा हो, विद्या संबंधी वाद विवाद हो, काव्य-चर्चा हो तो वहाँ आपसे आप फैजी, अब्बुलफजल, शाह फतह उल्ला, हकीम अब्बुल-फतह, हकीम हमाम आदि आवेंगे। बीरबल ऐसे थे कि चाहे कुछ जानें या न जानें, कुछ समझें या न समझें, पर सब विषयों में अनधिकार चर्चा करने के लिये सदा तैयार रहते थे। धर्मों और धार्मिक सिद्धांतों पर बराबर आपत्तियाँ हुआ करती थीं। पुस्तक और प्रमाण से कोई संबंध ही नहीं था। क्या हिंदू और क्या मुसलमान सभी की परीक्षा हुआ करती थी। बीरबल ने इस विषय में वह पद प्राप्त कर लिया था कि वह और अब्बुलफजल आदि अकबर के दीन इलाही के खलीफा हो गए थे। जब परम्परा से चले आए हुए सिद्धांतों आदि की यह दशा हो तो फिर दर्शन आदि विषयों का तो कहना ही क्या है। उसमें तो जिसकी चाहें, हँसी उड़ा सकते हैं और जिसे चाहें, मसखरा बना सकते हैं।

यदि देश की व्यवस्था और दफ्तरों के प्रबंध का विषय हो तो राजा टोडरमल और उक्त विद्वान् याद आवेंगे। बीरबल यद्यपि इन कागजों के कीड़े नहीं थे, लेकिन फिर भी एक अजीब रकम थे। कुछ तो बुद्धि की तीव्रता और कुछ मसखरेपन से वहाँ भी जो कुछ समझ में आता था, कह देते थे और जबानी जमा खर्च करके सब जोड़ मिला देते थे। और जब अवसर देखते थे तब कोई दोहरा, कोई कवित्त या कोई चुटकुला भी तैयार करके मजलिस में उपस्थित कर देते थे।

यदि युद्ध और विग्रह आदि का अवसर होता था तो वहाँ भी उपस्थित रहते थे। बिना तलवार के युद्ध करते थे और बिना तोप के तोपखाने उड़ाते थे। सवारी, शिकारी के समय यदि कभी कोई अमीर फँस जाता था तो साथ हो लेता था। और नहीं तो उनका क्या काम था। राजा बीरबल सिपाही बनकर सैर शिकार के समय भी आगे हो जाते थे; और बातों के नमक मिर्च से वहां कबाब तैयार करके खिलाते थे। लेकिन यदि शेर या चीते की गंध पाते थे तो हाथी के हौदे में छिप जाते थे।

यदि मनोविनोद का अवसर हो, नाच, रंग और तमाशे हों, या इसी प्रकार के और जमावड़े हों तो वहाँ के लिये राजा इंद्र भी थे। भला वहाँ इनके सिवा किसी दूसरे का कैसे प्रवेश हो सकता था! इन्हें ऐसे जमावड़ों का शृंगार कहो, बातों का गरम मसाला कहो या जो कुछ कहो, वह सब ठीक

है। फिर यह सोचो कि यदि उस समय इन्हीं का दुःख और इन्हीं का स्मरण न हो तो फिर और किसका हो ?

बड़ा दुःख इस बात का है कि अकबर ने इनके लिये क्या क्या नहीं किया, परंतु बीरबल ने उसके लिये कोई स्मृति-चिह्न न छोड़ा। संस्कृत के श्लोक तो दूर रहे, भाट का एक दोहरा भी ऐसा नहीं जो हृदय की उमंग किसी समय कह उठा करे। हाँ अनेक चुटकुले हैं जो मथुरा के चौबों और मंदिरों के महंतों की जबान पर हैं। जब मुफ्त की रसोइयों से पेट फुलाकर चित लेट जाते हैं, तब पेट पर हाथ फेरते हैं, डकार लेते हैं, और कहते हैं कि वाह बीरबल जी, वाह ! अकबर बादशाह को कैसा दास बनाया था। कुछ लोग कहते हैं कि पहले जन्म में बीरबल राजा थे और अकबर उनके दास थे। और फिर एक चुटकुला कहते हैं और करवटें ले लेकर घड़ियों प्रशंसा करते रहते हैं। बुड्ढे बुड्ढे बनियों, बल्कि पुराने पुराने मुनशियों के लिये भी ये चुटकुले इतिहासज्ञता और विद्या-चर्चा की पूँजी होते हैं।

मैंने चाहा था कि यदि इनकी और कोई रचना नहीं मिलती तो इनके विवरण के अंत में कुछ रंगीन और नमकीन चुटकुले ही लिख दूँ। लेकिन बहुत कम चुटकुले ऐसे मिले जिनमें विद्वत्ता या काव्य-मर्मज्ञता का कुछ भी आनंद हो। बहुत सी पुरानी पुस्तकें आदि एकत्र कीं; और जहाँ बीरबल के चुटकुलों का नाम सुना, वहीं हाथ

बढ़ाया। लेकिन जब पढ़ने लगा, तब सभ्यता ने वह पृष्ठ मेरे हाथ से छीन लिया।

एक पहेली मुझे बहुत दिनों से याद है। वही यहाँ लिखी जाती है। बातों का पारखी इससे भी उनकी योग्यता का खरा-खोटापन परख लेगा। यह पहेली मालपूए की है।

घी में गरक सवाद में मीठा बिन बेलन वह बेला है।
कहें बीरबल सुनें अकबर यह भी एक पहेला है॥

यदि कोई आजाद से पूछे तो सैयद इन्शा के मालपूए इससे कहीं ज्यादा मजे के हैं। गजल के तीन शेर याद हैं।

ये आप हुस्न पे अपने घमंड करते हैं।
कि अपने शीशमहल में ही डंड करते हैं॥
खिला के मालपूए तरतराते मोहनभोग।
गुरू जी चेलों को अपने मुसंड करते हैं॥
शराब उनको कहीं मत पिलाइयो इन्शा।
कि वह तो मस्त हो मजलिस को भंड करते हैं॥

राजा बीरबल के एक पुत्र का नाम हरम राय था। दर-बारदारी और राजाओं की भेंट आदि में वह राज्य की सेवा किया करता था। बड़े पुत्र का नाम लाला था। वह भी दरबार में हाजिर रहता था। उसने १०१० हि० में इस्तीफा दे दिया और कहा कि महाबली, अब मैं भगवान् का स्मरण किया करूँगा। बादशाह ने बहुत प्रसन्न होकर वह निवेदन-पत्र स्वीकृत कर लिया। वास्तविक बात यह थी कि वह

तरक्की न होने के कारण अप्रसन्न था। और बादशाह ने उसकी लंपटता के कारण उसकी तरक्की करना उचित नहीं समझा था; इसलिये वह अकबर के दरबार से चला गया और इलाहाबाद में जाकर बादशाह के उत्तराधिकारी राजकुमार की नौकरी कर ली। अब्बुलफजल कहते हैं कि यह स्वार्थपरता और स्वभाव की दुष्टता के कारण अपव्ययी है और अपनी वासनाओं तथा आवश्यकताओं को बढ़ाए जाता है। इससे कुछ बन नहीं पड़ता। यह मूर्खता कर बैठा और उधर जाने का विचार किया। वह बात भी न बन पड़ी। पृथ्वीनाथ ने उसे छुट्टी देकर उसके रोग की चिकित्सा कर दी।

राजा बीरबल जी का चित्र देखकर आश्चर्य होता है कि ऐसा भद्दा आदमी किस प्रकार ऐसा बुद्धिमान् और समझदार था, जिसकी बुद्धि की तीव्रता की प्रशंसा सभी इतिहास-लेखक करते हैं।

मखदूम उल्मुल्क मुल्ला अब्दुल्ला सुल्तानपुरी

ये अंसार संप्रदाय के थे और इनके पूर्वज मुलतान से आकर सुलतानपुर में बसे थे। मुसलमान विद्वानों के लिये जिन धार्मिक विद्याओं और सिद्धांतों आदि का जानना आवश्यक है, उनमें ये एक थे। मआसिर उल् उमरा में लिखा है कि इन्होंने मौलाना अब्दुल कादिर सरहिंदी से विद्योपार्जन किया था। छोटे बड़े साधारण और असाधारण

सभी लोगों पर इनकी महत्ता बादल की भाँति छाई रहती थी; और इनकी हर एक बात कुरान की आयत और हदीस का सा प्रभाव रखती थी। इस विचार से जो कोई बादशाह होता था, वह इनका बहुत अधिक ध्यान रखता था। हुमायूँ यों तो साधारणतः सभी विद्वानों का आदर करता था, परंतु इनकी बहुत अधिक प्रतिष्ठा करता था। उससे इन्हें मखदूम उल्मुल्क और शेख उल् इस्लाम की उपाधि मिली थी। पर कुछ लोग कहते हैं कि इन्हें शेख उल् इस्लाम शेर शाह ने बनाया था। ये इस नेकनीयत बादशाह के राजकीय कार्यों में बड़े विश्वसनीय थे और अपना विशिष्ट स्थान रखते थे। जब हुमायूँ तबाह होकर ईरान की ओर गया, तब इनकी बड़ाई और प्रभाव के कारण शेरशाही साम्राज्य के अनेक उपकार होने लगे। राजा पूरनमल, रायसीन और चँदेरी के राजा इन्हीं के वचन देने पर और इन्हीं के विश्वास पर दरबार में उपस्थित हुए थे और आते ही शेरशाह के वैभव का शिकार हुए थे। इसके राज्यकाल में भी ये बहुत ही प्रतिष्ठापूर्वक रहे। सलीम शाह के राज्यकाल में और भी अधिक उन्नति की और चरम सीमा की शक्ति उपार्जित की। इसका वर्णन शेख अलाई के प्रकरण में भी थोड़ा बहुत किया गया है। इन्होंने शेख अलाई और उनके पीर की हत्या में विशेष प्रयत्न किया था; और अंत में पीड़ित शेख अलाई इन्हीं के फतवों का प्रमाण-पत्र लेकर स्वर्ग में पहुँचे थे।

उसी समय लाहौर इलाके के जहनी नामक स्थान में शेख दाऊद जहनीवाल एक प्रतिष्ठित फकीर और महात्मा थे। उनका ईश्वराराधन, तपश्चर्या और सच्चरित्र बहुत अधिक प्रसिद्ध था और इन्हीं सब कारणों से उनका स्थान उनके भक्तों से भरा रहता था। दूर दूर के छोटे और बड़े सभी लोग उन पर बहुत अधिक श्रद्धा और भक्ति रखते थे। मुल्ला साहब कहते हैं कि इन्होंने अपने माहात्म्य और ईश्वर-सामीप्य से फकीरी की शृंखला का ऐसा प्रचार किया था कि जिसका निनाद प्रलय काल तक बंद न होगा। जिन दिनों मुल्ला अब्दुल्ला सुलतानपुरी ने, जो मखदूम उल् मुल्क कहलाते थे, साधुओं और फकीरों को कष्ट पहुँचाने पर कमर बाँधी और बहुतों की हत्या कराई, उन दिनों इन्होंने शेख दाऊद को भी ग्वालियर से सलीम शाह का आज्ञापत्र भेजकर बुलवाया। वे दो एक सेवकों को साथ लेकर चल पड़े। नगर के बाहर मखदूम उल् मुल्क से भेंट हुई। शेख दाऊद ने पूछा कि जिस फकीर का किसी से कोई संबंध नहीं है, उसे बुलवा भेजने का क्या कारण है ? मखदूम उल् मुल्क ने कहा कि मैंने सुना है कि तुम्हारे भक्त लोग तुम्हारी चर्चा के समय "या दाऊद, या दाऊद" कहते हैं। उन्होंने उत्तर दिया कि लोगों को सुनने में भ्रम हुआ होगा। वे लोग "या वदूद, या वदूद" कहते होंगे। उस अवसर पर एक दिन अथवा एक रात वहाँ रहकर शेख दाऊद ने इन्हें बड़े बड़े उपदेश दिए और अध्यात्म संबंधी

बहुत सी बातें बतलाईं जिनका मखदूम उल् मुल्क पर बहुत प्रभाव पड़ा और उन्होंने शेख दाऊद को बहुत अधिक प्रतिष्ठा के साथ वहाँ से बिदा किया।

इनके अत्याचारों के कारण मुल्ला साहब का दिल भी पका हुआ फोड़ा हो रहा है। जहाँ जरा सी रुकावट पाते हैं, वहीं फूट बहते हैं। जुमरए फुक़रा (फकीरों का विवरण) में लिखते हैं कि जब शाह आरिफ हसनी अहमदाबाद और गुजरात से लौटकर आए, तब लाहौर में ठहरे। उनके गुणों के कारण बहुत से लोग उन पर लट्टू हो गए। उन्होंने कुछ जलसों में गुजरात के जमस्तानी मेवे मँगाकर लाहौर में लोगों को खिलाए। पंजाब के विद्वान्, जिनमें मखदूम उल् मुल्क स्तम्भ स्वरूप थे, उन्हें लिपट गए। उनका अपराध यह निश्चित किया गया कि ये मेवे दूसरे लोगों के बागों के हैं और इन्होंने मालिकों की आज्ञा के बिना ही इनका उपयोग किया है। इसलिये इन मेवों का व्यवहार हराम है और खानेवालों का खाना भी हराम है। वह तंग होकर काशमीर चले गए। सलीम शाह यद्यपि मखदूम उल् मुल्क का बहुत अधिक आदर करता था, यहाँ तक कि एक अवसर पर जब वह इन्हें बिदा करने के लिये फर्श के सिरे तक आया था, तब उसने इनकी जूतियाँ सीधी करके इनके सामने रखी थीं, तथापि उसकी ये सब बातें स्वार्थसाधन के लिये थीं; क्योंकि वह जानता था कि सर्व साधारण के हृदयों पर इनकी बातों का बहुत अधिक प्रभाव है और उनमें ये बहुत

कुछ काम कर सकते हैं। एक बार पंजाब की यात्रा में सलीम शाह अपने मुसाहबों के घेरे में बैठा हुआ था। इतने में मखदूम भी वहाँ पधारे। उन्हें दूर से देखकर बोला—तुम लोग नहीं जानते कि यह कौन आ रहे हैं। एक मुसाहब ने निवेदन किया—फरमाइए। सलीम शाह ने कहा कि बाबर बादशाह के पाँच लड़के थे। उनमें से चार लड़के तो भारतवर्ष से चले गए। एक यहाँ रह गया। मुसाहब ने पूछा—वह कौन है? उसने उत्तर दिया—यही मुल्ला साहब जो आ रहे हैं। सरमस्तखाँ ने पूछा कि ऐसे उपद्रवी को जीवित रखने का क्या कारण है? सलीम शाह ने कहा कि इसी लिये कि इससे अच्छा आदमी और कोई नहीं। जब मुल्ला अब्दुल्ला वहाँ पहुँचे, तब उसने उन्हें सिंहासन पर बैठाया और मोतियों की एक सुमरनी, जो उसी समय किसी ने उसको भेंट की थी और जो बीस हजार की थी, उन्हें भेंट कर दी।

सलीम शाह अपने मन में समझता था कि मखदूम अंदर ही अंदर हुमायूँ के पक्षपाती हैं। उसका यह कोरा संदेह ही संदेह नहीं था। जब हुमायूँ विजय के झंडे गाड़ता हुआ काबुल में आ पहुँचा तो उसके आने का समाचार लाहौर में भी प्रसिद्ध हुआ। उन दिनों वहाँ हाजी पराचा नाम का एक व्यापारी रहा करता था। वह काबुल भी आया जाया करता था। मखदूम ने जान बूझकर अपने आपको बचाने के लिये हुमायूँ के नाम कोई पत्र तो नहीं भेजा, परंतु उसके

द्वारा एक जोड़ी मोजे की और एक छड़ी उपहार स्वरूप भेजी। इसका अभिप्राय यह था कि यहाँ मैदान साफ है। मोजे चढ़ाओ और घोड़े को छड़ी लगाओ। आजाद सोचता है कि अपने विरोधियों का यह वैभव और यह सामर्थ्य देखकर शेख मुबारक अपने मन में क्या कहता होगा! जाननेवाले लोग जानते हैं कि जब गुणी लोगों की कहीं पहुँच नहीं होती और वे अनादर के गड्ढों में पड़े हुए होते हैं और कम योग्यता के लोग अपने सौभाग्य के कारण उच्च पदों पर पहुँच जाते हैं, तब गिरनेवाले लोगों के हृदयों पर कड़े आघात लगते हैं। इस अवस्था में कभी तो वे अपने गुणों की पूर्णता को नष्ट न होनेवाली संपत्ति और दूसरों के संयोगवश बढ़े हुए प्रताप को दूध का उबाल कहकर अपना मन प्रसन्न कर लेते हैं, कभी एकांतवास के प्रदेश की निर्भयता की प्रशंसा करके दिल बहला लेते हैं और कभी बादशाहों की सेवा को दासता कहकर अपनी स्वतंत्र स्थिति को बादशाहत से भी ऊँचा पद देते हैं। इसमें संदेह नहीं कि विद्या और गुणों की यथेष्टता का नशा मनुष्य के विचारों को बहुत उच्च कर देता है और उसके स्वभाव में स्वतंत्रता तथा बेपरवाही पैदा कर देता है और ठाट बाट के अभिमान को बहुत तुच्छ बनाकर दिखलाता है। परंतु यह संसार बुरी जगह है; और इस संसार के रहनेवाले भी बुरे लोग हैं। ऊपरी ठाट बाट पर मरनेवाले ये लोग शासन और अधिकार के दास तथा लक्ष्मी के उपासक हैं। और

कठिनता यह है कि इन्हीं लोगों में निर्वाह तथा काल-यापन करना पड़ता है। उनकी दिखावटी तड़क भड़क से शेख मुबारक जरा भी न दबते होंगे। परंतु उन्हें जो जो अपमान तथा कठिनाइयाँ सहनी पड़ती थीं और उनके सामने जान जोखिम के जो अवसर आते थे, उनके कारण उन्हें ईश्वर ही दिखाई देता होगा। स्वतंत्रता की कल्पित बातों से प्रस्तुत विपत्तियों के घाव और अनुभव में आनेवाले कष्टों के दाग कभी सुख के फूल नहीं बन जाते।

जब हुमायूँ ने फिर आकर भारतवर्ष पर अधिकार कर लिया, तब मखदूम साहब ही सर्वे सर्वा थे और मानों उन्हीं के हाथ में सब अधिकार थे। लेकिन जब अकबर के शासन का प्रारंभ हुआ, तब मखदूम साहब पर एक विलक्षण नहूसत आ गई। जिस समय अकबर ने हेमू पर चढ़ाई की थी, उस समय सिकंदरखाँ अफगान अपने वर्ग के बहुत से लोगों को साथ लेकर पहाड़ों में दबका हुआ बैठा था। जब उसने हेमू पर अकबर की चढ़ाई का समाचार सुना, तब वह देश में फैलकर इलाके से रुपए वसूल करने लगा। उस समय हाजी मुहम्मदखाँ सीस्तानी लाहौर का हाकिम था। उसे पता लगा कि मखदूम का संकेत पाकर ही सिकंदर बाहर निकला है। मखदूम साहब की धन-संपन्नता और वैभव भी प्रसिद्ध था। हाजी को रुपए निचोड़ने का अवसर मिल गया। उसने मखदूम को और कई आदमियों के साथ पकड़कर शिकंजे में कस दिया;

बल्कि मखदूम साहब को जमीन में आधा गाड़ भी दिया। मखदूम ने अनेक वर्षों में जो कारूँ का खजाना एकत्र किया था, वह सब उसने बात की बात में उनसे ले लिया। खानखानाँ यद्यपि कहने के लिये तुर्क सिपाही था, तथापि शासन के कार्यों में वह अरस्तू ही था। जब उसने यह समाचार सुना, तब वह बहुत नाराज हुआ। जब विजय के उपरांत वह बादशाह के साथ लौटकर लाहौर आया, तब हाजी के प्रतिनिधि को मखदूम साहब के घर क्षमा-प्रार्थना करने के लिये भेजवाया और मखदूम साहब को लाकर मानकोट के इलाके में बीघे की जागीर दी। थोड़े ही दिनों में उनके अधिकार पहले से भी और बढ़ा दिए। खानखानाँ ने यह सब केवल इसी लिये किया था कि उस समय बादशाह की अवस्था बहुत कम थी और उसे किसी बात का अनुभव नहीं था। उस समय ऐसे आदमियों को प्रसन्न रखना बहुत ही आवश्यक था; क्योंकि साम्राज्य की बड़ी बड़ी समस्याओं की मीमांसा ऐसे ही लोगों के द्वारा हुआ करती थी।

आदमखाँ गक्खड़ पिंडी और झेलम के इलाके का एक वीर और साहसी सरदार था। वह इन्हीं के द्वारा बादशाह की सेवा में आया था। खानखानाँ की राजनीति में उसका भी बहुत कुछ हाथ था। खानखानाँ ने आदमखाँ से भाईचारा स्थापित किया था और ये दोनों पगड़ी-बदल भाई हुए थे। अंत में जब खानखानाँ और अकबर की बिगड़ी थी और खान-

खानाँ ने अकबर की सेवा में संधि का सँदेसा भेजा था, उस समय खानखानाँ को लेने के लिये यही आदमखाँ और मुनइमखाँ गए थे। खानजमाँ का अपराध भी इन्हीं की सिफारिश से क्षमा किया गया था। लेकिन जब अकबर को स्वयं सब राजकार्य सँभालने की लालसा हुई, तब उसने समस्त राजकीय नियमों का ढंग और स्वरूप ही बदल दिया। उसने सद्भाव और मिलनसारी पर अपने शासन की नींव रखी। उस समय अकबर के विचार इन्हें बहुत खटके होंगे। और इसमें भी संदेह नहीं कि इन्होंने बुड्ढे बुड्ढे बादशाहों को अपने हाथों में खिलाया था। जब इस नवयुवक को राजसिंहासन पर देखा होगा, तब ये भी बढ़ते बढ़ते सीमा से बहुत बढ़ गए होंगे। इसी बीच में फैजी और अब्बुलफजल पर ईश्वर का अनुग्रह हुआ। पहले बड़ा भाई मलिक उश्शुअरा (कवि-सम्राट्) हो गया। फिर छोटे ने मीर मुंशी होकर खास मुसाहबत का पद पाया। शेख मखदूम के हाथों शेख मुबारक पर जो जो विपत्तियाँ आई थीं, वह उनके पुत्रों को अभी तक भूली नहीं थीं। उन लोगों ने उनका प्रतिकार करने के लिये अकबर के कान भरने आरंभ किए। अब अकबर के विचार भी बदलने लग गए।

फाजिल बदाऊनी लिखते हैं कि अकबर हर शुक्रवार की रात को विद्वान् सैयदों और शेखों को बुलाता था और स्वयं भी उस सभा में सम्मिलित होकर विद्याओं और कलाओं के

संबंध की बातें सुना करता था। (देखो फाजिल बदाऊनी का हाल।) इसी प्रकरण में वे लिखते हैं कि मखदूम उल्मुल्क वहाँ मौलाना अब्दुल्ला सुलतानपुरी को बेइज्जत करने के लिये बुलाया करते थे। उस समय हाजी इब्राहीम और शेख अब्बुल-फजल नए नए आए हुए थे और अकबर के नए संप्रदाय के अनुयायी बल्कि मुख्य आचार्य हो रहे थे। मखदूम कुछ नौसिखुए लोगों को इन लोगों के साथ वादविवाद करने के लिये छोड़ देते थे और बात बात में संदेह किया करते थे। बादशाह के मुसाहब अमीरों में से भी कुछ लोग बादशाह का इशारा पाकर तरह तरह की बातें बनाया करते थे। कभी कभी टपकते थे तो मखदूम से विलक्षण विलक्षण और चुभती हुई कहावतें भी कहा करते थे। बुढ़ापे में वह आयत उन पर ठीक घटती थी जिसका अभिप्राय यह है—'तुम लोगों में से जो तुच्छ और अप्रतिष्ठित होंगे, वे अधिक अवस्था की ओर ढकेले जायँगे।" एक रात को खानजहाँ ने निवेदन किया कि मखदूम उल्मुल्क ने फतवा दिया है कि आजकल हज के लिये जाना कर्त्तव्य नहीं है, बल्कि पाप है। बादशाह ने कारण पूछा। उन्होंने बतलाया कि यदि स्थल-मार्ग से जायँ तो शीया लोगों के प्रदेश से गुजरना पड़ता है और यदि जल-मार्ग से जायँ तो फिरंगियों से काम पड़ता है। यह भी एक अप्रतिष्ठा की ही बात है। और जहाज का जो इकरारनामा लिखा गया है, उस पर हजरत मरियम और हजरत ईसा की तसवीरें बनी हुई

हैं। और यह मूर्त्तिपूजा है। इसलिये ये दोनों ही प्रकार ठीक नहीं हैं।

मखदूम ने शरह की पाबंदी से बचने के लिये एक ढंग निकाला था। वह यह था कि प्रत्येक वर्ष की समाप्ति पर अपना सारा धन अपनी स्त्री को प्रदान कर देता था और वर्ष के अंदर ही फिर लौटा भी लेता था जिसमें जकूत (नियत खैरात) न देनी पड़े। इसके अतिरिक्त इसी प्रकार के उसके और भी ऐसे अनेक ढंग और बहाने मालूम हुए जिनके आगे बनी इसराइल के ढंग और बहाने भी लज्जित हैं। मतलब यह कि इसी प्रकार की नीचता, कंजूसी, मूर्खता, धूर्तता, आडंबर और दुष्टता की बहुत सी बातें थीं जो किसी प्रकार फकीरों और महात्माओं के योग्य नहीं थीं। धीरे धीरे वे सब बातें प्रकट होने लगीं और लोगों को भीतरी रहस्य मालूम होने लगे।

दरबार के लोग बहुत सी ऐसी बातें कहा करते थे जो उनके लिये बहुत ही अपमानजनक और निंदात्मक थीं। कहते थे कि एक बार उनसे पूछा गया था कि क्या अब आप पर हज का ऋण हो गया (अर्थात् अब आपके लिये हज करना कर्त्तव्य हो गया) तो उत्तर दिया कि नहीं।

मुल्ला साहब एक और जगह लिखते हैं कि बादशाह के इशारे से अब्बुलफजल भी—

که یک عنایت قاضی به از هزار گواه

अर्थात् "काजी या न्यायाधीश की एक कृपा भी हजार गवाहों से अच्छी होती है" वाली कहावत के अनुसार सदर काजी, हकीम उल्मुल्क और मखदूम उल्मुल्क आदि के साथ बहुत वीरतापूर्वक भिड़ा करता था और धार्मिक विश्वासों के संबंध में उन लोगों के साथ वाद विवाद किया करता था। बल्कि अवसर पड़ने पर उनकी अप्रतिष्ठा करने में भी कोई कसर नहीं करता था। इस प्रकार की बातें बादशाह को बहुत अच्छी लगती थीं। सत्तरे बहत्तरे बुड्ढों ने आसफखाँ मीर बख्शी के द्वारा गुप्त रूप से संदेशा भेजा कि क्यों व्यर्थ हम लोगों से उलझते हो। उसने कहा कि हम एक आदमी के नौकर हैं, बैंगनों के नौकर नहीं हैं।

इसमें एक प्रसिद्ध कहानी का संकेत है। कहते हैं कि एक बार कोई बादशाह भोजन कर रहा था। बैंगनों ने बड़ा स्वाद दिया। बादशाह ने कहा कि वजीर, बैंगन भी क्या अच्छी तरकारी है! वजीर ने भी उसके स्वाद की बहुत अधिक प्रशंसा की; बल्कि चिकित्सा शास्त्र और हदीस तक का प्रमाण देते हुए उसके अनेक गुण बतलाए। फिर कुछ दिनों बाद एक अवसर पर बादशाह ने कहा कि वजीर, बैंगन की तरकारी बहुत खराब होती है। वजीर ने पहले उसकी जितनी प्रशंसा की थी, आज उससे कहीं बढ़कर उसकी निंदा कह सुनाई। बादशाह ने कहा कि वजीर, उस दिन तो तुमने बैंगनों की इतनी अधिक प्रशंसा की थी; और आज ऐसी निंदा करते

हो। यह क्या बात है? वजीर ने निवेदन किया—मैं तो हुजूर का नौकर हूँ। कुछ बैंगनों का नौकर तो हूँ ही नहीं। मैं तो जब कहूँगा, तब हुजूर के कथन का ही समर्थन करूँगा।

एक और जगह मुल्ला साहब लिखते हैं कि बड़ी खराबी यह हुई कि मखदूम और शेखसदर की बिगड़ गई। मखदूम उल्मुल्क ने इस आशय का एक निबंध लिखा कि शेख अब्दुल नबी ने खिजरखाँ शरवानी पर मुहम्मद साहब को बुरा भला कहने का अपराध लगाकर और मीर हब्श को शीया होने के अपराध में व्यर्थ मार डाला। इसके अतिरिक्त शेख के पिता ने शेख को अपने उत्तराधिकार से भी वंचित कर दिया है; इसलिए इनके मरने पर नमाज तक नहीं पढ़नी चाहिए। और फिर शेख को खूनी बवासीर भी है। शेख सदर ने इसके उत्तर में मखदूम पर अज्ञान और भ्रम आदि के अपराध लगाने आरंभ किए। बस मुल्लाओं के दो दल हो गए। एक सब्ती कहलाता था और दूसरा कब्ती। दोनों दल नए नए प्रश्नों पर झगड़ने लगे। इस झगड़े का परिणाम यह हुआ कि दोनों ही दल गिर पड़े, अर्थात् दोनों पर से बादशाह का विश्वास जाता रहा। सुन्नी, शीया और हन्फी तो दूर रहे, मूल सिद्धांतों में भी विघ्न पड़ने लगे। और उन लोगों के धार्मिक विश्वास में दोष आ जाने के कारण मूल विश्वास का रूप ही कुछ से कुछ हो गया। अब यह समझा जाने लगा कि किसी धर्म का अनुयायी होना ही मूर्खता है; और अब इसी

के संबंध में जाँच होने लग गई। जमाने का रंग बदल गया। कहाँ तो यह बात थी कि ये शेख मुबारक से, बल्कि हर एक आदमी से बात बात पर प्रमाण माँगा करते थे और उस पर तर्क वितर्क करते थे। कहाँ अब यह दशा हो गई कि स्वयं इन्हीं की बातों में दोष निकाले और तर्क वितर्क किए जाते थे। और यदि यह कुछ कहते थे तो उसमें हजार विघ्न निकलते थे।

मखदूम उल् मुल्क के मस्तिष्क में अभी तक पुरानी हवा भरी हुई थी। पहले इन्हें इस बात का दावा रहा करता था कि जिसे हम इस्लाम का बादशाह कहेंगे, वही इस्लाम के सिंहासन पर स्थिर रह सकेगा। जो बादशाह हमारे विरुद्ध होगा, उसके विरुद्ध सारी खुदाई हो जायगी। इसी बीच में बादशाही दरबार के विद्वानों ने यह सिद्धांत स्थिर कर लिया और इस आशय का एक व्यवस्थापत्र भी तैयार कर लिया कि बादशाह सर्वप्रधान न्यायाधीश और धार्मिक विषयों में इमाम है। यदि परस्पर-विरोधी सिद्धांत उपस्थित हों तो वह अपने विचार के अनुसार एक सम्मति को दूसरी सम्मति की अपेक्षा श्रेष्ठ और ठीक कह सकता है। (देखो अकबर का हाल।) मुख्य लक्ष्य तो इन्हीं दोनों पर था; लेकिन नाम के लिये सभी विद्वान् बुलवाए गए। बड़े बड़े और वयस्क विद्वानों ने विवश होकर उस व्यवस्थापत्र पर अपनी अपनी मोहर कर दी। लेकिन मन ही मन उन लोगों को बहुत बुरा लगा।

मखदूम उल् मुल्क ने फतवा दे दिया कि भारतवर्ष काफिरों का देश हो गया। यहाँ रहना उचित नहीं। और स्वयं वह मसजिद में चला गया और वहीं रहने लगा। वह कभी कहता था कि अकबर शीया हो गया है, कभी कहता था कि हिंदू हो गया है और कभी कहता था कि ईसाई हो गया है।

यहाँ जलवायु के साथ ही साथ जमाने का मिजाज भी बदल गया था; अतः इनके नुसखे ने कुछ भी प्रभाव न दिखलाया। बादशाह ने कहा कि क्या मसजिद मेरे राज्य के अंदर नहीं है जहाँ वह जाकर रहे हैं? ये बिलकुल व्यर्थ की बातें हैं। अंत में सन् ९८७ हि० में जैसे तैसे दोनों आदमियों को मक्के भेज दिया और कह दिया कि जब तक आज्ञा न मिले, तब तक वहाँ से न लौटें। मआसिर उल् उमरा में लिखा है कि मक्के के शेख उन दिनों जीवित थे। धर्म के कट्टरपन में दोनों महाशयों के विचार समान ही थे, इसलिये दोनों में बहुत अच्छी तरह मुलाकात हुई। बड़ा प्रेम दिखलाया गया और दोनों के मन मिल गए। वे तो वहीं रहते थे और ये वहाँ यात्री के रूप में पहुँचे थे। इसलिये शेख वहाँ आए, जहाँ यात्री रहते थे और इन्हें अपने साथ ले गए। यद्यपि उन दिनों समय नहीं था, तथापि आपसदारी के विचार से उन्होंने काबे का द्वार खुलवाकर मखदूम साहब को दर्शन करा ही दिए।

आजाद कहता है कि मखदूम और शेख दोनों ही धार्मिक विचारों की दृष्टि से समान महत्त्व रखते हैं। परंतु मखदूम साहब

ने जिन ग्रंथों की रचना की थी, वे सिद्ध और मान्य नहीं हो सके थे और इसी कारण अब वे अप्राप्य हैं। परंतु मक्के के शेख इब्नहज्र के ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध और मान्य हैं। लेकिन हाँ, बादशाह के पास रहने और दरबार में पहुँच होने के कारण धर्म के विरोधियों को दंडित और पीड़ित करने के जितने अवसर मखदूम साहब ने पाए, उतने कब किसके भाग्य में होते हैं ! मखदूम साहब ने बहुत से शीया लोगों का वध कराया, उन्हें कारागार भेजवाया और विफलमनोरथ बनाकर सदा दबाए रखा। परंतु उनके खंडन में किसी विशिष्ट ग्रंथ की रचना नहीं की। फिर भी शेख साहब की धार्मिक रचना अब भी बिजली की तरह दूर दूर से चमक चमककर सुन्नी भाइयों की आँखों को प्रकाश दिखलाती है। उधर शीया भाई भी तर्क वितर्क करने के लिये सदा चकमक पत्थर लिए तैयार हैं। काजी नूर उल्ला ने उनके उत्तर में एक ग्रंथ लिखा था। परंतु लड़ना झगड़ना और आपस में विरोध उत्पन्न करना मूर्खों का काम है। विद्वानों को उचित था कि उनकी मूर्खता की गरमी को विद्या रूपी ठंढक से शांत करते। भाग्य का फेर देखो कि वही लोग कागजों में दिया-सलाइयों के बक्स लपेटकर रख गए।

मआसिर उल् उमरा में लिखा है कि अफगानों के समस्त शासन काल में और हुमायूँ तथा अकबर के आधे शासनकाल में वे बहुत प्रतिष्ठित, विश्वसनीय, चतुर, विचारशील और अनु-

भवी समझे जाते थे और इन बातों के लिये उनकी बहुत प्रसिद्धि थी। अरब में पहुँचकर वे भारत के मजे याद किया करते थे। पर इसके सिवा वहाँ और कुछ नहीं हो सकता था। हाँ, इतना अवश्य होता था कि महफिलों और जलसों में बैठकर अकबर को काफिर बनाया करते थे। यहाँ उन्होंने अधिकार के जो सुख लूटे थे, वे ऐसे नहीं थे जो सहज में ही भुलाए जा सकते; इसलिये वे तड़पते थे और विवश होकर वहीं पड़े रहते थे। अंत में यह भार न तो मक्के की ही भूमि उठा सकी और न मदीने की ही। जहाँ के पत्थर थे, वहीं फेंके गए।

मुल्ला साहब यद्यपि मखदूम साहब और शेख सद्र दोनों से नाराज थे, पर बादशाह से तो वे बहुत ही अधिक नाराज थे। परंतु उन्हें यहाँ क्या खबर थी कि इन दोनों महाशयों का क्या परिणाम होगा। वह लिखते हैं कि बादशाह ने सन् ९८६ हि० में ख्वाजा मुहम्मद यही को, जो हजरत ख्वाजा अहरार कुद्स उल्ला रौह: के पोते थे, मीर हाज नियुक्त करके चार लाख रुपए दिए और शवाल मास में अजमेर से रवाना किया। शेख अब्दुल नबी और मखदूम उलमुल्क को, जिन्होंने आपस में लड़ झगड़कर अगलों और पिछलों पर से बादशाह का विश्वास हटा दिया था और इस्लाम धर्म से भी विमुख करा दिया था, इस काफिले के साथ मक्के भेज दिया। सोचा कि जब दो आपस में टकरावेंगे तब दोनों ही गिरेंगे। दूसरे वर्ष उनका

उद्देश्य सिद्ध हुआ और वे सब प्रकार के ऊपरी दुःखों और झगड़ों से मुक्त हो गए। मआसिर उल् उमरा में लिखा है कि यद्यपि वे दोनों इस अवस्था तक पहुँच गए थे और रास्ते में दोनों का साथ भी था, लेकिन फिर भी क्या रास्ते में और क्या मक्का मदीना आदि पवित्र स्थानों में दोनों के दिल साफ नहीं हुए। परस्पर विरोध बना ही रहा।

इन दोनों के भारत वापस आने का मुख्य कारण यह हुआ कि काबुल का हाकिम मुहम्मद हकीम मिरजा, जो अकबर का सौतेला भाई था, विद्रोही होकर पंजाब पर चढ़ आया। इधर खानजमाँ ने पूर्वी देशों में विद्रोह किया। यह एक साधारण नियम है कि इस प्रकार की छोटी छोटी बातें भी बहुत बड़ी बड़ी बनकर बहुत दूर तक पहुँच जाती हैं। यह समाचार भी मक्के तक पहुँचा। मक्के तक समाचार पहुँचने में यहाँ प्रबंध हो गया। लेकिन दोनों ही महाशयों ने समाचार सुनते ही अपने लिये बहुत अच्छा अवसर समझा। उन्होंने सोचा कि चलकर अकबर पर धर्म से भ्रष्ट होने का अभियोग लगावेंगे और फतवे के कारतूसों का जोर देकर हकीम मिरजा को फिर सिंहासन पर बैठा देंगे। बस फिर सारा साम्राज्य अपने हाथ में आ जायगा। गुलबदन बेगम और सलीमा सुलतान बेगम अकबर की फूफियाँ आदि बेगमें हज करके वापस आ रही थीं। उन्हीं के साथ ये लोग भी वहाँ से चल पड़े और गुजरात में पहुँचकर इसलिये ठहर गए कि पहले यहाँ से सब

हाल चाल समझ लें। परंतु उनके यहाँ पहुँचने से पहले ही हकीम मिरजा का सारा मामला तै हो चुका था। जब इन लोगों ने देखा कि फिर सारा अधिकार अकबर के ही हाथ में है तो ये लोग बहुत डरे। बेगमों से सिफारिश कराई। आदि से अंत तक इनकी सब बातें अकबर के कान तक बराबर पहुँच रही थीं। भला साम्राज्य और शासन संबंधी विषयों में स्त्रियों की सिफारिश का क्या काम! गुजरात के हाकिमों को आज्ञा पहुँची कि इन लोगों को नजरबंद रखें और धीरे से एक एक करके दरबार में भेज दें। यह समाचार सुनकर मखदूम साहब की बुरी दशा हो गई। अभी इन्होंने दरबार के लिये प्रस्थान भी नहीं किया था कि परलोक के लिये प्रस्थान करने की मृत्यु की आज्ञा आ पहुँची। सन् ९९० हि० में अहमदाबाद में इनका देहांत हो गया। मआसिर उल् उमरा में लिखा है कि बादशाह की आज्ञा से किसी ने जहर दे दिया। यदि यह बात सच हो तो कहना चाहिए कि हाथों का किया अपने सामने आ गया। जिस राजकीय उपद्रव का भय दिखलाकर इन्होंने शेख अलाई को मारा था, उसी राजकीय प्रपंच में ये स्वयं भी मारे गए। जनाजा अहमदाबाद से जालंधर आया और वहीं गाड़ा गया।

इनके इलाके और मकान लाहौर में थे और घर में बड़ी बड़ी कबरें थीं जिनकी लंबाई और चौड़ाई से इनके स्वर्गीय पूर्वजों का बड़प्पन प्रकट होता था। उन पर हरे रंग की

खोलियाँ चढ़ी रहती थीं और दिन ही से दीपक जलते रहते थे। हर दम ताजे फूल पड़े रहते थे। यहाँ फूल पत्ते लगानेवालों ने उन पर और पत्ते लगाए और कहा कि ये कबरें तो खाली ऊपर से दिखलाने की हैं। वास्तव में ये खजाने हैं जो सर्व साधारण के गले काट काटकर एकत्र किए गए हैं। मुल्ला साहब लिखते हैं कि काजी अली फतहपुर से चलकर लाहौर आया। इतने गड़े हुए खजाने निकले कि कल्पना की कुंजी भी उनके तालों को नहीं खोल सकती। उसके गोरखाने (कबरों के स्थान) में से कुछ संदूक निकले। उनमें सोने की ईंटें चुनी हुई थीं। वे सब संदूक मुरदों के बहाने से गाड़े हुए थे। शिकंजे में कसे गए। तीन करोड़ रुपए नगद निकले; और जो माल दूसरों के पास चले गए, वह रह गए। उनका हाल ईश्वर के सिवा और किसी को मालूम नहीं। ये सरसारी (?) ईंटें किताबों सहित (उन्हें भी ईंट ही समझना चाहिए) अकबर के खजाने में पहुँच गईं। उसके लड़के कुछ दिनों तक शिकंजे में बँधे रहे और दाने दाने को तरस गए।

फाजिल बदाऊनी ने उक्त सब विषयों के उपरांत उनके पांडित्य आदि की जो प्रशंसा की है, उसमें लिखा है कि तनजियः उल् अंबिया और शमायल नबवी उनकी पांडित्यपूर्ण रचनाएँ हैं। साथ यह भी लिखा है कि ये मुल्ला साहब सब लोगों को शरअ के अनुसार चलाने के लिये बहुत प्रयत्न करते थे और

कट्टर सुन्नी थे। बहुत से धर्मभ्रष्ट और शीया लोग उनके प्रयत्न से उस ठिकाने पर पहुँचे जो कि उनके लिये तैयार हुआ था (अर्थात् जहन्नुम को पहुँचे)।

उक्त फाजिल ने उनके साथ अपनी भेंट होने का जो समाचार लिखा, है उसका ठीक ठीक अनुवाद यहाँ दिया जाता है। जिस वर्ष अकबर ने गुजरात पर विजय प्राप्त की थी, उस वर्ष मखदूम उलूमुल्क वकालत की सेवा पर नियुक्त थे। उनकी बहुत अधिक प्रतिष्ठा और रोब दाब था। मैं पंजाब से घूमता हुआ वहाँ पहुँचा। मैं और अब्दुलफजल दोनों अभी तक नौकर नहीं हुए थे। हाजी सुलतान थानेसरी और हम सब मिलकर गए कि चलकर शेख की बातें सुनें। उस समय आप फतहपुर सीकरी के दीवान खास में बैठे थे। रौजतुल अहबाब ग्रंथ का तीसरा खंड सामने रखा हुआ था और कह रहे थे कि लोगों ने धर्म में कैसी कैसी खराबियाँ पैदा कर दी हैं। उसमें से एक शेर पढ़ा और कहा कि इसमें शीयापन की गंध आती है। मुझे पहले कोई जानता नहीं था। मैं नया नया आया था। मुझे मखदूम साहब का हाल मालुम नहीं था और मैं नहीं जानता था कि उनके कितने अधिक अधिकार हैं। पहली ही भेंट थी। मैंने कहा कि यह तो अरबी के अमुक शेर का अनुवाद है। मखदूम ने मेरी ओर घूरकर देखा और पूछा कि यह किसका शेर है? मैंने कहा कि अमीर के दीवान की टीका में का है। उन्होंने कहा कि

उसका टीकाकार काजी मीर हुसैन भी शीया है। मैंने कहा कि ख़ैर, यह और बहस निकली। शेख अब्बुलफजल और हाजी सुलतान बार बार मुँह पर हाथ रखकर संकेत से मुझे मना करते थे। फिर भी मैंने कहा कि कुछ विश्वसनीय लोगों से सुना है कि तीसरा खंड मोर जमालउद्दोन का नहीं है; उनके पुत्र सैयद मीरक शाह का है अथवा और किसी का है। इसी कारण इसकी भाषा और शैली पहले दोनों खंडों से नहीं मिलती। उन्होंने उत्तर दिया कि भाई, दूसरे खंड में भी कुछ ऐसी बातें हैं जो धार्मिक विश्वासों का खंडन करनेवाली हैं। शेख अब्बुलफजल मेरे बराबर ही बैठे थे। मेरा हाथ जोर जोर से मलते थे कि चुप रहो। अंत में मख-दूम ने पूछा कि यह कौन हैं? कुछ इनकी तारीफ करो। लोगों ने मेरा सब हाल बतला दिया। किसी प्रकार कुशल-पूर्वक वह बैठक समाप्त हुई। वहाँ से निकलकर यारों ने कहा कि शुक्र करो, आज बड़ी भारी बला टली कि उन्होंने तुम्हारे संबंध में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की। नहीं तो किसकी मजाल थी कि तुमको बचा सकता! आरंभ में वे अब्बुलफजल को भी देख देखकर कहा करते थे कि ऐसे कौन से विघ्न हैं जो इन्होंने धर्म में नहीं डाले। अंत में सन् ६६० हि० में मखदूम साहब का शरीरांत हुआ और शेख मुबारक ने अपनी आँखों से अपने ऐसे भारी शत्रु का नाश देख लिया। और सबसे बड़ी बात यह हुई कि अपने पुत्रों के ही हाथ से

उनका नाश होते हुए देखा। ईश्वर की कुछ ऐसी ही महिमा है कि प्राय: देखा जाता है कि जो लोग उच्च पद तथा अधिकार पाकर किसी पर अत्याचार करते हैं, अंत में उसी के हाथों अथवा उसकी संतान के हाथों उन अत्याचारियों की उससे भी अधिक दुर्दशा होती है। ईश्वर जिस समय हमें अधिकार प्रदान करे, उस समय हमें परिणामदर्शिता की ऐनक भी अवश्य दे।

उनके उपरांत उनका पुत्र हाजी अब्दुलकरीम लाहौर आया। वहाँ उसने पीर बनकर लोगों को चेला बनाने का काम शुरू किया। अंत में सन् १०४५ हि० में वह भी अपने पिता के पास पहुँचा। वह मिट्टी का पुतला लाहौर में नए कोट के पास गाड़ा गया। पीछे से वहाँ जेब उल् निसा का बाग बना। शेख यही, अल्लाह नूर और अब्दुल हक भी उनके पुत्र थे। शेख बदाऊनी दु:खपूर्वक कहते हैं कि पिता के मरने के उपरांत शेख यही मानो घृणित कार्यों का आदर्श हुआ।

शेख अब्दुल नबी सदर

शेख अब्दुल नबी के पिता का नाम शेख अहमद और दादा का नाम शेख अब्दुल कुदूस था। इनका मूल निवासस्थान अंदरी था जो गंगा के इलाके में है। शेख वंश में यह बहुत प्रसिद्ध थे। आरंभ में ध्यान और ईश्वर-वंदना की ओर बहुत अधिक प्रवृत्ति थी। पूरे एक पहर तक साँस रोककर

ईश्वर-चिंतन करते थे। कई बार मक्के और मदीने गए थे। वहाँ हदीस की विद्या, मुहम्मद साहब के कथन और कृत्य सीखे। पहले चिश्ती संप्रदाय में थे। इनके पूर्वजों के यहाँ जो धार्मिक बैठकें होती थीं; उनमें वे लोग आवेश में आकर झूमने और प्रलाप तक करने लगते थे। परंतु इन्होंने मक्के मदीने से लौटकर इस प्रकार की बातों को अनुचित समझा और हदीस के अनुयायियों का ढंग पकड़ा। बहुत शुद्धता और पवित्रतापूर्वक रहते थे। अपना आचरण धार्मिक दृष्टि से बहुत शुद्ध रखते थे। यथेष्ट ईश्वर-चिंतन करते थे और दिन रात पठन-पाठन तथा उपदेश आदि में ही लगे रहते थे। अकबर को अपने शासन-काल के अट्ठारह वर्षों तक इस्लाम धर्म के नियमों आदि के पालन और अपने धर्म के विद्वानों के महत्व का बहुत अधिक ध्यान रहा। सन् ९७२ हि० में मुजफ्फरखाँ प्रधान अमात्य था। उसी की सिफारिश से उसने इन्हें सदर उल्सदूर (प्रधान धर्माचार्य) बना दिया।

फाजिल बदाऊनी कहते हैं कि अकबर ने पात्रों को इतने अधिक पुरस्कार और वृत्तियाँ आदि दीं कि यदि भारतवर्ष के समस्त सम्राटों के दान एक पल्ले पर रखें और अकबर के शासन-काल के पुरस्कारों आदि को एक पल्ले पर रखें तो भी इसी का पल्ला झुकता रहेगा। परंतु फिर धीरे धीरे धार्मिक दानों की दृष्टि से वह पल्ला उठता उठता अपने वास्तविक स्थान पर जा पहुँचा और मामला बिलकुल उलटा हो गया।

यहं वह समय था जब कि मखदूम उलमुल्क का सितारा डूब रहा था और शेख सदर का सितारा निकलकर ऊपर की ओर चढ़ रहा था। इनके आदर सत्कार की यह दशा थी कि कभी कभी बादशाह हदीस विद्या सुनने के लिये स्वयं इनके घर पर जाता था। एक बार इनके जूते उठाकर भी उसने इनके सामने रखे थे। शाहजादा सलीम को इनकी शिष्यता में मौलाना जामी की चहल हदीस सीखने के लिये दिया था। शेख की प्रेरणा और संगति के कारण वह स्वयं भी शरअ की आज्ञाओं के पालन में हद से बढ़ गया था। स्वयं मसजिद में अजान देता था, इमाम का काम करता था और मसजिद में अपने हाथ से झाड़ू देता था।

युवावस्था में एक बार वर्षगाँठ के समारोह पर अकबर केसरिया वस्त्र पहनकर महल से बाहर निकला*। शेख साहब ने उसे इस प्रकार के वस्त्र पहनने से मना किया और ऐसे आवेश में आकर ताकीद की कि उनके हाथ के डंडे का सिरा बादशाह के जामे को जा लगा। बादशाह ने उनकी बातों का कोई उत्तर नहीं दिया और फिर लौटकर महल में चला गया। वहाँ माँ से शिकायत की। माँ ने कहा कि जाने दो। यह कोई दुखः करने की बात नहीं है। बल्कि यह तो तुम्हारी मुक्ति का कारण हो गया। ग्रंथों में लिखा जायगा कि एक पीर ने

---

* मआसिर उल् उमरा में लिखा है कि कपड़ों पर केसर के छींटे पड़े हुए थे।

इतने बड़े बादशाह को डंडा मारा और वह बादशाह केवल शरअ का विचार करके चुपचाप उसे सहन कर गया।

प्राचीन काल में मसजिदों के इमाम बादशाह की ओर से हुआ करते थे और वे सब लोग उच्च कुल के विद्वान्, सदाचारी और संयमी होते थे। साम्राज्य से उनके लिये जागीरें नियत होती थीं। उन्हीं दिनों यह आज्ञा हुई कि समस्त साम्राज्य के इमाम जब तक अपनी जीविका की वृत्तियों और जागीरों के संबंध के आज्ञापत्रों पर सदर उल्सदूर की स्वीकृति और हस्ताक्षर न करा लें, तब तक करोड़ी और तहसीलदार लोग उसकी आय उन इमामों को मुजरा न दिया करें। पूर्वी प्रदेश की चरम सीमा से लेकर सिंध की सीमा तक के सभी हकदार लोग सदर की सेवा में उपस्थित हुए। जिसका कोई बलवान् अमीर सहायक हो गया अथवा जो बादशाह के किसी पार्श्ववर्ती से सिफारिश करा सका, उसका काम बन गया। पर जिन लोगों को इस प्रकार का कोई साधन प्राप्त नहीं होता था, वे शेख अब्दुल रसूल और शेख के वकीलों से लेकर फर्राशों, दरबानों, साईसों और हलालखोरों तक को भारी भारी रिश्वतें देते थे। और जो लोग ऐसा करते थे, वे भँवर में से अपनी नाव निकाल ले जाते थे। जिन अभागों को यह अवसर हाथ न आता था, वे लकड़ियाँ खाते थे और पैरों तले रौंदे जाते थे। इस भीड़ भाड़ में बहुत से निराश लू के मारे मर गए। बादशाह के कानों तक भी यह समाचार पहुँचा। परंतु उस समय

सदर का इकबाल जोरों पर था। उसकी प्रतिष्ठा और महत्व आदि के विचार से बादशाह मुँह पर कोई बात न ला सका।

जब शेख अपनी प्रभुता और प्रताप के मसनद पर बैठते थे, तब दरबार के बड़े बड़े और प्रतिष्ठित अमीर अच्छे अच्छे विद्वानों को अपने साथ लेकर उनकी सिफारिश करने के लिये शेख के दीवानखाने में आते थे। पर शेख सबके साथ बद-मिजाजी का बरताव करते थे और किसी का आदर सत्कार या प्रतिष्ठा भी कम करते थे। जो लोग पांडित्यपूर्ण ग्रंथ पढ़ाया करते थे, उन्हें बड़ी बड़ी बातें बनाने पर और बहुत कुछ अनुनय विनय करने पर सौ बीघे या इससे कुछ कम जमीन मिलती थी। यदि किसी के पास इससे अधिक भूमि होती थी तो वह वर्षों की अधिकृत भूमि भी उससे छीन लेते थे। और साधारण, अप्रसिद्ध तथा तुच्छ व्यक्तियों को, यहाँ तक कि हिंदुओं को भी कुछ भूमि अपनी इच्छा से दे दिया करते थे। इस प्रकार विद्या और विद्वानों का मूल्य दिन पर दिन घटता गया।

शेख सदर जब अपने दीवानखाने में दोपहर के समय अभि-मान की चौकी पर बैठकर नमाज पढ़ने से पहले हाथ मुँह धोते (वजू करते) थे, तब उनके व्यवहृत अपवित्र जल के छींटे बड़े बड़े अमीरों और अधिकारियों के मुँह, सिर और कपड़ों पर पड़ते थे। पर वे लोग कुछ भी परवाह नहीं करते थे। अपना काम निकालने और दूसरों का काम बनाने के लिये वे लोग सब कुछ सहन कर लेते थे; और शेख के इच्छानुसार

खुशामद तथा लगावट का व्यवहार करते थे। लेकिन जब फिर समय आया, तब जो कुछ उन्होंने पहले निगला था, वह सब उगलवा लिया। किसी बादशाह के समय में किसी सदर को इतना अधिक अधिकार प्राप्त नहीं हुआ। और सच बात तो यह है कि इसके बाद मुगल वंश में धर्म के बल और धार्मिक अधिकारों के साथ सदर का पद ही गदर में आ गया। फिर न तो कोई सदर उल्सदूर ही हुआ और न उसके वे अधिकार ही हुए।

थोड़े ही दिन बीते थे कि प्रताप का सूर्य ढलने लगा। फैजी और अब्बुलफजल भी दरबार में आ पहुँचे थे। सन् ९८५ हि० में ये सब बातें शिकायतों के सुरों में बादशाह के कानों तक पहुँचीं। परंतु कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। हाँ यह आज्ञा हो गई कि जिन लोगों के पास पाँच सौ बीघे से अधिक माफी जमीन हो, वे अपना फरमान स्वयं बादशाह की सेवा में लेकर उपस्थित हों। बस इसी में बहुत सी कार्रवाइयाँ खुल गईं। थोड़े दिनों के उपरांत प्रत्येक सूबा एक एक अमीर के सपुर्द हो गया। इस व्यवस्था के अनुसार पंजाब मखदूम उल्मुल्क के हिस्से में आया। यहीं से दोनों के मन में गुबार उठा और थोड़े ही दिनों में धूल उड़ने लगी। बादशाह की अनुमति पाकर शेख अब्बुलफजल भरे दरबार में धार्मिक प्रश्नों पर शास्त्रार्थ और वाद विवाद करने लगे। एक दिन बादशाह अमीरों के साथ दस्तरख्वान पर खाना खा रहा था। शेख

सदर ने मुजाफर (केसर पड़ा हुआ मीठा चावल) की रकाबी में हाथ डाला। शेख अब्बुलफजल ने आपत्ति करते हुए कहा कि अगर केसर अस्पृश्य या हराम है तो उसका खाना कैसे हलाल हो सकता है? यह एक धार्मिक प्रश्न है, क्योंकि हराम का प्रभाव तीन दिन तक रहता है। और यदि हलाल है तो फिर इसके संबंध में आपत्ति क्यों थी? बस हर बैठक और हर संगत में इसी प्रकार के प्रश्नों पर नोक झोंक हुआ करती थी।

एक दिन अमीरों के जलसे में अकबर ने पूछा कि अधिक से अधिक कितनी स्त्रियों के साथ विवाह करना धर्मसंगत है? युवावस्था में तो इन सब बातों का कुछ भी ध्यान नहीं था; जितने हो गए हो गए। परंतु अब क्या करना चाहिए? सब लोग कुछ न कुछ निवेदन करना चाहते थे। अकबर ने कहा कि एक दिन शेख सदर कहते थे कि कुछ लोगों के अनुसार नौ तक स्त्रियाँ की जा सकती हैं। कुछ लोगों ने कहा कि हाँ, कुछ लोगों की यह सम्मति अवश्य है; क्योंकि इस संबंध की कुरान की आयत में नौ का सूचक शब्द है। और जिन लोगों ने दो दो तीन तीन और चार चार अर्थों का विचार किया है, वे अठारह भी कहते हैं। परंतु इस प्रकार कही जानेवाली बातें मान्य नहीं हैं। उसी समय शेख से पुछवा भेजा। उन्होंने यही उत्तर दिया कि मैंने उस समय यही बतलाया था कि इस संबंध में विद्वानों में कितना मतभेद है और भिन्न भिन्न विद्वानों की क्या सम्मति है। मैंने कोई फतवा

(व्यवस्था) नहीं दिया था। बादशाह को यह बात बहुत बुरी लगी। उसने कहा कि यदि यही बात थी तो शेख ने हमसे मानों शत्रुता का व्यवहार किया। उस समय कुछ और कहा था, अब कुछ और कहते हैं। यह बात बादशाह ने अपने मन में रखी।

जब इस प्रकार की बातें होने लगीं और लोगों ने देखा कि बादशाह का मन शेख सदर से फिर गया है, तो जो लोग अवसर की ताक में बैठे हुए थे, वे बात बात में गुल कतरने लगे। कहाँ तो वह अवस्था थी कि उनके हदीस संबंधी ज्ञान का नगाड़ा बजता था, क्योंकि वे मदीने से हदीस का अध्ययन करके आए थे और इमाम होने के भी अधिकारी थे, क्योंकि इमामा आजम की संतान थे; और कहाँ अब यह दशा हो गई कि मिरजा अजीज कोका ने कह दिया कि शेख सदर तो हदीस शब्द की ठीक ठीक हिज्जे भी नहीं जानता जो कि एक साधारण बालक भी जानता है। उन्होंने शाहजादे को इस शब्द की जो हिज्जे पढ़ाई है, वह बिलकुल अशुद्ध है। और आपने उसे इस पद तक पहुँचा दिया है! अब चाहे इसे फैजी और अब्बुलफजल का प्रताप समझो, चाहे मखदूम और सदर का दुर्भाग्य कहो, पर बड़ी खराबी यह हुई कि दोनों की आपस में बिगड़ गई। जिन जिन समस्याओं और फतवों पर कहा सुनी या खींचा तानी होती थी, उनमें दोनों एक दूसरे की पोल खोलते थे। पता लगा कि शीया भाव रखने के कारण मोर हब्श की जो हत्या हुई थी और पैगंबर साहब की बे-

अदबी करने के अपराध में खिज्रखाँ शरवानी की जो हत्या हुई थी, वह ठोक नहीं हुई; क्योंकि दोनों पर जो अभियोग लगाए गए थे, वे वास्तविक नहीं बल्कि काल्पनिक थे और उनकी कोई जड़ नहीं थी। इसी बीच में काश्मीर के हाकिम की ओर से मीर मुकीम अस्फाहानी और मीर याकूबहुसैन खाँ उपहार आदि लेकर बादशाह की सेवा में उपस्थित हुए। यहाँ यह चर्चा हुई कि काश्मीर में शीया और सुन्नियों का जो झगड़ा हुआ था, उसमें एक शीया मारा गया था। और शीया के प्राणों के बदले एक सुन्नी मुफ्ती पकड़ गए और मार डाले गए। उस सुन्नी मुफ्ती की हत्या का कारण मीर मुकीम था। शेख सदर ने इस अपराध का दंड देने के लिये मीर मुकीम और मीर याकूब दोनों की हत्या करा दी, जो दोनों शीया थे। अब लोगों ने कहा कि ये दोनों हत्याएँ भी व्यर्थ हुईं। इस प्रकार के झगड़ों के अतिरिक्त वे दोनों दिग्गज विद्वान् नित्य और भी नए नए प्रश्नों पर झगड़ा करते थे। परिणाम यह हुआ कि इन दोनों पर से बादशाह की श्रद्धा और विश्वास जाता रहा। फैजी और अब्बुलफजल के लिये तो इस प्रकार के अवसर गनीमत हुआ करते होंगे। वे अवश्य शीया लोगों को जोर देते होंगे और बादशाह के हृदय में दया उत्पन्न करते होंगे। और इसी प्रकार की बातों के कारण उन पर भी मन में शीया भाव रखने का अभियोग लगाया जाता होगा और वे मुफ्त का दाग खाते होंगे।

मुल्ला साहब कहते हैं कि रही सही बात यहाँ से बिगड़ी कि इन्हीं दिनों में मथुरा के काजी ने शेख सदर के यहाँ इस आशय का एक दावा पेश किया कि मसजिद के मसाले पर एक उद्धत और संपन्न ब्राह्मण ने अधिकार करके शिवालय बना लिया। और जब उसे रोका गया, तब उसने पैगंबर साहब की शान में बेअदबी की और मुसलमानों को भी बहुत कुछ बुरा भला कहा। शेख ने उसकी उपस्थिति की आज्ञा भेज दी; लेकिन वह नहीं आया। नौबत यहाँ तक पहुँची कि मामला अकबर के सामने गया। वहाँ से बीरबल और अब्बुलफजल जाकर अपनी पहुँच से और अपने विश्वास पर उसे ले आए। अब्बुलफजल ने लोगों से जो कुछ सुना था, वह निवेदन कर दिया और कहा कि इसमें संदेह नहीं कि इससे बेअदबी हुई। धार्मिक विद्वानों के दो दल हो गए। कुछ लोगों ने तो फतवा दिया कि इस ब्राह्मण की हत्या कर दी जाय और कुछ लोगों ने कहा कि केवल जुरमाना करके और इसे बेइज्जत करके नगर में घुमाकर छोड़ दिया जाय। बात बढ़कर बहुत दूर तक जा पहुँची। शेख सदर बादशाह से प्राणदंड की आज्ञा माँगते थे; परंतु बादशाह कोई स्पष्ट आज्ञा नहीं देता था। केवल इतना कहकर टाल दिया करता था कि धार्मिक विषयों में आज्ञा देने का सब अधिकार तुमको है ही। हमसे क्या पूछते हो। बेचारा ब्राह्मण बहुत दिनों तक कारागार में रहा। महलों में रानियों ने भी उसके लिये बहुत कुछ सिफारिशें कीं। लेकिन बाद-

शाह को शेख सद्र का भी कुछ न कुछ ध्यान अवश्य था। अंत में जब शेख ने बहुत अधिक आग्रहपूर्वक पूछा, तब बादशाह ने कहा कि बात वही है जो मैं पहले कह चुका हूँ। तुम जो उचित समझो, वह करो। बस शेख ने घर पहुँचते ही उसके लिये प्राणदंड की आज्ञा दे दी।

जब यह समाचार अकबर को मिला, तब वह बहुत नाराज हुआ। अंदर से रानियों ने और बाहर से राजा मुसाहबों ने कहना आरंभ किया कि इन मुल्लाओं को हुजूर ने इतना सिर चढ़ाया है कि अब ये आपकी प्रसन्नता और अप्रसन्नता का भी ध्यान नहीं करते। ये लोग अपना अधिकार और प्रभुत्व दिखलाने के लिये बिना आपकी आज्ञा के ही लोगों की हत्या करा दिया करते हैं। इसी प्रकार की अनेक बातों से लोगों ने बादशाह के इतने कान भरे कि उसे ताब न रही। जो विष बहुत दिनों से अंदर ही अंदर पड़ा हुआ सड़ रहा था, वह एकाएक फूट पड़ा। रात के समय अनूप तालाब के दरबार में आकर फिर इसी मुकदमे की चर्चा की। वहाँ बादशाह इस विषय का ऐसे लोगों से विवेचन करता था जो झगड़ा लगानेवाले और उसकानेवाले या जो नए नए मुफ्ती थे। (कदाचित् ऐसे लोगों से मुल्ला साहब का अभिप्राय फैजी और अब्बुल-फजल से होगा।) एक कहता था कि भला शेख से इस विषय में तर्क वितर्क या प्रश्नोत्तर किसने किए होंगे। दूसरा कहता था कि बड़े आश्चर्य की बात है कि शेख तो अपने

आपको हजरत इमाम की संतान कहते हैं; और उनका फतवा है कि यदि मुसलमान शासक की अधीनस्थ काफिर प्रजा में से कोई व्यक्ति पैगंबर की शान में बेअदबी करे, तो बादशाह उसके साथ प्राणभंग नहीं कर सकता या उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं होता। धर्मशास्त्रों में यह विषय विस्तृत रूप से दिया हुआ है। फिर शेख ने अपने पूर्वजों का विरोध क्यों किया ?

फाजिल बदाऊनी लिखते हैं कि एकाएक दूर से बादशाह की दृष्टि मुझ पर जा पड़ी। मेरी ओर प्रवृत्त होकर और नाम लेकर आगे बुलाया। कहा कि आगे आओ। मैं सामने गया। पूछा कि क्या तूने भी सुना है कि यदि ९९ वचन प्राणदंड के पक्ष में हों और एक वचन छोड़ देने के पक्ष में हो तो मुफ्ती को उचित है कि वह अंतिम वचन को प्रधानता दे ? मैंने निवेदन किया कि वास्तव में जो कुछ श्रीमान् ने कहा, ठीक वही बात है। मैंने इस संबंध का अरबी भाषा का सिद्धांत कह सुनाया और फारसी भाषा में उसका अभिप्राय भी कह सुनाया। उसका अभिप्राय था कि संदेह की दशा में दंड नहीं देना चाहिए। बादशाह ने दुःख के साथ पूछा कि क्या शेख यह सिद्धांत नहीं जानता था जो उसने उस बेचारे ब्राह्मण को मार डाला ? यह क्या बात है ? मैंने निवेदन किया कि शेख विद्वान् हैं। जब इस प्रसिद्ध उक्ति के होते हुए भी उन्होंने जान बूझकर प्राण-दंड की आज्ञा दी है, तो यह स्पष्ट है कि इसमें कोई मसलहत होगी। बादशाह ने पूछा—वह मसलहत

क्या है ? मैंने कहा कि यही कि उपद्रव का द्वार बंद हो और सर्वसाधारण में इस प्रकार के कार्य करने का दुस्साहस न रह जाय। साथ ही काजी ऐयाज के वचन भी मेरे ध्यान में थे जो मैंने कह सुनाए। कुछ दुष्टों ने कहा कि काजी ऐयाज तो मालकी संप्रदाय का है। हनफी देशों में उसका वचन मान्य नहीं हो सकता। बादशाह ने मुझसे पूछा कि तुम क्या कहते हो ? मैंने निवेदन किया कि यद्यपि ऐयाज का जन्म मालकी संप्रदाय में है, तथापि यदि मुफ़्ती राजनीतिक दृष्टि से उसके फतवे के अनुसार कार्य करे तो उसका कृत्य शरअ के अनुसार उचित है। इस विषय में बहुत सी बातें हुईं। लोग देख रहे थे कि बादशाह की मूँछें शेर की तरह खड़ी थीं। सब लोग पीछे से मुझे मना कर रहे थे कि मत बोलो। एक बार बादशाह ने बिगड़कर कहा कि क्या व्यर्थ की बातें करते हो ! मैं तुरंत सलाम करके पीछे हटा और अपने स्थान पर आ खड़ा हुआ। उसी दिन से मैंने खंडन मंडन-वाले जलसों में जाना और इस प्रकार की बातें करने का साहस करना छोड़ दिया और अलग ही रहने लगा। कभी कभी दूर से कोर्निश (सलाम) कर लिया करता था। शेख अब्दुलनबी के काम की दिन पर दिन अवनति होने लगी। धीरे धीरे मन की मैल बढ़ती गई। दिल फिरता गया। औरों को महत्व मिलने लगा; और शेख के हाथ से नए तथा पुराने अधिकार निकलने लगे। उन्होंने दरबार में जाना

बिलकुल छोड़ दिया। शेख मुबारक भी ताक में लगे ही रहते थे। उन्हीं दिनों किसी बात की बधाई देने के लिये फतहपुर से आगरे पहुँचे। जब वे सेवा में उपस्थित हुए, तब बादशाह ने यह सारा हाल कह सुनाया। उन्होंने कहा कि आप तो स्वयं अपने समय के इमाम हैं। राजनीतिक और धार्मिक विषयों में आज्ञा देने के लिये इन लोगों की क्या आवश्यकता है? इन लोगों की तो यों ही बिना जड़ के इतनी प्रसिद्धि हो गई है। और नहीं तो वास्तव में विद्या से इन लोगों का कोई संपर्क है ही नहीं। बादशाह ने कहा कि जब तुम हमारे उस्ताद हो और हमने तुमसे शिक्षा ग्रहण की है, तो फिर तुम इन मुल्लाओं से हमारा छुटकारा क्यों नहीं कराते? आदि आदि बहुत सी बातें हुईं। इसी आधार पर वह व्यवस्थापत्र प्रस्तुत हुआ जिसका उल्लेख शेख मुबारक के प्रकरण में किया गया है।

शेख सदर अपनी मसजिद में बैठ गए और बादशाह तथा दरबारियों को यह कहकर बदनाम करने लगे कि वे सब तो बेदीन हो गए हैं और धर्म से च्युत हो गए हैं। मखदूम उलमुल्क से उनकी बिगड़ी हुई थी। जब बुरे दिन देखे तो दोनों सहानुभूति करनेवाले मिल गए। वह प्रत्येक व्यक्ति से यही कहते थे कि लोगों से उस व्यवस्थापत्र पर बलपूर्वक मोहरें कराई गईं। और नहीं तो यह क्या इमामत है और क्या अदालत है! अंत में बादशाह ने मखदूम उलमुल्क के साथ ही इन्हें भी हज करने के लिये भेज दिया और आज्ञा दे

दी कि वहीं रहकर ईश्वर-चिंतन किया करें। जब तक आज्ञा न मिले, तब तक भारत में न आवें। बेगमों ने बहुत कुछ सिफारिश की, पर कुछ सुनाई नहीं हुई। कारण यह था कि उन लोगों की नित्य नई शिकायतें पहुँचा करती थीं। इन लोगों से यह भी भय था कि कहीं विद्रोह न खड़ा कर दें। अंत में शेख ने मित्रता का निर्वाह किया कि ठिकाने लगा दिया।

यद्यपि बादशाह ने इन्हें अपने देश से निकाल दिया था, तथापि ऊपर से इनकी प्रतिष्ठा बनी रहने दी थी। उसने मक्के के शरीफों के नाम एक आज्ञापत्र लिख भेजा था और भारतवर्ष के बहुत से उत्तमोत्तम पदार्थ भेंट स्वरूप और बहुत कुछ नगद धन भी भेजा था कि मक्के के शरीफों को दे दिया जाय। जब ये वहाँ पहुँचे, तब एक नया ही संसार दिखाई दिया। भला इनकी महत्ता आदि का मक्के और मदीने में क्या आदर हो सकता था! इनके पांडित्य को अरब के विद्वान् क्या समझते थे! पांडित्यपूर्ण प्रश्नों और सिद्धांतों आदि के संबंध में वाद विवाद करना तो दूर रहा, उनके सामने इन बेचारे बुड्ढों के मुँह से पूरी बात भी न निकलती होगी। साथ ही जब इन लोगों को भारतवर्ष के अपने अधिकारों और वैभव आदि का स्मरण आता होगा, तब इनके कलेजों पर साँप लोट जाते होंगे। वहाँ इन लोगों का और कुछ बस तो चलता ही नहीं था। अकबर और उसके शुभचिंतकों को इस प्रकार बदनाम करते थे कि इधर रूम और उधर बुखारा तक आवाज पहुँचती होगी।

सन् ६८६ हि० में बादशाह ने फिर हज करनेवालों का एक काफिला भेजा। बादशाही मीर हाज उसके साथ गया। उसके हाथ मक्के के शरीफों के नाम एक पत्र लिखकर भेजा। उसमें और बातों के अतिरिक्त यह भी लिखा था कि हमने शेख नबी और मखदूम उल्मुल्क के हाथ बहुत सा धन और भारत-वर्ष के अनेक उपहार भेजे थे; और सब संप्रदायों तथा स्थानों के लिये रकमें भेजी थीं; और कह दिया था कि सूची के अनुसार दे देना जिसमें सब लोगों को अलग अलग हिस्से के मुताबिक मिल जाय। और उस सूची के अतिरिक्त कुछ रुपया अलग भी दिया था कि यह रुपया कुछ लोगों को गुप्त रूप से दिया जाय, क्योंकि और किसी का उसमें हिस्सा नहीं था। वह विशेष रूप से उन्हीं लोगों का हिस्सा था और वह रकम सूची में नहीं लिखी गई थी। शेख सदर को यह भी आज्ञा दी गई थी कि उधर के देशों में जो अच्छी अच्छी चीजें मिलें, वह ले लेना। और इस काम के लिये जो धन दिया गया है, वह यदि यथेष्ट न हो तो गुप्त रूप से लोगों को देने के लिये जो धन दिया गया है, उसमें से ले लेना। अतः आप यह लिखिए कि उन लोगों ने वहाँ कितना रुपया पहुँचाया है। यह भी सुना गया है कि कुछ दुष्ट उपद्रवियों ने सर्व-गुण-संपन्न शेख मुईन उद्दीन हाश्मी शीराजी पर ईर्ष्या और द्वेषवश कुछ मिथ्या अभियोग लगाए हैं और उन्हें हानि तथा कष्ट पहुँचाने पर उतारू हुए हैं। उन लोगों ने यह प्रसिद्ध

किया है कि उक्त विद्वानों ने हमारे नाम पर कोई निबंध लिखा है जिसमें कुछ बातें सच्चे धर्म (इस्लाम) और शरअ के विरुद्ध लिखी हैं। परंतु मैं सत्य कहता हूँ कि उनकी कोई ऐसी रचना कदापि हमारे सामने नहीं आई है जो धार्मिक विचारों के किसी प्रकार विरुद्ध हो। और जब से उक्त विद्वान् दरबार में पहुँचे हैं, तब से उनका कोई ऐसा आचरण नहीं देखा गया जो शुद्ध धार्मिक आचार विचार के विरुद्ध हो। इन पाजी, दुष्ट, कुकर्मी और ईर्ष्यालु शैतानों को डाँट डपटकर अच्छी तरह समझा दो कि आगे कभी ऐसा न करें; और उन्हें दंड दो। उक्त विद्वान् को इन उपद्रवियों और उत्पातियों के अत्याचार से छुड़ाओ। और आश्चर्य तो उन लोगों पर है जो ऐसे दुष्ट अभियोगों पर विश्वास कर बैठे जिन पर बालक भी विश्वास न कर सकें। आश्चर्य है कि वे लोग किस प्रकार इसे सुनकर मान गए! और शेख मुईन उद्दीन जैसे व्यक्ति को कष्ट पहुँचाने पर उतारू हो गए! ऐसे लोगों को पवित्र स्थानों से निकाल दो और फिर उन्हें वहाँ न आने दो।

भाग्य का फेर देखो कि इन लोगों ने भी मखदूम उल् मुल्क के साथ भारतवर्ष लौट आना ही उचित समझा। अरे महात्माओ! जब ईश्वर के घर में पहुँच चुके और एक बार भारतवर्ष का मुँह काला कर चुके तो फिर वहाँ से लौटने की क्या आवश्यकता थी? परंतु दुर्भाग्य का लेख पूरा होने को था। वही खींच लाया। वे लोग ईश्वर के घर से इस

प्रकार भागे जिस प्रकार काले पानी से कैदी भागता है। कारण वही था कि कुछ ही महीनों पहले यहाँ पूर्वी प्रदेशों में अमीरों ने विद्रोह किए थे। इसी सिलसिले में मुहम्मद हकीम मिरजा काबुल से भारत पर चढ़ आया था और लाहौर के मैदान में आ पड़ा था। ये समाचार वहाँ भी पहुँचे। यद्यपि वृद्धावस्था थी, परंतु लालसा और कामना के कोयले फिर से चमक उठे। इन्होंने भी और मखदूम ने भी अपने मन में यही समझा था कि हकीम मिरजा हुमायूँ का पुत्र है ही। कुछ वह साहस करेगा और कुछ हम लोग धर्म का बल लगावेंगे। अकबर को बेदीन और धर्मभ्रष्ट बनाकर और उखाड़कर फेंक देंगे। वह नवयुवक बादशाह बन जायगा। ये पुरानी जड़ें भी फिर हरी हो जायँगी। उसकी बादशाही होगी और हमारी खुदाई होगी।

यहाँ दरबार में प्रबंध की चलती हुई कलें तैयार हो गई थीं। उन्हें तो महीने बल्कि वर्ष लगे और यहाँ दिनों के अंदर सारा प्रबंध हो गया। इन बेचारों को भारतवर्ष की मिट्टी खींच लाई थी। दुःख है कि अब अंतिम अवस्था में ये लोग खराब हुए। उस समय बाहरी यात्रियों के आकर उतरने के लिये खंभात का बंदर था। वहाँ से जब अहमदाबाद (गुजरात) में आए, तब मालूम हुआ कि वहाँ से लेकर हिंदुस्तान, पंजाब और काबुल तक एक मैदान है। सोने चाँदी की नदी है जो लहराती है; या एक बाग है जो लहलहाता है। मखदूम के तो वहीं प्राण निकल गए।

शेख सदर फतहपुर के दरबार में आकर उपस्थित हुए। यहाँ कुछ और ही अवस्था हो रही थी। जब उस वृद्ध ने यह सब देखा तो हैरान हो गया और उसका मुँह खुला रह गया। वह सोचने लगा कि हे परमेश्वर! क्या यह वही भारतवर्ष है और यह वही दरबार है जिसमें बड़े बड़े धार्मिक बादशाह शोभायमान रहते थे! अब जो दो खंभे साम्राज्य के प्रासाद को उठाए हुए खड़े हैं, वे अब्बुलफजल और फैजी हैं। और ये उसी मुबारक के पुत्र हैं जो मसजिद के एक कोने में बैठकर विद्यार्थियों को पढ़ाया करता था; और वह भी जोर जोर से चिल्ला चिल्लाकर नहीं, बल्कि चुपके चुपके। हे परमेश्वर, धन्य है तेरी प्रभुता और महिमा!

यहाँ भी पहुँचानेवालों ने समाचार पहुँचा दिए थे। अकबर की धर्मभ्रष्टता और अश्रद्धा के संबंध में इन्होंने मक्के और मदीने में जो जो बातें फैलाई थीं, वे सब अक्षरशः यहाँ पहुँच चुकी थीं; बल्कि उन पर बहुत कुछ हाशिये भी चढ़ चुके थे। अकबर आग बबूला हो रहा था। जब बातचीत हुई तो उधर उस बुड्ढे की पुरानी पड़ी हुई आदतें थीं। ईश्वर, जाने क्या कह दिया। यहाँ अब खुदाई के दावे हो रहे थे। स्वयं बादशाह ने इन्हें कुछ कड़ी बातें कहीं। धन्य ईश्वर, तू ही रक्षक है! ये वही शेख सदर हैं जिनके घर स्वयं बादशाह दर्शन करने और प्रसन्नता संपादित करने के लिये जाता था। जिस हाथ से उसने जूती उनके सामने रखी थी, आज वही

हाथ था जो इस बुड्ढे के मुँह पर जोर का मुक्का होकर लगा। उस समय उस बेचारे ने केवल इतना ही कहा कि मुझे छुरी से मार ही क्यों नहीं डालते ?

जिस समय मक्के को भेजा था, उस समय काफिले के खर्च और वहाँ के विद्वानों आदि के लिये सत्तर हजार रुपया भी दिया था। टोडरमल को आज्ञा हुई कि हिसाब समझ लो। और जाँच करने के लिये शेख अब्बुलफजल के सपुर्द कर दिया। दफ्तरखाने की कचहरी में जिस प्रकार और करोड़ी कैद थे, उसी प्रकार ये भी कैद थे और समय पर हाजिर हुआ करते थे। ईश्वर की महिमा है कि जिन मकानों में वे स्वयं दरबार किया करते थे और जहाँ बड़े बड़े विद्वान तथा अमीर सेवा में उपस्थित हुआ करते थे और कोई पूछता भी नहीं था, वहाँ वे आज जवाब देने के लिये गिरिफ्तार करके रखे गए थे। बहुत दिनों तक यही दशा रही। शेख अब्बुल-फजल की हवालात में थे। एक दिन सुना कि रात के समय गला घोंटकर मरवा डाला*। यह काम भी बादशाह का संकेत लेकर ही किया गया था। दूसरे दिन तीसरे पहर के समय मुनारों के मैदान में लाश पड़ी थी। मुल्ला साहब इन पर बहुत अधिक नाराज थे। उन बेचारे के प्राण निकल गए, पर इनका क्रोध न उतरा। उन पर करुणा करना और

* मुअतमिदखाँ ने इकबालनामे में साफ लिख दिया है कि बाद-शाह के संकेत से अब्बुलफजल ने मरवा डाला था।

उनकी आत्मा की शांति के लिये प्रार्थना करना तो दूर रहा, उलटे उनके मारे जाने और लाश के मैदान में फेंके जाने का बहुत ही बुरे शब्दों में उल्लेख किया है। उनका वर्णन श्लिष्ट है जिसका यह भी अर्थ हो सकता है कि परमात्मा में मिल गए और यह भी अर्थ हो सकता है कि अपने किए का फल पा गए।

शेख मुबारकउल्ला उपनाम शेख मुबारक

संसार में यही प्रथा है कि पुत्र का नाम पिता के नाम से प्रकट होता है। परंतु वास्तव में वह पिता धन्य है जो स्वयं गुणों से संपन्न हो और पुत्रों की प्रसिद्धि उसके नाम को और भी अधिक प्रसिद्ध तथा प्रकाशित करे। अर्थात् यह कहा जाय कि यह वही शेख मुबारक है जो फैजी और अबुल-फजल का पिता है। बुद्धि और विद्या दोनों से ही वह बहुत अधिक संपन्न था। शेख उसकी खांदानी उपाधि था। यद्यपि उसका नाम मुबारक था, पर वह अपने साथ ऐसा मनहूस भाग्य लाया था कि ईर्ष्यालुओं की ईर्ष्या और द्वेष के कारण उसने अपने जीवन के दो तृतीयांश ऐसी विपत्ति में बिताए जो विपत्ति ईश्वर शत्रु को भी न दे। उसके विरोधी सदा दल बाँध बाँधकर उस पर आक्रमण करते रहे। परंतु वह साहस का पूरा हाथ में सुमिरनी लिए और डंडा आगे रखे बैठा था, विद्यार्थियों को पाठ पढ़ाता था या स्वयं ग्रंथों का

अध्ययन करता था और कहता कि देखें, तुम्हारे आक्रमण हारते हैं या हमारी सहनशीलता। यद्यपि उसमें सब प्रकार के बहुत अधिक गुण थे, तथापि जब उसके कष्टों की ओर ध्यान जाता है और उसके उपरांत जब उसके पुत्रों की योग्यता और प्रताप पर दृष्टि जाती है, तब ये सब बातें बहुत ही शिक्षाप्रद जान पड़ती हैं।

भिन्न भिन्न ग्रंथों और लेखों से इनके बहुत ही थोड़े और खंडित विवरण मिले। पर जहाँ तक संभव होगा, मैं भी छोटी से छोटी बात भी न छोड़ूँगा। और सूक्ष्मदर्शियों को दिखलाऊँगा कि इन गुणियों में कोई ऐसी बात नहीं है जो ध्यान देने योग्य न हो। मैं चाहता था कि इस अवसर पर इनकी वंशावली छोड़ दूँ। परंतु उसमें भी मुझे कुछ ऐसे पेचीले भेद दिखाई दिए जिन्हें खोले बिना आगे नहीं चला जाता। पाठकों को शीघ्र ही यह पता चल जायगा कि इनके गुणों ने संसार को इनका कितना अधिक विरोधी बना दिया था। इनके अधिकांश शत्रु इन्हीं का पेशा करनेवाले इनके भाई अर्थात् विद्वान् और पंडित ही थे। खाफीखाँ लिखते हैं कि लोग इनके संबंध में कुछ व्यंग्य किया करते थे। पुत्रों के एक पत्र के उत्तर में शेख़ मुबारक ने अपने शत्रुओं का लगाया हुआ यह कलंक धोया है और उन्हें तसल्ली दी है। पुत्रों का पत्र नहीं मिला। मुबारक का अपने पुत्रों के नाम मूल पत्र फारसी भाषा में है जिसका आशय इस प्रकार है--

"मेरे पुत्रो, आजकल के विद्वान् गेहूँ दिखलाकर जौ बेचने-वाले और दीन को दुनियाँ के हाथ बेचनेवाले हैं। इन लोगों ने मुझ पर कलंक लगाया है। लेकिन ऐसे लोगों की कही हुई बातों से दुःखी न होना चाहिए। और वे लोग मेरी कुलीनता के संबंध में जो कुछ कहते हैं, उसके कारण चित्त में चिंतित नहीं होना चाहिए। जिन दिनों मेरे पिताजी के जीवन का अंत हुआ था, उन दिनों तक मैं सयाना और समझ-दार नहीं हुआ था। मेरी माता एक प्रतिष्ठित सैयद के संरक्षण में रहकर बहुत उत्तमतापूर्वक मेरा पालन पोषण किया करती थी; और मेरी सब प्रकार की शिक्षा दीक्षा आदि की ओर विशेष यत्नपूर्वक ध्यान दिया करती थी। एक वृद्ध सज्जन के कहने से मेरे पिता ने मेरा नाम मुबारक रखा था। एक दिन हम लोगों के एक पड़ोसी ने, जो हम दोनों के साथ सहानुभूति रखनेवाले और हमारी सहायता करनेवाले सैयद साहब से ईर्ष्या रखता था, मेरी माँ का चित्त कठोर वचनों से दुखाया और मुझे दोगला कहकर बदनाम किया और ताना दिया। मेरी माता रोती धोती उन सैयद महोदय के पास, जो मेरे पिता के वंश और कुल की मर्यादा से परिचित थे, गईं और उनके सामने उसने इस विषय की फरियाद की। उस सैयद ने उस आदमी को बहुत डाँटा डपटा। अब ईश्वर का धन्यवाद है कि उसने हमको और तुमको अपनी अनंत कृपाओं से एक न्यायी और उदार बादशाह की रक्षा और छाया में इस पद

को पहुँचाया कि इस समय के विद्वान् बराबरी के कारण हम लोगों से ईर्ष्या करते हैं।"

इस पत्र के ढंग से जान पड़ता है कि लोग इन्हें लौंडी-बच्चा या दोगला कहा करते होंगे; क्योंकि मुबारक प्राय: गुलामों या दासों का नाम होता है। अब्बुलफजल ने अकबरनामे के अंत में अपना वंश-परिचय इतने अधिक विस्तार के साथ दिया है कि उसे देखकर मैं चकित था कि इसके इतने अधिक विस्तार का क्या कारण है। परंतु जब यह पत्र दिखाई दिया, तब मैंने समझा कि वह दिल का बुखार बिना इस विस्तार के नहीं निकल सकता था। अस्तु। अकबरनामे के अंत में अब्बुलफजल ने अपने संबंध में जो कुछ लिखा है, वह इस प्रकार है—

چو نادانان نه در بند پدر باش
پدر بگزار و فرزند هنر باش
چو دود از روشني بند نشان مند
چه حاصل زانکه آتش راست فرزند

अर्थात्—मूर्खों की तरह अपने वंश की मर्यादा का अभिमान न कर, बल्कि स्वयं गुणी बन। बाप दादा का अभिमान छोड़ दे धूएँ में प्रकाश नहीं होता; फिर चाहे वह आग से ही उत्पन्न क्यों न हो, पर उससे क्या लाभ?

"अपने वंश का विस्तृत वर्णन करना वैसा ही है, जैसा किसी परम दरिद्र का अपने पूर्वजों की हड्डियाँ लेकर व्यापार

करना या मूर्खता का सौदा लेकर बाजार में डालना अर्थात् अपने दोषों को न देखना और दूसरों के गुणों पर अभिमान करना। इसलिये मेरा चित्त नहीं चाहता था कि कुछ लिखूँ और व्यर्थ का किस्सा छेड़ूँ। जो इस शृंखला में बँधा होता है, वह संसार में किसी पद तक नहीं पहुँचता; और सूरत के झरने से अर्थ का बाग हरा नहीं होता।

'संसार के मुहावरे में जाति, कुल और वंश आदि एक ही बात को कहते हैं और उसे उच्च तथा नीच आदि भेदों में विभक्त करते हैं। परंतु समझदार और होशियार आदमी जानता है कि इन विभागों अथवा श्रेणियों का क्या अर्थ है। इनका यही अर्थ है कि पूर्वजों की जो शृंखला बराबर चली आती है, उसकी लड़ी के दानों में से किसी एक दाने को ले लिया; और उनमें से जो ऊपरी अमीरी या वास्तविक बातों का ज्ञान रखने में सबसे बड़ा हुआ और अपने निवास-स्थान या उपाधि आदि के कारण प्रसिद्ध हो गया, उसी को बाप दादा कहकर अभिमान करने लगे। साधारणतः लोग सबको हजरत आदम की संतान कहते हैं। परंतु समझ रखनेवाले लोग इन कहानी कहनेवालों की बातों पर भली भाँति ध्यान नहीं देते; और दोनों के बीच की दूरी देखकर बीच की फसलों की परवाह नहीं करते। पर जो लोग सौभाग्य को ही चुन लेते हैं, वे इन कहानियों को सुख की सामग्री क्यों समझें और इन्हीं बातों पर निर्भर

रहकर वास्तविक बातों का पता लगाने से क्यों बाज रहें। जामी ने कहा है—

بندہ عشق شدی ترک نسب کن جامی
کاندرین راہ فلاں ابن فلاں چیزے نیست

अर्थात् हे जामी, तू प्रेम का दास हो गया है, अतः वंश-मर्यादा का विचार छोड़ दे; क्योंकि इसमें इस बात का कोई महत्त्व नहीं है कि अमुक व्यक्ति अमुक का पुत्र है।

"यह भाग्य का ही लेख है जिसने मुझे ऐसे ही रूप के उपासकों और रीति के दासों में डाल दिया और ऐसे समूह में मिला दिया जो वंश के अभिमान को गुणों की अपेक्षा उत्तम समझता है। अतः विवश होकर वह भी लिख देता हूँ और उस प्रकार के लोगों के लिये भी दस्तरख्वान लगा देता हूँ। मेरे पूर्वजों की संख्या की एक लंबी कहानी है और जीवन के दम बहुत मूल्यवान् हैं। इन अयोग्य बातों के बदले में उन्हें क्योंकर बेचूँ। खैर; यही समझ लो कि उनमें से कुछ लोग विद्या-चर्चा में, कुछ लोग अमीरी में, कुछ लोग दुनियादारी में और कुछ एकांतवास में अपना जीवन व्यतीत कर गए। बहुत दिनों तक यवन प्रांत में उन जागृत हृदयों का निवास-स्थान था। शेख मूसा पाँचवीं पीढ़ी में मेरे दादा थे। उन्हें प्रारंभिक अवस्था में ही इस संसार से विराग हो गया। घर और घराने को छोड़कर दीनता ग्रहण की। विद्या और साधना को अपने साथ में लिया। संसार के पूर्णत्व को

परिणाम में मिलनेवाली शिक्षा के पगों से पार किया। नवीं शताब्दी हिजरी में सिंध प्रांत के रेल नामक कस्बे में पहुँचकर एकांतवास करना आरंभ किया, जो सिवस्तान के इलाके में एक मनोहर बस्ती है। वहाँ ईश्वर के सच्चे उपासकों के साथ मित्रता का संबंध स्थापित करके गृहस्थ आश्रम ग्रहण किया। शेख मूसा यद्यपि जंगल से बस्ती में आए थे, तथापि वे सांसारिक संबंधों के बंधनों में नहीं पड़े। बैठने के लिये ज्ञान की चटाई थी और अपना जीवन सांसारिक विचारों के संशोधन में व्यतीत करते थे। बेटे पोते हुए। वे भी उन्हीं के कार्यों को अपने लिये सर्वोपरि नियम समझते थे। दसवीं शताब्दी के आरंभ में शेख खिज्र की इच्छा हुई कि भारतवर्ष के औलियाओं को भी देखें और अरब सागर की सैर करके अपने पूर्वजों के दूसरे वंशजों से भी भेंट करें। बहुत से संबंधियों और मित्रों के साथ भारतवर्ष में आए और नागौर पहुँचे*। (यहाँ पर कई पूर्वजों के नाम लिखकर कहते हैं) उन लोगों से ज्ञान प्राप्त किया और उन्हीं महानुभावों की प्रेरणा से यात्रा करने का विचार छोड़ दिया और एक स्थान पर ठहरकर लोगों को उपदेश देने में प्रवृत्त हुए। पहले कई बाल बच्चे मर गए थे। सन् ९११ हि० में शेख मुबारक ने इस लोक में आकर अस्तित्व की चादर कंधे पर डाली। उनका नाम इसलिये मुबारक उल्ला रखा गया कि

* यह अजमेर के उत्तर पश्चिम में है।

अल्लाह मुबारक करे। चार ही वर्ष की अवस्था में बड़ों के प्रभाव से उनकी बुद्धि और ज्ञान का बल दिन पर दिन बढ़ने लगा। नौ वर्ष की अवस्था में यथेष्ट ज्ञान प्राप्त कर लिया। चौदह वर्ष की अवस्था में सब प्रकार की पाठ्य विद्या प्राप्त कर ली और प्रत्येक विद्या का एक एक अच्छा मूल ग्रंथ कंठ कर लिया। यद्यपि ईश्वरी अनुग्रह ही उनका पथ-दर्शक था और बहुत से महात्माओं की सेवा में वे आया जाया करते थे, तथापि अधिकतर शेख अतन के पास रहा करते थे और उनकी शिक्षा से उनके हृदय की प्यास और भी बढ़ती जाती थी।

"शेख अतन तुर्क थे। १२० वर्ष की आयु थी। सिकंदर लोधी के शासन-काल में उन्होंने नागौर में निवास ग्रहण किया था। वहाँ के शेख सालार से ईश्वर-दर्शन के नेत्र प्रकाशित किए थे। ईरान, तूरान और दूर दूर के देशों से बुद्धि और ज्ञान की पूँजी लाए थे।

"इसी बीच में खिज्र को फिर सिंध का ध्यान हुआ। उन्होंने सोचा कि कुछ संबंधी वहाँ हैं। उन्हें चलकर ले आवें। परंतु उनकी यह यात्रा अंतिम यात्रा हुई। यहाँ नागौर में बड़ा अकाल पड़ा और साथ ही महामारी भी फैली। ऐसी अवस्था हो गई कि मनुष्य को मनुष्य नहीं पहचानता था। लोग घर छोड़ छोड़कर भाग रहे थे। इस आपत्ति में शेख मुबारक और उनकी माता वहाँ रह गईं; और सब लोग मर गए। शेख मुबारक के हृदय में विद्या-प्राप्ति और भ्रमण की

आकांक्षा बलवती हो रही थी। परंतु माता आज्ञा नहीं देती थीं और उनकी प्रकृति में इतनी स्वच्छंदता नहीं थी कि माता के विरोध करने पर भी मनमाना काम करें। इसलिये वहीं अपनी तबीयत में सुधार करते रहे और बड़े परिश्रम और कठिनता से विद्या तथा गुणों का संपादन करते रहे। इतिहास और संसार के विवरणों का ऐसा अच्छा ज्ञान प्राप्त किया कि सारे जगत् में प्रसिद्ध हो गए। थोड़े दिनों के उपरांत ख्वाजा अब्दुल्ला अहरार* की सेवा में उपस्थित हुए। वे उन दिनों तत्त्व दर्शन की जिज्ञासा करते हुए भारतवर्ष में आ निकले थे। उनसे ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग जाना और परमार्थ संबंधी बहुत से ज्ञान प्राप्त किए।

"इसी बीच में माता का देहांत हो गया। मन की घबराहट बहुत बढ़ गई और असवद सागर की ओर चल पड़े। विचार था कि सारी पृथ्वी का भ्रमण करें और सभी संप्रदायों तथा वर्गों के लोगों से मिलकर पूर्णता का प्रसाद प्राप्त करें। पहले अहमदाबाद गुजरात में पहुँचे। वह नगर भी अपनी

* ख्वाजा अहरार ने १२० वर्ष की आयु पाई थी। बड़ी बड़ी यात्राएँ की थीं और चालीस वर्ष खता तथा खुतन के प्रदेशों में व्यतीत किए थे। वे शेख मुबारक पर बहुत कृपा रखते थे। उनकी रचनाओं में जहां "फकीर ने पूछा" और "फकीर ने कहा" आदि पद आते हैं, वहां फकीर से इन्हीं शेख मुबारक से अभिप्राय है। २० फरवरी सन् १४९० को समरकंद में ख्वाजा अहरार का देहांत हुआ था। महात्माओं में ये ख्वाजै ख्वाजगान (अर्थात् ख्वाजों के ख्वाजा) नाम से प्रसिद्ध हैं।

प्रसिद्धि के अनुसार पूर्ण गुणियों के समूह से सुशोभित था। वहाँ सब प्रकार की पूर्णता की सामग्री उपस्थित थी। यह भी प्रसिद्ध था कि सैयद महमूद गेसू दराज (लंबे बालोंवाले) की दरगाह से पुण्य प्रसाद के झरने बहते हैं। वे भी इनके देश-भाई थे। अतः वहीं यात्रा की सामग्री कंधे पर से उतारकर रख दी। पंडितों और विद्वानों से भेंट हुई। अध्ययन के साथ ही अध्यापन का भी क्रम चल पड़ा। चारों इमामों के ग्रंथों का पूर्ण रूप से अध्ययन कर लिया और ऐसा प्रयत्न किया कि प्रत्येक में अनुपमता का पद प्राप्त कर लिया। यद्यपि अपने पूर्वजों का अनुकरण करते हुए उन्होंने अपना हन्फी ढंग ही रखा, परंतु कार्यतः वे चरम सीमा का संयम करते रहे। बड़ा ध्यान इस बात का रहता था कि जो बात विद्रोही मन को कठिन जान पड़े, वही हो। इसी बीच में अपरा विद्या की ओर से परा विद्या की ओर ध्यान गया। ध्यान और प्रार्थना संबंधी बहुत से ग्रंथ देखे। तर्क और दर्शन संबंधी भी बहुत से ग्रंथ पढ़े। विशेषतः शेख मही उद्दीन, शेख इब्न फारिज और शेख सदर उद्दीन आदि के बहुत से ग्रंथ देखे। नए नए प्रश्नों की मीमांसा हुई और हृदय पर से विलक्षण विलक्षण परदे उलटे।

"परमात्मा की बड़ी कृपाओं में से एक कृपा यह प्राप्त हुई कि खतीब अब्बुलफजल गाजरूनी की सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने गुणग्राहकता और मनुष्य को पहचानने-

वाली दृष्टि से देखा और अपना पुत्र बना लिया। ज्ञान की बहुत बड़ी पूँजी दी। सभी विषयों की हजारों बारीकियाँ खोलीं। इस संगति में दर्शन शास्त्र ने कुछ और ही तरावट दिखलाई और ज्ञान का झरना बहने लगा। बुद्धिमान् खतीब को गुजरात के बादशाहों के आकर्षण और प्रयत्न ने शीराज से खींच बुलाया था। उन्हीं की कृपा से उस देश में विद्या और ज्ञान का कोष खुला था और बुद्धिमत्ता को नया प्रकाश प्राप्त हुआ था। उन्होंने संसार के अनेकानेक बुद्धिमानों को देखा था और उनसे बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त किया था। परंतु परा विद्या में वे मौलाना जलालुद्दीन दवानी के शिष्य थे।

"शेख मुबारक ने वहाँ और भी अनेक विद्वानों तथा महात्माओं की सेवा में रहकर अपने सौभाग्य के खजाने भरे; और ध्यान की कई शृंखलाओं के प्रमाणपत्र लिए। शेख उमर ठठवी की सेवा से बहुत लाभ उठाया। शेख यूसुफ मजजूब एक मस्त, आत्मज्ञानी और पूरे वली थे। उनकी सेवा में भी जाने लगे। ध्यान इस बात पर जमा कि लौकिक विद्याओं के ज्ञान से मन को धोकर ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करें और समुद्री यात्रा करें। उक्त शेख ने आदेश दिया कि समुद्र-यात्रा का द्वार तुम्हारे लिये बंद हुआ है। तुम आगरे में जाकर बैठो और यदि वहाँ तुम्हारा उद्देश्य सिद्ध न हो तो ईरान और तूरान की यात्रा करो। जहाँ आज्ञा हो, वहाँ बैठ जाओ और अपनी अवस्था पर लौकिक पाठ्य-विद्याओं की चादर का परदा कर

लो। (क्योंकि संकुचितहृदय लोग ईश्वरीय या आध्यात्मिक ज्ञान सहन नहीं कर सकते।)

"६ मुहर्रम सन् ९५० हि० को आगरे में उतरे, जो भाग्य की चढ़ाई का पहला पड़ाव था। शेख अलाउद्दीन से भेंट हुई। उन्होंने आदेश दिया कि इस प्रताप के नगर में बैठो और यात्रा का अंत करो। उन्होंने ऐसी बातें समझाईं कि वहाँ से आगे पैर उठाना उचित न समझा। नगर के ठीक सामने, यमुना नदी के उस पार, किनारे पर चारबाग* नाम की बस्ती थी। वहाँ मीर रफीउद्दीन सफवी चिश्ती (जो मूलतः शीराज के अंजो नामक स्थान के रहनेवाले थे) के पड़ोस में उतरे और एक कुरैशी वंश में, जो शिक्षा और संस्कृति से सुशोभित था, विवाह किया। उक्त सैयद साहब उस महल्ले के रईस थे। उन्होंने इनके रहने को अपना अहोभाग्य समझा। पहले तो यों ही जान पहचान हुई थी। पीछे से मित्रता हो गई। मेल जोल बहुत बढ़ गया। वे धनी और संपन्न थे। उन्होंने इन्हें अपने रंग में मिलाना चाहा। परंतु इन्होंने नहीं माना और संतोष का तकिया छोड़ना उचित नहीं समझा। अंदर ईश्वरीय ज्ञान से मन बहलाते थे और बाहर अध्ययन तथा अध्यापन से।"

* पहले इसे चारबाग कहते थे; फिर हश्त बिहिश्त कहने लगे। बाबर ने नई नींव डालकर नूर अफशां नाम रखा। अब रामबाग कहलाता है।

जब सन् ९५४ हि० में उक्त सैयद साहब का देहांत हो गया, तब शेख मुबारक फिर त्याग और वैराग्य की ओर लगे। सबसे अधिक प्रयत्न इसी बात के लिये होता था कि अंतः-करण धुलकर साफ होता रहे; और बाह्य विषयों में तो पवित्र रहते ही थे। उस सच्चे काम बनानेवाले परमात्मा की ओर प्रवृत्त हुए और विद्योपार्जन में मन बहलाने लगे। और लोगों की बातचीत को अपनी अवस्था का परदा बना लिया और इच्छा की जबान काट डाली। यदि भक्तों में से कोई सुयोग्य और संयमी आदमी प्रेमपूर्वक कुछ भेंट लाता तो उसमें से अपनी आवश्यकता के अनुसार ले लेते थे। शेष लोगों को क्षमा-प्रार्थना करके फेर देते थे। साहस के हाथ उससे अपवित्र नहीं करते थे। सन् ९५४ हि० (सन् १५४७ ई०) में ४३ वर्ष की अवस्था में फैजी और सन् ९५८ हि० (सन् १५५१ ई०) में ४७ वर्ष की अवस्था में अब्बुलफजल का यहीं जन्म हुआ।

थोड़े ही दिनों में छोटे से लेकर बड़े तक सभी इसी झरने पर आने लगे। यहीं चतुरों और बुद्धिमानों का घाट हो गया। कुछ लोग ईर्ष्या के कारण इनके विरुद्ध षड्यंत्र रचने लगे और कुछ लोग प्रेमपूर्वक मिले और एकांत में पास रहनेवाले मित्र हो गए। शेख मुबारक को न तो उस बात का रंज ही था और न इस बात की खुशी। शेर शाह, सलीम शाह तथा कुछ और लोगों ने चाहा कि ये राजकोष से कुछ लें और इनके लिये जागीर नियत हो जाय। परंतु इनमें साहस बहुत

अधिक था, इसलिये दृष्टि नीचे की ओर नहीं झुकी। इसी कारण इनकी और भी अधिक उन्नति होने लगी। संयम की यह दशा थी कि यदि बाजार में कहीं गाना होता हुआ सुनाई देता था तो ये जल्दी जल्दी पैर बढ़ाकर वहाँ से आगे निकल जाते थे। चलते थे तो अँगरखे का पल्ला और पायजामे का पायँचा (फंदा) ऊँचा करके चलते थे जिसमें अपवित्र न हो जाय। यदि इनके यहाँ के जलसे में कोई व्यक्ति नीचा पायजामा पहनकर आता था तो वह जितना अधिक होता था, उतना फड़वा डालते थे। किसी को लाल कपड़ा पहने देखते तो उतरवा डालते थे। जो लोग लोभी और आडंबरप्रिय होते थे, वे इनसे जलते थे और घबराते थे। इन्हें शास्त्रार्थ और वाद विवाद के झगड़े या दूकानदारी की भीड़ भाड़ बढ़ाना मंजूर नहीं था। हाँ, सत्य का प्रकाश करने और कुकर्मियों को धिक्कारने में जरा भी कमी नहीं करते थे। जो लोग इनसे बिदकते थे, उन्हें ये कभी परचाते नहीं थे।

उस समय के कुछ विद्वान्, जो अपने बड़प्पन तथा पवित्रता के कारण राज दरबार में प्रविष्ट थे, शेख मुबारक से घोर शत्रुता रखते थे। हुमायूँ, शेर शाह और सलीम शाह के दरबारों में मखदूम उल्मुल्क मुल्ला अब्दुल्ला सुल्तानपुरी शरअ के विषय के मालिक बने हुए थे। शेख अब्दुल नबी भी माननीय और प्रतिष्ठित शेखों में से थे। उनके वचनों का लोगों के हृदयों पर बहुत प्रभाव पड़ता था; क्योंकि उन्होंने दरबारी

बल के साथ ही साथ अपने अध्ययन अध्यापन, मसजिदों की इमामत, खानकाहों की बैठक और मजलिसों के उपदेश से सबके दिलों को दबोच रखा था। जब चाहते थे, तब फतवा दे देते थे कि अमुक राजाज्ञा शरअ के विरुद्ध है; और इस प्रकार सब छोटे बड़ों में खलबली मचा देते थे। उनके द्वारा प्रायः राज्य और बादशाह के उद्देश्य बहुत सहज में पूरे हो जाया करते थे। इन्हीं सब बातों पर ध्यान रखकर उस समय के बादशाह भी इनकी खातिरदारी किया करते थे। अतः अभियोगों के निर्णय की कौन कहे, साम्राज्य की आज्ञाएँ तक इन्हीं के फतवों या व्यवस्थापत्रों पर निर्भर करती थीं। जब ये लोग बादशाहों के दरबार से उठते थे, तब साम्राज्य के बड़े बड़े स्तंभ और प्रायः स्वयं बादशाह भी फर्श तक पहुँचाने आते थे। कुछ अवसरों पर तो स्वयं बादशाह इन लोगों के सामने जूतियाँ सीधी करके रख देते थे।

पुस्तकों के ज्ञान, लेख या भाषण आदि किसी बात में भी शेख मुबारक इन लोगों के वश में नहीं थे। अब पाठक स्वयं समझ लें कि ऐसे उत्कट विद्वान् के विचार कैसे होंगे। वह अवश्य ही इन लोगों को कुछ न समझता होगा। मौलवी और मुल्ला लोग तो दस्तरख्वान की मक्खियाँ हुआ करते हैं। साधारण विद्वान् लोग धार्मिक समस्याओं और फतवों आदि में मखदूम और शेख सदर का मुँह देखते होंगे। पर शेख मुबारक उन लोगों की परवाह भी न करते होंगे। और

सच भी है कि जिस व्यक्ति का ज्ञान और कर्म हर दम अपने चारों ओर सत्य के बहुत से उपासकों को एकत्र रखता हो और जो स्वयं संसार की धन-संपत्ति और पद-मर्यादा आदि की तनिक भी कामना न रखता हो, उसे इस बात की क्या आवश्यकता है कि ईश्वर ने जो गरदन सीधी बनाई है, उसे दूसरों के सामने झुकावे; और जिस सम्मति को प्रकृति के यहाँ से स्वतंत्रता का प्रमाणपत्र मिला है, उसे सांसारिक लोभ के लिये अयोग्यों के हाथ बेच डाले।

जब किसी गरीब मुल्ला या शेख पर मखदूम या सदर की पकड़ का कोई गहरा हाथ बैठता था, तब वह बेचारा शेख के पास आता था। शेख की शोख तबीयत को इस बात का शौक था। वे मसजिद में बैठे बैठे एक ऐसी बात बता देते थे कि वह वही बात उत्तर में वहाँ जाकर कह देता था। उस समय प्रतिपक्षी लोग कभी शास्त्र की बगल झाँकते थे और कभी हदीस का पहलू टटोलते थे; परंतु उन्हें इस बात का कोई उत्तर नहीं मिलता था। ऐसी ही ऐसी बातों के कारण इनके प्रतिपक्षी लोग सदा इनकी ताक में लगे रहते थे और इन पर अनेक प्रकार के अभियोग और कलंक आदि लगाते थे। पहले पहल इनकी यह कहकर बदनामी की गई कि ये शेख अलाई महदवी के साथी और अनुयायी हैं। वास्तव में बात यह थी कि शेर शाह के शासन-काल में शेख अलाई महदवी नाम के एक अच्छे विद्वान् थे। वे जिस प्रकार

पांडित्य और ज्ञान आदि में पूर्ण थे, उसी प्रकार आचार और संयम आदि में भी सीमा से बढ़े हुए थे। उनके स्वभाव की गरमी ने उनकी प्रभावशालिनी वाक्शक्ति को आग उगलनेवाली सीमा तक पहुँचा दिया था। यह नहीं प्रमाणित होता कि शेख मुबारक उनके भक्त या शिष्य थे। परंतु या तो यह कारण हो कि तबीयत अपने ही ढंग की दूसरी तबीयत की आशिक होती है और एक सी तबीयतें आपस में एक दूसरी को अपनी ओर आपसे आप खींच लिया करती हैं अथवा यह कारण हो कि उनके पुराने प्रतिद्वंद्वी मखदूम उल्मुल्क शेख अलाई के शत्रु हो गए थे; पर हुआ यही था कि ये तेज तबीयतवाले परहेजगार आपस में बहुत प्रेम रखते थे और प्रायः साथ ही उठा बैठा करते थे। प्रायः जलसों तथा दूसरे महत्व के अवसरों पर शेख मुबारक भी शेख अलाई के साथ ही मिले रहते थे और उनकी जो बात ठीक होती थी, उसका निर्भय होकर समर्थन किया करते थे। अपने शक्तिशाली शत्रुओं की ये तनिक भी परवाह नहीं करते थे। बल्कि जब अपने जलसों में बैठते थे, तब अपने प्रतिपक्षियों पर छोटे छोटे चुटकुलों और किस्सों के फूल फेंकते जाते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि बेचारे शेख अलाई तो मारे गए और शेख मुबारक मुफ्त में बदनाम हुए।

पहले हुमायूँ और फिर शेर शाह तथा सलीम शाह के समय में अफगानों का जमाना था। उसमें आए दिन देश

में परिवर्तन और क्रांतियाँ होती रहती थीं जिनके कारण देश की बहुत दुरवस्था हो रही थी। उन दिनों उक्त विद्वानों का बल भी बहुत बढ़ा चढ़ा था। इसलिये शेख मुबारक एक कोने में ही बैठकर बुद्धि और चतुरता का दीपक प्रज्वलित किया करते थे और चुपके चुपके सत्य सिद्धांत बतलाया करते थे। जब हुमायूँ फिर आया; तब शेख ने निर्भय होकर विद्या-मंदिर की शोभा बढ़ाई। उसके साथ ईरान और तुर्किस्तान से अच्छे अच्छे विद्वान् और बुद्धिमान् आदि आए थे जिनके कारण विद्या की बहुत अधिक चर्चा होने लगी। उनका विद्या-मंदिर भी चमका। इसी बीच में जमाने की नजर लगी। हुमायूँ मर गया। हेमू ने विद्रोह किया। विद्या-चर्चा की बैठकों की रौनक जाती रही। बहुत से लोग घरों में बैठ गए और कुछ लोग शहर छोड़कर बाहर निकल गए। शेख उस समय तक इतनी अधिक प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे कि हेमू ने भी कुछ बातों में इनसे परामर्श लिए। बल्कि शेख के सिफारिश करने पर उसने बहुत से लोगों की जान छोड़ दी और मुक्त कर दिया। परंतु ये उससे नहीं परचे। साथ ही अकाल पड़ा जिसमें सर्वसाधारण का नाश तो साधारणत: और विशिष्ट लोगों का नाश विशेषत: सस्ता हो गया। घर और घराने चौपट हो गए। उजाड़ होते होते यह दशा आ पहुँची कि नगर में गिनती के घरों के सिवा और कुछ भी न रह गया। उन दिनों शेख के घर में स्त्री और पुरुष सब

मिलाकर ७० आदमी थे। लेकिन ये इस बेपरवाही से अपना गुजारा करते थे कि कोई कहता था कि ये कीमिया बनाते हैं और कोई समझता था कि जादूगर हैं। किसी किसी दिन तो केवल सेर भर अनाज आता था। वही मिट्टी की हाँड़ी में उबालते थे और उसी का रस बाँटकर पी लेते थे और ऐसे संतुष्ट तथा संपन्न दिखाई देते थे कि मानों इनके घर में रोजी का कोई खयाल ही नहीं है। ईश्वर-वंदना के अतिरिक्त और किसी बात की चर्चा ही नहीं होती थी और अध्ययन के अतिरिक्त और किसी बात की चिंता ही नहीं होती थी। उस समय फैजी आठवें वर्ष में और अब्बुलफजल पांचवें वर्ष में थे। इस अवस्था में भी वे लोग ऐसे प्रसन्न रहते थे जैसे प्रसन्न और लोग उत्तमोत्तम पदार्थ खाकर भी न रहते होंगे। और पिता इन लोगों की अपेक्षा और भी अधिक प्रसन्न रहते थे; क्योंकि वे ही सब प्रकार से इनके समस्त गुणों के उद्गम थे।

जब अकबर का शासन-काल आरंभ हुआ और देश में शांति स्थापित हुई, तब शेख की पाठशाला फिर जोरों से चलने लगी। अध्ययन और अध्यापन का काम इतना चमका कि शेख के नाम पर दूर दूर के देशों से विद्यार्थी और विद्याप्रेमी आने लगे। दरबारी विद्वानों को ईर्ष्या की अग्नि ने फिर भड़काया। पुराने विद्या-विक्रयी लोगों को अपनी चिंता पड़ी। उन लोगों ने नवयुवक बादशाह के कान भरने आरंभ किए।

यह संसार, जिसमें आवश्यकताओं की वर्षा होती है, बहुत ही बुरी जगह है। जिस समय शेख अबुल नबी सदर के यहाँ सब प्रकार के लोगों की आवश्यकताएँ पूरी हुआ करती थीं और विद्वानों तथा शेखों आदि को जागीरों के प्रमाणपत्र मिला करते थे, उन दिनों शेख मुबारक संसार की विपत्तियों और आघातों से लड़ते लड़ते थक गए। तिस पर से बहुत बड़ा परिवार और यथेष्ट बाल बच्चे थे। वे अपने निर्वाह का मार्ग ढूँढ़ने लगे जिसमें किसी प्रकार दिन व्यतीत हों। वे अपने मन में यह भी समझते होंगे कि इन आडंबरी दूकानदारों की अपेक्षा मेरी पूँजी किससे कम है जो मैं अपना हिस्सा न माँगूँ, जिसका कि मैं पूरा अधिकारी हूँ। इसी लिये वे विद्या के विचार से ऊँच नीच समझकर शेख सदर के पास गए। लेकिन फिर भी अपनी स्वतंत्रता का पक्ष बचाया। फैजी को अपने साथ लेते गए और प्रार्थनापत्र में यह लिखा कि जीविका के रूप में सौ बीघे जमीन इसके नाम हो जाय। शेख सदर उन दिनों ईश्वरीय अधिकारों के प्रधान हो रहे थे। उनके यहाँ इनका निवेदनपत्र केवल दाखिल दफ्तर ही नहीं हुआ, बल्कि बहुत ही बुरी तरह और घृणापूर्वक उत्तर मिला कि यह शीया और महदवी है; इसे निकाल दो। विपत्ति के फरिश्ते दौड़े और तुरंत उठा दिया। हे ईश्वर! उस समय उस विद्या के पर्वत और बुद्धि के सागर वृद्ध के हृदय पर कैसी चोट लगी होगी! वह आकाश की ओर देखकर रह गए होंगे और

अपने आने पर पछताए होंगे। परंतु जमाने ने कहा होगा कि तुम मत घबराओ। हमारा मिजाज आप ही इस प्रकार की माजूनें सहन नहीं कर सकता। ये पुराने बुर्ज तुम्हारे नव-युवकों की दौड़ में ढाए जायँगे और शीघ्र ढाए जायँगे।

उक्त विद्वानों ने एक बार कुछ लोगों को धर्मभ्रष्ट होने के अपराध में पकड़ा। उनमें से कुछ लोगों को तो कैद कर लिया और कुछ लोगों को जान से मरवा डाला। अब्बुल-फजल कहते हैं कि कुछ दुष्ट लोग मेरे पिताजी को भी शीया समझकर बुरा कहने लगे। उन लोगों ने यह नहीं समझा कि किसी धर्म या संप्रदाय के सिद्धांतों आदि को जानना अलग बात है और उन्हें मानना अलग बात है। खास मुकदमा यह हुआ कि ईरान का रहनेवाला एक सैयद अपने समय का अनु-पम और अद्वितीय था। वह एक मसजिद में इमाम था। वह विद्वान् भी था और क्रियानिष्ठ भी। उस समय के विद्वान् लोग उससे भी खटकते थे। परंतु अकबर का ध्यान प्रत्येक बात पर रहता था; इसलिये वे लोग उसे कोई हानि नहीं पहुँचा सकते थे। एक दिन दरबार में यह प्रश्न उपस्थित किया कि मीर का आगे खड़े होकर सब लोगों को नमाज पढ़ाना ठीक नहीं है, क्योंकि ये इराक के रहनेवाले हैं; और हन्फी संप्र-दाय में यह कहा जाता है कि इराक के रहनेवाले लोगों की साक्षी विश्वसनीय नहीं होती। इससे परिणाम यह निकलता है कि जिसकी गवाही विश्वसनीय नहीं, उसकी इमामत कैसे

ठीक हो सकती है! इमामत छिन जाने से सैयद का निर्वाह होना कठिन हो गया। शेख मुबारक के साथ उसका भाईचारा था। उसने अपने हृदय का दुःख उनसे कह सुनाया। उन्होंने बहुत सी अच्छी अच्छी और उत्साह-जनक बातें सुनाकर उसकी तसल्ली की और उत्तर में सम-झाया कि जो लोग यह कथन प्रमाण रूप में उपस्थित करते हैं, वे इसका ठीक ठीक अभिप्राय नहीं समझते। यहाँ इराक से अजम देश के इराक का अभिप्राय नहीं है, बल्कि अरब देश के इराक से अभिप्राय है। इमाम अबू हनीफा साहब के समय में अज्म देशवाले इराक की वह अवस्था कहाँ थी जो अब है। अमुक अमुक ग्रंथों में अमुक अमुक स्थानों पर इस विषय की पूरी व्याख्या की गई है। और फिर यह भी समझ रखिए कि चाहे किसी स्थान या देश के आदमी हों, सब लोग एक से नहीं होते। एक सर्वश्रेष्ठ हैं जो विद्वान् तथा सैयद हैं। दूसरे उनसे उतरकर श्रेष्ठ हैं जिनमें अमीर तथा जमींदार आदि हैं। तीसरे मध्यम श्रेणी के लोग हैं जिनसे दूकान-दारों और व्यवसायियों आदि का अभिप्राय है; और चौथे निम्न श्रेणी के लोग हैं जो इनसे भी नीचे हैं। मुक-दमों में हर एक के लिये इसी प्रकार दंड की भी चार श्रेणियाँ रखी गई हैं। यदि नेकी बदी का अवसर हो तो इस नियम और व्यवस्था का भी ध्यान क्यों न रखा जाय। और यह बात भी ठीक है कि यदि प्रत्येक अपराधी को समान

रूप से ही दंड दिया जाय तो न्याय के मार्ग से च्युत होना पड़े। यह सुनकर सैयद बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने बादशाह की सेवा में एक निवेदनपत्र लिखकर उपस्थित किया। शत्रु लोग देखकर चकित हो गए। पर साथ ही मन ही मन यह भी समझ गए कि इस आग की दियासलाई कहाँ से आई। कई बार खुल्लमखुल्ला भी इस प्रकार के समर्थन और सहायताएँ हो चुकी थीं। शेख अब्बुलफजल लिखते हैं कि इस प्रश्न से उन मूर्खों में खलबली मच गई। धन्य है ईश्वर! कोई धर्म ऐसा नहीं है जिसमें एक न एक बात की कसर न हो। और ऐसा भी कोई धर्म नहीं है जो सिर से पैर तक झूठा ही हो। ऐसी दशा में यदि कोई जानकार आदमी अपने धर्म के विरोधी किसी दूसरे धर्म के किसी सिद्धांत को अच्छा कहे तो लोग उसकी बारीकी पर ध्यान नहीं देते; उलटे उसके साथ शत्रुता करने के लिये तैयार हो जाते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि शेख मुबारक पर महदवी होने के साथ ही साथ शीया होने का भी कलंक लग गया।

मुल्ला साहब कहते हैं कि जिन दिनों मैं शेख मुबारक से विद्याध्ययन करता था, उन दिनों शेख का लिखा हुआ एक फतवा लेकर मैं मियाँ हातिमअली संभली के पास गया था। वे भी उन दिनों बहुत बड़े विद्वान् और प्रामाणिक माने जाते थे और द्वितीय इमाम आजम कहलाते थे। उन्होंने मुझसे पूछा कि शेख का पांडित्य कैसा है? मैं उनकी साधुता, संयम,

ध्यान, तपस्या और विद्वत्ता आदि का जो कुछ हाल जानता था, वह सब मैंने कह सुनाया; क्योंकि उन दिनों शेख बहुत अधिक संयम और आचार विचार से रहते थे। मियाँ ने कहा कि ठीक है। मैंने भी उनकी बहुत कुछ प्रशंसा सुनी है। परंतु लोग कहते हैं कि वे अपना ढंग महदवी रखते हैं। यह कैसी बात है? मैंने कहा कि मीर सैयद मुहम्मद का महत्व तो वे स्वीकृत करते हैं, परंतु महदवी सिद्धांतों को नहीं मानते। उन्होंने कहा—भला मीर की योग्यता और पूर्णता के संबंध में कौन कुछ कह सकता है?

वहाँ मीर सैयद मुहम्मद मीर अदल भी बैठे थे। मेरी बातचीत सुनकर वे भी प्रवृत्त हुए। उन्होंने पूछा कि लोग उन्हें महदवी क्यों कहते हैं? मैंने कहा कि वे भले कामों के लिये बहुत अधिक ताकीद करते हैं और बुरे कामों के लिये बहुत जोरों से मना करते हैं। उन्होंने कहा कि मियाँ अब्दुलनबी खुरासानी (जो कुछ दिनों तक सदर भी कहलाते थे) एक दिन खान-खानाँ के सामने शेख की निंदा कर रहे थे। तुम जानते हो कि इसका क्या कारण है? मैंने कहा कि हाँ, एक दिन शेख मुबारक ने उन्हें एक पुरजा लिखा था जिसमें उपदेश की बहुत सी बातें थीं। उनमें से एक बात यह भी थी कि जब मसजिद में सब लोग एकत्र होकर नमाज पढ़ते हैं, तब तुम भी उन लोगों में क्यों नहीं सम्मिलित होते। इसी से मियाँ अब्दुलनबी ने बुरा माना और सब लोगों के मिलकर

नमाज पढ़ने की जो ताकीद की थी, उससे उन्होंने यह परिणाम निकाला कि इन्होंने मुझे शीया कहा है। मीर अदल ने कहा कि तर्क तो ऐसा ही है जैसे कोई कहे कि तुम सब लोगों के साथ मिलकर नमाज नहीं पढ़ते; और जो सब लोगों के साथ मिलकर नमाज न पढ़े, वह शीया है; और इसलिये तुम भी शीया हो। ठीक इसी प्रकार शेख को महदवी कहना भी ठीक नहीं हो सकता। इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि इनके संबंध में प्राय: सभी जगह इस प्रकार की बातचीत हुआ करती थी।

अनुभवी लोग जानते हैं कि संसार में जब लोग अपने शत्रु पर विजय प्राप्त करना कठिन देखते हैं, तब अपने सहायकों और पक्षपातियों की संख्या बढ़ाने के लिये उस पर धर्मद्रोह का अभियोग लगाते हैं। क्योंकि सर्वसाधारण ऐसे कथन से बहुत शीघ्र आवेश में आ जाते हैं। इस बहाने से उन लोगों के हाथ शत्रु का नाश करने के लिये मुफ्त का लश्कर आ जाता है। इसलिये यदि उक्त विद्वानों ने शेख मुबारक के पांडित्य और गुणों आदि को अपने बस का न देखकर तरह तरह की बातों से उनको बदनाम किया हो तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। सलीम शाह के शासन काल में महदवी लोगों की ओर से विद्रोह की आशंका थी; इसलिये उस समय उन पर महदवी होने का अपराध लगाया। अकबर के प्रारंभिक शासन-काल में बुखारा के तुर्कों का जमावड़ा था और वे लोग ईरानी धर्म के कट्टर शत्रु थे। इसलिये उस समय

उन्हें शीया कहकर बदनाम कर दिया जिसमें पूरा वार पड़े। और इसमें भी संदेह नहीं कि शेख मुबारक बहुत स्वतंत्र विचार के महात्मा थे। यदि किसी विषय में उनकी सम्मति शीया लोगों की ओर प्रवृत्त होती होगी तो वे साफ़ कह दिया करते होंगे।

इतिहास से यह भी पता चलता है कि हुमायूँ के शासन-काल के बहुत से ईरानी भारतवर्ष में आ गए थे। परंतु वे लोग अपना धर्म प्रकट नहीं करते थे और अपने आपको सुन्नी कहकर ही छिपाए रखते थे। उनमें से बहुत से लोग अच्छे संपन्न भी हो गए थे। और यह भी स्वतःसिद्ध बात है कि जब हमारे शत्रु का कोई प्रतापी प्रतिद्वंद्वी उत्पन्न होता है, तब हम उसे भी अपनी एक सफलता ही समझते हैं। चाहे उससे हमारा कोई लाभ हो और चाहे न हो, पर उससे मिलकर हमारा चित्त प्रसन्न होता है और जबान आपसे आप उसकी प्रशंसा करने के लिये गतिशील होती है। मुल्ला मखदूम और शेख सदर के जो व्यवहार शीया लोगों के साथ थे, वह उनके विवरण से मालूम होंगे। शेख मुबारक अवश्य शीया लोगों से मिलते होंगे और बातचीत में उनके साथ सम्मिलित होते होंगे। किसी ने कहा है—

शेख तेरी ज़िद से छोड़ूँ दीनो ईमाँ तो सही।

खैर; यह भी कोई ऐसी बुरी बात नहीं थी, क्योंकि मुबारक भी आखिर आदमी ही थे; कोई फरिश्ते तो थे ही नहीं।

यह भी नियम है कि जब मनुष्य अपने सामने शत्रुओं को बहुत बलवान् देखता है और उनकी शत्रुता का प्रतिकार अपनी सामर्थ्य से बाहर देखता है तो ऐसे प्रभावशाली और शक्ति-संपन्न लोगों के साथ संबंध स्थापित करता है जो शत्रुओं से फटे हुए हों और कठिन समय में उसके काम आवें। शेख मुबारक के प्रतिद्वंद्वियों को देखिए कि कैसे जबरदस्त अख्तियार रखते थे और वे अख्तियार इन बेचारों के साथ कैसी बेदरदी से खर्च करते थे। सुन्नत संप्रदाय के जो विद्वान् थे, उनसे इस गरीब को नाम के लिये भी कोई आशा नहीं थी। भला अपनी मर्यादा और प्रतिष्ठा किसे प्रिय नहीं होती। प्राण किसे प्यारे नहीं होते। ऐसी दशा में यदि शेख मुबारक और लोगों से न मिलते तो क्या करते और उन लोगों की ओट में जाकर अपने प्राण न बचाते तो और कहां जाते। मैंने अब्दुलफजल और फैजी के विवरणों में शीया और सुन्नी के संबंध में कुछ मेल मिलाप के विचार यह समझकर दिए हैं कि कदाचित् दोनों तलवारों की तेजियाँ कुछ गलावट पर आ जायँ। वह भी कैसी मनहूस घड़ी थी जब शीया और सुन्नी के झगड़े की जड़ पड़ी थी। तेरह सौ वर्ष बीत गए और दोनों पक्षों ने हजारों हानियाँ उठाईं। मेल मिलाप करानेवालों ने बहुतेरे जोर लगाए, परंतु दोनों में से एक भी ठीक मार्ग पर न आया।

इस संबंध में अब्दुलफजल के लेख का सारांश यहाँ दिया जाता है।

. ईर्ष्या करनेवाले लोग हर समय आवेश में उबलते फिरते थे और उपद्रव के छत्तों पर उत्पात की भिड़ें उमड़ी रहती थीं। परंतु जब अकबरी शासन का प्रकाश फैलने लगा, तब सन् ९६७ हि० में शेख मुबारक के विद्यालय पर बुद्धिमत्ता और प्रशंसा का झंडा खड़ा हुआ। बड़े बड़े लोग आकर शिष्यत्व करने लगे। लोगों की भीड़ पर भीड़ आने लगी। ईर्ष्या करने-वाले लोग घबराए। उन्होंने सोचा कि यदि इनके गुणों का नमूना गुणग्राहक बादशाह तक पहुँच गया और उनके मन में बैठ गया तो हमारे पुराने विश्वासों की आबरू कैसे रहेगी और इसका परिणाम किस अप्रतिष्ठा तक पहुँचेगा! शेख मुबारक तो अपनी वृद्धावस्था और पांडित्य के सरूर में और उनके पुत्र अपनी युवावस्था और विद्या के नशे में बे-खबर बैठे हुए थे। इसी बीच में शत्रुओं ने एक षड्यंत्र रचा जिसके कारण शेख को ऐसी भीषण विपत्तियाँ उठानी पड़ीं कि हृदय त्राहि त्राहि करता है। शेख अब्बुलफजल ने अकबरनामे के अंत में स्वयं इस विषय का कुछ विस्तृत विवरण दिया है। उसने जिस प्रकार जादू भरे शब्दों में इस विषय में लिखा है, उसे संक्षेप में यहाँ लाना असंभव है। तो भी जहाँ तक कलम में जोर है, प्रयत्न करता हूँ। वह कहते हैं—

ईर्ष्या करनेवाले विद्वान् बादशाही दरबार में छल और कपट के सौदे को सौदागरी में लगाकर झगड़े और उपद्रव खड़े किया करते थे। लेकिन वहाँ सज्जन पुरुष भी उपस्थित रहते

थे जो नेकी के पानी से वह आग बुझा दिया करते थे। अक-बर के शासन के आरंभिक काल में सत्यनिष्ठ और सच्चे मिलन-सार लोग अलग हो गए थे। शैतानों और उपद्रवियों की बन आई। बादशाह के पार्श्ववर्त्तियों का सरदार (या तो मखदूम से अभिप्राय है और या सदर से) शत्रुता करने के लिये कमर बाँधकर प्रस्तुत हुआ। पूज्य पिताजी एक साधु महात्मा के घर गए थे। मैं भी उनके साथ था। उसी समय वह अभिमानी वहाँ आया और मसले (धार्मिक समस्याएँ) बघारने लगा। मुझ पर जवानी के नशे में अक्ल की मस्ती चढ़ी हुई थी। आँख खोलकर मदरसा ही देखा था। व्यव-हार के बाजार की ओर पैर भी नहीं उठाया था। उसकी बेहूदा बकवाद पर प्रकृति ने मेरी जबान खोली। मैंने बात की नौबत यहाँ तक पहुँचाई कि वह लज्जित होकर उठ गया। देखनेवाले चकित हो गए। उसी समय से वह मूर्खतापूर्ण प्रतिकार की चिंता में पड़ा। जो उपद्रवी हारकर बैठ रहे थे, उन्हें जाकर उसने फिर भड़का दिया।

पूज्य पिताजी तो उनके छल कपट से निश्चिंत थे और मैं विद्या के मद में चूर था। संसार की हवा देखकर चलने-वाले अधर्मियों ने चतुर चालबाजों की तरह आस्तिकता और धार्मिकता के रंग में जलसे जमाए। कुछ लालचियों के हृदय पर छापा मारकर उन्हें अभाव के कोने में भेज दिया और आप अपने प्रबंध में लगे। एक दोरुखा धूर्त्त, दोगला और दगाबाज

पैदा किया जो अपनी चालबाजी से पिताजी की आँखों में नेक बनकर घुसा हुआ था और अंदर से उधरवालों के साथ एक प्राण और दो शरीर होकर मिला हुआ था। शत्रुओं ने उसे एक पट्टी पढ़ाकर और बेहोशी का मंत्र सिखाकर आधी रात के समय भेजा। वह झपासिया और धूर्त्त अँधेरी रात में मुँह विसूरता और आँखों से आँसू बहाता हुआ बड़े भाई (फैजी) की कोठरी में पहुँचा और जादू तथा तिलिस्म के ढकोसले सुनाकर बेचारे भाई को घबरा दिया। उसे छल कपट की क्या खबर! वह उसके बहकावे में न आता तो और क्या करता। उसने यह कहा कि आजकल के कुछ बड़े बड़े लोग बहुत दिनों से आपके शत्रु हो रहे हैं और खोटे कृतघ्नों को लज्जा नहीं आती। आज उन्होंने अवसर पाकर विद्रोह किया है। कुछ विद्वान् मुद्दई बनकर खड़े हुए हैं और कुछ पगगड़धारी गवाह बन गए हैं। उन लोगों ने जो तूफान बाँधे हैं, उनके लिये हीले हवाले खड़े कर लिए हैं। सभी लोग जानते हैं कि बादशाह के पवित्र दरबार में ये लोग कितने अधिक विश्वसनीय हैं। अपनी धाक जमाने के लिये इन लोगों ने कैसे कैसे अच्छे आदमियों को उखाड़कर फेंक दिया और क्या क्या अत्याचार किए हैं। मेरा एक मित्र उन लोगों के सब भेद जानता है। उसने इस आधी रात के समय आकर मुझे समाचार दिया। मैं विकल होकर इधर दौड़ा आया। मैंने सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि प्रतीकार

का समय हाथ से जाता रहे। परंतु उचित यह है कि इस बात की किसी को खबर न हो। शेख को अभी ले जाकर कहीं छिपा दो। जब तक मित्र लोग एकत्र होकर सब वास्तविक समाचार बादशाह तक न पहुँचावें, तब तक सब लोग छिपे रहें। भाई बहुत सीधा सादा था। उसे अधिक संदेह हुआ। वह घबराया हुआ शेख की कोठरी में पहुँचा और उनसे सब हाल कह सुनाया। शेख ने कहा कि शत्रु तो बलवान् हो रहे हैं, पर फिर भी हमारा ईश्वर सब जगह उपस्थित है। न्यायशील बादशाह सिर पर है; सातों विलायतों के बड़े बड़े विद्वान् उपस्थित हैं। यदि कुछ बेईमानों और अधर्मियों को ईर्ष्या की बदमस्ती ने बेचैन किया है तो फिर वास्तविकता भी अपने स्थान पर उपस्थित है ही। दरियाफ्त का दरवाजा बंद नहीं हो गया है। और फिर यह भी समझ लो कि यदि हमारे भाग्य में कष्ट पाना नहीं लिखा है तो फिर चाहे सारे शत्रु क्यों न उमड़ आवें, पर वे हमारा बाल भी बाँका नहीं कर सकते। उनके छल का एक भी दाँव न चलेगा। परंतु यदि ईश्वर की यही इच्छा हुई तो खैर ऐसा ही सही। हमने भी इस मिट्टी के ढेर (शरीर) से हाथ उठा लिया। हँसते खेलते नगद जान हवाले कर देते हैं।

भाग्यचक्र ने बुद्धि ले ली थी और दुःख तथा क्रोध सपुर्द कर दिया था। पिताजी ने ईश्वर-निर्भरता की जो बातें कही थीं, उन्हें फैजी ने केवल कहने की बातें समझ लिया और

प्रसन्नता के उभार को दुःख समझा। छुरी पर हाथ डालकर कहा कि संसार के व्यवहार और हैं, और ईश्वरीय ध्यान की बातें और हैं। यदि आप नहीं चलते हैं तो मैं अपने प्राण दे देता हूँ। फिर आप जानिए। मैं तो यह बुरा दिन न देखूँ। यह सुनकर पिता का प्रेम उठ खड़ा हुआ। तेजस्वी वृद्ध के जगाने से मैं भी जागा। विवश होकर उसी अँधेरी रात में तीनों आदमी पैदल निकले। न तो कोई पथ-प्रदर्शक था और न पैरों में शक्ति थी। पूज्य पिताजी चुपचाप संसार के इन रंगों का तमाशा देख रहे थे। मैं और भाई दोनों जानते थे कि संसार के कार्यों और व्यवहारों में हम लोगों से बढ़कर अनजान और कौन होगा। बातचीत होने लगी। सोचने लगे कि जायँ तो कहाँ जायँ। यदि वह किसी का नाम लेते थे तो मैं न मानता था; और यदि मैं किसी का नाम लेता था तो वे आपत्ति करते थे। अक्ल हैरान थी कि क्या किया जाय। ऐसे अवसर पर अब्बुलफजल कहते हैं—

دشمنان دست کین بر آوردند
دوستے مهربان نمی یابیم
یک جهان آدمی همی یابیم
مردمے در میان نمی یابیم
هم بدشمن درون گریزم از آنکه
یاری از دوستان نمے یابیم

अर्थात्—शत्रुओं ने शत्रुता का हाथ बाहर निकाला (बढ़ाया) है। मुझे एक भी दयालु मित्र नहीं मिलता। मैं सारा संसार मनुष्यों से भरा हुआ देखता हूँ, परंतु उनमें मनुष्यत्व नहीं पाता हूँ। मैं अब शत्रुओं की ओर ही भागता हूँ, क्योंकि मित्रों में मैं मित्रता नहीं पाता हूँ।

मैं अभी नवयुवक था और मुझे किसी बात का कोई अनुभव नहीं था। अभी जन्म लेकर खड़ा हुआ था; खाकी बाजार का दिवालिया था (अर्थात् सांसारिक व्यवहारों से नितांत अनभिज्ञ था)। दुनिया के मामलों का मुझे स्वप्न में भी कोई अनुमान नहीं हुआ था। बड़े भाई एक आदमी को बहुत सज्जन समझे हुए थे। उसी के यहाँ पहुँचे। संतुष्ट-हृदयों को देखकर उसका चित्त ठिकाने न रहा। वह घर से निकलकर पछताया। हक्का बक्का रह गया। लेकिन विवश था। उसने दम लेने के लिये एक जगह बतलाई। उस उजाड़ स्थान में गए तो देखा कि वह उस आदमी के दिल से भी बढ़कर बुरी दशा में था। बहुत विलक्षण दशा हुई। और भी अधिक दुःख, क्रोध तथा चिंता ने आ घेरा। बड़े भाई फिर भी मुझ पर ही झुँझलाने लगे कि ज्यादा अक्ल ने ज्यादा खराब किया। कम अनुभवी होने पर भी तुमने ठीक सोचा था। अब क्या उपाय है और कौन सा मार्ग है। कौन सा ऐसा स्थान है जहाँ बैठकर कुछ देर दम तो लें। मैंने कहा कि अब भी कुछ नहीं गया है। अपने खंडले

को लौट चलो। बातचीत का अवसर आ पड़े तो मुझे प्रतिनिधि बना दो। ये जो बड़े बड़े लोग बने हुए हैं, इनकी चादरें उतार लूँगा और बंद काम खुल जायगा। पिता ने कहा—धन्य है! मैं भी इसी के साथ हूँ। भाई फिर बिगड़े और बोले कि तुझे इन मामलों की खबर नहीं है। इन लोगों की धूर्त्तता और छल-बट्टों को तू क्या जाने। अब घर का ध्यान छोड़ो और रास्ते की बात कहो। यद्यपि मैंने अनुभव के जंगल नहीं पाए थे और हानि लाभ का आनंद नहीं उठाया था, तथापि ईश्वर ने मेरे मन में एक बात डाल दी। मैंने कहा कि मेरा दिल गवाही देता है कि यदि आकाश से अचानक और कोई नई बला न आ पड़े तो अमुक व्यक्ति अवश्य हम लोगों का साथ देगा और हमारी सहायता करेगा। पर हाँ, यदि कोई विकट अवसर आ पड़े तो फिर थमना भी कठिन है। एक तो रात और दूसरे समय बहुत थोड़ा था। तिस पर चित्त विकल था। खैर, किसी प्रकार उधर ही पैर बढ़ाए। पैरों में छाले पड़ गए थे। दलदल और फिसलन के मैदान थे.........चले जाते थे, पर तोबा तोबा करते जाते थे कि क्या समय है! भरोसे की रस्सी मुट्ठी से निकली हुई थी और निराशा का मार्ग सामने था। सोचते थे कि एक बड़ा समुदाय हमारे पीछे पड़ा हुआ है और हमें ढूँढ़ रहा है। पैर भी बहुत कठिनता से उठते थे और श्वास प्रश्वास भी बहुत कठिनता से आते थे। विलक्षण दशा थी। रात

है तो भीषण और कल है प्रलय का दिन। भारी दुष्टों का सामना। खैर, किसी प्रकार प्रभात होते होते उसके द्वार पर पहुँचे। वह बड़े तपाक से मिला। हम लोगों को एक अच्छे एकांत स्थान में उतारा। नाना प्रकार के दुःख कुछ अलग हुए। दो दिन निश्चिंतता से बीते। कुछ खातिर-जमा से बैठे। लेकिन बैठना कहाँ। समाचार मिला कि आखिर ईर्ष्यालुओं ने लज्जा का परदा फाड़कर दिल के फफोले फोड़े। पक्के दोगलों की चाल चले हैं। जिस रात को हम लोग घर से बाहर निकले थे, उसके सवेरे विनती और प्रार्थना करके उन लोगों ने बादशाह को भी हम लोगों की ओर से दुःखी और असंतुष्ट कर दिया। उसने आज्ञा दी कि शासन और व्यवस्था आदि के काम तो बिना तुम लोगों के परामर्श के चलते ही नहीं; और यह तो धर्म का विषय ठहरा। इसका संपादन तो तुम्हारा ही काम है। उन्हें न्याय विभाग में बुलाओ। शरीयत जो कुछ फतवा दे और समय के बड़े और महात्मा लोग जो कुछ निर्णय करें, वह करो। उन्होंने झट बादशाही चोबदारों को हलकारकर भेज दिया कि पकड़ लाओ। हाल तो उन लोगों को मालूम ही था। ढूँढ़ भाल में बहुत परिश्रम किया। कुछ दुष्ट शैतान साथ कर दिए गए थे। जब उन लोगों ने हम लोगों को घर में न पाया तो झूठ बात को सच बनाकर घर घेर लिया। पहरे बैठा दिए। शेख अब्दुलखैर (छोटे भाई) को घर में पाया।

उसी को पकड़कर ले गए। हमारे भागकर छिप जाने की कहानी खूब बढ़ा चढ़ाकर निवेदन की गई। उसी को वे लोग अपनी बातों का समर्थन समझे। ईश्वर की महिमा देखो, बादशाह ने सुनकर स्वयं ही कहा कि शेख की आदत है, सैर करने के लिये निकल जाता है। अब भी कहीं गया होगा। एक एकांतवासी तपस्वी और बुद्धिमान् फकीर पर इतनी अधिक कड़ाई क्यों करते हो और व्यर्थ क्यों उलझते हो ? इस बच्चे को व्यर्थ ही पकड़ ले आए और घर पर पहरे क्यों बैठा दिए ? उसी समय भाई को छोड़ दिया और पहरे भी उठा दिए। घर पर शांति की हवा चली। अभी नहूसत रास्ते में थी और आशंका छाई हुई थी। नित्य उलटे सुलटे समाचार पहुँच रहे थे। इसलिये हम लोगों ने छिपे रहना ही उचित समझा।

अब कमीने और दुष्ट लोग लज्जित हुए। लेकिन उन्होंने सोचा कि इस समय ये लोग दुर्दशा में मारे मारे फिर रहे हैं; इसलिये इनकी हत्या ही कर डालनी चाहिए। दो तीन कलुषितहृदयों को भेजा कि जहाँ पावें, उन लोगों का फैसला ही कर दें। उन्हें भय इस बात का हुआ था कि कहीं हम लोग बादशाह के मुँह से निकली हुई बात सुनकर स्वयं ही बादशाह की सेवा में न आ उपस्थित हों और धर्म तथा सहानुभूति के दरबार को बुद्धि के प्रकाश से प्रकाशित न कर दें। इसलिये बादशाह का और तो उन लोगों ने छिपा

लिया और भयभीत करनेवाली हवाइयाँ उड़ाकर भोले भाले मित्रों और जमानासाज यारों को डराया। रंग बिरंग के बाने बाँधे। उन लोगों की यह दशा हो गई कि सुदूर भविष्य की आशंकाओं से डाँवाडोल होकर परामर्श की सहायता से भी भागने लगे। एक सप्ताह बीता तो मालिक मकान ने भी घबराकर आँखें फेरीं। उसके नौकरों ने भी मुरव्वत का फर्श उलट दिया। आशंकाओं की सिलवटों में हमारी बुद्धि भी दब गई। खयाल यह हुआ कि दरबारवाला जो समाचार सुना था, कदाचित् वह झूठ हो और बादशाह स्वयं हम लोगों को तलाश करते हों। समय बहुत बुरा है और जमाना पीछे पड़ा हुआ है। कहीं ऐसा न हो कि यह घरवाला ही पकड़ा दे। हृदय पर विलक्षण दुःख और चिंता छाई और बड़ी आशंका हुई। मैंने कहा कि इतना तो मैं जानता हूँ कि दरबारवाला समाचार अवश्य ठीक है। नहीं तो भाई को क्यों छोड़ा? और घर पर से पहरे क्यों उठवा लिए? पूर्ण शांति के समय में भी लोग हजारों हवाइयाँ उड़ाते थे और अच्छे अच्छे भले आदमी कमर बाँधकर खड़े हो जाते थे। और अब तो मानों सारे संसार में ही आग लगी हुई है। यदि यह घरवाला डर जाय तो इसमें आश्चर्य ही क्या है! और यह भी समझने की बात है कि यदि वह हम लोगों को पकड़वा ही देना चाहता तो वह ऊपरी व्यवहार न बदलता। और पकड़वाने में भी विलंब क्यों करता। हाँ, यह है कि बहुत

से शैतानों ने इसे बौखला दिया है और नौकरों को घबरा दिया है जिसमें हम लोग इसका कठोर व्यवहार देखकर निकल जायँ और इसका पीछा छोड़ दें।

होश हवास ठिकाने करके फिर परामर्श करने लगे। विपत्ति के दिन को देखा तो वह कल की रात से भी बढ़कर अँधेरा था। बुरा वक्त सामने आया। पहले जान पहचान निकालने और वर्त्तमान का अनुमान लगाने पर सब लोगों ने मुझे शाबाशी दी और भविष्य के लिये मुझे परामर्श का आधार निश्चित किया। मेरी छोटी अवस्था की ओर लक्ष्य न करके निश्चय किया कि अब इसके परामर्श के विरुद्ध कोई काम न करेंगे। जब संध्या हुई, तब उस उजाड़ स्थान से निकले। दिल के हजार हजार टुकड़े हो रहे थे और दिमाग में मानों तूफान आया हुआ था। कलेजा घावों से भरा हुआ था और चित्त पर चिंता का भारी बोझ छाया हुआ था। कोई मित्र और सहायक ध्यान में नहीं आता था। पैरों में बल नहीं था और रक्षा या शरण के लिये कोई स्थान नहीं दिखाई देता था। संसार में शांति नहीं थी। एक कस्बा दिखाई दिया। इस भूतनगर और अंधेरपुर में बिजली चमकी और आनंद की आकृति का रंग निखरा (एक शिष्य का घर दिखाई दिया)। सबके चित्त प्रसन्न हो गए। वहाँ पहुँचकर जरा आराम से साँस लिया। यद्यपि वह घर उसके दिल से भी अधिक तंग था और दिन पहली रात से भी बढ़कर अँधेरा था,

लेकिन फिर भी जरा दम लिया। बेठिकाने के भटकने से जान बची और कुछ ठिकाने हुई। चिंता के क्षेत्र में दौड़ने लगे और कुछ सोचने के लिये बुद्धि लंबे लंबे पैर बढ़ाने लगी।

जब आराम की जगह और निश्चिंतता का मुँह किसी को न दिखलाई दिया, तब मैंने उत्तर की इमारत इस प्रकार सजाई कि इन अच्छे अच्छे मित्रों, पुराने पुराने शिष्यों और यथेष्ट श्रद्धा रखनेवाले भक्तों का हाल तो थोड़े ही दिनों में मालूम हो गया। अब तो मेरा यही परामर्श है कि यह नगर बुद्धि के वबाल का घर और पूर्ण रूप से उत्पीड़क हो गया है, अतः अब हम लोग यहाँ से निकल चलें; इन कायर मित्रों और परिचितों से जहाँ तक शीघ्र हो सके, अलग हो जायँ। भली भाँति देख लिया कि इनकी वफादारी और निष्ठा के पैर हवा पर हैं और इनकी दृढ़ता की नींव नदी की तरंगों पर है। किसी और नगर को चले चलो। कहीं कोई अच्छा एकांत स्थान मिल जाय और कोई अनजान सज्जन अपने संरक्षण में ले लें; वहाँ से बादशाह का हाल मालूम हो। उसकी कृपा और कोप का अनुमान लगावें। यदि गुंजाइश हो तो न्यायप्रिय सज्जनों के पास सँदेसा और सलाम भेजें। संसार का रंग और बू देखें। यदि समय सहायता करे और भाग्य साथ दे तो ठीक ही है; और नहीं तो संसारक्षेत्र संकीर्ण नहीं बना है। पक्षियों तक के लिये घोंसले और शाखाएँ हैं। इसी मनहूस शहर पर कयामत के कबाले नहीं लिखे

गए हैं। एक और अमीर दरबार से अपने इलाके पर चला है और बस्ती के पास ही उतरा है। उसी के कार्यों के विवरण में कुछ प्रकाशमान पंक्तियाँ दिखाई देती हैं। सबसे हाथ उठाओ और उसी की शरण में चलो। वह स्थान भी ऐसा है जिसका किसी को पता नहीं है। कदाचित् वहाँ कुछ आराम मिले। यद्यपि दुनियादारों की मित्रता का कोई भरोसा नहीं है, लेकिन फिर भी इतना तो है कि इन उपद्रवियों के साथ उसका कोई संबंध नहीं है।

बड़े भाई भेस बदलकर उसके पास पहुँचे। वह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और हमारे आने को उसने गनीमत समझा। भय और आशंका बहुत थी; इसलिये भाई कई तुर्क बहादुरों को साथ लेते आए, क्योंकि दुष्ट लोग हमें ढूँढ़ते फिरते थे। ध्यान इस बात का था कि मार्ग में कोई आपत्ति न आ जाय। अँधेरी रात निराशा की चादर ओढ़े पड़ी थी। ऐसे समय में वह लौटकर आया और सुख का सुसमाचार तथा संतुष्टता का सँदेसा लाया। उसी समय सब लोग भेस बदलकर चल पड़े। सीधे रास्ते को छोड़कर उसके डेरे पर पहुँचे। उसने बहुत संतोष और विलक्षण प्रसन्नता प्रकट की। सुख ने अभय का सुसमाचार सुनाया। दिन बड़े सुख से बीता। संसार के उपद्रवों से निश्चिंत होकर बैठे थे। इतने में अचानक एक और भारी विपत्ति आकाश से बरस पड़ी जो पहले की फैली हुई परेशानी से भी कहीं बढ़कर और कठोर थी। अर्थात

हुआ यह कि उस अमीर के लिये फिर दरबार से बुलाहट आई। लोगों ने जिस शराब से पहलेवाले मूर्ख को बदहवास किया था, उसी से इस भोले भाले को भी पागल कर दिया। उसने मित्रता का पृष्ठ अचानक ऐसा उलट दिया कि रात ही को वहाँ से निकल खड़े हुए। एक और मित्र के घर पहुँचे। उसने तो तेजस्वी वृद्ध के आने को बहुत ही शुभ और सौभाग्य समझा; पर उसके पड़ोस में एक दुष्ट और उपद्रवी रहता था। उसने बहुत घबरा दिया और आश्चर्य ने बावला बना दिया। जब सब लोग सो गए, तब वहाँ से भी निकले और बेठिकाने निकले। यद्यपि मन ठिकाने करके बहुत कुछ सोचा और बुद्धि लड़ाई, पर कोई जगह समझ में नहीं आई। विवश होकर हम लोग डावाँडोल और दुःखी चित्त से फिर लौटकर उसी अमीर के डेरों पर आ गए। पर विलक्षण बात यह थी कि वहाँ के लोगों को तब तक हमारे निकलने की खबर भी नहीं हुई थी। निराश और निराश्रय कुछ देर तक होश ठिकाने करके बैठे। बड़े भाई की सम्मति यह हुई कि हम लोग जो यहाँ से निकले थे, वह बुद्धि के पथ-प्रदर्शन के कारण नहीं निकले थे, बल्कि भ्रम के कारण भटकते हुए निकले थे। यद्यपि मैंने अपनी ओर से बहुत कुछ समझाया कि इस अमीर का इस प्रकार रंग बदलना और नौकरों का आँख फेरना बहुत ही स्पष्ट प्रमाण है, लेकिन फिर भी उसकी समझ में नहीं आया। उस अमीर के व्यवहार का रूखा-

मन बढ़ता जाता था। पर कुछ हो भी नहीं सकता था। जब इस ओछे, संकीर्णहृदय और सनकी ने देखा कि ये लोग कत्राहत को नहीं समझते और खेमे से बाहर नहीं निकलते तो दिन दहाड़े बिना कोई बात या परामर्श किए वह वहाँ से कूच कर गया। पैसे के दास (उसके नौकर चाकर) भी खेमा डेरा उखाड़कर चल पड़े। हम तीनों मिट्टी के मैदान में बैठे रह गए। बहुत विलक्षण दशा हुई। न जाने के लिये मार्ग था और न ठहरने के लिये स्थान। पास घोड़ों की बिक्री का बाजार लगा था। न कोई परदा था और न कोई ओट। चारों ओर या तो दोरुखे दोस्त और या सैकड़ों रंग बदलनेवाले शत्रु थे। या अनजान क्रूर आकृतिवाले और बेवफा लोग दौड़ते फिरते थे। हम लोग रक्षाहीन जंगल में बेचारगी की धूल में बैठे हुए थे। बहुत ही बुरी दशा थी। संसार भयानक हो रहा था। दुःख और चिंता के लंबे लंबे कूचों में विचार डावाँडोल होकर फिरने लगे।

अब वहाँ से उठने के सिवा और उपाय ही क्या था? विवश होकर वहाँ से चले। अशुभचिंतकों की भीड़ के बीचोबीच में से होकर निकले। ईश्वरीय रक्षा ने उन लोगों की आँखों पर परदा डाल दिया। उसी पर संतोष किया और उस विपत्ति के स्थान से बाहर आए। अब साथ और मित्रता की इमारत को नदी में डुबा दिया। बेगानों की मलामत और मित्रों की साहब सलामत को सलाम करके एक बाग में जा

पहुँचे। यह छोटा सा स्थान रक्षा का बहुत बड़ा घर जान पड़ा। गए हुए होश ठिकाने आए। कुछ विलक्षण शक्ति प्राप्त हुई। पर मालूम हुआ कि इधर भूतों (जासूसों) का आना जाना होता है और उन लोगों ने फिरते फिरते थककर यहीं कहीं दम लिया है। ईश्वर ही रक्षक था। हृदय टुकड़े टुकड़े हो गया था। बहुत ही बुरी अवस्था में वहाँ से भी निकले। तात्पर्य यह कि जहाँ जाते थे, वहीं अचानक भारी बला आती हुई दिखाई देती थी। दम लेते थे और भाग निकलते थे। घबराहट की दौड़ादौड़ और अंधों की भागा-भाग थी। उसी दशा में एक माली मिला। उसने पहचान लिया। हम लोग घबरा गए और सन्नाटा छा गया। दम निकलना ही चाहता था, मगर उस भले आदमी ने बहुत कुछ सांत्वना दी और अपने घर लाया। बैठकर सहानुभूति प्रकट की। यद्यपि भाई के चेहरे पर अब भी एक रंग आता था और एक जाता था, पर मेरा चित्त प्रसन्न होता था और वह प्रसन्नता बराबर बढ़ती जाती थी। उसकी खुशामद से मित्रता के पृष्ठ पढ़ रहा था और तेजस्वी वृद्ध के विचार ईश्वर से लौ लगाए उसी के ध्यान की चटाई पर टहल रहे थे और भाग्य के उलट फेर का तमाशा देख रहे थे। कुछ रात बीते बाग-वाला फिर आया और इस बात की शिकायत करने लगा कि मेरे जैसे सच्चे भक्त के रहते हुए आप इस विपत्ति में कहाँ थे और मुझसे अलग क्यों रहे। वास्तव में यह बेचारा जितना नेक

था, उतना मेरे अनुमान में नहीं तुला था। जब चित्त कुछ प्रफुल्लित हुआ, तब मैंने कहा कि तुम देखते हो, इस समय तूफ़ान आया हुआ है। मन में यही ध्यान हुआ कि कहीं ऐसा न हो कि मित्रों को हमारे कारण शत्रुओं की पीड़ा पहुँचे। वह भी कुछ प्रसन्न हुआ और बोला कि यदि आप लोगों को मेरा खुंडला पसंद नहीं है तो और जगह निकालता हूँ। सब लोग निश्चित होकर वहाँ बैठो। हम लोगों ने मंजूर कर लिया। वहीं जा उतरे। जैसा जी चाहता था, वैसा ही एकांत स्थान पाया। घरवालों की भी तसल्ली हुई कि जीते तो हैं। एक महीने से अधिक उस आराम के स्थान पर रहे। वहाँ से न्यायप्रिय मित्रों और प्रेमी परिचितों को पत्र लिखे। सब लोगों को खबर हो गई और वे हमारे लिये उपाय करने लगे। इधर भाई ने साहस की कमर बाँधी। पहले आगरे और फिर वहाँ से फ़तहपुर सीकरी पहुँचे कि वहाँ जो मित्र उपाय करने में जान लड़ा रहे हैं, उन्हें और गरमाएँ। एक दिन प्रातःकाल का समय था कि प्रेम का पुतला और दूर-दर्शी भाई हजारों दुःख और चिंताएँ साथ में लिए पहुँचा और कठोरहृदय संसार का सँदेसा लाया कि दरबारी महानुभावों में से एक ने शैतानों के बातें बनाने का हाल सुनकर मारे क्रोध के नम्रता और सम्मान के नक़ाब मुँह से उलट दिए और परुष तथा कठोर वचनों में निवेदन किया कि क्या अंतिम चक्र पूरा हो रहा है? क्या प्रलय आ गया? श्रीमान् के साम्राज्य

में दुष्टों को सब प्रकार की स्वतंत्रताएँ हैं और सज्जन पुरुष मारे मारे फिरते हैं। यह कौन सा नियम चल रहा है और ईश्वर के प्रति यह कैसी कृतघ्नता है ? बादशाह ने नेकनीयती पर दया करते हुए कहा—"तुम किसका जिक्र करते हो और तुम्हारा अभिप्राय किस व्यक्ति से है ? तुमने कोई स्वप्न देखा है या तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है ?" जब उसने नाम बतलाया, तब श्रीमान् उसके भ्रम पर बिगड़े और कहा कि बड़े बड़े धर्माचार्य उसे पीड़ित करना चाहते हैं और उसके प्राण लेने पर उतारू हैं। इसके लिये उन लोगों ने फतवे भी तैयार किए हैं। मुझे दम भर भी चैन नहीं लेने देते। मैं जानता हूँ कि इस समय शेख अमुक स्थान (यहाँ बादशाह ने साफ इस जगह का नाम लिया) पर उपस्थित है। परंतु मैं जानकर भी अनजान बनता हूँ। किसी को कुछ और किसी को कुछ कहकर टाल देता हूँ। तुझे कुछ मालूम तो है ही नहीं। तू योंही उबला पड़ता है और सीमा से बढ़ा जाता है। कल प्रातःकाल आदमी भेजकर शेख को सेवा में उपस्थित करो। सब विद्वान् लोग एकत्र हों। यह सब समाचार सुनते ही बड़े भाई ने रातोरात प्रयाण करके अपने आपको हम लोगों के पास पहुँचाया।

हम लोगों नें फिर वही भेस बदला और किसी को खबर नहीं की। (आगरे को) चल खड़े हुए; लेकिन इतनी परेशानी थी जितनी नहूसत के दिनों और कभी नहीं हुई थी। यद्यपि यह

पता लग गया था कि लोग कहाँ तक हम लोगों के साथ हैं, कृपालु बादशाह से उन लोगों ने क्या क्या कहा है और उस सर्वज्ञ को कितनी खबर है, लेकिन फिर भी परेशानी ने पागल कर रखा था। सोचते थे कि ईश्वर जाने समय पर ऊँट किस करवट बैठे। पहले मृत्यु के मुख से बचने के लिये भागे जाते थे और अब उसके मुख की ओर भागे चले जा रहे थे। अँधेरी रात थी; ऊटपटाँग रास्ता चुपचाप सन्नाटे की दशा में चले जाते थे। इतने में सूर्य ने संसार को प्रकाशित किया। अब यह दशा हुई कि अंधेर मचानेवाले दुष्टों की भीड़ मिलने लगी। शहर का रास्ता था और दुष्ट जासूसों का जमावड़ा। संगी साथी या सहायक कोई नहीं। उतरने के लिये स्थान नहीं। स्पष्ट भाषण करनेवाली जबान ही लड़खड़ाई जाती है, तो फिर बेचारे नरसल की फटी हुई जबान क्या लिख सके। घबराए हुए पागलों की तरह एक उजाड़ खँडहर में घुस गए। नगर के कोलाहल और शत्रुओं की दृष्टि से बचकर कुछ निश्चिंत हुए। बादशाह की कृपा का समाचार ज्ञात ही हो चुका था। सबकी राय यह हुई कि घोड़ों का प्रबंध किया जाय और यहाँ से फतहपुर सीकरी चलें। वहाँ अमुक व्यक्ति से पुराना सच्चा संबंध है। उन्हीं के घर चलकर ठहरें। कदाचित् यह हो हल्ला कुछ थम जाय और बादशाह कृपा करें। फिर देख लेंगे।

भले आदमियों की तरह सब सामान करके रात के समय वहाँ से चल पड़े। वह (रास्ते ?) ईर्ष्या करनेवालों के विचारे।

से भी अधिक अँधेरे और बकवादियों की बातों से भी कहीं बढ़कर लंबे थे। चले जाते थे। मार्गदर्शक की मूर्खता और टेढ़े रास्तों से चलने के कारण भटकते भटकते सबेरा हो गया। अंत में उस अंधेरखाने में पहुँचे। वह नादान अपनी जगह से तो नहीं फिसला, लेकिन ऐसे डरावने ढकोसले सुनाए कि जिनका वर्णन नहीं हो सकता। कृपा के रंग में कहा कि अब समय बीत गया और बादशाह का मिजाज तुमसे नाराज हो, गया है। यदि कुछ पहले आ जाते तो तुम्हें कोई हानि न पहुँचती। कठिन काम सहज में बन जाता। पास ही एक गाँव है। जब तक बादशाह कृपा की ओर प्रवृत्त न हों, तब तक थोड़े दिन वहीं बिताओ। इतना कहकर गाड़ी पर बैठाया और रवाना कर दिया।

विपत्ति पर और भी विपत्ति आई। वहाँ पहुँचे तो जिस जमींदार की आशा पर भेजा था, वह घर में नहीं था। उस उजाड़ नगरी में जा उतरे। परंतु व्यर्थ। वहाँ के दारोगा को कोई कागज पढ़वाना था। उसने आकृति से बुद्धिमत्ता के लक्षण देखकर बुलवा भेजा। समय बहुत तंग था। हमने अस्वीकार कर दिया। थोड़ी ही देर में पता लगा कि यह गाँव तो एक कठोरहृदय बददिमाग का है। उन्होंने मूर्खता की जो हम लोगों को यहाँ भेजा। सहस्रों विकलताओं, दुःखों और चिंताओं के साथ वहाँ से प्राणों को निकाला। एक अनजान सा मार्गदर्शक साथ में था। भूलते भटकते

आगरे के पास एक गाँव में आकर उतरे। वहाँ एक घर में मित्रता की गंध आती थी। उस दिन के सब रास्ते लपेट सपेट-कर तीस कोस चले थे। वह भलामानस बहुत मुरव्वत से पेश आया। पर मालूम हुआ कि एक झगड़ालू जालिए की वहाँ जमीन है। वह कभी कभी इधर भी आ निकलता है। आधी रात का समय था कि वहाँ से भी दुःखित हृदयों को लेकर भागे। प्रातःकाल होते होते नगर में पहुँचे। एक मित्र के घर में सुख से रहने के लिये एक कोना पाया। निराशा का स्थान, विस्मृति का शयनागार, अयोग्यता का भूतनगर और नीचता का नगर था। जरा आराम से दम लिया। दम भर भी नहीं बीता था कि उस बेमुरव्वत तकलीफ पहुँचानेवाले और स्वार्थी ने यह सुर्री छोड़ी कि पड़ोस में ही एक दुष्ट और उपद्रवी रहता है। नई बला दिखाई देने लगी और विलक्षण विपत्ति ने अपना रूप दिखलाया। पैर दौड़ादौड़ से, सिर रातों की यात्रा से, कान घड़ियालों से और आँखें न सोने के कारण बहुत ही पीड़ित हो रही थीं। हृदय पर विलक्षण दुःख और दर्द छाया हुआ था। एक और रंज का पहाड़ छाती पर आ पड़ा। सब लोग सोच विचार में पड़ गए। मालिक मकान इधर उधर जगह ढूँढ़ता फिरता था। दो दिन बड़ी ही कशमकश में बीते। प्रत्येक श्वास यही कहता था कि मैं अंतिम श्वास हूँ।

तेजस्वी वृद्ध को एक सज्जन का ध्यान आया। मालिक मकान ने बहुत ढूँढ़ खोजकर उसके मकान का पता लगाया।

इतनी सी बात भी उस समय मानों हजारों सलामती के बाजे थे। उसी समय उसके निवासस्थान पर पहुँचे। उसकी प्रफुल्लता से चित्त प्रसन्न हो गया। आशाओं की कलियों पर सफलता की सुंदर वायु चलने लगी। हम लोगों की अवस्था में कुछ और ही प्रफुल्लता आ गई। यद्यपि वह शिष्य या मुरीद नहीं था, लेकिन फिर भी सज्जनता के कोष भरे हुए थे। वह अप्रसिद्ध होने पर भी नेकनामी से रहता था और कम संपन्न होने पर भी अमीरी से निर्वाह करता था। हाथ तंग रहने पर भी उसका दिल दरिया था। बुढ़ापे में जवानी का चेहरा चमकता था। उसके यहाँ रहने के लिये बहुत अच्छा एकांत स्थान मिला। उपाय होने लगे। फिर पत्र-व्यवहार आरंभ हुआ। इस सुखपुरी में दो महीने ठहरे। किसी किसी तरह अभीष्ट-सिद्धि का द्वार खुला। न्यायशील शुभचिंतक सहायता करने के लिये उठ खड़े हुए और प्रतापी महानुभाव साथ देने के लिये बैठ गए। पहले तो मेल मिलाप की मीठी मीठी बातों से, उपद्रवियों, धूर्तों और कुकर्मियों को परचाया और पत्थरों को मोम किया। फिर शेख के गुणों और सत्कर्मों आदि की बातें बड़ी सुंदरता के साथ श्रीमान् की सेवा में पहुँचाई। प्रतापी सिंहासनासीन ने दूरदर्शिता और गुणग्राहकता से उत्तर दिए जो प्रेम से परिपूर्ण थे। बड़प्पन और मनुष्यत्व के रास्ते बुला भेजा। मेरा तो उन दिनों सांसारिक संबंधों की ओर सिर ही नहीं झुकता था। तेजस्वी वृद्ध बड़े

भाई को अपने साथ लेकर दरबार में गए। अनेक प्रकार की कृपाओं से उनके पद और मर्यादा की वृद्धि हुई। यह देखते ही कृतघ्नों में सन्नाटा छा गया। भिड़ों का छत्ता चुपचाप हो गया। संसार में उठनेवाली भीषण लहरें थम गईं। अध्ययन का कार्य आरंभ हुआ। बादशाह के निवासस्थान के संबंध में नियम बने और सत्पुरुषों के कानून और नियम आदि प्रचलित हुए। अब्बुलफजल उस अवस्था में कहते हैं--

اے شب نہ کنی آں ہمہ پرخاش کہ دوش
راز دل چناں مکن فاش کہ دوش
دیدی چہ دراز بود دوشینہ شبم
ہاں اے شب وصل آں چناں باش کہ دوش

अर्थात्—हे रात, वैसा झगड़ा न कर, जैसा कल (रात को) किया था। मेरे हृदय का भेद उस प्रकार प्रकट मत कर जिस प्रकार कल किया था। तूने देखा कि मेरी कल की रात कितनी बड़ी थी। हे संयोग (मिलन) की रात, तू वैसी ही रह जैसी कल (रात को) थी।

देहली के महात्माओं के दर्शन की आकांक्षा ने तेजस्वी वृद्ध का पल्ला खींचा। मुझे और कुछ शिष्यों को साथ लेकर गए। जब से आगरे में आकर बैठे थे, तब से इस प्रेतपूर्ण निवासस्थान में आत्म और परमात्म-चिंतन पर इतना अधिक ध्यान जमा था कि सांसारिक बातों या पदार्थों आदि पर दृष्टि डालने की नौबत ही नहीं आती थी। एक दम से त्याग के चिंतन

ने मन का पल्ला पकड़ा और साहस का पल्ला फैलाया। वह इस सांसारिक संबंध के अतिरिक्त मेरे साथ भी संबद्ध था। मुझे कहा करते थे कि वंश की मर्यादा-रक्षा तेरे ही नाम रही। मुझसे रहस्य की गठरी खोली कि आज मुझे नमाज पढ़ने के आसन पर निद्रा आ गई। कुछ जागता था और कुछ सोता था। प्रभात के समय मुझे स्वप्न में ख्वाजा कुतुब-उद्दीन और शेख निजामउद्दीन औलिया दिखाई दिए। बहुत से महात्मा एकत्र हुए। वहीं महफिल सजी। अब क्षमा-प्रार्थना करने के लिये उन लोगों की मजारों पर चलना चाहिए। थोड़े दिनों तक उसी भूमि पर रहकर ईश्वर-चिंतन करें। स्वर्गीय पिताजी अपने पूज्य पूर्वजों की ही भाँति संयम आदि का बहुत अधिक ध्यान रखते थे। संगीत और राग आदि बिलकुल नहीं सुनते थे। सूफियों में साधारणतः ईश्वर-चर्चा के समय जो धार्मिक आवेश आदि आया करते थे, उन्हें ये बिलकुल पसंद नहीं करते थे। इस ढंग के लोगों को अच्छा नहीं समझते थे। स्वयं बहुत परहेज करते थे। मित्रों को भी बहुत रोकते थे और मना करते थे। उन महात्माओं ने उस रात को इस वृद्ध का मन लुभा लिया। (यह भी सब कुछ सुनने लगे।) बहुत से महात्मा (दिल्ली की) इस गुल-जार जमीन में पड़े सोते थे। उनकी कब्र पर गए। प्रकाशमान हृदय के परदे खुल गए और बहुत कुछ लाभ प्राप्त हुए। यदि इस विषय का विस्तृत वर्णन करूँ तो लोग कहानी समझेंगे

और भ्रम से अपराधी बनावेंगे। यहाँ तक कि मुझे भी ईश्वर के सान्निध्य में ले गए। दौलत का दरवाजा खोला। प्रतिष्ठा का पद बढ़ा। ईर्ष्या के मतवाले और ईर्ष्या के लूटे मारे हुए लोग देखकर पागल से हो गए। मुझे मन में कुछ दुःख हुआ और उनकी दशा पर दया आई। ईश्वर से प्रण किया कि इन अंधों के दुष्कर्मों का ध्यान हृदय से दूर कर दूँगा बल्कि इसके बदले में भलाई के सिवा और किसी बात का ध्यान नहीं करूँगा। ईश्वर की कृपा और सहायता से मैं अपने इस विचार पर दृढ़ रहा। मुझे विलक्षण प्रसन्नता हुई और सब लोगों को एक नई शक्ति प्राप्त हुई। पाठक इनके उच्च विचार देखें। अब मुल्ला साहब की भी दो दो बातें सुन लीजिए। वे इतने ऊँचे से इन्हें कितने नीचे फेकते हैं। वह कहते हैं—

"जिन दिनों मीर हब्श आदि शीया लोग पकड़े और मारे गए, उन दिनों शेख अब्दुल नबी सदर और मखदूम उल्मुल्क आदि सब विद्वानों ने एकमत और एकस्वर होकर निवेदन किया कि शेख मुबारक महदवी भी है और शीया भी। वह स्वयं मार्ग से च्युत है और दूसरों को भी च्युत करता है। वे लोग नाम मात्र के लिये बादशाह की आज्ञा लेकर शेख के पीछे पड़ गए और सोचने लगे कि इनके भी प्राण लेकर सारा झगड़ा दूर करें। मोहतसिब * को भेजा कि जाकर शेख को पकड़

* एक प्रकार का अधिकारी जो पुलिस के सुपरिंटेंडेंट के समान हुआ करता था। अपराधियों को पकड़ना उसका काम था।

लाओ और उपस्थित करो। शेख अपने लड़कों समेत कहीं छिप गया था। वह हाथ न आया; इसलिये उसकी मसजिद का मिंबर ही तोड़ डाला। शेख सलीम चिश्ती का प्रभाव और प्रताप उन दिनों बहुत उन्नति पर था। शेख मुबारक ने पहले उनसे निवेदन करके कृपा संपादित करना चाहा। शेख ने कई खलीफाओं के हाथ कुछ खर्च और सँदेसा भेजा कि इस समय यहाँ से तुम्हारा निकल जाना ही उचित है। गुजरात चले जाओ। उन्होंने निराश होकर मिरजा अजीज कोका से काम लेना चाहा। उसने इनके मुल्लापन और फकीरी की प्रशंसा की। लड़कों के गुणों और विद्या का भी निवेदन किया और कहा कि वह बहुत संतोषी आदमी है। हुजूर की इनाम में दी हुई कोई जमीन भी नहीं खाता। ऐसे फकीर को क्या सताना! इस प्रकार उनका छुटकारा हो गया। घर आए और उजड़ी हुई मसजिद को आबाद किया।"

शेख मुबारक का भाग्य तो नहूसत से निकाह किए हुए बैठा था। ६३ वर्ष की अवस्था में उनकी मुबारकी आई और उन्हें देखकर मुस्कराई। अर्थात् सन् ९७४ हि० में कविता की सिफारिश से फैजी दरबार में पहुँचे। सन् ९८१ हि० में अब्बुलफजल जाकर मीर मुनशी हो गए। जिस उमर में लोग सत्तरे बहत्तरे कहलाते हैं, उस उमर में शेख मुबारक जवानी की छाती उभारकर अपनी मसजिद में टहलने लगे।

' अब जरा सौभाग्य और दुर्भाग्य की कुश्ती देखिए कि जवान अक्लों ने प्रतिद्वंद्वियों की बुड्ढी तदबीरों को क्योंकर पछाड़ा। उधर तो अब्बुलफजल और फैजी की योग्यताएँ उन्हें हाथों हाथ आगे बढ़ा रही थीं। बुद्धि उन्हें ऐसे मार्ग दिखलाती थी कि केवल अकबर के हृदय पर ही नहीं बल्कि संसार के हृदय पर उनकी बुद्धिमत्ता की छाप बैठ रही थी। इधर मखदूम उल्मुल्क तथा शेख सदर से ऐसी बातें होने लगीं कि जिनसे आपसे आप हवा बिगड़ गई। अकबर की गुणग्राहकता के कारण ईरान और तूरान आदि से बहुत से विद्वान् आ आकर भारत में एकत्र होने लगे। चार ऐवान का प्रार्थनामंदिर विद्या का अखाड़ा था। वहाँ रात के समय विद्या संबंधी सभाएँ हुआ करती थीं। अकबर स्वयं भी आकर उनमें सम्मिलित हुआ करता था। विद्या संबंधी प्रश्न उपस्थित होते थे और तर्क की कसौटी पर कसे जाते थे। उन महात्माओं के द्वारा फैजी और अब्बुलफजल के पिता ने उमर भर जो जो कष्ट सहे थे और उन्होंने बाल्यावस्था में अपनी आँखों देखे थे, वे उन्हें भूले नहीं थे। इसलिये वे सदा घात में लगे रहते थे। वे अपने प्रतिद्वंद्वियों को पराजित करने के लिये प्रत्येक प्रश्न पर दार्शनिक तर्क करते थे और बुद्धि लड़ाते थे। बुड्ढों की बुड्ढी बुद्धि और बुड्ढी सभ्यता को जवानों की जवान बुद्धि और जवान सभ्यता दबाए लेती थी। और प्रतापहानि बुड्ढों का हाथ पकड़कर उन्हें ऐसे रास्तों पर ले जाती थी जिन पर वे आप ही गिरे गिर पड़ते थे।

चाहे इसे शेख मुबारक की दूरदर्शिता समझिए और चाहे उनके साहस का महत्व समझिए कि यद्यपि उनके पुत्रों ने बहुत उच्चपद तथा वैभव और प्रताप संपादित किया था, पर स्वयं उन्होंने अपने ऊपर दरबार की कोई सेवा नहीं ली थी। परंतु वे अक्ल के पुतले थे। कभी कभी परामर्श आदि देने के लिये और कभी कभी किसी प्रश्न की मीमांसा के लिये जाया करते थे। अकबर को स्वयं भी विद्या संबंधी वाद विवाद सुनने का बहुत चाव रहता था; इसलिये वे कोई न कोई ऐसी सूरत पैदा कर लेते थे कि जहाँ अकबर होता था, वहां वह शेख मुबारक को बुला भेजा करता था। शेख मुबारक बातचीत करने में बहुत अच्छे थे और सब प्रकार से बादशाहों के साथ रहने के योग्य थे। उनकी रंगीन तबीयत दरबार में सुंदर और सुगंधित फूल बरसाया करती थी। बादशाह भी उनकी बातें सुन सुनकर प्रसन्न होता था। जब बादशाह कोई भारी विजय प्राप्त करता था अथवा उसके यहाँ कोई विवाह होता था अथवा ईद पड़ती थी, तो शेख मुबारक भी मुबारकबाद देने के लिये अवश्य जाया करते थे और रसम अदा करके चले आया करते थे।

जब सन् ९८१ हि० में अकबर गुजरात पर विजय प्राप्त करके आया, तब प्राचीन प्रथा के अनुसार बड़े बड़े रईस, शेख और विद्वान् आदि बधाई देने के लिये सेवा में उपस्थित हुए। शेख मुबारक भी आए। उन्होंने चोज की जबानवाली कैंची से यह फूल कतरे—"सब लोग हुजूर को मुबारकबाद देने के

लिये आए हैं। परंतु अदृश्य लोक से मेरे मन पर यह मजमून टपक रहा है कि हुजूर को चाहिए कि हम लोगों को मुबारक-बाद दें, क्योंकि परमात्मा ने हम लोगों को दोबारा महान् सौभाग्य प्रदान किया है। यदि श्रीमान् ने एक मुल्क मारा तो क्या बड़ी बात है?" यद्यपि यह बुढ़ापे का एक नखरा ही था, लेकिन फिर भी अकबर को उनका ढंग बहुत पसंद आया। उसने बहुत प्रतिष्ठा के साथ उन्हें विदा किया। वह प्रायः शेख की यह बात याद किया करता था।

नकीबखाँ एकांत में ऐतिहासिक तथा विद्या संबंधी ग्रंथ पढ़कर सुनाया करते थे। प्रायः हैवत उल् हैवान नामक ग्रंथ भी पढ़ा जाता था। वह अरबी भाषा में था, इसलिये उसका अर्थ समझाना पड़ता था। इसलिये अब्बुलफजल को आज्ञा दी और शेख मुबारक ने फारसी भाषा में उसका अनुवाद किया, जो अब तक मौजूद है।

अकबर को विद्या संबंधी बातों की जाँच करने का बहुत शौक था। और इसके लिये अरबी भाषा का ज्ञान होना आवश्यक था। विचार हुआ कि अरबी भाषा का ज्ञान प्राप्त किया जाय। लड़कों ने कहा होगा कि हमारे शेख को पढ़ाने का जो ढंग आता है, वह मसजिद के मुल्लाओं में से किसी को नसीब नहीं है। बातों बातों में किताबें दिल में उतार देते हैं। शेख मुबारक बुलाए गए। फैजी उन्हें साथ लेकर उपस्थित हुए। सर्फ हवाई की पढ़ाई आरंभ हुई। इन

बैठकों में से एक में फैजी ने यह भी निवेदन किया कि हमारे शेखजी तकल्लुफ करना बिलकुल नहीं जानते *। अकबर ने कहा कि मैंने तुम लोगों पर सब तकल्लुफ छोड़ दिए हैं। (अर्थात् तुम लोगों को मेरे सामने किसी प्रकार का तकल्लुफ करने की आवश्यकता नहीं है।) थोड़े दिनों के बाद संबंध बहुत बढ़ जाने से वह शौक जाता रहा और अब शेख का आना वही विशिष्ट अवसरों पर रह गया। कभी कभी आते थे और दर्शन, इतिहास तथा कथाओं आदि से—तात्पर्य यह कि अपनी अच्छी बातचीत से—बादशाह को प्रसन्न कर जाते थे।

शेख को संगीत शास्त्र का भी बहुत अच्छा ज्ञान था। एक बार बादशाह से इस विषय में बातचीत आई। बादशाह ने कहा कि इस विषय की जो कुछ सामग्री और साधन हमने एकत्र किए हैं, वे सब हम तुमको दिखलावेंगे। इसके अनुसार शेख मंजू और तानसेन आदि कई कलावंतों को बुला भेजा कि शेख के घर जाकर अपना संगीत संबंधी पांडित्य और कौशल दिखलावें। शेख ने सबके गाने सुने और तान-

* इससे यह अभिप्राय होगा कि बादशाह के आदर सम्मान आदि के संबंध में दरबार से जो नियम आदि निश्चित हो चुके थे, उनका पालन शेख को न करना पड़े। यदि वे उनका पालन न करते तो बादशाह को बुरा लगता। इसी से यह बात कह दी गई कि शेख अपने मित्रों में बैठकर जिस प्रकार बातें करते हैं, उसी प्रकार बादशाह के सामने भी बातें किया करें।

सेन से कहा कि हमने सुना है कि तुम भी कुछ गाते हो। अंत में सबको सुनकर कहा कि पशुओं की तरह कुछ भायँ भायँ करता है। शेख के प्रतिद्वंद्वियों का चलता हुआ हथियार यही था कि शरअ के बल फतवों की फौज से सबको दबा लिया करते थे; और जिसे चाहते थे, उसे काफिर बनाकर उसकी अप्रतिष्ठा और मिट्टी खराब किया करते थे। राज्यक्रांति और विद्रोह का भय दिखलाकर अपने समय के बादशाह को डराया और दबाया करते थे। इस्लाम धर्म की आज्ञाओं को प्रत्येक मुसलमान अपने सिर आँखों पर ग्रहण करता है; परंतु कुछ अवसरों पर यह बल भी असह्य हो जाता है। विशेषतः बादशाह और उसकी राजनीति कठिन अवसरों पर किसी प्रकार का बंधन सहन नहीं कर सकती। अकबर मन ही मन दुःखी होता था, परंतु फिर भी जैसे तैसे इन्हीं लोगों के साथ निर्वाह करता था। उसकी समझ में नहीं आता था कि क्या करना चाहिए। जिन दिनों शेख सदर ने मथुरा के एक ब्राह्मण को मंदिर और मसजिद के मुकदमे में कतल कराया, उन्हीं दिनों एक बार किसी अवसर पर बधाई देने के लिये शेख मुबारक भी बादशाह की सेवा में उपस्थित हुए थे। उनसे भी अकबर ने कुछ समस्याओं की चर्चा की; और इन लोगों के कारण जो जो कठिनाइयाँ उपस्थित होती थीं, उनका वर्णन किया। शेख मुबारक ने कहा—न्यायशील बादशाह स्वयं ही धार्मिक विषयों में सब प्रकार का अधिकार रखता है। जिन

विषयों में किसी प्रकार का मतभेद हो, उनके संबंध में श्रीमान् जो कुछ उचित समझें, वह आज्ञा दे सकते हैं। इन लोगों की यों ही इतनी प्रसिद्धि हो गई है और इन्होंने हवा बाँध रखी है। अंदर कुछ भी नहीं है। आपको इन लोगों से पूछने की आवश्यकता ही क्या है? अकबर ने कहा कि आप मेरे शिक्षक हैं और मैंने आपसे विद्याध्ययन किया है। आप ही क्यों नहीं मुझे इन मुल्लाओं की खुशामद से छुटकारा दिलाते? अंत में सब बातों के ऊँच नीच का विचार करके यह राय ठहरी कि आयतों और दंतकथाओं आदि के आधार पर इस आशय का एक लेख प्रस्तुत किया जाय कि जब किसी विषय में धार्मिक आचार्यों में कोई मतभेद उपस्थित हो, तब न्यायशील बादशाह को उचित है कि वह जिस पक्ष का कथन यथार्थ समझे, उसी को ग्रहण करे। विद्वानों तथा धार्मिक आचार्यों की सम्मति पर उसकी सम्मति को प्रधानता दी जा सकती है। स्वयं शेख मुबारक ने ही इस लेख का मसौदा तैयार किया था। यद्यपि मुख्य अभिप्राय उन्हीं थोड़े से लोगों से था जो साम्राज्य के कार्यों और आज्ञाओं आदि में बाधक हुआ करते थे, लेकिन फिर भी वे सभी बड़े बड़े विद्वान, मुल्ला, काजी और मुफ्ती आदि, जिनके फतवों का सर्वसाधारण पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता था, उस लेख पर मोहर करने के लिये बुलाए गए थे। जरा संसार के परिवर्तन को देखिए। आज शेख मुबारक सभापति के आसन पर बैठे थे। उनके

प्रतिद्वंद्वी बुलाए गए थे और आकर साधारण लोगों की पंक्ति में बैठ गए थे। वे लोग विवश होकर मोहरें करके चले गए।

फाजिल बदाऊनी ने यह भी लिखा है कि यद्यपि उक्त विद्वानों में से किसी को यह बात सह्य नहीं थी, लेकिन फिर भी वे दरबार में बुलाए गए थे और बुरी तरह से लाए गए थे। उन्हें निवश होकर हस्ताक्षर करने पड़े। उन्हें साधारण लोगों में लाकर बैठा दिया गया। किसी ने उठकर उनका सत्कार भी न किया। शेख मुबारक ने, जो अपने समय का सबसे बड़ा विद्वान् था, उस पर प्रसन्नता से हस्ताक्षर कर दिए और अपनी ओर से इतना और लिख दिया कि मैं यह बात अपने हृदय और प्राणपण से चाहता था और वर्षों से इसकी प्रतीक्षा में था। इसके उपरांत शेख सदर और मखदूम उल्मुल्क की जो दशा हुई, उसका पता उनके विवरणों से लगेगा। उसे देखिए और ईश्वर से रक्षा की प्रार्थना कीजिए।

विद्वानों का उल्लेख करते हुए मुल्ला साहब कहते हैं कि शेख मुबारक अपने समय के बहुत बड़े विद्वानों में से थे। उनकी बातें बहुत ही विलक्षण हैं। आरंभ में उन्होंने बहुत कुछ तपस्या और साधना की थी। त्याग और वैराग्य आदि में इतना अधिक प्रयत्न किया था कि यदि उनकी उपदेशवाली मजलिस में कोई आदमी सोने की अँगूठी, अतलस, लाल मोजे या लाल पीले कपड़े पहनकर आता था तो उसी समय उतरवा देते थे। इजार एड़ियों से कुछ नीचे होती तो उतनी

फड़वा डालते थे। रास्ते में चलते समय यदि कहीं संगीत की ध्वनि सुनाई पड़ती थी तो जल्दी जल्दी बढ़कर आगे निकल जाते थे। परंतु अंतिम अवस्था में संगीत के प्रति इतना अधिक अनुराग हो गया था कि क्षण भर भी राग और संगीत के बिना चैन नहीं मिलता था। तात्पर्य यह कि वे अनेक मार्गों में चलनेवाले थे और अनेक प्रकार के रंग बदला करते थे। अफगानों के शासन-काल में वे शेख अलाई के साथ रहा करते थे। अकबर के आरंभिक शासन-काल में जब नक्शबंदी संप्रदाय का जोर था, तब उस शृंखला से भी लड़ी मिला दी थी। कुछ दिनों के लिये हमदानियों में भी सम्मिलित हो गए थे। जब अंतिम दिनों में दरबार पर ईरानी छा गए थे, तब उन्हीं के रंग में बातें करते थे। इसी तरह समझ लीजिए कि "जैसी बहे बयार पीठ तब तैसी दीजे" के अनुसार काम करते थे। इतना सब कुछ होने पर भी बड़े अध्ययनशील थे और सभी विषयों के पूर्ण पंडित थे। भारतीय विद्वानों के विपरीत सूफियों का तसौवफ या छायावाद खूब समझते और कहते थे। सस्वर कुरान पढ़ने की अनेक प्रणालियाँ जबान की नोक पर थीं। इसकी ऐसी अच्छी शिक्षा देते थे कि जैसी चाहिए। कुरान का दस प्रकार से सस्वर पाठ करना याद किया था। बादशाहों के दरबार में कभी नहीं गए थे, लेकिन फिर भी उनकी संगति में सभी लोगों को बहुत अधिक आनंद आता था। कहानियाँ, चुटकुले और मनोरंजक

घटनाओं के वर्णन से संगति और अध्ययन को गुलज़ार कर देते थे। मित्रों का उनका जलसा छोड़ने को और शिष्यों का पाठ छोड़ने को जी नहीं चाहता था। अंतिम अवस्था में आँखों से लाचार हो गए थे और अध्ययन अध्यापन भी छोड़ दिया था; पर ईश्वर के अस्तित्व और एकता का प्रतिपादन करनेवाले ग्रंथों की रचना का क्रम बराबर चला चलता था। उसी अवस्था में एक टीका (कुरान की) आरंभ की जो चार बड़े बड़े खंडों में पूरी हुई। उसे इमाम फखरुद्दीन राजी की टीका की टक्कर का समझना चाहिए। उसमें अनेक प्रकार के विषयों का उल्लेख था। उसका नाम मुम्बः नफायस उल् उलूम (विद्या संबंधी उत्तमोत्तम बातों का संग्रह) रखा। और विलक्षण बात यह है कि उसकी भूमिका में ऐसे विषयों का समावेश किया है कि उनसे नवीन शताब्दी के धर्म्मसंशोधक और सुधारक होने की गंध आती है। जिन दिनों में उक्त टीका समाप्त की थी, उन दिनों इब्न फारिज का कसीदा ताइया, जो सात सौ शेरों का है, और दूसरे कई कसीदे उसी प्रकार जबानी कहते थे जिस प्रकार पाठ किया जाता है। ता० १७ जीकग्रद सन् १००० हि० को इस संसार से प्रयाण कर गए। उनका मामला ईश्वर ही जाने, परंतु इतने अधिक विषय जाननेवाला कोई मुल्ला आज तक दिखलाई नहीं दिया। परंतु दुःख है कि सांसारिक विषयों में राग और ठाठ बाट की नहूसत से फकीरी के वेष में भी दीन इस्लाम के साथ कहीं मिलाप न रखा। आगरे

में युवावस्था के आरंभ में मैंने (मुल्ला साहब ने) कई वर्ष तक उनकी सेवा में रहकर अध्ययन किया था। परंतु कुछ तो सांसारिक विषयों के कारण, कुछ धर्मभ्रष्टता के कारण और कुछ इस कारण कि वे माल, दौलत, जमानेसाजी, छल कपट में डूब गए थे और उनके धार्मिक विचार तथा सिद्धांत बदल गए थे, मेरा उनका जो पहला संबंध था, वह बिलकुल न रह गया था। कुरान में कहा है कि तुम और हम ठीक मार्ग पर हैं या भटके हुए हैं, यह कौन जानता है। कुछ लोग यह भी कहा करते थे कि उनका एक पुत्र अपने पिता पर लानत किया करता था। धीरे धीरे और भी पैर बढ़ाए आदि आदि। मुल्ला साहब ने जो कुछ लिखा है, वह सब मैंने लिखना उचित नहीं समझा। लेकिन मुल्ला साहब की उद्धतता तो देखिए। भला कोई पुत्र अपने माता या पिता से कह सकता है कि जाओ, हमारा तुम्हारा कोई संबंध नहीं रहा? और क्या उसके कहने से ही माता पिता के सारे अधिकार उड़ जायँगे? कदापि नहीं। और जब यह बात नहीं हो सकती, तब गुरु या शिक्षक के अधिकार कैसे मिट सकते हैं? अच्छा आपने उनकी शिक्षा से जो कुछ योग्यता, गुण और समझ आदि प्राप्त की थी, उन सबकी एक पोटली बाँधकर उनके हवाले कर दीजिए और आप जैसे पहले दिन घर से उनके पास पहुँचे थे, वैसे ही कोरे हो जाइए तो फिर हम भी कह देंगे कि आपका उनके साथ कोई संबंध नहीं रह गया। और जब

यह बात नहीं हो सकती, तब आपके दो शब्द कह देने से कैसे छुटकारा हो सकता है ?

शेख मुबारक और उनके पुत्रों ने क्या अपराध किया था ? बरसों उन्होंने लिखाया पढ़ाया और ऐसा विद्वान् बनाया कि अपने समय के अच्छे अच्छे विद्वानों से मुकाबले की बातें करने लगे और सबकी गरदनें दबाने लगे उस अवस्था में भी जब कोई आपत्ति आई तो अपनी छाती की ढाल बनाकर सहायता के लिये उपस्थित हो गए। इस पर मुल्ला साहब का यह हाल है कि जहाँ नाम याद आता है, वहाँ इन पर एक न एक अपराध लगा जाते हैं। विद्वानों के विवरणवाले इतिहास में शिकायत करते करते कहते हैं कि शेख मुबारक ने बादशाही एकांत में बीरबल से कहा था कि तुम्हारे यहाँ के ग्रंथों में जिस प्रकार प्रक्षिप्त और परिवर्तित अंश हैं, उसी प्रकार हमारे यहाँ के ग्रंथों में भी हैं और वे विश्वसनीय नहीं हैं। यदि सच पूछिए तो उन बेचारे ने क्या झूठ कहा था ! लेकिन उनका भाग्य है। और लोगों की बातें इनसे हजार मन संगीन और भारी होती हैं। उन्हें लोग उनकी मूर्खता या परिहास में डालकर टाल देते हैं। इनके मुँह से बात निकली और कुफ्र !

अब्बुलफजल स्वयं लिखते हैं कि अकबर का लश्कर लाहौर में आया हुआ था और राजकीय उद्देश्य से उसे कुछ समय तक वहीं ठहरना पड़ा था। पूज्य पिताजी के वियोग के कारण

बादशाह का चित्त विकल था। सन् ९९५ हि० और राज्यारोहण का ३२ वाँ वर्ष था। मैंने पिताजी से प्रार्थना की कि आप यहीं पधारिए। उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकृत कर ली। ता० ६ रजब को यहाँ पधारे। यहाँ ईश्वर-चिंतन में अपना आनंद बढ़ाते थे। अब सब काम छोड़ दिए थे। हाल का रोजनामचा लिखाकर आत्म-उन्नति में समय बिताते थे। लौकिक या अपरा विद्या की ओर प्रवृत्ति कम थी। प्रायः परमात्मा संबंधी वार्तालाप ही किया करते थे और सांसारिक घटनाओं से शिक्षा ग्रहण करते थे। स्वतंत्रता की नदी के तट पर बैठे रहते थे। निर्द्वंद्वता का पल्ला पकड़े हुए थे। शारीरिक पीड़ा के कारण प्रकृति में परिवर्तन हुआ*। ऐसी बीमारी प्रायः होती थी। अचानक यह पता लगा कि अबकी महायात्रा है। मुझ बेहवास को बुलाया। जबान से मेरा होश ठिकाने लानेवाली बातें निकलीं। बिदाई के लक्षण प्रकट होने लगे। सदा परदे में बातें होती थीं। मेरे जिस दिल के बहुत साहसी होने का भरोसा था, उसकी यह दशा हुई कि जिगर के खून के घोंट गले से उतरने लगे। मैं बहुत विकल हुआ, पर बड़ी कठिनता से किसी प्रकार अपने आपको सँभाला। धार्मिक क्षेत्र के उसी नेता ने आत्मिक बल लगाया, तब कहीं जाकर मेरा मन कुछ ठहरा। सात दिन बाद १७ जीकाद सन् १००१ हि०

---

* देखो आईन अकबरी का अंतिम अंश। अकबरनामे में लिखते हैं कि गरदन में फोड़ा निकला था। ग्यारह दिन में मृत्यु हो गई।

को पूर्ण सज्ञानता की अवस्था में और परमात्मा का चिंतन करते हुए टहलते टहलते परलोक को चले गए। देश को पहचानने-वाला सूरज छिप गया। परमात्मा को पहचाननेवाली आँख जाती रही। बुद्धिमत्ता की कमर झुक गई। समझ का अंतिम समय आ गया। बृहस्पति ने सिर से चादर फेंक दी और बुध ने कलम तोड़ डाली। मुल्ला साहब ने शेख कामिल तारीख कही और शेख फैजी ने फख्र उलकुमल तारीख कही। लाहौर में ही वे दफन किए गए।

मुल्ला साहब इस घटना के संबंध में एक और बात बत-लाते हैं। वे लिखते हैं कि इसी वर्ष १७ जीकअद को बुद्धिमान् शेख मुबारक इस संसार से प्रयाण कर गए। पुत्रों ने उनके शोक में सिर और भौंहें मुँड़वाकर दाढ़ी और मोंछ से जा मिलाया। इसकी तारीख शरीयत जदीद (नवीन शरीअत) हुई।

स्वयं शेख अब्बुलफजल अकबरनामे में सन् १००२ हि० में लिखते हैं कि बादशाह लाहौर में आए हुए थे। इस घट-नावली का लेखक (सेवक अब्बुलफजल) फजलआबाद में गया। पूज्य पिताजी और माताजी के शयनागार में गया। उनका पहले से ही आदेश था; इसलिये उन दोनों स्वर्गवासियों के शव आगरे भेज दिए। वहाँ उन्होंने अपने पुराने ठिकाने में आराम किया।

शेख मुबारक ने आठ पुत्र छोड़े थे। अब्बुलफजल ने अकबरनामे की समाप्ति पर लिखा है कि मुझ पर परमात्मा

के ३२ अनुग्रह थे। उनमें से चौबीसवाँ अनुग्रह यह बतलाया है कि भाई बुद्धिमान्, सुशील, मन के मुताबिक चलनेवाले और सत्कर्म करनेवाले प्रदान किए हैं। देखिए, एक एक को किस साँचे में ढालते हैं।

(१) बड़े भाई का क्या हाल लिखूँ। यद्यपि उनमें भीतरी और बाहरी इतने अधिक गुण और पूर्णताएँ थीं, लेकिन फिर भी मेरी खुशी के बिना आगे बढ़कर एक कदम भी नहीं उठाते थे। अपने आपको मेरी मरजी पर छोड़ देते थे और सदा मेरे मन के अनुसार काम करने में दृढ़ रहते थे। अपनी रचनाओं में मेरे संबंध में ऐसी ऐसी बातें कही हैं जिनके लिये धन्यवाद देना मेरी शक्ति के बाहर है। एक कसीदे में अभिमानपूर्वक कहा है कि यद्यपि मैं अपने भाई अब्बुलफजल से अवस्था में दो तीन वर्ष बड़ा हूँ, परंतु गुण और पूर्णता की दृष्टि से मुझमें और उसमें सौ वर्षों का अंतर है। वह आकाश से भी अधिक उच्च है और मैं मिट्टी से भी कम हूँ; आदि आदि।

इनका (भाई फैज़ी का) जन्म सन् ९५४ हि० में हुआ था। इनकी प्रशंसा मैं किस जबान से करूँ! इसी पुस्तक में कुछ लिखकर दिल की भड़ास निकाली है। आग की भट्ठी को वर्णन के जल से बुझाया है। बाढ़ का बाँध तोड़ा है और बेसबरी के मैदान का मर्द बना हूँ। इनकी रचनाएँ वक्तृत्व और बुद्धिमत्ता के तराजू और गानेवाले सुरीले पक्षियों का निवासस्थान हैं। वही उसकी प्रशंसा कर लेंगी। वही उसकी

पूर्णता की सूचना देंगे और उसके स्वभाव तथा आदतों का स्मरण करावेंगे।

(२) शेख अब्बुलफजल ने अपना चित्र जिस रंग में निकाला है, वह उन्हीं के विवरण में दिखलाऊँगा। इस महराब में वह न सजेगा।

(३) शेख अब्बुलबरकात का जन्म १७ शव्वाल सन् ६६० हि० को हुआ था। इन्होंने यद्यपि विद्या और ज्ञान का बहुत श्रेष्ठ समूह नहीं एकत्र किया, लेकिन फिर भी बहुत बड़ा अंश प्राप्त किया। समस्याओं को समझने, तलवार चलाने और काम निकालने में सबमें अग्रगण्य समझे जाते हैं। सुशीलता, फकीरों की सेवा और सब लोगों का मंगल करने में सबसे आगे बढ़े हुए हैं।

(४) शेख अब्बुलखैर का जन्म २ जमादी उल् अव्वल सन् ६६८ हि० को हुआ था। स्वभाव की उत्तमता और सज्जनता का गुण इनकी सबसे बड़ी विशेषता है। जमाने के मिजाज को खूब पहचानते हैं। जबान को भी उसी प्रकार वश में रखते हैं जिस प्रकार और अंगों को (अर्थात् बहुत कम बोलते हैं)। शेख अब्बुलफजल के रुक्कआत (रुक्कों या पत्रों के संग्रह) से मालूम होता है कि इन सब भाइयों में इनके साथ विशेष प्रेम था। इनकी सरकार के सब कागज इसी भाई के हवाले रहते थे। पुस्तकालय भी इन्हीं के सपुर्द था। प्राय: मित्रों के पत्रों में फरमाइशों और जरूरी कामों में शेख अब्बुलखैर का ही हवाला देते हैं।

(५) शेख अब्दुलमकारम सोमवार की रात को २२ शव्वाल सन् ९७६ हि० को हुए थे। ये कभी कभी कुछ पागल से हो जाया करते थे। पूज्य पिताजी आत्मिक बल से पकड़कर इन्हें ठीक मार्ग पर लाते थे। अनेक धर्मग्रंथ उन्हीं बुद्धिमान् (पिताजी) से पढ़े। प्राचीन काल के बड़े बड़े लोगों के विवरण कुछ कुछ मीर फतहउल्ला शीराजी की शिष्यता में पढ़े। इनके दिल में रास्ता है। आशा है कि ये अपना उद्देश्य सिद्ध करके सफलमनोरथ होंगे।

(६) शेख अबूतुराब का जन्म २२ जिलहिज्जः सन् ९८८ हि० को हुआ था। इसकी माँ और हैं। पर यह सौभाग्य की खुरजियाँ भरकर लाया है और गुणों के संपादन में निरत है।

(७) शेख अबूहामिद २ रबिउल्आखिर सन् १००२ हि० को और

(८) शेख अबूराशिद पीर इसी सन् में जमादिउल्-अव्वल शुक्ल द्वितीया को उत्पन्न हुआ था। ये दोनों लौंडो के पेट से हैं, लेकिन फिर भी इनकी आकृति से असालत के लक्षण चमकते हैं। पूज्य पिताजी ने इनके जन्म की सूचना पहले से ही दे दी थी और इनके नाम भी रख दिए थे। इनके जन्म लेने से पहले ही सफर का असबाब बाँधा। ईश्वर से आशा है कि इनकी बरकत से सौभाग्य के साथ संपत्ति भी आसीन हो जिसमें अनेक प्रकार की भलाइयाँ एकत्र हों। बड़े भाई (फैजी) ने तो अस्तित्व का असबाब बाँधा (इस संसार

से प्रयाण किया) और सारे संसार को दुःखसागर में डाल दिया। आशा है कि फूले फले हुए नवयुवकों को प्रसन्नता, सफलता और सुशीलता प्राप्त हो और उनका आयु दीर्घ हो। और पारलौकिक, धार्मिक तथा सांसारिक नेकियों से इनका सिर ऊँचा हो।

भिन्न भिन्न इतिहासों से स्थान स्थान पर जो कुछ पता चला है, उससे मालूम होता है कि इनकी चार पुत्रियाँ भी थीं। इनमें से एक अफीफा के वर्णन में मुल्ला साहब सन् ९९८ हि० में लिखते हैं कि उन दिनों खुदावंदखाँ दक्खिनी शीया, जिसके साथ शेख अब्दुलफजल की इस बहन का विवाह हुआ था, गुजरात के करी नामक कस्बे में रहता था जहाँ उसे जागीर मिली हुई थी। वहीं से वह नरक के ठिकाने पहुँचा। दूसरी बहन का विवाह मीर हसामुद्दीन के साथ हुआ था। ये गाजीखाँ बदखशी के पुत्र थे। पिता के उपरांत इन्हें हजारी मंसब प्राप्त हुआ और ये दक्खिन भेज दिए गए। खान-खानाँ का दरबार प्राकृतिक सागर था। दुनिया मोती रोलती थी। इनके साथ तो दो पीढ़ियों की मित्रता थी। ये भी गोते लगाने लगे। परंतु ठीक युवावस्था के मध्य में ईश्वरीय प्रेम का आवेश हुआ। इन्होंने खानखानाँ से कहा कि संसार को परित्याग करने का विचार मेरे मन में छा गया है। यदि मैं प्रार्थना करूँगा तो वह स्वीकृत न होगी। मैं पागल हो जाता हूँ। आप हुजूर की सेवा में लिखकर मुझे दिल्ली भेज दीजिए। आयु का जो अंश शेष है, वह मैं शेखों के सम्राट् के

मजार पर बैठकर बिता दूँ। खानखानाँ ने बहुत कुछ समझा बुझाकर रोका और कहा कि तुम्हारा यह पागलपन हजार होशियारी से कहीं अच्छा है। लेकिन फिर भी अभी यह विचार स्थगित रखना चाहिए। लेकिन इन्होंने नहीं माना। दूसरे ही दिन कपड़े फाड़कर फेंक दिए शरीर में कीचड़ और मिट्टी मल ली और गली कूचों में फिरने ल ।। बादशाह के पास निवेदनपत्र भेजा गया। वहाँ से इन्हें दिल्ली जाने की छुट्टी मिल गई। तीन वर्ष बहुत ही त्याग और संयम से वहीं बिता दिए। यद्यपि विद्या से इनका य ष्ट परिचय था तथापि इन्होंने विस्मृति के जल से सबको धो दिया, और कुरान के पाठ और ईश्वर-भजन में प्रवृत्त हो गए। शाह बाकी बइल्ला, जिनकी मातृभूमि समरकंद में थी और जिनका जन्म काबुल में हुआ था और जिनका मजार अब भी कदम शरीफ के रास्ते को आबाद करता है, उन दिनों जीवित थे। उनसे इन्होंने धार्मिक ज्ञान प्राप्त किया। सन १०४३ हि० में इनका देहांत हुआ। सच्चरित्रा स्त्री ने पति के संकेत से अपने समस्त आभूषण और धन संपत्ति दीन दुखियों को बाँटकर सांसारिक मल से अपना पल्ला छुड़ाकर पवित्र किया था। जब तक जीती रही, प्रति वर्ष बारह हजार रुपए खानकाह के व्यय के लिये भेजती रही। तीसरी खानदेश के हाकिम के पुत्र राजा अलीखाँ के साथ ब्याही थी। उसका पुत्र सफदरखाँ राज्यारोहण के पैंतालीसवें वर्ष हजारी मंसबदार हुआ।

चौथी लाडली बेगम थी। इसका विवाह एतकादउद्दौला इस्लामखाँ शेख अलाउद्दीन चिश्ती से हुआ था। ये शेख सलीम चिश्ती के पोते थे। अपनी सुशीलता और सद्गुणों के कारण ये अपने वंश में धन्य हुए थे। जब जहाँगीर सिंहासन पर बैठा, तब उसने इन्हें इस्लामखाँ की उपाधि, पंजहजारी मंसब और बिहार का सूबा प्रदान किया; क्योंकि कोकलताश का रिश्ता मिला हुआ था। राज्यारोहण के तीसरे सन् में बंगाल का सूबा भी प्रदत्त हुआ। यद्यपि अकबर के शासन-काल में इस प्रदेश में लाखों आदमियों के रक्त बहे थे, लेकिन फिर भी किनारों पर पठानों की खुरचन लगी पड़ी थी। उनमें कतलू लोहानी का पुत्र उस्मानखाँ भी था। अब तक उसकी जड़ नहीं उखड़ी थी। शेख ने भीषण युद्धों के द्वारा उसका नाश किया। इसी कारण राज्यारोहण के छठे वर्ष छः हजारी मंसब की प्रतिष्ठा प्राप्त की। सन् १०२२ हि० में इनका शरीरांत हुआ। फतहपुर सीकरी में, जहाँ इनके और सब पूर्वज गाड़े गए थे, ये भी गाड़े गए।

इनकी उदारता और दानशीलता के विवरण देखकर बुद्धि चकराती है। इनके निज के दस्तरख्वान के अतिरिक्त भोजन की एक हजार थालियाँ पार्श्ववर्तियों और सेवकों के लिये हुआ करती थीं। थालों में बहुमूल्य आभूषण और वस्त्र आदि लिए हुए सेवक सदा सामने खड़े रहते थे। जिसका भाग्य प्रबल होता था, उसे पुरस्कार में दे देते थे। जिस प्रकार बादशाहों के

झरोखा-दर्शन, दीवान आम, दीवान खास आदि महल होते हैं, उसी प्रकार इन्होंने अपने यहाँ भी सजाए थे। हाथी भी उसी तरह लड़ाते थे। यद्यपि ये बहुत संयमी और आचार-निष्ठ थे और किसी प्रकार के मादक द्रव्य अथवा और वर्जित पदार्थ का व्यवहार नहीं करते थे, तथापि सारे बंगाल की कंच-नियाँ नौकर थीं। हर महीने नौ लाख साठ हजार रुपए वार्षिक केवल इनके यहाँ तनख्वाह की रकम थी। इतना सब कुछ होने पर भी अपने पहनने के वस्त्रों में कोई तकल्लुफ नहीं करते थे। पगड़ी के नीचे मोटे कपड़े की टोपी और कबा के नीचे वैसे ही कपड़े का कुरता पहने रहते थे। इनके दस्तरख्वान पर पहले मक्के और बाजरे की रोटी, साग की भुजिया और साठी चावलों का पका हुआ भात आता था। लेकिन साहस और उदारता में हातिम को भी मात करते थे। जब बंगाल में थे तो बारह सौ हाथी अपने मंसब-दारों और सेवकों को दिए हुए थे। दो हजार सवार और प्यादे शेखजादों में से नौकर थे। इन्हें लाडली बेगम के गर्भ से इकरामखाँ होशंग नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ था। पहले इसकी नियुक्ति दक्खिन में हुई थी। फिर असीर का ताल्लुका मिल गया था। शेरखाँ ननवर की कन्या इससे ब्याही थी। परंतु स्वभाव अनुकूल नहीं पड़ा; इसलिये उसके भाई अपनी बहन को ले गए। वास्तव में यह दुष्ट स्वभाव का अत्याचारी था। शाहजहान के शासन-काल में

किसी कारण से पदच्युत होकर दो-हजारी मंसब से गिरा। नगद वेतन नियत हो गया। उसी समय से फतहपुर सीकरी में अपने दादा की कब्र पर मुतवल्ली होकर बैठ गया।

आगरे में अकबर के रोजे से पूर्व की ओर कोस भर पर एक मकबरा है। वह लाडली का रौजा कहलाता है। वहाँ के वृद्ध लोग कहते हैं कि पहले इसके चारों ओर बड़ा भारी घेरा और शानदार दरवाजा था। अंदर कई कबरें थीं, परंतु किसी पर कोई लेख आदि नहीं था। केवल एक कब्र पर संगमरमर पर एक शिलालेख था। चारों ओर फतहपुर के लाल पत्थर की दीवार थी। बेल साहब मुफ्ताह उल् तारीख में कहते हैं कि शेख मुबारक, फैजी और अब्बुलफजल यहीं गाड़े गए थे। लेकिन अब्बुलफजल ने स्वयं आईन अकबरी में लिखा है कि बाबर बादशाह ने यमुना के उस पार जो चारबाग बसाया था, वहीं इस ग्रंथ के लेखक का जन्म हुआ था और पिताजी तथा बड़े भाई वहीं पर सोते हैं। शेख अलाउद्दीन मजजूब और मीर रफीउद्दीन सफवी आदि बहुत से अभिज्ञ लोग वहीं विश्राम करते हैं। खैर; अब तो जीवित लोगों के हाथ में मृत लोग पड़े हैं। वहाँ से उठाकर यहाँ लाकर रख दिया होगा। अब पता नहीं लगता कि वह सड़ी हुई हड्डियाँ कब स्थानांतरित हुईं और किसने कीं। हाँ, उसके शानदार दरवाजे पर का लेख अवश्य जोर जोर से पुकार पुकारकर यही कह रहा है कि शेख मुबारक यहीं विश्राम करते हैं।

लेकिन शेख मुबारक भी धन्य थे। ६० वर्ष की अवस्था, ऐसे ऐसे गुण, आँखों से विवश, ईश्वर की दया से इतने पुत्र और पुत्रियाँ और उनके आगे भी बाल-बच्चे। इस पर तुम्हारी यह हिम्मत कि चलते चलते करामात छोड़ गए और एक नहीं दो दो!

अब्बुलफैज फैजी फैयाजी

सन् ६५४ हि० में जब कि भारतवर्ष का साम्राज्य सलीम शाह की सलामती की चिंता में संलग्न था, शेख मुबारक आगरे नगर में चारबाग के समीप रहा करते थे। उसी समय उनके आशा रूपी वृक्ष में पहला फूल खिला। प्रताप ने पुकारकर कहा कि इसी से अभीष्ट-सिद्धि का फल प्राप्त होगा। यह स्वयं सफल होगा और सफलता का विस्तार करेगा। अब्बुलफैज उसका नाम था। उस शिशु का पालन पोषण पिता की दरिद्रता और नहूसत की छाया में हुआ था। वह दरिद्रता की वृष्टि देखता और शत्रुओं की शत्रुता के काँटे खाता हुआ यौवन की वसंत ऋतु तक पहुँचा था। लेकिन एक दृष्टि से उसके इन दिनों को भी प्रताप के दिन ही समझिए; क्योंकि इसकी योग्यताएँ और गुण भी साथ ही साथ युवक हो गए। इसकी विपत्तियों की कहानी आप लोग इसके पिता के विवरण में पढ़ ही चुके हैं। और भी बहुत सी मनोरंजक बातें अब्बुलफजल के विवरण में मिलेंगी। इसने विद्या और ज्ञान की पूँजी पिता से पाई थी; और

उन्हीं से वे विज्ञान आदि सीखे थे जो उन दिनों एशिया में प्रचलित थे। परंतु काव्य-कला में इसने जो पराकाष्ठा दिखलाई, उसी से यह बात प्रमाणित होती है कि इसका हृदय और मस्तिष्क ईश्वरीय अनुग्रह से परिपूर्ण था और यह कवि-सम्राट् काव्यंकला अपने साथ लेकर आया था। पिता यद्यपि कवि नहीं था, तथापि बहुत बड़ा पंडित और गुणी अवश्य था। वह अपने पुत्र की कविताएँ देखता था और उसे मार्के की हर एक बात बतलाया करता था। वही जबान को काव्य के प्रवाह (गुण) की चाट लगाता था और काव्यशास्त्र के रहस्यों के स्रोत खोलता था। इसने चिकित्सा शास्त्र का भी ज्ञान प्राप्त किया था; परंतु उससे केवल इतना ही लाभ उठाया कि लोगों की चिकित्सा की और उन्हें नीरोग किया। उसके बदले में यह किसी से धन नहीं लेता था। और जब हाथ में कुछ धन आने लगा, तब औषध आदि भी अपने ही पास से देने लगा। जब ईश्वर ने और भी अधिक संपन्न किया और अवकाश ने संकोच किया, तब लोकोपकार की दृष्टि से एक चिकित्सालय स्थापित कर दिया।

इन पिता पुत्रों के विवरण उस सर्वशक्तिमान् परमात्मा की प्राकृतिक लीलाओं का एक उत्तम आदर्श हैं। जब इन पर शत्रुओं का आक्रमण हजरत नूह के तूफान की तरह बीत गया और ये उसमें से सकुशल निकल आए, तब इन्होंने उस ईश्वर को धन्यवाद दिया। उसमें अकबर की सुशीलता और

सज्जनता का भी परिचय मिल गया। दरबार की दशा के साथ साथ जमाने का भी रंग बदलता हुआ दिखलाई दिया। वह वृद्ध विद्वान् अपने लुटे हुए घर और गिरी हुई मसजिद में फिर आकर बैठा। वहाँ उसने टूटे फूटे मिंबर पर दीपक रखकर अध्ययन और अध्यापन का द्वार फिर से खोल दिया। शिक्षा और उपदेश के जलसे फिर जोरों से होने लगे। वह देखता था कि बादशाह गुण और पांडित्य का इच्छुक है और बुद्धिमान् तथा चतुर लोगों को ढूँढ़ता है। इस क्रम में जिन लोगों की प्रसिद्धि होती है, वे दरबार में पहुँचकर प्रतिष्ठित पद प्राप्त करते हैं। इसके पूर्ण गुण अपने उड़नेवाले डैनों को देखते थे और रह जाते थे। परंतु धन्य है इसका साहस और निर्लिप्तता कि यह कभी अमीरों के द्वार की ओर प्रवृत्त नहीं होता था।

पहले तो आए दिन की आपत्तियों ने शेख फैजी का काफिया तंग कर रखा था; पर अब उसकी तबीयत भी जरा खिलने लगी थी। उसकी प्रकृति रूपी शाखा से जो फूल झड़ते थे, उनकी सुगंधि संसार के विस्तृत क्षेत्र में फैलकर दरबार तक भी पहुँचने लगी थी। सन् ९७४ हि० में बादशाही लश्कर ने चित्तौर पर आक्रमण करने के लिये झंडे उठाए थे। किसी उपलक्ष में दरबार में इसकी भी चर्चा हुई। गुणों के जौहरी को इस "जवाहिर के शौक ने ऐसा बेचैन किया कि तुरंत उसे बुलवाया। शत्रु भी लगे ही हुए थे। उन्होंने गुणग्राहकता के विचार से होनेवाली इस बुलाहट को लोगों में

क़ोप की बुलाहट के रूप में प्रकट किया। उन लोगों ने आगरे के हाकिम के नाम लिख भेजा कि फैजी को तुरंत घर से बुलाओ और सवारों के साथ यहाँ भेज दो। कुछ रात बीती थी कि कुछ तुरकों ने घर पर पहुँचकर शोर मचाना शुरू किया। उन्हें क्या खबर थी कि हम बादशाह के शौक का गुलदस्ता लेने के लिये आए हैं या किसी अपराधी को पकड़ने के लिये आए हैं! शत्रुओं ने शाही सिपाहियों को बहका दिया था कि शेख अपने पुत्र को छिपाए रखेगा और हीले हवाले करेगा। बिना उसे डराए धमकाए काम नहीं चलेगा। संयोगवश फैजी उस समय सैर करने के लिये बाग की ओर गए हुए थे। ईर्ष्यालु लोगों का मुख्य उद्देश्य यही था कि वह डरकर भाग जायँ और बादशाह के सामने न आवें। और कुछ न हो तो कम से कम इतना तो हो कि शेख और उसके बाल बच्चे कुछ समय के लिये चिंता और विकलता में तो रहें। जब शेख को यह समाचार मिला, तब उसने स्पष्ट रूप से कह दिया कि फैजी घर में नहीं है। सिपाही उजबक और मूर्ख थे। वे न तो स्वयं ही किसी की बात समझते थे और न उन्हीं की बात कोई समझता था। एक तो बादशाह की आज्ञा आई हुई थी और दूसरे ऊपर से शैतानों ने मन में संदेह उत्पन्न कर दिया था; इसलिये यह भ्रम वास्तविकता का रूप धारण करके भारी उपद्रव खड़ा ही करना चाहता था कि इतने में फैजी भी आ पहुँचे। वे निर्लज्ज

लोग भी लज्जित हो गए। आय के सब मार्ग तो बंद ही थे अतः यात्रा की सामग्री कहाँ से आती ? लेकिन फिर भी किसी प्रकार शिष्यों और भक्तों के प्रयत्न से यह कठिनता भी सरल हो गई। उसी रात को फैजी ने प्रस्थान किया। घर और घराने के लोग शोक-सागर में निमग्न हो गए। सोचने लगे कि देखिए, अब क्या होता है। कई दिनों के उपरांत समाचार पहुँचा कि बादशाह सलामत ने इन दरिद्रों पर कृपा-दृष्टि की है। भय की कोई बात नहीं है। जिस समय फैजी बादशाह की सेवा में उपस्थित हुए, उस समय बादशाह जिस बारगाह में थे, उसके चारों ओर जाली का कटहरा था। फैजी को उस कटहरे के बाहर खड़ा किया गया था। उन्होंने समझा कि इस प्रकार कविता का आनंद नहीं आवेगा। उसी समय यह किता पढ़ा—

بادشاہ برون پنجرہ ام
از سر لطف خود مرا جا دہ
آنکہ من طوطئ شکر خایم
جائے طوطی درون پنجرہ بہ

अर्थात्—हे बादशाह, मैं पिँजरे के बाहर हूँ। तू अपनी कृपा से मुझे स्थान दे। मैं मिष्टभाषी तूती हूँ और तूती के लिये अच्छा स्थान पिँजरे के अंदर ही है।

अकबर इनकी इस उपस्थित बुद्धि से बहुत प्रसन्न हुआ और अपने पास आने की आज्ञा दी। उस समय उन्होंने पहले

पहले बादशाह की प्रशंसा में जो कविता पढ़ी थी, उसका आरंभ इस प्रकार था—

سحر نوید رساں قاصد سلیمانی
رسید ہمچو سعادت کشادہ پیشانی

अर्थात्—बादशाही हरकारा मेरे पास निमंत्रण लेकर पहुँचा, मानो सौभाग्य ही प्रफुल्ल-वदन होकर मेरे पास पहुँचा।

इस कसीदे में सब मिलाकर तीन कम दो सौ शेर हैं; और इसके प्रत्येक शेर से पूर्ण कवित्व-गुण के साथ साथ पांडित्य और दार्शनिक विचारों के फुहारे छूट रहे हैं। यह कसीदा फैजी ने रास्ते में तैयार किया था और प्रस्तुत समय को सामने रखकर तैयार किया था; इसलिये उसकी बहुत सी बातें उनकी तत्कालीन परिस्थिति के ठीक अनुकूल हैं और बड़ी ही सुंदरता से व्यक्त की गई हैं। बादशाही सवारों के पहुँचने पर घर में जो घबराहट मची थी और स्वयं फैजी के मन में जो विकलता उत्पन्न हुई थी, उसका वर्णन बड़े ही विलक्षण ढंग से किया है; और जहाँ अवसर पाया है, शत्रुओं के मुँह में भी थोड़ी थोड़ी मिट्टी भर दी है। एक स्थान पर कहा है—

ازاں زماں چہ نویسم کہ بود بے آرام
سفینہ دل از موج خیز طوفانی
گہے چو وہم سراسیمہ کز کدام دلیل
بزم ظنوں و شکوک از علوم ایقانی ۔

چرا بود متخالف رسوم اسلامی
چرا بود متشابه حروف فرقانی
زبان کشید بدار القفائے عجب و ریا
شهود و کذب زندے گران ایمانی
اگر حقیقت اسلام در جهان اینست
هزار خنده کفر است بر مسلمانی

अर्थात्—मैं उस समय का क्या वर्णन करूँ जिस समय मैं सुख से रहित था और तूफान की लहरों में मेरे हृदय की नाव डगमगा रही थी। कभी तो यह चिंता होती थी कि किस प्रकार मैं ईश्वरीय ज्ञान के विकास पर अपने संदेह दूर करूँ। मैं सोचता था कि इस्लाम क्यों मेरे विरुद्ध हो रहा है और कुरान के अर्थ के संबंध में लोगों को भ्रम क्यों हो रहा है। (अर्थात् जहाँ उन्हें दया करनी चाहिए, वहाँ अत्याचार क्यों कर रहे हैं।) अभिमान और आडंबर के न्यायालय में धर्मनिष्ठ बननेवालों की जबान से झूठ क्यों निकला। यदि संसार में इस्लाम का ही तत्त्व है, तो ऐसे इस्लाम पर कुफ्र हजार बार हँसता है। (अर्थात् वह इससे हजार गुना अच्छा है।)

प्रफुल्लित भावों और उच्च विचारोंवाला वह कवि ईश्वरदत्त कवित्व-शक्ति, विस्तृत ज्ञान और उत्तम रचना-कौशल के कारण बहुत ही थोड़े समय में मुसाहबत के पद तक पहुँच गया। थोड़े ही दिनों में यह दशा हो गई कि पड़ाव हो या यात्रा, किसी

दशा में भी बादशाह उसका वियोग सहन नहीं कर सकता था। उसने बहुत उच्च कोटि का विश्वास संपादित कर लिया था। अब अब्बुलफजल भी दरबार में बुलाए गए; और यह दशा हो गई कि साम्राज्य संबंधी कोई कठिन काम इन लोगों के परामर्श के बिना नहीं होता था। फैजी ने कोई राजनीतिक या शासन-व्यवस्था संबंधी सेवा ग्रहण नहीं की। और ऐसा हो भी नहीं सकता था; क्योंकि यदि वह इधर हाथ डालता तो पहले उसे कविता से हाथ धोना पड़ता। लेकिन शासन और व्यवस्था संबंधी कुछ विषय इसके परामर्श पर भी निर्भर करते थे।

एक पुरानी किताब मेरे हाथ आई है। उसकी भूमिका से मालूम हुआ है कि उस समय तक भारतवर्ष के बादशाही दफ्तरों के कागज साम्राज्य के हिंदू सेवक लोग हिंदी सिद्धांतों के अनुसार लिखा करते थे। और जो सेवक दूसरे देशों के होते थे, वे अपने अपने देश के ढंग और सिद्धांतों के अनुसार लिखा करते थे। इस कारण बादशाही दफ्तरों में विलक्षण गड़बड़ी हो रही थी। अकबर की आज्ञा से टोडरमल, फैजी, मीर फतहउल्ला शीराजी, निजामउद्दीन बख्शी, हकीम अब्बुलफतह और हकीम हमाम मिलकर बैठे और उन्होंने दफ्तरों के कागजों के लिये नियम आदि स्थिर किए। इसी मद में हिसाब के नियम भी लिखे गए। निश्चय हुआ कि सब हिसाब रखनेवाले एक ही नियम और परिपाटी का व्यवहार करें जिसमें लेखों में अंतर न हो।

जब कोई शाहजादा विद्याध्ययन करने के योग्य होता था, तो अकबर उसके गुरु-पद से फैजी को प्रतिष्ठित किया करता था। कहता था कि तुम्हीं इसे शिक्षा दीक्षा दो। इसी लिये सलीम, मुराद और दानियाल सब इसके शिष्य थे; और इसे भी इस बात का बड़ा अभिमान था। अपने प्रत्येक लेख में यह दो बातों के लिये ईश्वर को धन्यवाद दिया करता है। एक तो यह कि बादशाह के दरबार में पार्श्ववर्तिता प्राप्त हुई; और दूसरे यह कि शाहजादों के गुरु-पद का सम्मान प्राप्त किया। परंतु साथ ही बार बार बहुत ही नम्रता तथा दीनता से कहता है कि इनके प्रकाशमान मन पर सभी बातें प्रकाशित हैं। मुझे क्या आता है जो मैं इन्हें सिखाऊँ! मैं तो स्वयं उनसे प्रताप के सम्मान की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो इनके विरोधियों की प्रतिद्वंद्विता और लड़ने झगड़ने के ढंग तथा नियम आदि एक दूसरे से बिलकुल विपरीत थे। इनके विरोधी कहते थे कि साम्राज्य बिलकुल शरीअत के अधीन है। हम शरीअत के ज्ञाता और अधिकारी हैं। इस वास्ते सम्राट् को उचित है कि हमारी आज्ञा के बिना कुछ न करे; और जब तक हमारा फतवा हाथ में न हो, तब तक साम्राज्य को एक भी कदम आगे बढ़ाना या पीछे हटाना उचित नहीं है। इसके विपरीत इन लोगों का पक्ष यह था कि साम्राज्य का अधिकारी ईश्वर का प्रतिनिधि हुआ करता है। वह जो कुछ करता है, वह बहुत ठीक

और उचित करता है। जो कुछ राजनीति है, वही शरीअत है। हमको प्रत्येक दशा में उसका अनुसरण और पालन करना उचित है। जो कुछ वह समझता है, वह हम नहीं समझ सकते। जो कुछ वह आज्ञा दे, उसका पालन करना हमारे लिये अभिमान की बात होनी चाहिए। ऐसा नहीं होना चाहिए कि उसकी आज्ञा हमारे फतवे की अपेक्षा करे।

आजाद का मत है कि आजकल के अच्छे अच्छे समझदार कहते हैं कि दोनों भाई हद से ज्यादा खुशामदी थे। यह ठीक है कि इन लोगों के सामने बिजली चमकती है, परंतु इनके पीछे बिलकुल अँधेरा है। इन्हें क्या खबर थी कि समय और अवसर कैसा था और इनका मैदान कैसे पुराने बलवान् और अनुभवी शत्रुओं से भरा हुआ था। यही लोग युद्ध के नियम और यही बंदूक तथा तोप थे जिन्होंने ऐसे शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। एक शांत और सुखपूर्ण शासन है। मानों बहुत से सुंदर चित्रों के बीच में बैठे हुए हैं। अब यहाँ बैठकर जो जी में आवे, बातें बना सकते हैं। परंतु नया साम्राज्य स्थापित करना, उसे अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल बनाना और पुरानी जड़ों को जमीन की तह में से निकालना उन्हीं लोगों का काम था जो कर गए। खुशामद भी क्या कोई सहज काम है! पहले कोई खुशामद करना तो सीखे।

सन् ९९० हि० में आगरा, काल्पी और कालिंजर की माफी की जाँच के लिये ये सद्र ,उल्सदूर या प्रधान विचार-पति के पद पर नियुक्त हुए थे।

चगताई वंश के सम्राटों के यहाँ से सबसे पहले मलिकुश्शोअरा (कवि-सम्राट्) की उपाधि गजाली शहीदी को मिली है। उसके उपरांत यह उपाधि फैजी को मिली। यह उपाधि भी उसने स्वयं प्रार्थना करके नहीं ली थी। वह बादशाह का बहुत बड़ा और अधिकार-संपन्न पार्श्ववर्ती था लेकिन उसने कभी किसी पद या अधिकार की कामना नहीं की। वह काव्य प्रदेश का राजत्व परमेश्वर के यहाँ से लाया था। उसी से वह सदा संतुष्ट रहा। और यह राजत्व कोई साधारण पदार्थ तो था ही नहीं। अकबरनामे में शेख अब्बुलफजल ने लिखा है कि सन् ९९६ हि० में यह उपाधि प्राप्त हुई थी। संयोग यह कि उपाधि मिलने के दो ही तीन दिन पहले इनके मन की प्रफुल्लता ने एक कसीदे के शेरों में यह रंग दिखलाया था—

آں روز کہ فیض عام کردند - مارا ملک الکلام کردند
مارا بہ تمام در ربودند - تا کار سخن تمام کردند
از بہر صعود فکرت ما - آرائش هفت بام کردند

अर्थात्—जिस दिन परमात्मा ने जब लोगों पर अपनी कृपा की, उसी दिन मुझे कवि-सम्राट् बनाया। मेरी अहम्मन्यता बिलकुल दूर कर दी और तब मेरी कविता को पूर्ण किया। मेरे विचारों और कल्पनाओं को ऊँचाई पर चढ़ाने के लिये सात आसमानों का निर्म्माण किया।

अकबर उसको और उसके जटिल कार्य्यों को बहुत प्रिय रखता था। बल्कि उसकी बात बात को वह दरबार का शृंगार समझता था। वह यह भी जानता था कि दोनों भाई प्रत्येक कार्य इतनी बुद्धिमत्ता और सुंदरता के साथ करते हैं कि जितनी सुंदरता के साथ वह बात होनी चाहिए और उससे भी कहीं अच्छे दरजे पर उसे पहुँचा देते हैं और प्रत्येक कार्य्य बहुत अधिक परिश्रम तथा अध्यवसाय से करते हैं। इसी वास्ते वह इन्हें अपने व्यक्तित्व के साथ संबद्ध समझता था। वह इनकी बहुत खातिर करता था और इन्हें सदा प्रसन्न रखता था। अकबर ने फैजी को कुछ लिखने की फरमाइश की थी। ये उसकी सेवा में खड़े हुए लिख रहे थे। अकबर चुप था और कन-खियों से इनकी ओर देखता जाता था। बीरबल भी बड़े मुँह लगे हुए थे। उन्होंने कुछ बात की। अकबर ने आँख के संकेत से रोका और कहा कि बोलो मत। शेख जीव कुछ लिख रहे हैं। इस वाक्य से और अंतिम समय की बातचीत से जान पड़ता है कि बादशाह इनको शेख जीव कहा करता था।

अकबर को इस बात की आकांक्षा थी कि सारा भारतवर्ष मेरे शासनाधीन हो। पर दक्षिण के बादशाह सदा स्वतंत्र रहना चाहते थे; और वे प्रायः स्वतंत्र रहते भी थे। चगताई वंश के शासन के ढंग भी कुछ और ही थे जिन्हें दक्षिणवाले बिलकुल पसंद नहीं करते थे। वे लोग इस प्रकार की अधीनता

और आज्ञापालन को बहुत बड़ी अप्रतिष्ठा की बात समझते थे। वे सिक्के, खुतबे, नियुक्ति, पदच्युति, बदली, दान और जब्ती आदि के विषय में किसी के अधीन नहीं रहना चाहते थे। उनकी परिस्थिति ऐसी थी कि अकबर ये बातें खुल्लमखुल्ला कह भी नहीं सकता था। इसी लिये वह कभी तो उन लोगों के पास पत्र और सँदेसे भेजता था, कभी उन्हें आपस में लड़ा देता था और कभी स्वयं ही अपने किसी अमीर को उन पर आक्रमण करने के लिये भेजकर उनके साथ युद्ध छेड़ देता था। उन्हीं में अहमदनगर का शासक बुरहान उल्मुल्क भी था। वह अपने देश से तबाह होकर अकबर के दरबार में उपस्थित हुआ था। कुछ दिनों तक यहाँ रहा। अकबर ने धन और सामग्री से उसकी सहायता की। इसके अतिरिक्त खानदेश के हाकिम राजा अलीखाँ को भी सिफारिश का फरमान लिख भेजा। इस प्रकार अकबर की सहायता से बुरहान उल्मुल्क फिर अपने देश में अधिकारारूढ़ हुआ। परंतु जब उसने शासन का सब अधिकार प्राप्त कर लिया, तब अकबर को उससे जो आशाएँ थीं, वह पूरी नहीं हुईं। अब विचार हुआ कि उस पर चढ़ाई की जाय। लेकिन अकबर का यह भी एक नियम था कि जहाँ तक हो सकता था, मित्रता और प्रेम के नाम से काम निकालते थे। दक्षिण के हाकिम बादशाही बल और ढंग रखते थे और अपने राज्य में सिक्का और खुतबा भी अपने ही नाम का रखते थे; इसलिये

सन् ६६६ हि० (सन् १५६१ ई०) में उनमें से प्रत्येक के पास एक एक बुद्धिमान् अमीर को भेजा। खानदेश के हाकिम राजा अलीखाँ के यहाँ का दूतत्व शेख को सौंपा गया। बुर-हान उल्मुल्क को समझा बुझाकर ठीक मार्ग पर लाने का काम अमीनउद्दीन के सपुर्द हुआ। शेख अब्बुलफजल की सम्मति से यह निश्चित हुआ कि राजा अलीखाँ के काम से छुट्टी पाकर शेख फैजी और अमीरउद्दीन दोनों बुरहान उल्-मुल्क के पास जायँ। और वास्तव में राजा अलीखाँ ही दक्षिण देश की कुंजी था। एक तो वह पुश्तैनी अमीर था; तिस पर अवस्था और बुद्धि के विचार से सबमें बड़ा था। उसके पास धन भी यथेष्ट था और सेना की भी कमी नहीं थी। इसलिये उसका प्रभाव बहुत अधिक था और उसका प्रयत्न बहुत कुछ सफल हुआ करता था। मैंने फैजी के निवेदनपत्र देखे हैं जो उसने वहाँ पहुँचकर अकबर को लिखे थे। उनसे प्राचीन काल के नियमों और परिपाटियों तथा अकबर के दरबार के रंग ढंग और रस्मों आदि पर बहुत प्रकाश पड़ता है। और उन नियमों तथा परिपाटियों आदि का निश्चित करनेवाला कौन था? यही लोग नियम बनानेवाले थे जो अरस्तू और सिकंदर को भी नियम बनाना सिखलाते थे। उक्त निवेदनपत्रों से यह भी प्रकट होता है कि वह इस सेवा से, जो विश्वास और प्रतिष्ठा आदि के विचार से बहुत ही उच्च कोटि की थी, कदापि प्रसन्न नहीं था। वह तो सदा

अपने स्वामी की सेवा में ही और उसके समक्ष उपस्थित रहना चाहता था। इसी लिये उन निवेदनपत्रों के प्रत्येक शब्द से वियोगजन्य दुःख और दर्शनों की अभिलाषा टपकती है।

वे निवेदनपत्र एक प्रकार की रिपोर्टें हैं जो मार्ग तथा उद्दिष्ट स्थान की प्रत्येक बात की सूचना देते हैं। मैं इस समय यहाँ केवल उस समय की अवस्था के वर्णन का कुछ अनुवाद देता हूँ जिस समय राजा अलीखाँ को बादशाही आज्ञापत्र दिया गया था। उसे किस प्रकार खिलअत पहनाई गई और उक्त खान ने किस प्रकार का व्यवहार किया; इसी का इसमें वर्णन है। फैजी लिखते हैं—

"इस सेवक ने खेमे और सरापरदे आदि उसी शान से सजाए थे जिस प्रकार संसार को शरण देनेवाले पृथ्वीनाथ (श्रीमान) के (खेमे आदि) सजाए जाते हैं। सरापरदों के दो विभाग किए थे। दूसरे विभाग में श्रेष्ठ सिंहासन सजाया था। बिलकुल जरबफ़ लपेट दिया था। ऊपर मखमल जरबाफ का शामियाना ताना था। सिंहासन पर बादशाही तलवार, खिलअत और शाही आज्ञापत्र रखा था। सब उपस्थित अमीर लोग सिंहासन के चारों ओर बहुत सभ्यता और अदब के साथ पंक्ति बाँधकर क्रम से खड़े थे। उचित नियम के अनुसार पुरस्कार के घोड़े भी सामने खड़े थे। राजा अलीखाँ अपने यहाँ के स्तंभों और दक्षिण के राजाओं के प्रतिनिधियों को साथ लिए हुए आया और उन्हीं नियमों तथा परि-

प्रांटियों आदि के अनुसार आया जो कि सेवा और अधीनता के लिये उचित हैं। वह दूर ही से पैदल हो लिया था। जो सरा-परदा पहले पड़ता था, उसमें उसने बड़े अदब के साथ प्रवेश किया। वहाँ से वह अपने साथियों को लिए हुए आगे बढ़ा। दूसरे सरापरदे में पहुँचा। दूर ही से श्रेष्ठ सिंहासन दिखाई दिया। वहीं से अभिवादन करके वह नंगे पाँव हो लिया। वह थोड़ी ही दूर चला था कि उससे कहा गया कि यहीं ठहर जाओ और तीन बार झुककर अभिवादन करो। उसने बहुत अदब के साथ तीन बार तस्लीमें कीं और वहीं ठहरा रहा। तब इस सेवक ने दोनों हाथों में शाही आज्ञापत्र लेकर उसे कुछ आगे बुलाया और कहा कि ईश्वर द्वारा संरक्षित लोकनाथ ने बहुत अधिक अनुग्रह और दासवत्सलता करके तुम्हें दो आज्ञापत्र भेजे हैं, उनमें से एक यह है। उसने वह आज्ञापत्र दोनों हाथों में ले लिया, बहुत सम्मानपूर्वक सिर पर रखा और फिर तीन बार तस्लीमें कीं। इसके उपरांत मैंने कहा कि दूसरा आज्ञापत्र मैं हूँ। उसने फिर तस्लीम की। तब मैंने कहा कि श्रीमान् ने खिलअत प्रदान की है। वह तस्लीम बजा लाया और उसे पहन लिया। इसी प्रकार तल-वार के लिये तस्लीम की। जब श्रीमान् की कृपा का नाम आता था, तब तस्लीमें करता था। फिर उसने कहा कि बरसों से मुझे इस बात की कामना है कि तुम्हारे पास बैठकर बातें करूँ। यह वाक्य उसने बहुत ही शौक से कहा था। इस-

लिये मैंने कहा कि बैठिए। अदब से मेरे सामने बैठ गया। इस सेवक ने समय के अनुसार अपना सारा अभिप्राय उससे बहुत अच्छे ढंग से कहा जिससे उसकी निष्ठा के स्थायी होने में सहायता मिले। सबका सार श्रीमान् के गुणों, कृपाओं और वैभव आदि का वर्णन था। उसने निवेदन किया कि मैं श्रीमान् का परम शुभचिंतक सेवक हूँ। उन्हीं का बनाया हुआ हूँ। उन्हीं का अनुग्रहपात्र हूँ। मैं श्रीमान् की प्रसन्नता चाहता हूँ और अनुग्रह की आशा रखता हूँ। मैंने कहा कि श्रीमान् की तुम पर बहुत कृपा है। तुम्हें अपनों की दृष्टि से देखते हैं और अपना खास सेवक समझते हैं। भला इससे बढ़कर इस बात का और क्या प्रमाण होगा कि मेरे जैसे खास गुलाम को तुम्हारे पास भेजा! उसने लगातार तस्लीमें कीं। बहुत प्रसन्न हुआ। इस बीच में दो बार उठने के लिये संकेत किया गया। उसने कहा कि इस संगति से तृप्ति नहीं होती। जी चाहता है कि संध्या तक बैठा रहूँ। चार पाँच घड़ी बैठा रहा। मजलिस की समाप्ति पर पान और सुगंधि आई। मुझसे कहा कि तुम अपने हाथ से दो। मैंने कई बीड़े अपने हाथ से दिए और उसने बड़े आदर के साथ लिए।

"फिर उससे कहा गया कि श्रीमान् की राजलक्ष्मी के स्थायी होने के लिये फातिहा पढ़ो। बहुत अदब से फातिहा पढ़कर बड़े आदर से फर्श के सिरे के पास सिंहासन के सामने खड़ा हुआ। बादशाही घोड़े उपस्थित थे। बागडोरें को

चूमकर कंधे पर रख लिया और तस्लीम की'। शाहजादों के घोड़ों की बागडोरों को भी कंधे पर रखकर तस्लीमें कीं। जब शाह मुराद का घोड़ा सामने लाए, तब उसकी बागडोर गले में लपेटकर तस्लीमें कीं। तब वहाँ से बिदा हुआ। इस सेवक के आदमी गिन रहे थे; उसने कुल पचीस तस्लीमें कीं। वह बहुत प्रसन्न था। पहली ही तस्लीम पर उसने मुझसे कहा कि यदि आप आज्ञा दें तो मैं श्रीमान् के लिये हजार बार सिजदा करूँ। मैंने अपने प्राण श्रीमान् पर निछावर कर दिए हैं। इस सेवक ने कहा कि तुम्हारे सद्व्यवहार और निष्ठा के लिये तो यही शोभा देता है। परंतु सिजदा करने के लिये श्रीमान् की आज्ञा नहीं है। जब दरबार के पारिषद लोग अपने प्रेम के आवेश में सिजदे में सिर झुका देते हैं, तब श्रीमान् मना करते हैं। कहते हैं कि यह सिजदा तो ईश्वर की दरगाह में ही करने के लिये है।"

एक बरस आठ महीने और चौदह दिनों में दोनों दूतत्वों का काम पूरा करके सन् १००१ हि० में फैजी अकबर की सेवा में उपस्थित हुए। लेकिन फिर भी आश्चर्य यह कि बुरहान उल् मुल्क पर इनका जादू नहीं चला। बल्कि उसने जो उपहार भेजे थे, वे भी अवस्था और परिस्थिति के अनुकूल नहीं थे। राजा अलीखाँ अनुभवी वृद्ध थे। उन्होंने अपने निवेदनपत्र के साथ बहुत उच्च कोटि के पदार्थ उपहार स्वरूप भेजे थे और बहुत ही नम्रता तथा दीनता के लेख लिखे थे।

यहाँ तक कि राजसी चीजों के साथ बेटे भी सलीम के लिये भेज दिए। यहाँ आकर फिर वही मुसाहबत और फिर वही दरबारदारियाँ। कविता फूल बरसाती थी। रचना की खान से चिंतना रत्न निकालती थी। परंतु इस यात्रा से लौटकर आने पर जीवन-निर्वाह का ढंग कुछ और ही हो गया था। प्रायः चुपचाप रहते थे। उसी अवस्था में बादशाह की प्रेरणा से फिर खम्सा पर हाथ डाला। टीकाएँ आदि भी अंत में ही की थीं। उन्हें देखकर बुद्धि चकरा जाती है कि यह क्या करते थे। आठ पहर के दिन रात के तो ये काम हो नहीं सकते।

सन् १००३ हि० के अंत में तबीयत खराब हुई। दमा तंग करने लगा। चार महीने पहले राजयक्ष्मा हुआ था। उस समय यह रुबाई जबान से निकली थी—

دیدی که فلک بمن چه نیرنگی کرد
مرغ دلم از کفس بدل آهنگی کرد
آں سینه کے عالمے درو میگنجید
تا نیم نفس بر آورم تنگی کرد

अर्थात्—तूने देखा कि आकाश ने मुझ पर कैसा अत्याचार किया है। मेरे प्राण रूपी पक्षी ने शरीर रूपी पिंजड़े के साथ कैसा विरोध किया है! जिस हृदय में सारा संसार समाता था, वह अब आधी साँस के लिये भी तंग हो रहा है (उसमें आधी साँस भी नहीं समा सकती)।

अंत समय में सब बातों की ओर से अपना मन हटा लिया था। और भी कई रोग एकत्र हो गए थे। दो दिन बिलकुल चुप रहे। बादशाह स्वयं हाल देखने के लिये आया। पुकारा तो आँख खोली, अभिवादन किया, पर कुछ कह न सके। देखकर रह गए। हाय, भला ऐसे अवसर पर बादशाही आज्ञा का क्या वश चल सकता था! वह भी बहुत दु:खी हुआ और आँसू पीकर चला गया। उसी दिन बादशाह शिकार के लिये जाने को सवार हुआ। परलोक के यात्री ने भाई से कहा कि तुम श्रीमान् से चार दिन की छुट्टी लेकर यहीं रह जाओ। चौथे दिन आप स्वयं ही चले गए। तारीख १० सफर सन् १००४ हि० की बात है। उसी दिन गुण और पांडित्य के घर में रोने पीटने का कोलाहल मचा। कविता ने शोकपूर्वक रुदन करते हुए कहा कि शब्दों का सराफ और अर्थों का अभिज्ञ जड़िया मर गया। बीमारी की दशा में प्राय: यह शेर पढ़ा करते थे—

گر همه عالم بهم آید بجنگ
بر نشود پاے یکے مور لنگ

अर्थात्—यदि सारा संसार मिलकर प्रयत्न करे तो भी वह एक लँगड़ी च्यूँटी का पैर तक अच्छा नहीं कर सकता।

मरने का समय ऐसा नाजुक होता है कि हर आदमी का दिल पिघल जाता है। पर सच तो यह है कि मुल्ला साहब बड़े बहादुर हैं। जरा देखिए कि इसके मरने का वर्णन किस

प्रकार करते हैं। मैं बहुत सचेत होकर अनुवाद करता हूँ। यदि मुहावरे में कुछ अंतर रह जाय तो सुविज्ञ पाठक क्षमा करें। कहते हैं —

"१० सफर को कविसम्राट् फैजी इस संसार से प्रयाण कर गया। छः महीने तक ऐसे रोगों से पीड़ित रहा जो मानों आपस में होड़ कर रहे थे। दमा, जलोदर, हाथ पैर की सूजन और रक्त वमन बहुत बढ़ गया। यह मुसलमानों को जलाने के लिये कुत्तों से घुला मिला रहता था। कहते हैं कि मृत्यु के कष्ट के समय भी कुत्तों का सा शब्द निकलता था। शरअ के आविष्कार और दीन इस्लाम के इनकार में भी बहुत कट्टरपन रखता था। इसलिये उस समय भी दीन के विषय में एक अच्छे परहेजगार विद्वान् मुसलमान से धर्म के विरुद्ध कुफ्र की बेहूदा बातें कहता था। ये सब बातें तो उसके स्वभाव की एक अंग थीं। (कदाचित् इससे उनका अभिप्राय स्वयं अपने शुभ व्यक्तित्व से है।) पहले भी वह इन विषयों में आग्रह रखता था। उस समय भी यही बातें कहता रहा, यहाँ तक कि अंत में ठिकाने लग गया।" उनके मरने की मुल्ला साहब ने जो कई तारीखें कही हैं, वह भी बहुत बुरे ढंगों से कही हैं और उनमें भी उन्हें धर्मभ्रष्ट आदि विशेषण देकर बुरा भला कहा है। फिर आगे चलकर लिखते हैं—"आधी रात का समय था और वह मृत्यु-शय्या पर पड़ा हुआ था। बाद-शाह स्वयं आए। वह बेहोश था। प्रेम से उसका सिर पकड़-

कर उठाया और कई बार पुकार पुकारकर कहा कि शेख जीव, हम हकीम अली को साथ लाए हैं। तुम बोलते क्यों नहीं ? वह बेहोश था; उसने कोई उत्तर नहीं दिया। दोबारा पूछा तो पगड़ी जमीन पर दे मारी। अंत में शेख अब्दुल-फजल को सांत्वना देकर बादशाह चला गया। साथ ही समाचार पहुँचा कि इसने अपने आपको हवाले कर दिया (अर्थात् मर गया)।'' इतना कहने के उपरांत भी मुल्ला साहब के मन का बुखार नहीं निकला। अपने ग्रंथ के अंत में कवियों का उल्लेख करते हुए इनके संबंध में फिर लिखते हैं—''यह कविताएँ करने, पहेलियाँ आदि बनाने या कूट काव्य करने और इतिपास, कोष, चिकित्सा तथा सुंदर लेख लिखने में अद्वितीय था। आरंभ में अपनी कविताओं में ''मशहूर'' उपनाम दिया करता था। अंत में अपने छोटे भाई के उपनाम के अनुकरण पर, जिसे ''अल्लामी'' कहते हैं, शान बढ़ाने के लिये ''फैयाजी'' उपनाम ग्रहण किया। परंतु यह उपनाम शुभ नहीं सिद्ध हुआ। एक ही दो महीने बाद गट्ठर की गट्ठर कामनाएँ अपने साथ लेकर इस संसार से चला गया। सिफलेपन का आविष्कर्ता, अभिमान और द्वेष का निर्माता, द्रोह, खबीसपन, आडंबर और शेखी का समूह था। मुसलमानों के साथ सदा शत्रुता और द्रोह करता था, इस्लाम धर्म के मूल सिद्धांतों की सदा निंदा किया करता था और नए, पुराने, जीवित, मृत, सभी महापुरुषों और महात्माओं के संबंध में बेधड़क होकर

बेअदबी किया करता था। सभी विद्वानों और पंडितों के संबध में दिन और रात प्रकट रूप से और छिपे छिपे यही दशा थी। समस्त यहूदी, ईसाई और हिंदू इससे हजार दरजे अच्छे थे। इस्लाम धर्म से जिद रखने के कारण सभी वर्जित पदार्थों को ग्राह्य और उत्तम समझता था और धार्मिक कर्तव्यों को बुरा समझता था। जो कलंक सौ नदियों के जल से भी न धोया जायगा, उसे धोने के लिये ठीक मस्ती और अपवित्रता की दशा में कुरान की बिना नुकते या बिंदुवाली टीका लिखा करता था। कुत्ते इधर उधर रौंदते फिरते थे। अंत में इसी नास्तिकता और घमंड के साथ इस संसार से चला गया; और ऐसी अवस्था में गया जो ईश्वर न दिखावे और न सुनावे।

"जिस समय बादशाह अंतिम समय में उसे देखने के लिये गए थे, उस समय उन्होंने कुत्ते का शब्द सुना था। वह उनके सामने भूँका था। यह बात बादशाह ने स्वयं भरे दरबार में कही थी। मुँह सूज गया था और होंठ काले पड़ गए थे। यहाँ तक कि बादशाह ने शेख अब्बुलफजल से पूछा था कि होंठों पर की यह इतनी अधिक कालिमा कैसी है ? क्या शेख ने मिस्सी मली है ? उसने कहा कि यह रक्त का प्रभाव है। रक्तवमन करते करते होंठ काले पड़ गए हैं। पूज्य महात्माओं के संबंध में वह जो बुरी भली बातें कहा करता था और उनकी निंदा किया करता था, उसे देखते हुए ये बातें फिर भी कम थीं। लोगों ने उसके मरने की अनेक निंदासूचक तारीखें कही हैं।"

इस स्थान पर मुल्ला साहब फिर इसी प्रकार दुःखी करनेवाली छः तारीखें लिखकर उसकी आत्मा को कष्ट देते हैं। हाँ साहब, इसके और इसके पिता तथा भाई के आप पर जो अधिकार थे, वे अभी पूरे नहीं हुए। दिल में और जो कुछ धूआँ बाकी हो, वह भी निकाल लीजिए। जब वह बेचारा जीता था, तब तुम्हारे बिगाड़ने पर भी न बिगड़ा। बल्कि तुम्हारी विपत्ति के समय काम ही आता था। अब मर गया। जो चाहो सो कह लो।

फिर मुल्ला साहब कहते हैं—"ठीक चालिस वर्ष तक कविता करता रहा, पर सब बे-ठीक। हड्डियों का ढाँचा तो खासा खड़ा कर देता था, पर उसमें रस या गूदा बिलकुल नहीं होता था। जो कुछ कहता था, सब बे-सिर पैरों का और जिसमें कोई आनंद नहीं होता था। अभिमानपूर्ण और धर्मभ्रष्टता की बातें कहने में प्रसिद्ध ढंग रखता था; परंतु वास्तविक ईश्वर-प्रेम या आध्यात्मिकता आदि का कहीं नाम भी न होता था। यद्यपि उसकी मस्नवी और दीवान में बीस हजार से अधिक शेर हैं, लेकिन फिर भी उसकी बुझी हुई तबीयत की तरह एक शेर में भी अग्नि नहीं है। तुच्छता के कारण कभी किसी ने इसकी कविता की कामना नहीं की जैसी कि छोटे कवियों तक की की जाती है; और विलक्षणता यह है कि इन छोटे मोटे ढकोसलों की प्रतिलिपि करने में तनख्वाहों में बड़ी बड़ी रकमें खर्च कीं; और वे प्रतिलिपियाँ लिखवा लिखवाकर पास और दूर के

परिचितों और मित्रों को भेजों। परंतु किसी ने उन्हें दोबारा भी न देखा।"

यहाँ मुल्ला साहब शेख फैजी के उस प्रार्थनापत्र की प्रतिलिपि देते हैं जो उन्होंने दक्खिन से इनकी सिफारिश में बादशाह को लिखी थी। और उसके उपरांत फिर लिखते हैं कि यदि कोई कहे कि उनके ऐसे प्रेम के सामने जो मैं उनकी इतनी निंदा करता और इतने कटु वचन कहता हूँ, तो यह कैसी मुरव्वत और वफादारी है! विशेषत: किसी के मरने के उपरांत इस प्रकार की बातें कहना मानों भ्रष्टप्रतिज्ञ बनना है; और सूचित करता है कि मैं इस वचन से परिचित नहीं हूँ कि मृत व्यक्तियों का जिक्र अच्छे शब्दों में करना चाहिए। क्या ऐसा करना ठीक है? हम कहेंगे कि यह ठीक है। पर क्या किया जाय, धार्मिक कर्तव्य और धर्मरक्षा सब प्रकार के कर्तव्यों से बढ़कर है। मुझे पूरे चालीस वर्ष इनकी संगति में बीते, पर समय समय पर इनके जो ढंग बदलते गए, इनके मिजाज में खराबी आती गई और इनकी दशा में अंतर आता गया, उसके कारण धीरे धीरे और विशेषत: इनकी रुग्णावस्था में सारा संबंध जाता रहा। अब उनका कोई अधिकार नहीं रह गया और वह साथ बिगड़ गया। वह हमसे गए और हम उनसे गए। इन सब बातों के अतिरिक्त यह भी है कि हम भी ईश्वर के दरबार में चलनेवाले हैं जहाँ सबका न्याय हो जायगा। मुल्ला साहब कहते हैं कि मरने के समय ये चार हजार

छः सौ बढ़िया लिखी हुई पुस्तकें छोड़ गए थे। अत्युक्ति के रूप में कह सकते हैं कि वे प्रायः लेखक के हाथ की लिखी हुई अथवा उसके लेखन-काल की थीं। सब पुस्तकें बादशाही खजाने में चली गईं। जब सूची उपस्थित हुई, तब वे पुस्तकें तीन भागों में विभक्त हुईं। उत्तमों में काव्य, चिकित्सा, फलित ज्योतिष और संगीत; मध्यम में दर्शन, छायावाद और गणित; और निकृष्ट में धार्मिक ग्रंथों की टीकाएँ, हदीस, धर्म-शास्त्र और बाकी शरअ के ग्रंथ।

इनमें एक सौ एक प्रतियाँ नल दमन (दमयंती) की थीं। बाकी किस गिनती में हैं। मरने से कुछ दिन पहले कुछ मित्रों के बहुत कहने से कुछ चरण मुहम्मद साहब की प्रशंसा और उनके ईश्वर के पास जानेवाली घटना के संबंध में लिख दिए थे।

अब आजाद तो यही कहता है कि मुल्ला साहब जो चाहें सो कहें। अब दोनों परलोक में हैं; आपस में समझ लेंगे। तुम अपनी चिंता करो। तुम्हारे कर्मों के संबंध में वहाँ तुमसे प्रश्न होगा। यह नहीं पूछा जायगा कि अकबर के अमुक अमीर ने क्या क्या लिखा था और उसका धार्मिक विश्वास कैसा था; अथवा तुम उसको कैसा जानते थे; अथवा जहाँगीर के अमुक सेवक के संबंध में क्या बात थी और तुम उसे कैसा समझते थे।

लेकिन इतना तो फिर भी कहूँगा कि नल दमन की पुस्तक प्रत्येक पुस्तकविक्रेता के यहाँ मिलती है। जिसका जी चाहे,

देख ले। पौने दो सौ शेरों में, मुहम्मद साहब की प्रशंसा में और उनके ईश्वर के पास जाने के वर्णन में इतनी उत्तमता और उच्चता के साथ लिखी है कि लेखन-कला भी उसके कलम के आगे सिर झुकाती है।

अब यहाँ शेख फैजी की रचनाओं का वर्णन और प्रत्येक पुस्तक का कुछ परिचय देता हूँ।

अपना दीवान स्वयं लिखाकर तैयार किया और भूमिका लिखकर लगाई। उसका नाम तबाशीर उल्सुबह रखा। जब क्रम लगाकर ठीक किया तब एक मित्र को इसका सुसमाचार लिखकर चित्त प्रसन्न किया। इससे जान पड़ता है कि चालीस बरस से अधिक की कहानी है। नौ हजार पद्य हैं। सब गजलें बहुत अच्छी और शुद्ध फारसी भाषा में हैं। रूपकों और उपमाओं के पेचों से बहुत बचते हैं और भाषा की मधुरता का बहुत ध्यान रखते हैं जिस पर उन्हें पूर्ण अधिकार प्राप्त है। इतना होने पर भी अक्षरशः भाषाविदों के अनुसार हैं। उनका मन आवेश में आता है, पर जबान सीमा से बढ़ नहीं जाती; और अपनी ओर से एक बिंदु भी नहीं बढ़ाती। मैं अवश्य कहता कि बिलकुल शेख सादी का सा ढंग है; परंतु वह रूप और प्रेम में अधिक डूबे हुए हैं और ये दर्शन, अध्यात्म तथा आत्मभाव में मस्त हैं। ये ईश्वरीय ज्ञान और अभिमान के उच्च तल में उड़ते हैं। कुफ्र के दावों में बहुत जोर दिखलाते हैं। सौंदर्य और प्रेम में एशियाई कविता के उस्ताद हैं।

इनका नाम केवल स्वभाव के कारण जबान पर आ जाता है। यह पूर्ण पंडित हैं और अरबी भाषा के बहुत अच्छे जानकार हैं। जब कहीं कहीं अरबी का एक आध चरण लगा जाते हैं तो वह विलक्षण आनंद देता है।

कसीदे कहने में बिलकुल पुराने कवियों के ढंग पर चले हैं। जो कुछ कहा है, वह बहुत उपयुक्त और चलता हुआ कहा है। गजलें और कसीदे दोनों मिलाकर बीस हजार गिने गए हैं। अकबर को जो इनकी कविता पसंद थी, उसका कारण यह था कि एक तो इनकी कविता सर्वसाधारण के समझने योग्य होती थी। साफ समझ में आ जाती थी। दूसरे ये अपने मालिक की तबीयत को पहचान गए थे और अपने समय की अवस्थाओं और घटनाओं आदि को बराबर देखते रहते थे। समय को खूब पहचानते थे और मति सदा प्रस्तुत रहती थी। अवस्था के ठीक अनुरूप लिखा करते थे और ठीक मौके की बात कहते थे। अभिप्राय बहुत ही सुंदरता और उपयुक्तता के साथ व्यक्त करते थे। इनकी बात दिल-लगती और मन-भाती हुआ करती थी। अकबर सुनकर प्रसन्न हो जाता था और सारा दरबार उछल पड़ता था।

जब अकबर अहमदाबाद और गुजरात आदि के युद्धों में विजय प्राप्त करके लौटा, तब सारी सेना उसके पीछे पीछे थी। सब वहीं की वरदी पहने और वहीं के हथियार सजे हुए थे। अकबर स्वयं सेनापतियों की भाँति साथ था। वही कपड़े और

वही हथियार, वही दक्खिन का छोटा सा बरछा कंधे पर रखे आगे आगे चला आता था। जब वह फतहपुर के समीप पहुँचा, तब कई कोस चलकर सब अमीर स्वागत करने के लिये उपस्थित हुए। फैजी ने एक गजल पढ़कर सुनाई (अकबर उन दिनों अधिकतर फतहपुर में ही रहता था) जिसका पहला शेर इस प्रकार था—

نسیم خوش دلي از فتح پور مے آید
که بادشاه من ار راه دور مے آید

अर्थात्—चित्त की प्रसन्नता रूपी वायु फतहपुर से आ रही है, क्योंकि मेरे बादशाह दूर की यात्रा करके आ रहे हैं।

सन् ९९७ हि० में जब काश्मीर की लड़ाई से निश्चिंतता हुई, तब बादशाह गिलगित्त पहुँचा। वहाँ की वसंत ऋतु के कारण उसका मन प्रफुल्लित हो गया। फैजी ने झट एक कसीदा लिखा—

هزار قافله شوق میکند شب گیر
که بار عیش کشاید بخطهٔ کشمیر

अर्थात्—हजारों शौक का समूह इस कामना से यात्रा कर रहा है कि काश्मीर प्रांत में पहुँचकर अपने आनंद का भार (गठरी) खोले।

उर्फी ने भी काश्मीर पहुँचकर बहुत जोरों का कसीदा लिखा था। उसमें विचारों और कल्पना शक्ति की उच्चता देखने में आती है और वसंत ऋतु का वर्णन है। और यदि इनका

कसीदा देखा जाय तो उसमें प्राकृतिक शोभा का चित्र देखने को मिलता है। जब वह बादशाही दरबार या मित्रों के जलसे में पढ़ा गया होगा, तब सुनकर लोट लोट गए होंगे। काबुल की यात्रा में डक्के के पड़ाव पर अकबर घोड़े पर से गिर पड़ा। इन्होंने तुरंत एक सुंदर कविता कहकर आँसू पोंछे।

तूरान का राजदूत मीर क़ुरैशी आनेवाला था। विचार हुआ कि राज्यारोहण के ३१ वें सन् का जलसा भी समीप ही है। उसी अवसर पर वह बादशाह की सेवा में उपस्थित किया जाय। दीवानखाना खूब अच्छी तरह सजाया गया। वह सेवा में उपस्थित हुआ। उसी समय काश्मीर जीता गया था। राजा मानसिंह भी पहाड़ी सीमा प्रदेश से विजयी होकर लौटे थे। हजारों अफगानों की हत्या कर आए थे और हजारों को कैद कर लाए थे। फौज की हाजिरी और इनकी हुजूरी बहुत शान से दिखलाई गई थीं। उस अवसर पर भी फैजी ने एक बहुत बढ़िया कसीदा पढ़ा था।

फैजी ने अनेक स्थानों पर लिखा है कि आज प्रातःकाल की शोभा देखकर बादशाह सलामत का ध्यान आया। उस समय यह गजल कही थी। कहीं लिखता है कि मैं बाग में गया था; फुहारे छूट रहे थे। हुजूर की अमुक बातचीत याद आई। उस समय यह बढ़िया शेर तैयार हुआ।

सन् ९९३ हि० में बादशाह की आज्ञा हुई कि निजामी ने जो ग्रंथपंचक रचा है, उसके जोड़ के ग्रंथपंचक लिखने में बहुत

से लोगों ने प्रयत्न किया है। तुम भी प्रयत्न करो। कहा गया था कि मखजन इसरार के ढंग पर तीन हजार पद्यों का मरकज दवार लिखो, जो लिख दिया। यह अब तक मिलता है। इसी प्रकार खुसरो शीरीं के ढंग पर सुलेमान बलकैस लिखा था जिसके कुछ पद्य मिलते हैं। लैला मजनूँ के ढंग पर नल दमन लिखा जो भारतवर्ष के पुराने कथानकों में से है। यह सब जगह मिलता है। हफ्त पैकर के ढंग पर हफ्त किशवर लिखा जिसका कहीं पता नहीं लगता। और सिकंदरनामे के ढंग पर अकबरनामा लिखा। इनमें से पहला ग्रंथ उसी दिन से लिखा जाने लगा था जिस दिन बादशाह ने आज्ञा दी थी। बादशाह ने जो जो बातें कही थीं, वे सभी बातें उनके ग्रंथों में आई थीं। बाकी पुस्तकों के भी भिन्न भिन्न अंश लिखे थे। परंतु साम्राज्य के काम धंधे बहुत अधिक थे; शासन और व्यवस्था आदि के बहुत से काम थे; इसलिये तीन ग्रंथ अपूर्ण रहे। सन् १००२ हि० में लाहौर में एक दिन बादशाह ने इन्हें फिर बुलाकर कहा कि उन पाँचों ग्रंथों को पूरा कर दो। साथ ही यह भी कहा कि पहले नल दमन पूरा कर दो। बस चार महीने में वह पुस्तक पूरी करके रख दी। वास्तविक बात यह है कि उसके बढ़िया बढ़िया रूपक और उपमाएँ, उच्च और सूक्ष्म विचार, ओजस्विनी और स्पष्ट भाषा, शब्दों की सुंदर योजना, आकर्षक रूप और अभिप्राय प्रकट करने के बढ़िया ढंग देखने ही योग्य हैं।

जिस दिन फैजी यह ग्रंथ लिखकर बादशाह की सेवा में ले गए, उस दिन उस पर शकुन के लिये पाँच अशर्फियाँ भी रख दीं। मुँह से आशीर्वाद निकल रहे थे, सफलता के कारण चेहरा खिला हुआ था और मन आनंद से परिपूर्ण था। बादशाह की सेवा में भेंट उपस्थित की। वास्तव में जिसकी कलम से यह मुकुट प्रस्तुत होकर दरबार में आवे और अकबर जैसे बादशाह के सामने फरमाइश की तामील के रूप में उपस्थित हो, उसकी मनोरथसिद्धि की शोभा उसी के लहलहाते हुए हृदय में देखनी चाहिए। उनके पत्र-संग्रह में बहुत से पत्र हैं। उनमें इसकी समाप्ति का समाचार विलक्षण प्रसन्नता के साथ दिया गया है।

विक्रमादित्य के समय में कालिदास नामक एक महाकवि हो गया है। उसने कथानक के रूप में नौ पुस्तकें ऐसी लिखी हैं जो विचारों की सूक्ष्मता और उत्तमता के विचार से अपना जोड़ नहीं रखतीं। उन्हीं में से एक नल-दमन का भी किस्सा है। परंतु वास्तविक बात यह है कि फैजी जैसा ही गुणी हो, जो फारसी भाषा में उसका वैसा ही सुंदर चित्र उतारे। यह ग्रंथ भारत और भारत के कवियों के लिये अभिमान की सामग्री है। यह उक्त कथानक का सौभाग्य ही है कि फारसी में भी उसे जो कवि मिला, वह वैसा ही मिला। भाषाविज्ञ लोग जब उसे पढ़ते हैं तो मस्त होकर झूमने लगते हैं। यदि सच पूछो तो इस मस्नवी के उत्तम होने का मुख्य कारण यही है

कि संस्कृत में अर्थ-गौरव का जो आनंद था, उसे फैजी खूब समझता था। साथ ही फारसी भाषा पर भी उसका पूरा पूरा अधिकार था। वह सतर्क ग्रंथ के विचारों को इस ओर ले आया और ऐसी कोमलता तथा उत्तमता के साथ लाया कि वह मूल पुस्तकों से भी बढ़ गई। और फारसी में यह एक नई बात थी, इसलिये सबको भाई।

मुल्ला साहब कहते हैं कि इन दिनों में कविसम्राट् को आज्ञा मिली कि पंज-गंज लिखो। लगभग पाँच महीने में नल-दमन की रचना की। नल और दमन दोनों प्रेमी और प्रेमिका थे। इनकी कथा भारतवासियों में बहुत प्रसिद्ध है। चार हजार दो सौ से कुछ अधिक शेर हैं। वह ग्रंथ कुछ अशर्फियों के साथ बादशाह की सेवा में भेंट स्वरूप उपस्थित किया। बादशाह को बहुत अधिक पसंद आया। आज्ञा हुई कि एक सुलेखक इसे बहुत ही सुंदर अक्षरों में लिखे और एक चित्रकार इसमें अच्छे अच्छे चित्र बनावे। और नकीबखाँ रात के समय जो पुस्तकें सुनाते हैं, उनमें यह भी रखी जाय। सच बात तो यह है कि खुसरो शीरीं के उपरांत इस प्रकार मस्नवी इधर भारत में कदाचित् ही किसी ने लिखी हो।

फैजी ने पैगंबर साहब की प्रशंसा में जो कुछ कहा था, उस पर मुल्ला साहब जो बिगड़े थे, उसका हाल तो पाठक अभी पढ़ ही चुके हैं। लेकिन फिर भी मजा यह है कि उक्त वर्णन

के उपरांत आपने कवियों का वर्णन करते हुए नशाई कवि का भी हाल लिखा है। फिर उसकी धार्मिकता और सुशीलता आदि का वर्णन करके और उसकी कविताएँ उद्धृत करके फैजी की मिट्टी खराब की है। एक जगह पर लिखते हैं कि फैजी को अपने जिस कसीदे पर अभिमान है, वह यह है—

شکر خدا که عشق بتانست رهبرم
در ملت برهمن و در دین آزرم

अर्थात्—ईश्वर का धन्यवाद है कि मूर्त्तियों का प्रेम मेरा मार्गदर्शक है; और मैं ब्राह्मणों के साथ मेल रखनेवाला और आजुर (एक प्रसिद्ध मूर्त्तिपूजक और मूर्त्तिकार जो हजरत इब्राहीम के पिता थे) के संप्रदाय में हूँ।

निशाई ने इस पर लिखा है—

شکر خدا که پیرو دین پیغمبرم
حب رسول و آل رسول است رهبرم

अर्थात्—ईश्वर को धन्यवाद है कि मैं पैगंबर (मुहम्मद) के धर्म का अनुयायी हूँ और रसूल का प्रेम तथा रसूल की संतान मेरे लिये मार्गदर्शक है।

निशाई ने नल-दमन पर भी कुछ शेर लिखे थे। यद्यपि मुल्ला साहब निशाई कृत नल-दमन की इतनी प्रशंसा करके उसे अपने पसंद होने का सौभाग्य प्रदान कर चुके थे; लेकिन फिर भी न रह सके। निशाई ने जो कुछ लिखा था, उसमें

से भी ४५ शेर उद्धृत ही कर दिए और इस प्रकार दोनों में से निशाई की उत्तमता ही सिद्ध करके छोड़ी।

मरकज अदवार—सन् १००४ हि० में अब्बुलफजल लिखते हैं कि जब मैं उनकी कविताओं का अनुसंधान करके क्रम लगा रहा था, तब एक कापी दिखाई दी जो बहुत घसीट लिखी हुई थी। पता लगा कि बीमारी की दशा में वे प्रायः इसी पर कुछ लिखा करते थे। पढ़ी नहीं जाती थी। उनके पार्श्ववर्तियों और साथियों से कहा। वे लोग मिलकर बैठे और निराश होकर उठे। अंत में मैं प्रवृत्त हुआ। अपनी जानकारी और अक्ल से पढ़कर उसके भिन्न भिन्न विषयों के शेर अलग अलग लिखे। उन्हें क्रम से लगाकर उन पर शीर्षक लगाए। जिन बिखरी हुई कविताओं और गद्य लेखों से कविताप्रेमी पार्श्ववर्ती निराश हो गए थे, वे सब अब क्रम से लगकर तैयार हो गए। जब मैंने अपने भतीजे* को जीवन का शुभ समाचार सुनाया, तब मुझ पर प्रसन्नता और उस पर आश्चर्य छा गया। शेष तीनों ग्रंथों के भी कुछ कुछ शेर और कहानियाँ लिखी थीं जिनमें से कुछ अकबरनामे में दी हुई हैं। अब्बुलफजल ने लिखा है कि अनुमान है कि फारसी के समस्त

---

* कवि का काव्य उसका पुत्र हुआ करता है। इसी संबंध से फैजी के काव्य को अब्बुलफजल ने अपना भतीजा कहा है। और जब इधर उधर बिखरी हुई कविताओं को क्रम से लगाकर एक निश्चित रूप दिया, तो मानो उन्हें प्राण-दान दिया।

गद्य और पद्य मिलकर पचास हजार शेरों के लगभग होंगे। क्रम लगाने के समय यह भी ज्ञात हुआ कि उनके पचास हजार शेर ऐसे थे जो उस समय के लोगों की तबीयतों से बहुत उच्च तल पर थे; इसलिये उनको उन्होंने नदी में प्रवाहित कर दिया था। कुछ ग्रंथों में लिखा है कि सन् १००६ हि० में इसका क्रम लगाया गया था।

लीलावती—यह संस्कृत में गणित की एक पुस्तक थी। उसके मुँह पर से हिंदुस्तान का उबटन धोकर फारस का गुलगूना मला था।

महाभारत—बादशाह ने महाभारत का फारसी अनुवाद यह कहकर दिया था कि इस का गद्य भाग ठीक कर दो और उपयुक्त स्थानों पर इसे पद्य से अलंकृत कर दो। दो पर्व ठीक किए थे कि इतने में बादशाह ने और कई आवश्यक कार्य दे दिए, इसलिये इसका शृंगार असमाप्त रहा।

भागवत और अथर्व वेद—कहते हैं कि फैजी ने इनका भी फारसी भाषा में अनुवाद किया था। परंतु ग्रंथों से यह बात प्रमाणित नहीं होती। यह भी प्रसिद्ध है कि फैजी युवावस्था में काशी पहुँचा था और कुछ समय तक एक गुणी पंडित की सेवा में हिंदू बनकर रहा था। जब विद्या का अध्ययन कर चुका, तब विदा होते समय अपना भेद खोला। साथ ही क्षमा-प्रार्थना भी की। उस पंडित को दुःख हुआ; पर वह इनकी बुद्धिमत्ता और योग्यता से बहुत प्रसन्न था, इसलिये

वचन ले लिया कि गायत्री के मंत्र और चारों वेदों का अनुवाद फारसी में न करना। इस प्रवाद का भी ग्रंथों से कोई प्रमाण नहीं मिलता।

प्राचीन ग्रंथों की जो बातें पसंद आ जाती थीं, उन्हें बराबर एक स्थान पर लिखते जाते थे। वह भी गद्य और पद्य का एक बहुत अच्छा संग्रह प्रस्तुत हो गया था। मानों तरह तरह के फूलों के इत्र एक में सम्मिलित थे। शेख अब्बुलफजल ने इसकी भूमिका लिखी थी। (देखो अब्बुलफजल का विवरण)

इन्शाए फैजी—सन् १०३५ हि० में हकीम ऐन उलमुल्क के पुत्र नूर उद्दीन मुहम्मद अब्दुल्ला ने इसका क्रम लगाया था और इसका नाम लतीफै फैयाजी रखा था। इसके पहले खंड में वे निवेदनपत्र हैं जो दक्खिन के दूतत्व के समय बादशाह की सेवा में भेजे थे। ये निवेदनपत्र मानों बहुत ही विचारपूर्ण रिपोर्टें हैं जिनमें राजनीतिक बातें भरी हैं। इन की छोटी छोटी बातें भी हमें बड़ी बड़ी बातें बताती हैं। एक तो उनसे विलक्षण नम्रता और अधीनता प्रकट होती है। मुझे इसमें विशेष ध्यान देने योग्य यह बात मालूम होती है कि जब हम एशिया में हैं और हमारे स्वामी बहुत शौक से अभ्यर्थना और सम्मान के ग्राहक बनते हैं, तब हमें उससे लाभ उठाने में क्या आपत्ति होनी चाहिए। स्वामी की प्रसन्नता बहुत ही अमूल्य वस्तु है। यदि वह मूल्य स्वरूप थोड़े से शब्दों या

वाक्यों के व्यय करने पर प्राप्त हो और फिर भी हम उसे प्राप्त न कर सकें तो हमसे बढ़कर मूर्ख और अभागा कौन होगा! साथ ही यह बात भी है कि केवल एक अधीनता और नम्रता का विषय है जिसे वह सुलेखक कैसे कैसे प्रशंसनीय रंगों में उपस्थित करता है और व्यवहृत पदार्थों को भी कैसे सुंदर रूपों में सामने लाता है। बादशाह की सेवा में से अनुपस्थित होने का भी बहुत दुःख है। यह दुःख कैसी सुंदरता से व्यक्त किया गया है! और इसी के साथ यह भी कहा गया है कि जो सेवा मुझे इस समय प्रदान की गई है, वह बहुत अधिक विश्वसनीय और सम्मानवर्धक होने पर भी मेरी प्रकृति को, जो श्रीमान् पर ही आसक्त है, कैसी आफत सी मालूम होती है! इन सब बातों के उपरांत अपने मुख्य अभिप्राय पर आते हैं। पहले निवेदनपत्र में मार्ग की दशा का वर्णन है। अपने राज्य के जिन जिन नगरों में से होकर वह गया था, वहाँ का विवरण, हाकिमों की कारवाई और यदि आवश्यक हुआ तो मातहतों की सेवा का भी वर्णन किया है। जब दक्खिन पहुँचे, तब उस देश का सारा हाल लिखा। वहाँ की पैदावार और फल फूल आदि का वर्णन किया। वहाँ के कला-कुशलों, विद्वानों, दार्शनिकों, कवियों तथा दूसरे गुणियों का वर्णन किया और लिखा कि वे किसके शिष्य हैं और उनकी गुरु-परंपरा किन किन गुरुओं तक पहुँचती है। प्रत्येक की योग्यता, स्वभाव और रहन सहन आदि का वर्णन किया और

साथ ही अपनी सम्मति भी लिखी कि कौन पुरानी लकीर का फकीर है और कौन नई रोशनी से रोशन है। और इनमें से कौन कौन से लोग श्रीमान् की सेवा में रहने के योग्य हैं।

वहाँ से कुछ बंदरगाह भी पास पड़ते थे। जान पड़ता है कि फैजी ने जाते ही चारों ओर अपने आदमी भेज दिए थे। एक निवेदनपत्र में लिखते हैं कि मेरा आदमी समाचार लाया कि अमुक तिथि को फिरंगियों का जहाज आया। उसमें रूम देश के अमुक अमुक व्यक्ति हैं। वहाँ के ये समाचार ज्ञात हुए। अमुक जहाज आया। बंदर अब्बास से अमुक अमुक व्यक्ति सवार हुए। ईरान के अमुक अमुक व्यक्ति हैं। वहाँ के ये ये समाचार हैं। अब्दुल्लाखाँ उजबक से हरात में युद्ध हुआ। उसका यह विवरण है और यह परिणाम हुआ। भविष्य में यह विचार है। शाह अब्बास ने ये उपहार प्रस्तुत किए हैं। वह अमुक व्यक्ति को अपना दूत नियुक्त करके श्रीमान् की सेवा में भेजेगा। वहाँ अमुक अमुक व्यक्ति विद्वान् और गुणी हैं; आदि आदि।

इन निवेदनपत्रों से अकबर की तबीयत का भी हाल मालूम होता है कि वह किन किन बातों से प्रसन्न होता था; और इतना बड़ा सम्राट् होने पर भो विद्वानों तथा बुद्धिमानों के साथ कितनी बे-तकल्लुफी का बरताव करता था। ये लोग कैसी बातों से और किस प्रकार के परिहासों से उसे प्रसन्न करते थे। उनमें से एक बात पाठकों को स्मरण होगी

जिससे तत्कालीन राजनीति पर भी प्रकाश पड़ता है। अर्थात् शोया और सुन्नो का मनहूस और कमबख्त झगड़ा। पाठकों को ज्ञात है कि दरबार के सभी अमीर और विद्वान् बुखारा और समरकंद के थे और वे लोग कैसे जोरों पर चढ़े हुए थे। परंतु आप देखेंगे और समझेंगे कि इन लोगों ने उस मामले को कैसा हल्का कर दिया था कि बिलकुल दिल्लगी का मसाला हो गया था। ये निवेदनपत्र बहुत लंबे चौड़े हैं। इनमें जहाँ शेख अब्दुलफजल का जिक्र आया है, वहाँ उन्हें नवाब अल्लामी, नवाब अखवी और नवाब अखवी अल्लामी आदि लिखा है। कहीं कहीं अखवी शेख अब्दुलफजल भी लिखा है।

तफसीर सवातअ-उल-इलहाम—सन् १००२ हि० में इलहामी पुस्तक कुरान की यह टीका प्रस्तुत की थी जिससे पांडित्य के साथ साथ विचारशीलता का भी पता चलता है। सारी पुस्तक में कहीं नुकता या बिंदु नहीं आने पाया है। प्राय: एक हजार पद्यों की भूमिका है। उसमें अपने पिता का, भाइयों का और विद्याध्ययन का उल्लेख है। बादशाह की प्रशंसा में भी कसीदा लिखा है। समाप्ति में ८९ वाक्य दिए हैं। प्रत्येक वाक्य से एक अभिप्राय भी प्रकट होता है और उस ग्रंथ की समाप्ति की तारीख भी निकलती है। अनेक विद्वानों ने इस टीका पर आलोचना और विवेचन आदि लिखे हैं। शेख याकूब काश्मीरी ने अरबी भाषा में लिखी है। मियाँ अमानुल्ला सरहिंदी ने इसके आरंभ होने की तारीख कही

है। मुल्ला साहब ने भी दो तारीखें कही हैं और सम्मतिसूचक एक टिप्पणी लिखी है। लेकिन साथ ही उन्होंने अपने ग्रंथ में इन्हें जो जो खरी खोटी सुनाई हैं, वह पाठक पहले पढ़ ही चुके हैं। मुल्ला साहब यह भी कहते हैं कि लाहौर के मौलाना जमालउद्दीन ने इस टीका में बहुत संशोधन किया है और इसे बहुत कुछ ठीक कर दिया है। खैर; ये जो चाहें सो कहें। फैजी को अपनी इस रचना से बहुत अधिक प्रसन्नता हुई थी। इस संबंध में इन्होंने अपने अनेक विद्वान् मित्रों को बहुत से पत्र लिखे हैं। उन पत्रों से प्रकट होता है कि उनके लिखने के समय ये फूले अंगों नहीं समाते थे। उनके प्रत्येक वाक्य से प्रसन्नता प्रकट होती है। एक पत्र में लिखते हैं कि तारीख १० रबी उस्सानी सन् १००२ हि० को मेरी यह टीका समाप्त हुई है। लोग इसके लिये प्रशंसा-सूचक पद्य लिख रहे हैं और इसकी तारीखें कह रहे हैं। अहमदनगर में सैयद मुहम्मद शामी नामक एक महात्मा हैं। उन्होंने भी लिखी है; तुमने देखी होगी। मौलाना जहूरी ने कसीदा कहा है; देखा होगा। यहाँ भी लोगों ने खूब खूब चीजें लिखी हैं; आदि आदि।

मवारिद उल्कलिम—इसमें शिक्षा और उपदेश की बातें हैं जो बहुत ही छोटे छोटे वाक्यों में लिखी गई हैं। सच बात तो यह है कि उक्त टीका लिखने के उपरांत तबीयत में जोर, जबान में ताकत, भाषा में प्रवाह और शब्दों की संपन्नता

हो गई थी। वह जिस ढंग से चाहते थे, अपना अभिप्राय प्रकट कर देते थे। इसमें आयतों, हदीसों और विद्वानों के वचनों के संक्षेप में आशय लिखे गए हैं। इसमें भी नुकते नहीं हैं।

एक पत्र में लिखते हैं कि आरंभ में बादशाह सलामत के नाम एक निबंध लिखा था। उसमें भी नुकते नहीं हैं। आपके देखने के लिये भेजता हूँ। पर यह अरब के लड़कों का खेल-वाड़ है, साहित्यज्ञ की कृति नहीं है। यह निबंध अब कहीं नहीं मिलता।

काल्पीवाले शेख हसन के नाम बहुत से पत्र हैं। एक में लिखते हैं कि जब आप आवें तो मकसद उश्शोअरा (ग्रंथ) अवश्य लेते आवें, क्योंकि मैंने कवियों का जो विवरण लिखा है, उसकी समाप्ति इसी पर निर्भर है। और और पुस्तकों में से भी जो आप उचित समझें, चुनकर लेते आवें। जी चाहता है कि इसकी भूमिका में आपका नाम भी लिखूँ।

कवियों का यह विवरण भी नहीं मिलता। ईश्वर जाने समाप्त भी हुआ था या नहीं।

कुछ ग्रंथों में इनकी रचनाओं की संख्या १०१ लिखी है। परंतु मेरी समझ में यह संख्या ठीक नहीं है।

फैजी और अब्बुलफजल के धार्मिक विचार भी शेख मुबारक के धार्मिक विचारों की तरह रहस्यमय ही हैं। मुल्ला बदाऊनी ने जो कुछ लिखा, वह तो पाठकों ने देख ही लिया। कोई इन्हें प्रकृतिवादी बतलाता है और कोई सूर्य का

उपासक कहता है। मैं कहता हूँ कि इनके धार्मिक विचार जानने के लिये इनके रचित ग्रंथों को देखना चाहिए, परंतु आदि से अंत तक देखना चाहिए। वे पुकार पुकारकर कह रहे हैं कि ये पूरे एकेश्वरवादी थे। तब आखिर लोगों में उनकी इतनी बदनामी क्यों फैली? जरा भली भाँति विचार करने से इस प्रश्न का उत्तर मिल जायगा। अकबर के शासन के प्रारंभिक काल में और उससे पहले शेर शाह तथा हुमायूँ के शासन काल में मखदूम उल्मुल्क और उनके अनुयायियों के अधिकार कितने बढ़े हुए थे। पाठकों ने देख लिया होगा कि उनके आत्माभिमान और रूखी सूखी धार्मिकता के जोर संसार में और किसी को अपने सामने नहीं देख सकते थे। उनका यह भी दावा था कि केवल धार्मिक विद्या ही एक मात्र विद्या है; और वह विद्या केवल हम्हीं जानते हैं। वे यह भी कहते थे कि जो कुछ हम जानते और कहते हैं, वही ठीक है; और जो कोई हमारे कथन में मीन मेष करे, वह काफिर है। फैजी और अब्बुलफजल ने स्वयं देख लिया था और अपने पिता शेख मुबारक से भी सुन लिया था कि इन तर्कशून्य दावेदारों के कारण सारा जीवन कैसी विपत्ति से बीता था। पाठक यह भी जानते हैं कि मखदूम और सदर ने अपने अपने भाग्य के बल से देशों पर विजय प्राप्त करनेवाले बादशाहों के जमाने पाए थे और युद्ध तथा लड़ाई झगड़े के शासन-काल देखे थे। अब वह समय आया था कि अकबर को नए देशों पर विजय प्राप्त करने

की आवश्यकता कम थी और विजित प्रदेशों के शासन और रक्षा की विशेष आवश्यकता पड़ती थी। उन्हें यह भी स्मरण था कि जिस समय हुमायूँ ईरान में था, उस समय शाह तहमास्प ने एकांत में सहानुभूति प्रकट करने के समय उससे साम्राज्य के विनाश का कारण पूछा था। उस समय उसने इसका कारण भाइयों का विरोध और वैमनस्य बतलाया था। शाह ने पूछा था कि क्या प्रजा ने साथ नहीं दिया? हुमायूँ ने उत्तर दिया था कि वे लोग हमसे भिन्न जाति और भिन्न धर्म के हैं। शाह ने कहा था कि अबकी बार वहाँ जाओ तो उन लोगों से मेल करके ऐसी अपनायत बना लेना कि कहीं मध्य में विरोध का नाम ही न रह जाय। अकबर यह भी जानता था कि मखदूम आदि विद्वान् हर देग के चमचे हैं। हुमायूँ के शासन-काल में उसके सर्वेसर्वा थे। जब शेर शाह आया, तब उसी के हो गए। सलीम शाह आया तो उसी के हो लिए। और मजा यह कि वे लोग भी ये सब बातें जानते थे; बल्कि एकांत में बैठकर इस संबंध में बातचीत भी किया करते थे। कहते थे कि इसे मखदूम मत समझो। यह बाबर का पाँचवाँ पुत्र भारतवर्ष में बैठा है। परंतु फिर भी उसका सम्मान करने और भेंट तथा उपहार आदि देने में कोई कमी नहीं करते थे। अकबर यह भी समझता था कि इन विद्वानों ने बादशाह और उसके अमीरों को देश पर अधिकार करने के लिये बलिदान का पशु समझ रखा है। ये लोग शरम की

आड़ में रहकर शिकार करते हैं और शासन तथा अधिकार का आनंद लेते हैं। वह यह भी समझता था कि बिना इनके फतवे के किसी बादशाह को एक पत्ता हिलाने का भी अधिकार नहीं है। ये लोग निरपराधों की हत्या करा देते थे, वंश के वंश नष्ट करा देते थे। अकबर मुटुर मुटुर देखता था और चूँ नहीं कर सकता था। वह यह भी समझता था कि मेरे दादा बाबर को उसके देशवासी अमीरों की नमकहरामी ने ही पैतृक साम्राज्य से वंचित किया था। और जो इधर के तुर्क साथ हैं, वे खास नमकहरामी का मसाला हैं। ठीक समय पर धोखा देनेवाले हैं। वह यह भी देख रहा था कि बहुत से ईरानी शीया मेरे पिता के साथ भी थे और मेरे साथ भी हैं। वे प्राण निछावर करने के मैदान में अपने प्राणों को प्राण ही नहीं समझते। लेकिन इतना होने पर भी उन लोगों को दबकर और अपना संप्रदाय छिपाकर रहना पड़ता है। तुर्क अमीर उन्हें देख नहीं सकते। वह यह भी जानता था कि सब अमीर ईर्ष्या की मूर्त्ति हैं। आपस में भी कोई एक दूसरे के शुभचिंतक या सहायक नहीं हैं। वह बुद्धिमान् बादशाह ये सब बातें देख रहा था और मन ही मन सोच रहा था कि क्या करना चाहिए और किस प्रकार इन पुराने आदमियों का जोर तोड़ना चाहिए। इसलिये सन् ९८२ हि० में उसने एक सुंदर भवन बनवाया जिसका नाम चार ऐवान रखा और उसी को प्रार्थना-मंदिर नियत किया। वहाँ विद्वानों

की सभाएँ होती थीं। अकबर स्वयं भी उन सभाओं में सम्मिलित होता था और उनसे धार्मिक सिद्धांतों का पता लगाने का प्रयत्न करता था। आपस में लोगों में वाद विवाद कराता था। उनके झगड़ों पर कान लगाता था कि कदाचित् उनके विरोधों में से काम की कोई अच्छो बात निकल आवे! जो नवयुवक यथेष्ट विद्योपार्जन कर चुकते थे, उन्हें ढूँढ़ ढूँढ़कर अपने यहाँ रखता था और उन्हें उन सभाओं में सम्मिलित करता था। वह देखता था कि इस जमाने की जलवायु ने इन्हें पाला है। इनके दिमाग भी जवान हैं और अक्लें भी जवान हैं। संभव है कि इनका मिजाज जमाने के मुताबिक हो और ये समय की आवश्यकता के अनुसार कुछ उपाय आदि सोचते हों।

दरबार की यह अवस्था थी और जमाने की वह दशा थी। इतने में शेख फैजी पहुँचे। फिर मुल्ला बदायूनी और साथ ही अब्बुलफजल भी दरबार में प्रविष्ट हुए। इन सबकी योग्यताएँ एक ही शिक्षा का दूध पीकर जवान हुई थीं। ताजी ताजी विद्या थी, तबीयत में जवानी का जोर था, धारणा शक्ति प्रबल थी और विचार उच्च थे। तिस पर स्वयं बादशाह हिमायत करने के लिये तैयार थे। और सभी नवयुवक अवस्था में भी प्रायः समान ही थे। मुल्ला साहब का हाल देखिए कि सबसे पहले नंबर पर उनकी वीरता ने विजय प्राप्त की थी। बुड्ढे बुड्ढे विद्वानों से मुकाबला करने और टक्कर

लेने लगे। युवकों के भाषणों से पुरानी योग्यताएँ और महत्ताएँ इस प्रकार गिरने लगीं जैसे वृक्षों से पके हुए फल गिरते हैं। अनजान लोग मखदूम और सदर का पतन कराने का अपराध शेख मुबारक, फैजी और अब्बुलफजल पर लगाते हैं। परंतु वास्तविक बात यह है कि इनका कुछ भी अपराध नहीं था। अब संसार की प्रकृति पुराने भार सहन नहीं कर सकती थी। यदि ये लोग इनके हाथों से न गिरते तो आपसे आप गिर जाते।

प्रायः लोग इन पिता-पुत्रों पर प्रकृतिवादी और धर्मभ्रष्टता का अपराध लगाते हैं। परंतु यह विषय भी विचारणीय है। जिज्ञासु का क्या कर्तव्य है? यही कि प्रत्येक विचारणीय विषय का वास्तविक स्वरूप देखे और यह समझे कि विशिष्ट अवसरों और परिस्थितियों में क्या कर्तव्य है। शरअ की अधिकांश आज्ञाएँ प्रायः ऐसे देशों के लिये हैं जहाँ बहुत अधिक संख्या मुसलमानों की थी और अन्य धर्मों के अनुयायियों की संख्या बहुत ही कम थी। भला वही आज्ञाएँ ऐसे देशों में किस प्रकार प्रचलित हो सकती हैं, जहाँ इस्लाम धर्म के अनुयायियों की संख्या तो बहुत ही कम हो और निर्वाह उन लोगों के साथ करना पड़े जो दूसरी जाति और दूसरे धर्म के हों और जो संख्या, वैभव तथा बल में भी अधिक हों और फिर देश भी उन्हीं लोगों का हो? इतने पर भी यदि इन देशों में तुम शरअ की वे आज्ञाएँ प्रचलित करना

चाहते हो तो करो। बहुत अच्छी बात है। सबके सब शहीद हो जाओ। परंतु समझ लो कि ये शहीद कैसे शहीद होंगे।

भला यदि आज्ञाएँ समय के अनुसार न होतीं तो कुरान की आयतें रद्द क्यों की जातीं? यदि यह बात न होती तो खुदा क्यों कहता—"मैं जिसे चाहता हूँ, उसे नष्ट कर देता हूँ और जिसे चाहता हूँ, उसे रहने देता हूँ। सब बातों और आदमियों का संग्रहात्मक ग्रंथ मेरे ही पास (मुझमें) है।" अकबर आखिर विजयी और अनुभवी बादशाह था। उसने देश जीता भी था और वह उसका शासन भी करता था। वह अपने देश की आवश्यक बातों को भली भाँति समझता था। इसी लिये जब वह उन लोगों के किसी फतवे को अनुचित या हानिकारक समझता था, तो उसे रोक देता था। वह शरअ के अनुसार उत्तर चाहता था। उक्त विद्वान् पहले तो अरबी वाक्य या धर्मशास्त्र के पारिभाषिक शब्द कहकर उसे दबा लिया करते थे। परंतु अब यदि वे लोग सिद्धांत के विरुद्ध अथवा और किसी दृष्टि से कोई अनुचित बात कहते थे, तो अबुलफजल और फैजी कभी तो आयत और हदीस से, कभी प्राचीन विद्वानों के फतवे से, कभी विचार से और कभी तर्क से उन्हें तोड़ देते थे। और फिर बादशाह सदा इनका समर्थन करता था और विद्वान् लोग देखते रह जाते थे।

मुल्ला बदायूनी तो किसी का लिहाज करनेवाले नहीं हैं। जिसकी कोई बात अनुचित समझते हैं, उसकी मोंछ पकड़कर

खींच लेते हैं। वे काजी तवायसी के फतवों से नाराज होकर एक स्थान पर लिखते हैं कि अमुक विषय में शेख अब्बुलफजल का कहना बिलकुल ठीक है। प्रतिपक्षियों का और कोई बस तो चलता नहीं था। हाँ, इन पर और इनके पिता पर बहुत दिनों से जबानें खुली हुई थीं। इसलिये अब भी उन्हें बदनाम करते थे कि इन्होंने बादशाह को धर्मभ्रष्ट कर दिया है। मुल्ला साहब भी इनके पद और मर्यादा के कारण इनसे ईर्ष्या करते थे। यद्यपि वे मखदूम और शेख सदर दोनों से बहुत दुःखी और विरक्त रहते थे, परंतु इन लोगों के मामले में वे भी इनके प्रतिपक्षियों के ही सुर में सुर मिलाया करते थे। यह बात बिलकुल निश्चित ही है कि पिता और दोनों पुत्र विद्या और बुद्धि दोनों के विचार से चरम सीमा तक पहुँचे हुए थे। फतवों पर शेख मुबारक की मोहर ली जाती थी। यद्यपि युवावस्था के कारण इन लोगों को अभी यह पद प्राप्त नहीं हुआ था, लेकिन फिर भी यदि किसी विषय में तत्कालीन विद्वानों से इनका मतभेद हो तो यह कोई अस्वाभाविक अथवा अनुचित बात नहीं है। विद्वानों और धर्माचार्यों में प्रायः मतभेद रहता ही है। इस प्रकार का मतभेद सदा से चला आता है और उस समय भी था। यदि जिज्ञासु अपने चुनाव या संग्रह में कोई त्रुटि करे, तो भी वह पुण्य का भागी है। उस पर काफिर होने का अभियोग लगाना ठीक नहीं है।

हाँ, इनके रचित ग्रंथों को भी देखना आवश्यक है। कदाचित् उन्हीं से इनके धार्मिक विश्वासों का कुछ पता चले। शेख मुबारक का रचा हुआ कोई ग्रंथ इस समय हमारे हाथ में नहीं है। परंतु यह बात सिद्ध है कि इसे सब लोग मानते हैं। फैजी की कुरान की टीका और मवारिदउल्कलाम उपस्थित हैं। इनमें वह धार्मिक सिद्धांतों से बाल भर भी इधर उधर नहीं हुआ है। सभी विषय आयतों, हदीसों और विद्वानों के कथनों के अनुसार हैं। जबानी बातों में मुल्ला साहब जो कुछ चाहें, वह कह लें। परंतु उनके वास्तविक अभिप्राय के संबंध में न तो कोई उसी समय दम मार सकता था और न कोई अब ही कुछ कह सकता है। और यह बात तो स्पष्ट ही है कि यदि वे धर्मभ्रष्टता पर आ जाते तो जो चाहे लिख जाते। उन्हें डर ही किसका था!

अब्बुलफजल की सभी रचनाएँ और उक्तियाँ बहुत ही प्रशंसनीय हैं और अर्थ तथा विचार की दृष्टि से बहुत ही उच्च कोटि की हैं। जब मन में कुछ विचार होते हैं, तभी जबान से भी कुछ निकलता है। जो कुछ हाँड़ी में होता है वही कलछो में आता है। ये विचार उन पर इस प्रकार क्यों छाए रहे थे? इनकी रचनाओं की यह दशा है कि एक एक बात और एक एक बिंदु आस्तिकता और विचारशीलता की नदी बगल में दबाए हुए बैठा है। और जब तक जी जान सब इसी प्रकार के विचारों के लिये न्योछावर न कर दिया जाय, तब तक यह बात हो ही नहीं सकती। यदि इनकी रचनाओं को

केवल कवियों के विचार या शुद्ध निबंध-रचना और लेखन ही कहें तो भी इन पर अत्याचार करना है। भला यदि कोरी कविता ही करना अभीष्ट था, तो फिर इस प्रकार धार्मिक विचारों को लेने की क्या आवश्यकता थी? वे कल्पना के प्रदेश के बादशाह और उक्ति के प्रदेश के ईश्वर थे। जिन विषयों में चाहते, उन्हीं विषयों में अपने विचारों और अभि-प्रायों को रँग देते और सर्व साधारण से अपनी प्रशंसा करा लेते।

इन पर सबसे बड़ा अपराध यह लगाया जाता है कि इन्होंने अकबर को मुसलमान न रहने दिया। सब धर्मों के अनुयायियों के साथ उसका शांति और प्रेम का संबंध स्थापित करा दिया और उसे मिलनसारी के रंग में रँग दिया। ये लोग स्वयं तो प्रकृतिवादी थे ही, उसे भी प्रकृतिवादी बना दिया। मेरे मित्रो, यह तीन सौ बरस की बात है। कौन कह सकता है कि इन लोगों ने अकबर को रँग दिया या ये आज्ञाकारी सेवक स्वयं ही अपने स्वामी की राजनीतिक परिस्थिति में रँगे गए। यदि इन्हीं लोगों ने रँगा तो इनकी रँगनेवाली बुद्धि की प्रशंसा ही नहीं हो सकती। जो प्रतिपक्षी शरअ के फतवों के बहाने से हर दम लोगों की हत्या करने के लिये तैयार रहते थे, उनसे जान भी बचाई और उन पर विजय भी प्राप्त की।

वह कहते थे कि संसार में हजारों धर्म और संप्रदाय हैं। स्वयं परमेश्वर का क्या धर्म अथवा संप्रदाय है? यह स्पष्ट ही है कि समस्त संसार के विचार से कोई एक धर्म या संप्रदाय नहीं

है°। यदि यह बात न होती तो वह समस्त संसार का पालन क्यों करता? जो धर्म वास्तविक होता, वही रखता; और बाकी सबको नष्ट कर देता। जब यह बात नहीं है और वह समस्त विश्व का स्वामी है, तब बादशाह उसकी छाया है। उसका धर्म भी वही होना चाहिए। उसे उचित है कि ईश्वर के दरबार से उसे जो कुछ मिला है, उसे सँभाले। सब धर्मों तथा संप्रदायों का समान रूप से पालन पोषण तथा रक्षण और पक्ष आदि करे और इस प्रकार करे, मानों वही उसका धर्म है। अकबर इस सिद्धांत को खूब अच्छी तरह समझता था कि "ईश्वर का स्वभाव और प्रकृति ग्रहण करो।" और वे लोग साम्राज्य के हाथ थे, साम्राज्य की जबान थे, साम्राज्य के दिल और जान थे। उनका धर्म कोई किस प्रकार निश्चित कर सकता है? उस समय के विद्वान् अपने बल का अनुचित उपयोग करके अपने विरोधी धर्मों को नष्ट कर रहे थे। यदि इन लोगों ने उसे रोकने का प्रयत्न किया, तो क्या बुरा किया? किसी ने कहा है—

در حیرتم که دشمني کفر و دین چراست
از یک چراغ کعبه و بت خانه روشن‌است

अर्थात्—मुझे तो यही देख देखकर आश्चर्य हो रहा है कि दीन (इस्लाम) और (उसके विरोधी धर्मों) कुफ्र में शत्रुता क्यों और किस बात के लिये है। काबा और देवालय दोनों तो एक ही दीपक से प्रदीप्त हैं।

यह एक साधारण प्रणाली सी है कि लेखों आदि के आरंभ में परमात्मा का कोई नाम लिख देते हैं। इसमें संदेह नहीं कि वहाँ केवल अल्लाह अकबर लिखा जाता था। लेकिन पाठक ही इस बात का विचार करें कि फैजी और अब्बुलफजल, जो अरस्तू तथा अफलातून के दिमाग को भी बिना गूदे की हड्डी समझते थे, अकबर को कब ईश्वर समझते थे! वे लोग अच्छी और रंगीन तबीयत के कवि थे। जहाँ और हजारों चुटकुले थे, वहाँ उनके लिये यह भी एक चुटकुला था। जब अपने मित्रों के जलसों में बैठते होंगे तो आप ही ठहाके लगाते होंगे।

लोग इन पर शीया होने का भी अपराध लगाते हैं। लेकिन जिन बातों के कारण लोगों ने इन्हें शीया समझा, वे भी विचारणीय हैं। शेख मुबारक के विवरण में पाठक पढ़ ही चुके हैं कि उनके पल्ले पर भी यही कलंक लगाया गया था। बैरमखाँ के विवरण में भी आप लोग पढ़ ही चुके हैं कि बुखारा आदि के सरदार हुमायूँ से उसके धार्मिक विश्वासों की शिकायत करते थे। अकबर ने पिता की आँखें देखी थीं और सब विवरण सुने थे। वह स्वयं देख रहा था कि शीया लोग विद्वान् और अच्छे लेखक हैं, पूरे गुणी हैं। यदि उन्हें सैनिक अथवा राजनीतिक सेवाएँ दी जाती हैं तो वे जान लड़ा देते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि चारों ओर शत्रु तथा प्रतिपक्षी लोग ताक लगाए बैठे हैं। जिस समय फैजी और अब्बुलफज़ल दरबार में आए होंगे, उस समय शीया लोग भी दरबार में उपस्थित ही थे। फैजी आदि ने

पहले ही से सुन्नत संप्रदाय के विद्वानों के हाथों बहुत दुःख उठाए थे; और दरबार के अमीरों से भविष्य में और जो कुछ आपत्तियों आदि की आशंका थी, उसमें ये और शीया दोनों ही सम्मिलित थे। इसलिये बहुत संभव है कि फैजी और अब्बुल-फजल ने उन लोगों को गनीमत समझा होगा और उन लोगों ने इन्हें गनीमत समझा होगा। इसके अतिरिक्त ये लोग किताब के कीड़े थे और विद्या तथा कला के पुतले थे। उधर हकीम हमाम, हकीम अब्बुलफतह, मीर फतह उल्ला शीराजी आदि विद्या रूपी नदी की मछलियाँ थे। दोनों एक ही वर्ग के थे, इस कारण दोनों दलों में प्रेम उत्पन्न हो गया होगा। प्रत्येक विषय में एक दूसरे का समर्थन करते होंगे! इसके लिये फैजी और अब्बुलफजल के वे पत्र आदि पढ़ने चाहिएँ जो उन्होंने इन लोगों के नाम लिखे थे। उनमें हार्दिक प्रेम कैसे कैसे शब्दों और लिखावटों में टपकता है। जब हकीम अब्बुलफतह और मीर फतह उल्ला शीराजी मर गए थे, तब फैजी ने उनके मर-सिए कहे थे और ऐसे मरसिए कहे थे कि जिनकी पूरी पूरी प्रशंसा हो ही नहीं सकती। अब्बुलफजल ने अकबरनामे या पत्रों आदि में जहाँ इनके मरने का हाल लिखा है; वहाँ की पंक्तियाँ शोक का समूह दिखाई देती हैं। जब किसी जल्से में शीया और सुन्नी का वाद विवाद हुआ करता होगा, तो यह स्पष्ट ही है कि शीया लोग उस ज़माने में दबकर ही बोलते होंगे। ये दोनों भाई शीया लोगों के कथनों में और जोर

देते होंगे। अब इसे चाहे सज्जनता और शील का विचार कहो, चाहे विदेशियों की सहायता और रक्षा कहो, चाहे मन की प्रवृत्ति समझकर इन्हें शीया कह लो। और सबसे बड़ी बात तो यही है कि अकबर को स्वयं इस बात का ध्यान था कि इस संप्रदाय के लोग संख्या में कम हैं और दुर्बल हैं। ऐसा न हो कि बलवानों के हाथों से इन लोगों को कोई भारी हानि पहुँचे। और सच तो यह है कि शेख मुबारक का हाल देखो। वे स्वयं इस अभियोग के अभियुक्त थे। अकबर के शासन-काल के आरंभ में कई शीया लोगों की हत्या हुई और फतवों के साथ हत्या हुई। उनके समय में जो हत्याएँ हुईं, उनके संबंध में ये लोग बादशाह के मत का समर्थन करते रहे। इसलिये चाहे कोई इन्हें शीया समझे और चाहे सुन्नी कहे; चाहे प्रकृतिवादी कहे और चाहे धर्म-भ्रष्ट समझे। मिरज़ा जान जानाँ मजहर का एक शेर स्वर्गीय पूज्य प्रपिताजी के मुँह से सुना था; पर उनके दीवान में नहीं देखा। वे कैसे मजे में अपने विश्वास का सौंदर्य प्रकट करते हैं! कहते हैं—

ھوں تو سنی پر علي کا صدق دل سے ھوں غلام
خواہ ایراني کہو تم خواہ توراني مجھے

अर्थात्—यद्यपि मैं सुन्नी हूँ, परंतु फिर भी सच्चे दिल से हजरत अली का दास हूँ। चाहे तुम मुझे ईरानी कह लो और चाहे तूरानी।

धार्मिक विश्वास के संबंध में मेरा एक विचार है। ईश्वर जाने मित्रों को पसंद आवे या न आवे। जरा विचार करके देखो, इस्लाम एक, खुदा एक, पैगंबर एक। शीया और सुन्नी का झगड़ा एक खिलाफत के पद के संबंध में है। और इस घटना को हुए आज लगभग तेरह सौ बरस हो चुके। वह एक हक था। सुन्नी भाई कहते हैं कि जिन्होंने लिया, अपना हक लिया। शीया भाई कहते हैं कि हक और लोगों का था। उन लोगों का नहीं था, जिन्होंने लिया। यदि पूछा जाय कि जिन लोगों का हक था, उन लोगों ने स्वयं अपना वह हक क्यों नहीं लिया, तो उत्तर यही देंगे कि उन्होंने संतोष किया और चुपचाप बैठ गए। यदि पूछा जाय कि जिन लोगों ने वह हक लिया, उनसे छीनकर तुम उन लोगों को दिलवा सकते हो जिनका हक था, तो उत्तर मिलेगा कि नहीं। फिर जिन लोगों ने अपना हक नहीं लिया, क्या वे इस समय उपस्थित हैं? नहीं। दोनों पक्षों में से कोई उपस्थित है? नहीं। अच्छा जब यही अवस्था है, तब फिर आज तेरह सौ वर्षों के बाद इस बात को इतना अधिक क्यों खींचा ताना जाय कि जाति में एक बड़ा भारी उपद्रव खड़ा हो जाय; जहाँ चार आदमी बैठे हों, वहाँ संग साथ का आनंद जाता रहे; काम चलते हों तो बंद हो जायँ; मित्रता हो तो शत्रुता हो जाय? संसार का समय अच्छे कामों से हटकर लड़ाई झगड़े में लगने लगे, जाति की एकता का बल टूट जाय और अनेकानेक

हानियाँ गले पड़ जायँ। भला ऐसा काम करने की क्या आवश्यकता है? मान लिया कि तुम्हारा ही कथन सर्वथा ठीक है। यदि उन लोगों ने संतोष किया और वे चुपचाप बैठ रहे तो यदि तुम भी उनके अनुयायी हो तो तुम भी संतोश धारण करो और चुपचाप बैठ जाओ। अनुचित बातें मुँह से निकालना और भठियारिनों की तरह गाली गलौज बकना क्या कोई बुद्धिमत्ता की बात है? यह कैसा मनुष्यत्व है, कैसी सभ्यता है, और कैसा शील है!

तेरह सौ वर्ष के झगड़े की बात एक भाई के सामने इस प्रकार कह देना कि जिससे उसका दिल दुखे, बल्कि जलकर राख हो जाय, भला इसमें कौन सी खूबी है! मेरे मित्रो, आरंभ में यह एक जरा सी बात थी। ईश्वर जाने किन किन लोगों ने आवेश में आकर किन किन कारणों से तलवारें चलाईं और लाखों के खून बह गए। खैर, अब वह खून ठंढे हो गए। दुनिया के चक्कर ने पहाड़ों धूल और जंगलों मिट्टी उन पर डाल दी। उन झगड़ों की हड्डियाँ उखाड़कर फिर से विरोध करने और अपनायत में अंतर डालने की क्या आवश्यकता है? और देखो, इस वैमनस्य को तुम जबानी बातें मत समझो। यह बहुत ही नाजुक मामला है। जिनके अधिकारों के लिये आज तुम झगड़े खड़े करते हो, वे स्वयं तो शांत हो गए। भाग्य की बात है। इस्लाम के प्रताप को एक आघात पहुँचना था, वही उसे नसीब हुआ। एक वर्ग में फूट पड़ गई। एक

के दो टुकड़े हो गए ! जो पूरा बल था, वह आधा हो गया। और तेरह सौ बरस के अधिकार के लिये आज तुम लोग झगड़ते हो। तुम नहीं समझते कि इन झगड़ों को फिर से खड़ा करने में तुम्हारे छोटे से वर्ग और दीन समाज के हजारों हकदारों के हक बरबाद होते हैं। बने हुए काम बिगड़ जाते हैं, व्यापार व्यवसाय नष्ट होते हैं, लोगों को रोटियों के लाले पड़ जाते हैं; भावी पीढ़ियाँ विद्या, योग्यता और गुण आदि से वंचित रह जाती हैं। मेरे शीया भाई इसके उत्तर में अवश्य यह कहेंगे कि प्रेम के आवेश में प्रतिपक्षियों के लिये मुँह से कुवाच्य निकल जाते हैं। इसके उत्तर में केवल यही बात समझ लेना यथेष्ट है कि यह प्रेम का आवेश विलक्षण है जो दो शब्दों में ही ठंढा हो जाता है; और वह मन भी विलक्षण है जो इसका मर्म और औचित्य अनौचित्य नहीं समझता। हमारे पथप्रदर्शकों ने जो बात नहीं की, वह बात हम लोग करें और जाति में झगड़े का मुनारा स्थापित करें। यह विलक्षण आज्ञाकारिता और अनुकरण है !

तुम जानते हो कि प्रेम क्या पदार्थ है ? यह एक प्रकार की रुचि है जो संयोग पर निर्भर करती है। तुम्हें एक चीज़ भली लगती है, पर वही चीज दूसरे को भली नहीं लगती। इसके विपरीत क्या तुम यह चाहते हो कि जो चीज तुम्हें भली लगती है, वही चीज और सब लोगों को भी भली लगे ? भला यह बात कैसे चल सकती है ! अब्बुलफजल ने एक स्थान

पर कहा है और बहुत अच्छा कहा है कि एक आदमी है जो तुम्हारे विरुद्ध पथ पर चलता है। या तो वह ठीक रास्ते पर है और या गलत रास्ते पर। यदि वह ठीक रास्ते पर है तो तुम उसका उपकार मानते हुए उसका अनुकरण करो। यदि वह गलत रास्ते पर है या अनजान है अथवा जान बूझकर ही उस गलत रास्ते पर चलता है या अनजान होने के कारण अंधा है, तो वह दया का पात्र है। उसका हाथ पकड़ो। यदि वह जान बूझकर उस रास्ते पर चलता है तो डरो और ईश्वर से त्राण माँगो। क्रोध कैसा और झगड़ना कैसा !

मेरे गुणी मित्रो, मैंने स्वयं देखा है और प्राय: देखा है कि अयोग्य दुष्ट लोग जब अपने प्रतिपक्षी की योग्यता पर विजय प्राप्त करना अपनी शक्ति के बाहर देखते हैं तब अपना जत्था बढ़ाने के लिये धर्म और संप्रदाय का झगड़ा बीच में डाल देते हैं; क्योंकि इससे केवल शत्रुता ही नहीं बढ़ती, बल्कि कैसा ही योग्य और गुणी प्रतिपक्षी हो, उसकी मंडली टूट जाती है और उन दुष्टों की मंडली बढ़ जाती है। संसार में ऐसे अनजान और नासमझ बहुत हैं जो बात तो समझते नहीं और धर्म या संप्रदाय का नाम सुनते ही आपे से बाहर हो जाते हैं। भला सांसारिक व्यवहारों में धर्म का क्या काम ?

हम सब लोग एक ही गंतव्य स्थान के यात्री हैं। संयोग-वश संसार के मार्ग में एकत्र हो गए हैं। रास्ते का साथ है। यदि अच्छी तरह मिलनसारी के साथ चलोगे, मिल जुलकर

चलोगे, एक दूसरे का भार उठाते हुए चलोगे, सहानुभूति-पूर्वक एक दूसरे का काम बँटाते हुए चलोगे तो हँसते खेलते रास्ता कट जायगा। यदि ऐसा न करोगे और उन्हीं झगड़ालुओं की तरह तुम भी झगड़े खड़े करोगे तो हानि उठाओगे। स्वयं भी कष्ट पाओगे और अपने साथियों को भी कष्ट दोगे। परमेश्वर ने जो सुखपूर्ण जीवन दिया है, वह दुःखमय हो जायगा।

धर्म के विषय में अँगरेजों ने बहुत अच्छा नियम रखा है। उनमें भी दो संप्रदाय हैं और दोनों में घोर विरोध है। एक तो प्रोटेस्टेंट हैं और दूसरे रोमन कैथोलिक। दो मित्र हैं, या दो भाई हैं; बल्कि कभी कभी तो पति और पत्नी के धर्म भी भिन्न भिन्न हुआ करते हैं। दोनों एक ही घर में रहते हैं और एक ही मेज पर भोजन करते हैं। हँसना, बोलना, रहना, सहना सब एक ही जगह। धर्म की तो कहीं चर्चा भी नहीं। एतवार को अपनी अपनी पुस्तकें उठाईं और एक ही बग्घी में सवार हुए। बातचीत करते चले जाते हैं। एक का गिरजा रास्ते में आया। वह वहीं उतर पड़ा। दूसरा उसी बग्घी में बैठा हुआ अपने गिरजे को चला गया। गिरजा हो चुका तो वह अपनी बग्घी में सवार होकर आया। अपने मित्र के गिरजे पर पहुँचा; उसे सवार करा लिया और घर पहुँचे। उसने अपनी किताब अपनी मेज पर रख दी, मित्र ने अपनी किताब अपनी मेज पर रख दी। फिर वही हँसना, बोलना

श्रौर काम धंधा चल पड़ा। इस बात की चर्चा भी नहीं कि तुम कहाँ गए थे श्रौर वहाँ क्यों नहीं गए थे जहाँ हम गए थे।

मैं भी कहाँ था श्रौर कहाँ श्रा पड़ा। कहाँ श्रब्बुलफजल का हाल श्रौर कहाँ शीया सुन्नी का झगड़ा। लाहौलवला कूवत इल्ला बिल्ला! मुल्ला साहब की बरकत ने श्राखिर तुझे भी लपेट ही लिया।

वास्तविक बात यह है कि श्रब्बुलफजल श्रौर मुल्ला साहब दोनों साथ ही साथ दरबार में श्राए थे। दोनों को बराबर सेवाएँ श्रौर पद मिले थे। मुल्ला साहब ने बीस्ती के पद को कुछ समझा ही नहीं। इस सैनिक पद से श्रपनी विद्या श्रौर योग्यता की हतक समझी; इसलिये उसे ग्रहण नहीं किया। पर श्रब्बुलफजल ने उचित धन्यवादपूर्वक उसे ग्रहण कर लिया। मुल्ला साहब के श्रस्वीकृत करने से बादशाह को बुरा लगा तो मुल्ला साहब ने उसकी परवाह नहीं की। वाद विवाद श्रौर शास्त्रार्थ की विजय श्रौर श्रपने श्रनुवाद के कागजों को देख देखकर प्रसन्न होते रहे। परंतु बेचारा शेख श्रपनी श्रसमर्थता समझ गया। बाल्यावस्था से बल्कि दो पीढ़ियों से उसे दुर्द-शाएँ भोगने का जो श्रभ्यास हो रहा था, उसे वह यहाँ भी काम में लाया। परिणाम यह हुश्रा कि वह कहीं का कहीं निकल गया श्रौर मुल्ला साहब देखते के देखते रह गए। वे दोनों भाई श्रपनी सेवाश्रों के बल से बादशाह के खास मुसा-हब बन गए श्रौर साम्राज्य की जबान हो गए। ये मसजिदों

में प्रायश्चित्त करते फिरे। घर में बैठकर बुढ़ियों की तरह कोसते काटते रहे। बस इनके लेखों का मुख्य कारण वही सहपाठिता का दु:ख था जो स्याही बन बनकर सफेद कागज पर टपकता था और विवश होकर गिरता था। एक किताब के पढ़नेवाले, एक ही पाठ याद करनेवाले। तुम राजमंत्री का पद पाओ और बादशाह के परामर्शदाता बन जाओ; और हम वही मुल्लाने के मुल्लाने !

जरा कल्पना करके देखो। उदाहरणार्थ मुल्ला साहब किसी समय उनके यहाँ गए। और वह राजा मानसिंह, दीवान टोडरमल आदि साम्राज्य के स्तंभों के साथ कुछ परामर्श और मंत्रणा कर रहे हैं। इनका तो आशीर्वाद भी वहाँ स्वीकृत न होता होगा। उनका दरबार लगा होता होगा और इनका वहाँ तक पहुँचना भी कठिन होता होगा। वह जिस समय और जिस स्थान पर हकीम अब्दुल फतह, हकीम हुम्माम और मीर फतहउल्ला शीराजी आदि से बैठे बातें करते होंगे, उस समय और उस स्थान पर इन्हें उन मसनदों पर बैठना भी न मिलता होगा। यदि उनके साथ ये विद्या विषयक वाद विवाद में सम्मिलित होते होंगे तो इनकी बातों का कोई आदर न होता होगा। यदि यह जोर देते होंगे तो आखिर तो थे उनके घर के शिष्य ही थे; वे दोनों भाई उसी प्रकार हँसकर टाल देते होंगे जिस प्रकार एक उच्च पदस्थ आचार्य अपनी पाठशाला के विद्यार्थियों को बातों बातों में

उड़ा देता है। यही बातें दीयासलाई बनकर इनका हृदय सुलगाया करती होंगी और हर दम इनके क्रोध के दीपक की बत्ती उसकाती होंगी जिसके धूएँ से पुस्तकों के पृष्ठ काले हो गए हैं। यही कारण है कि इन्होंने फैजी को अनेक स्थानों पर सितम-जरीफ (निर्दय और दुष्ट ठठोल) कहा है।

मेरे मित्रो, इनकी बहनों और भाइयों के विवाह अमीरों के यहाँ और राजकुलों में होने लगे; और यहाँ तक कि स्वयं बादशाह भी इनके घर पर चला आता था। मुल्ला साहब को यह बात कहाँ नसीब थी !

स्वभाव

फैजी की रचनाओं से तथा उन विवरणों से, जो दूसरे ग्रंथकारों तथा इतिहासलेखकों ने लिखे हैं, पता लगता है कि वह सदा प्रफुल्लित और प्रसन्नचित्त रहता होगा और सदा हँसता बोलता रहता होगा। शोखी और दिल्लगीबाजी इसकी बातों पर फूल बरसाती होगी और चिंता, दुःख तथा क्रोध आदि को इसके पास कम आने देती होगी। यह बात अब्बुलफजल के ढंग से कुछ अंतर रखती है। उन पर गंभीरता और बड़प्पन छाया हुआ है। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो जान पड़ेगा कि इनके शेर कैसे प्रफुल्लित हैं। पत्रों आदि को देखो तो ऐसा जान पड़ता है कि मानों बे-तकल्लुफ बैठे हुए हँस रहे हैं और लिखते जाते हैं। साथ ही जगह जगह पर चुटकुले भी

छोड़ते जाते हैं और चोज भरी बातें लिखते जाते हैं। मुल्ला साहब ने भी कई जगह लिखा है कि एक सभा में अमुक व्यक्ति से अमुक विषय पर मुझसे वाद विवाद हुआ। उसने यह कहा और मैंने यह कहा। शेख फैजी भी वहाँ उपस्थित था। निर्दयतापूर्ण परिहास करने का तो उसका स्वभाव ही है। वह भी उसी के पक्ष में मिला हुआ था और उसकी ओर से बातें करता था। और यह बात ठीक भी जान पड़ती है। मैंने भी प्राय: सभाओं के विवरणों में पढ़ा है कि शेख फैजी निस्संदेह हँसी हँसी में सब कुछ कह जाते थे और बड़ी बड़ी बातों को हँसी में टाल देते थे।

पर मुल्ला साहब उनके इस गुण पर भी जगह जगह मिट्टी डालते हैं। एक स्थान पर कहते हैं कि वह सदा से ही निर्दयतापूर्ण परिहास किया करता था। वह खूब बातचीत करने और चहल पहल रखने के लिये मित्रों को एकत्र करने की हृदय से आकांक्षा रखता था। मगर सिर कुचले हुए और दिल बुझे हुए रखता था।

शेख फैजी हृदय के बहुत उदार थे और अतिथियों का बहुत अधिक आदर सत्कार करते थे। उनका द्वार सदा अपने-पराए, शत्रु-मित्र सबके लिये खुला रहता था और सब लोगों को दस्तरख्वान बिछा हुआ तैयार मिलता था। जो गुणी लोग आते थे, उन्हें यह अपने ही घर में उतारते थे। स्वयं भी उनको बहुत कुछ देते थे और बादशाह की सेवा में भी उप-

स्थित करते थे। या तो उन्हें सेवाएँ दिलवा देते थे और या उनके भाग्य में जो कुछ होता था, वह इनाम इकराम दिलवा देते थे। अरफी भी जब आए थे, तब पहले पहल इन्हीं के घर में ठहरे थे। उस समय की पुस्तकों से यह भी पता चलता है कि सुशीलता, सज्जनता और प्रफुल्लहृदयता हर दम गुणों के गुलदस्तों से इनका दीवानखाना सजाए रखती थी। साथ ही आराम के भी इतने सामान होते थे कि घड़ी भर की जगह ख्वाहमख्वाह पहर भर बैठने को जी चाहता था। मुल्ला याकूब सेरफी काश्मीरी (जिन्होंने इनकी कुरान की बिना नुकतेवाली टीका पर अरबी में और टीका लिखी है) जब काश्मीर चले गए, तब वहाँ से उन्होंने मुल्ला साहब को कई पत्र लिखे थे। एक पत्र में बहुत प्रेम और शौक़ की बातें लिखी हैं और यहाँ की संगतों को स्मरण करके कहते हैं कि जब नवाब फैयाजी के खसखाने में दोपहर की गरमी में सीतलपाटी के फर्श पर, जो काश्मीर की वायु से भी अधिक शीतल है, बैठकर बरफ का पानी पीओ और उनकी बढ़िया बढ़िया चोज भरी बातें सुनो तो आशा है कि मुझे भी स्मरण करोगे।

(इसके उपरांत हजरत आजाद ने मरकज अदवार की भूमिका, सुलेमान और बल्कैस की मस्नवी, अकबर के ऊँट पर सवार होने, उसके अहमदाबाद जाने, वहाँ पहुँचने और गुज-राती सिपाहियों से लड़ने आदि के संबंध की बहुत सी फारसी कविताएँ उद्धृत की हैं; और खानदेश से फैजी ने जो प्रार्थनापत्र

बादशाह की सेवा में भेजे थे, उनमें से दो मूल पत्र फैजी की रचना और लेख-प्रणाली के नमूने के तौर पर उद्धृत किए हैं।)

इन निवेदनपत्रों के पढ़ने से कई बातें मालूम होती हैं।

(१) इनकी भाषा बहुत ही साफ और चलती हुई होती है और बातों में बहुत ही मिठास है।

(२) उस समय सेवक अपने बादशाह के सामने कितनी इज्जत और अदब के साथ अपना अभिप्राय प्रकट करते थे; और साथ ही उसमें प्रेम और मन को आकृष्ट करनेवाला प्रभाव कितना अधिक भरते थे, जिसकी यदि हम निंदा करना चाहें तो केवल इतना कहना यथेष्ट है कि यह खुशामद है। लेकिन मैं कहता हूँ कि यह खुशामद ही सही; पर यह खुशामद भी जान बूझकर नहीं थी। उनके हृदय उपकारों के भार से इतने अधिक पूर्ण होते थे कि सभी प्रकार के विचार खुशामद और दुआ होकर दिल से छलकते थे।

(३) इन पत्रों को पढ़ने से यह भी मालूम होता है कि लिखनेवाला बहुत प्रफुल्लचित्त और प्रसन्नहृदय है। पत्र लिख रहा है और मुस्करा रहा है।

(४) यदि विचार करो तो यह भी जान पड़ेगा कि उन दिनों जो सेवक कोई काम करने के लिये जाते थे, तो चलने के दिन से लेकर उद्दिष्ट स्थान तक पहुँचने तक अपने स्वामी के जानने योग्य जितनी उपयोगी और काम की बातें होती थीं, उन सबका पूरा पूरा विवरण लिख भेजना भी उनकी

सेवा और कर्तव्य में सम्मिलित होता था। यह नहीं था कि जिस कार्य के लिये नियुक्त हुए, उसी काम की नीयत और उसी पड़ाव की सीध बाँधकर चले गए। पहुँचकर एक रिपोर्ट भेज दी कि वह काम इस प्रकार हो गया और बस। और इसका कारण भी स्पष्ट है।

(५) इस निवेदनपत्र में, तथा अन्य निवेदनपत्रों में भी, तूरान के बादशाह अब्दुल्ला उजबक, ईरान के बादशाह शाह अब्बास और रूम के बादशाह के समाचारों पर फैजी बहुत अटकते हैं। इससे जान पड़ता है कि इन लोगों का अकबर को बहुत ध्यान रहता होगा। अकबर केवल सिंध, काबुल और काश्मीर के घेरे में ही नहीं रहता था, बल्कि समुद्र का फेर खाकर और और देशों का भी पता लगाता रहता था। फैजी का केवल एक लेख, जो किसी ने उसकी सुंदर लेखन-शैली के विचार से संगृहीत कर दिया था, ऐसी ऐसी बातें बतलाता है। और नहीं तो जो और अमीर उधर की सीमाओं-वाले इलाकों पर थे, ये बातें उनके कर्तव्यों का अंग होंगी। परंतु दुःख है कि उनके लेख ऐसे नष्ट हो गए कि हमें उन तक पहुँचने की आशा भी नहीं हो सकती।

(६) तुम्हें स्मरण होगा कि अकबर का जहाजों का शौक इसी से प्रमाणित होता है कि उसे समुद्र-तटों और बंदरगाहों पर अधिकार प्राप्त करने का बहुत ध्यान रहता था और वह सब प्रकार से अपना सैनिक बल बढ़ाता था। उसका यह

शौक केवल बादशाही शौक नहीं था, बल्कि शासन-व्यवस्था और राजनीति पर निर्भर करता था।

(७) फैजी मार्ग में पड़नेवाले नगरों का गजेटियर भी लिखता जाता है। कुछ नगरों की उस समय की अवस्था का वर्णन करता है। कुछ प्रसिद्ध स्थानों का इतिहास लिखता जाता है। यह भी लिख देता है कि किस स्थान पर कौन सी चीज पैदा होती है और कहाँ क्या चीज अच्छी बनती है। इसमें मनो-रंजन भी चला चलता है। "कपड़े के अमुक कारखाने में हुजूर के लिये पगड़ियाँ और पटके बन रहे हैं।" परंतु वही बातें लिखता है जो अभी तक बादशाह के पास नहीं पहुँचीं। प्रत्येक नगर के विद्वानों, पंडितों और गुणियों का हाल लिखता है और उनकी प्रशंसा में ऐसे शब्दों का उपयोग करता है, जिनसे उनके वास्तविक गुण प्रकट हो जायँ और यह पता लग जाय कि वे ढब के हैं या नहीं; और यदि हैं तो किस सीमा तक हैं; अथवा वे कितनी कदर करने के योग्य हैं। प्रत्येक नगर की प्रसिद्ध दरगाहों का हाल लिखता है; और उसमें जहाँ स्थान पाता है, परिहास का गरम मसाला भी छिड़कता जाता है। उसके विवरणों से आज तीन सौ वर्ष बाद भी हमें यह पता चलता है कि अकबर किन किन बातों का आकांक्षी और प्रेमी था और उसका शासन-काल कैसा था।

(८) इसके शेरों और चुटकुलों आदि को पढ़कर अक-बर की प्रकृति का चित्र सामने आ जाता है। पता चल जाता

है कि वह कैसे विचारों का बादशाह था। यह भी पता चलता है कि जब दरबार के अमीर और स्तंभ उसके चारों ओर एकत्र होते होंगे तो इसी प्रकार की बातों से उसे प्रसन्न करते होंगे।

(९) पाठकों ने शीया सुन्नी के चुटकुले भी पढ़े। उनसे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि भूल उन्हीं लोगों की है जो कहते हैं कि फैजी और अब्बुलफजल शीया थे अथवा शीया लोगों के पक्षपाती थे। ये लोग जब अकबर के आस पास बैठते होंगे और शीया सुन्नी के झगड़े देखते होंगे तो हँसते होंगे; क्योंकि असल मामला तो यह समझे ही हुए थे। जानते थे कि बात एक ही है। कम हौसले और संकुचित दृष्टिवाले बातूनी जिद्दियों और भूखे पुलावखोरों ने ख्वाहमख्वाह के झगड़े खड़े कर दिए हैं।

(१०) इसके ओजस्वी लेखों से और विशेषत: उस पत्र से, जो मुल्ला साहब की सिफारिश में लिखा गया था, यह बात स्पष्ट रूप से प्रकट होती है कि जो लोग इनके विरोधी थे, बल्कि इनसे शत्रुतापूर्ण विरोध करते थे, उनके साथ भी इनका विरोध केवल इस बात पर समाप्त हो जाता था कि खैर, तुम्हारी यह सम्मति है, हमारी यह सम्मति है। इनका मतभेद इन्हें शत्रुता, ईर्ष्या और प्रतिकार की सीमा तक नहीं पहुँचाता था; इसी लिये ये सब प्रकार की संगतों में प्रसन्न होकर बैठते थे और वहाँ से प्रसन्न होकर उठते थे। ईश्वर हमें भी प्रसन्न रहनेवाली और प्रसन्न रखनेवाली प्रकृति प्रदान करे।

शेख अब्दुलकादिर बदायूनी इमाम-अकबर शाह

ये इमाम-अकबर शाह कहलाते थे और अपने समय के विद्वानों में अपना प्रधान स्थान रखते थे। अनुवाद और रचना में अकबर की आज्ञाओं का बहुत ही सुंदरता तथा उत्तमता से पालन करते थे। इसी सेवा की बदौलत स्पष्ट वर्णन के पृष्ठों में इनके विचार-रत्न जगमगाए और इनकी बहुसंख्यक रचनाएँ अपनी उत्तमता के कारण अल्मारी के सर्वप्रधान स्थान पर अधिकृत हो गईं। भारतवर्ष का विवरण देते हुए जो इतिहास लिखा है, वह अकबर के दरबार और दरबारियों के विवरण के विचार से ऐतिहासिक शिक्षाओं का बहुत उत्तम आदर्श है। इनके लेखों से प्रकट होता है कि ये राजनीतिक समस्याओं और दुनिया के कारबार को खूब समझते थे।

इन फाजिल महोदय में बड़ा गुण यह है कि प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति, स्वभाव और रंग ढंग आदि चुनते हैं और उनका ऐसी सुंदरता से वर्णन करते हैं कि जब पढ़ो, तब नया आनंद आता है। अनुरागी लोग देखेंगे और जहाँ तक संभव होगा मैं दिखलाता जाऊँगा कि वह दरबारी अमीरों में से जिसके पास से होकर निकलते हैं, एक चुटकी जरूर लेते जाते हैं। दरबार के अमीरों के साथ इनका इतना बिगाड़ न होता; परंतु इसका कारण यह था कि इन्होंने मुल्लापन के घेरे से पैर बाहर निकालना नहीं चाहा और उसी, को दुनिया का अभिमान और दीन का वैभव समझा। इन्हें कभी तो अशिक्षित अथवा

कम योग्यतावाले लोग उच्च पदों पर प्रतिष्ठित दिखाई दिए और यह बात इन्हें अच्छी नहीं लगी। या प्रायः ऐसे छोटे लोग दिखाई दिए जो इनके सामने बड़े हुए अथवा इनकी बराबरी से निकलकर आगे बढ़ गए। कभी बाहर से आए और भिन्न भिन्न सेवाओं की सुनहरी मसनदों पर बैठकर वैभव तथा प्रभुता से संपन्न हो गए; और यह मुल्ला के मुल्ला ही रहे। ऐसे लोगों को उनका पांडित्य अवश्य ही कुछ न समझता होगा; बल्कि वह चाहता होगा कि ये लोग सदा मेरा अदब किया करें। इधर वैभव और अधिकार को इतनी समझ कहाँ! मैंने स्वयं इस बात का अनुभव किया है कि ऐसे अवसरों पर दोनों ओर से त्रुटियाँ और खराबियाँ होती हैं। विद्वानों के लिये तो उन पर क्रोध करने के लिये और किसी कारण की आवश्यकता ही नहीं है। केवल यही यथेष्ट है कि धनवानों की सवारी पूरे ठाठ बाट के साथ एक बार उनके बराबर से होकर निकल जाय। यदि वे लोग अपने काम धंधे की चिंताओं से ग्रस्त और घबराए हुए भी जाते हों, तो भी विद्वान् लोग यही कहते हैं कि वाह रे तुम्हारा अभिमान! तुम आँख भी नहीं मिलाते कि हम सलाम ही कर लें! बन तो गए बड़े भारी अमीर, पर हम दो पंक्तियाँ लिख दें तो तुम उन्हें पढ़ भी सकोगे? उधर संपन्न लोगों में भी कुछ ऐसे तुच्छ विचार के लोग होते हैं जो किसी उच्च पद पर पहुँचकर यह समझने लगते हैं कि हमें सलाम करना विद्वानों का परम धर्म और कर्तव्य है। बल्कि

वे इतने पर ही संतोष नहीं करते और चाहते हैं कि ये लोग आ आकर हमारी दरबारदारियाँ करें। ऐसे लोग प्रायः हर समय बादशाह के पास रहते हैं; इसलिये उन्हें इन गरीबों के संबंध में कहने सुनने के अनेक अवसर मिला करते हैं। इसी लिये वे कभी तो इन लोगों के कामों में अड़चनें डालते हैं और कभी इनकी रचनाओं पर, जिसे वे पढ़ भी नहीं सकते, नाक भौं चढ़ाते हैं। परंतु यदि कोई लेखक के हृदय से पूछे तो उसके लिये दीन दुनिया का सर्वस्व वही है। कभी किसी अयोग्य को लाकर उसके साथ भिड़ा देते हैं और अपने वर्ग के लोगों की सिफारिशें साथ लेकर उन्हें आगे बढ़ा ले जाते हैं। यही बातें धीरे धीरे शत्रुता का रूप धारण कर लेती हैं। जब कहीं वे उन विद्वानों के संबंध का कोई प्रश्न उपस्थित देखते हैं, तो ढूँढ़ ढूँढ़कर उसे खराब करते हैं। बेचारे विद्वानों से और कुछ तो हो ही नहीं सकता; हाँ, कलम और कागज पर उनका शासन है। अतः वे भी जहाँ अवसर पाते हैं, अपने घिसे हुए कलम से ऐसा घाव करते हैं जो फिर प्रलय तक भी नहीं भरता।

इनका इतिहास अपने विषय और अभिप्राय के विचार से इस योग्य है कि अल्मारी के सिर पर ताज की जगह रखा जाय। साम्राज्य के साधारण परिवर्तनों और सैनिक चढ़ाइयों आदि का ज्ञान हर एक आदमी को हो सकता है। परंतु सम्राट् और साम्राज्य के स्तम्भों में से हर एक के रंग ढंग और

गुप्त तथा प्रकट भेदों से जितने अधिक यह परिचित थे, उतना अधिक और कोई परिचित न होगा। इसका कारण यह है कि ये अपनी रचनाओं के संबंध से और अपने पांडित्य के कारण विद्वानों की सभाओं में प्रायः अकबर के पास रहा करते थे और इनके ज्ञान तथा मनोरञ्जक बातों से दरबार के अमीर लोग अपनी मित्र-मंडली गुलजार करते थे। विद्वान् फकीर और शेख आदि तो इनके अपने ही थे। पर मजा यह है कि ये रहते तो उन्हीं में थे, परंतु उनकी कबाहतों में नहीं फँसते थे। केवल दूर से देखनेवालों में से थे; इसलिये इन्हें उनके गुण दोष आदि बहुत भली भाँति दिखाई देते थे। और ये ऊँचे स्थान पर खड़े होकर देखते थे; इसलिये इन्हें हर जगह की खबर और हर खबर की तह खूब अच्छी तरह मालुम रहती थी। ये अकबर, अब्बुलफजल, फैजी, मखदूम और सदर से नाराज भी थे; इसलिये जो कुछ हुआ, साफ साफ लिख दिया। और असल बात तो यह है कि लिखने का भी एक ढब है; और इनके कलम में यह गुण मानों ईश्वरदत्त था। इनके इतिहास में यह त्रुटि अवश्य है कि उसमें आक्रमणों और विजयों का विवरण नहीं है और घटनाओं का भी इन्होंने शृंखलाबद्ध वर्णन नहीं किया है। परंतु इनके इस गुण की प्रशंसा किस कलम से लिखूँ कि अकबर के शासन-काल का इन्होंने एक चित्र खड़ा कर दिया है। बिखरी हुई परन्तु मार्के की बातें हैं अथवा भीतरी रहस्य हैं जो और इतिहासलेखकों ने जान बूझकर

अथवा अनजान में छोड़ दिए हैं। इनकी बदौलत हमने अकबर के समस्त शासन-काल का तमाशा देखा। इन सब बातों के होते हुए भी जो दुर्भाग्य इनकी उन्नति में बाधक हुआ, वह यह था कि ये जमाने के मिजाज से अपना मिजाज न मिला सकते थे। जिस बात को ये स्वयं अनुचित समझते थे, उसे चाहते थे कि सब लोग अनुचित समझें और व्यवहार में न लावें। और जो बात इन्हें अच्छी जान पड़ती थी, उसे चाहते थे कि सब लोग अच्छी समझें और वह हमारे ही मन के अनुसार हो जाय। बड़ी खराबी यह थी कि जिस प्रकार मन में आवेश था, उसी प्रकार जबान में भी जोर था। इस कारण ऐसे अवसरों पर किसी दरबार या किसी जल्से में इनसे बोले विना नहीं रहा जाता था। इनके इस स्वभाव ने, मुझ अयोग्य की भाँति इनके भी, बहुत से शत्रु उत्पन्न कर दिए थे।

वास्तव में मुल्ला साहब धार्मिक विषयों के आचार्य थे। धर्म के सिद्धांतों और हदीस आदि का उन्होंने बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। अनुराग के ताप से मन गरमाया हुआ था। दर्शन आदि की ओर प्राकृतिक अनुराग था। बौद्धिक विद्याएँ पढ़ो थीं, पर उनका शौक नहीं था। इनकी आदतें प्रायः इसलिये बिगड़ी थीं कि इनकी विद्वत्ता और महत्ता आदि का पालन पोषण शेर शाह और सलीम शाह के शासन-काल में हुआ था। पुराने सिद्धांत के अनुसार इन बादशाहों का विचार

यह था कि भारतवर्ष हिंदुओं का देश है और हम लोग मुसल-मान हैं। जब हम लोग धर्म के बल पर आपस में एकता उत्पन्न करेंगे, तब जाकर हम उन पर अधिकार और प्रभुता पावेंगे। यदि मुल्ला साहब उस शासन-काल में होते तो उनकी खूब चलती और चमकती। परंतु संयोग से संसार का एक पृष्ठ ही उलट गया और आकाश ने मानों अकबर का प्रताप बढ़ाने की कसम ही खा ली। अकबर के यहाँ भी पंद्रह वर्ष तक खुदा और रसूल की चर्चा रही और विद्वानों तथा फकीरों के घरों में दिन रात आनंद मंगल होते रहे। विद्या संबंधी विषयों की भीड़ भाड़ में कभी कभी दर्शन शास्त्र भी दरबार में घुस आया करता था। अब सुयोग्य बादशाह को दर्शनशास्त्र संबंधी विषयों का ज्ञान प्राप्त करने का भी शौक हो गया। प्रत्येक भाषा, प्रत्येक धर्म और प्रत्येक विद्या के विद्वान् दरबार में आए, बल्कि आदर-सत्कारपूर्वक बुलवाए गए। पहले शायरों की सिफारिश से फैजी आए और फिर उनका पल्ला पकड़कर अब्दुलफजल भी आ पहुँचे। ईरान और तूरान से भी बहुत से विद्वान् आए। इसी सिलसिले में यह भी सिद्ध हो गया कि जिस धार्मिक भेद और विरोध ने हजारों लाखों आदमियों के जत्थे बनाकर सबको एक दूसरे के लहू का प्यासा कर दिया है, वह बहुत ही हल्का और कल्पित भेद है। यदि इस भेद पर ज्यादा जोर दें, तो एक ही दादा हजरत आदम की औलाद आपस में तलवार लेकर लड़ने लग जाती है। उस

समय स्वर्ग और नरक का सा अंतर जान पड़ता है। इस-लिये अकबर के विचार बदलने आरंभ हुए। उसने कहा कि इन्सान (मनुष्य) शब्द उन्स (प्रेम) शब्द से निकला है। ईश्वर ने उसे मिलकर रहने के लिये बनाया है। इसलिये मिलनसारी, एकता और प्रेम को ही साम्राज्य के शासन और व्यवस्था का मुख्य सिद्धांत तथा आधार बनाना चाहिए।

पुराने विद्वान् पुरानी बातों के अभ्यस्त थे। उनको ये बातें बुरी लगीं। अकबर ने उन्हें खींचकर ठीक मार्ग पर लाना चाहा, पर उन लोगों ने उसके विरुद्ध अपना बल दिखलाना चाहा। इसलिये अकबर को विवश होकर उन्हें तोड़ना या बीच में से हटाना पड़ा। इस प्रकार के विचारों का अभी आरंभ ही था कि फाजिल बदायूनी दरबार में पहुँचे। पहले तो उन्होंने उन्नति के मार्ग पर बहुत जल्दी जल्दी पैर बढ़ाए। वे नवयुवक थे और अपनी विद्या के आवेश और उन्नति की उमंग में थे। बुड्ढे मुल्लाओं और उनकी बुड्ढी शिक्षा को तोड़ तोड़कर अकबर को बहुत प्रसन्न किया। परंतु उन्होंने यह नहीं समझा कि मेरे और इन बुड्ढों के सिद्धांत एक ही हैं; और अब संसार की प्रवृत्ति नई बातों की ओर है। यदि मैं इन्हें तोड़ूँगा तो इनके साथ ही साथ मैं स्वयं भी टूट जाऊँगा। एक तो उन्होंने पुरानी सभ्यता में रहकर शिक्षा पाई थी; और दूसरे स्वयं उनकी प्रकृति भी कुछ ऐसी ही थी, इसलिये वे नए संसार के वास्ते पुराने सिद्धांतों को आवश्यक समझते थे। यही कारण था कि

विरोध आरंभ हुआ। केवल अब्बुलफजल और फैजी (जो उनके गुरु-भाई थे) ही नवीन विचारों के अनुयायी नहीं थे, बल्कि जमाने का ही मिजाज बदला हुआ था। इसलिये इनका मिजाज किसी के मिजाज से मेल न खा सका। इनकी रचनाएँ देखने से पता चलता है कि मानों ये संसार भर से लड़ाई बाँधे हुए बैठे हैं। मखदूम उल्मुल्क और शेख सदर शरअ का ठीका लिए हुए थे; परंतु ये उन लोगों को भी अनुकूलता के योग्य नहीं समझते थे, क्योंकि ये चाहते थे कि सब लोग बहुत ही ईमानदारी और सच्चे हृदय से शरअ की आज्ञाओं का पालन करें। उक्त महात्माओं का जो कुछ हाल था, वह इनको मालूम हुआ। उनमें से कुछ का ज्ञान पाठकों को इनके विवरण से हो जायगा। यही कारण है कि केवल उक्त दोनों ही नहीं बल्कि कोई ऐसा प्रसिद्ध विद्वान् या महात्मा नहीं जो इनकी कलम रूपी तलवार से घायल न हुआ हो।

आश्चर्य तो इस बात का है कि मुल्ला साहब यद्यपि स्वयं बिलकुल रूखे सूखे विद्वान् थे, परंतु प्रकृति ऐसी प्रफुल्लित और प्रसन्नतापूर्ण थी जो लेखन कला की जान थी। यद्यपि ये बड़े भारी विद्वान्, शेख और त्यागी थे, परंतु फिर भी गाते बजाते थे। बीन पर भी हाथ दौड़ाते थे। शतरंज दो दो तरह से खेलते थे जिससे सब लोग कहते हैं कि ये हर फन मौला थे। अपनी पुस्तक में यह प्रत्येक घटना और विषय का बहुत ही सुंदरता से वर्णन करते हैं और उसकी अवस्था का ऐसा सुंदर

चित्र खींचते हैं कि कोई बात या उसका बिंदु विसर्ग भी छूटने नहीं पाता। इनकी हर बात चुटकुला और हर एक वाक्य परिहास है। इनकी कलम के शिगाफ में हजारों तीर और खंजर हैं। इनके लेखों में बनावट का काम नहीं है। प्रत्येक बात बे-तकल्लुफ होकर लिखते चले जाते हैं। और साथ ही जिधर चाहते हैं, सूई गड़ा देते हैं; जिधर चाहते हैं नश्तर चला देते हैं; जिधर चाहते हैं छुरी भोंक देते हैं; और जी चाहता है तो तलवार का भी एक हाथ झाड़ जाते हैं। और ये सब काम ऐसी सुंदरता के साथ करते हैं कि देखनेवाले की तो बात ही क्या, स्वयं घायल होनेवाला भी लोट ही जाता होगा। स्वयं अपने ऊपर भी फब्तियाँ या नकलें कहते जाते हैं। और बड़ी खूबी यह है कि वास्तविक बातों और घटनाओं का वर्णन करने में मित्र और शत्रु का कुछ भी ध्यान या लिहाज नहीं करते। जिन लोगों को ये बुरा कहते हैं, वे भी यदि इनके साथ कहीं कोई अच्छा व्यवहार करते हैं तो वह भी लिख जाते हैं। और यदि किसी बात पर बिगड़ते हैं तो वहीं खरी खोटी सुनाने लगते हैं।

भूमिका में लिखते हैं कि जब मैं बादशाह के आज्ञानुसार मुल्ला शाह मुहम्मद शाहाबादी का काश्मीर का इतिहास ठीक कर चुका, तब सन् ९९९ हि० था। उसी समय उसी रंग में एक इतिहास लिखने का विचार उत्पन्न हुआ। परन्तु आजाद को वह इतिहास देखने से ऐसा जान पड़ता है कि वे थोड़ा थोड़ा लिखते गए हैं और रखते गए हैं। अंत में फिर सबको क्रम

से लगाया है और समाप्ति तक पहुँचाया है। क्योंकि आरंभ में अकबर का जो हाल लिखा है, उसके प्रत्येक शब्द से प्रेम टपकता है और अंत के वर्णनों से अप्रसन्नता बरसती है। अंत में फकीरों, विद्वानों और शायरों के जो विवरण दिए हैं, वे सब संभवतः अंत के लिखे हुए हैं। उसमें बहुतों की धूल उड़ाई है। मेरे इस विचार का अधिक समर्थन उस दुःखपूर्ण वर्णन से होता है जिसका उल्लेख मैंने एक और स्थान पर किया है। मुल्ला साहब स्वयं कहते हैं कि ख्वाजा निजामउद्दीन ने अकबर का जो ३८ वर्ष का हाल लिखा है, उसी से तब तक की बादशाही चढ़ाइयों का वर्णन मैंने लिया है। बाकी दो बरस का हाल मैंने स्वयं अपनी जानकारी से लिखा है। अब मैंने जो जो बातें लिखी हैं, उनके विस्तृत विवरण और अपने विचारों का समर्थन मुल्ला साहब के विवरण से करता हूँ।

यद्यपि उक्त फाजिल "बदायूनी" प्रसिद्ध हैं परंतु इनका जन्म टोंडा* नामक मौजे में, जो बसावर के पास है, हुआ था। इसे टोंडा भीम भी कहते हैं। बादशाहों के शासन-काल में यह इलाका आगरे की सरकार में था; और अजमेर प्रांत से भी संबद्ध था। फाजिल की ननिहाल बयाना में थी जो आगरे से अजमेर जानेवाली सड़क के किनारे पर है। शेर शाह का

* आगरे से अजमेर जाते हुए पहला पड़ाव मुँड़ाकर, दूसरा फतहपुर, तीसरा बिजैाना के पास की खानोह, चैाथा करोहा, पांचवां बसावर और छठा टोंडा पड़ता है।

विवरण लिखते हुए वे स्वयं उसके न्याय और सुव्यवस्थित शासन की प्रशंसा करते हैं। वह कहते हैं कि जिस प्रकार पैगंबर साहब ने नौशेरवाँ के शासन-काल पर अभिमान करके कहा है कि उस न्यायी बादशाह के समय में मेरा जन्म हुआ है, उसी प्रकार ईश्वर को धन्यवाद है कि मेरा जन्म भी इस न्यायशील बादशाह के शासन-काल में १७ रबीउस्सानी सन् ९४७ हि० को हुआ था। (इस दिन २१ अगस्त सन् १५४० ई० था।) पर साथ ही मानों बहुत हताश होकर लिखते हैं कि इतना होने पर भी क्या अच्छा होता कि इस घड़ी, इस दिन, इस मास और इस वर्ष को दफ्तर से मिटा देते, जिसमें मैं परलोक के एकांत स्थान में संसार के आदर्श लोगों के साथ रहता और अस्तित्व के मार्ग में पैर न रखता। उस दशा में मुझे ये अनेक प्रकार की विपत्तियाँ न झेलनी पड़तीं जो दीन और दुनिया के टोटे के चिह्न हैं। पर साथ ही आप इस बात का खंडन भी करते हैं और कहते हैं कि मुझ भग्न-हृदय की क्या सामर्थ्य है जो मैं ईश्वर के काम में दम भी मार सकूँ! मैं डरता हूँ कि कहीं इस प्रकार साहसपूर्वक बोलने के कारण दीन के मामले में गुस्ताखी न हो जाय जिसके फल स्वरूप मुझे अनंत काल तक दुःख भोगना पड़े। इसी लिये पैगंबर साहब के वचन और उन्हीं से मिलते जुलते कुछ और महात्माओं के भी वचन उद्धृत किए हैं और कहा है कि जो बात ईश्वर को भली न लगे, उससे तोबा है।

इन्होंने शेर शाह की बहुत प्रशंसा की है। कहते हैं कि बंगाल से रोहतास (पंजाब) तक चार महीने का रास्ता है; और आगरे से मंडोह तक, जो मालवे में है, सड़क पर दोनों ओर छाया के लिये फलवाले वृक्ष लगाए थे। कोस कोस भर पर एक सराय, एक मसजिद और एक कूआँ बनवाया था। उस जगह अजान देनेवाला एक मुल्ला इमाम था। निर्धन यात्रियों का भोजन बनाने के लिये एक हिंदू और एक मुसलमान नौकर था। लिखते हैं कि इस समय तक ५२ बरस बीते हैं, पर अब भी उसके चिह्न बचे हुए हैं। प्रबंध की यह अवस्था थी कि बिलकुल अशक्त बुड्ढा अशरफियों का थाल हाथ पर लिए चला जाय और जहाँ चाहे, वहाँ पड़ रहे। चोर या लुटेरे की मजाल नहीं थी कि आँख भरकर उसकी ओर देख सके। जिस वर्ष लेखक (फाजिल) का जन्म हुआ था, उसी वर्ष शेर शाह ने यह आज्ञा दी थी।

रोहतास के किले को शेर शाह ने अपने राज्य की सीमा के रूप में निश्चित किया था और उस स्थान की बहुत अधिक दृढ़ता की थी जिसमें गक्खड़ों के बलवान् आक्रमण के लिये रुकावट रहे। जिस पर्वत पर उक्त किला बना है, वह प्राचीन काल में बालनाथ कहलाता था। अब वह झेलम के जिले से संबद्ध है।

मुल्ला साहब का पालन पोषण बसावर में हुआ था। अनेक स्थानों पर इन्होंने उसे बड़े प्रेम से अपनी जन्मभूमि बतलाया

है। इनके पूर्वजों का विस्तृत विवरण कहीं देखने में नहीं आया। इनका वंश संपन्न नहीं था; परंतु इतना अवश्य है कि फारूकी शेख थे और ददिहाल तथा ननिहाल दोनों ही विद्वान् और धर्मनिष्ठ घराने थे। वे विद्या और धर्म दोनों की कदर जानते थे। इनके पिता मलूक शाह और दादा हामिद शाह आदि शरीफों में गिने जाते थे। इनके पिता संभलवाले शेख पंजू के शिष्य थे। उन्होंने अरबी और फारसी के साधारण ग्रंथ पढ़े थे। इनके नाना मखदूम अशरफ थे। सलीम शाह के शासन-काल में आगरा प्रांत में बयाना के पास बजवाड़ा नामक स्थान में फरीद तारन नाम का एक पंज-हजारी सरदार था। उसकी सेना में वे एक सैनिक पदाधिकारी थे। तात्पर्य यह कि उक्त फाजिल सन् ९५२ से ९६० हि० तक अपने पिता मलूक शाह के पास रहे। पाँच वर्ष की अवस्था थी, जब वे संभल में कुरान आदि पढ़ते थे। फिर नाना ने अपने प्यारे नाती को अपने पास रख लिया और कुछ आरंभिक शिक्षा की पुस्तकें तथा व्याकरण आदि उन्होंने स्वयं पढ़ाया था। फाजिल बदायूनी बाल्यावस्था से ही अपने इस्लाम धर्म पर विशेष निष्ठा रखते थे और त्यागियों तथा फकीरों की संगति को ईश्वर की सबसे अच्छी देन समझते थे। इनके पीर सैयद मुहम्मद मक्की भी वहीं रहते थे। वे कुरान का पाठ करने की विद्या में पारंगत थे और सात प्रकार से उसका पाठ कर सकते थे। उन्हीं से फाजिल बदायूनी ने सस्वर कुरान पढ़ना सीखा

था। उस समय सलीम शाह का शासन था और सन् ९६० हि० था। उनकी यह शिष्यता बहुत ही शुभ सिद्ध हुई; क्योंकि एक दिन उसी की सिफारिश से ये अकबर के दरबार में पहुँचे और सात इमामों में सम्मिलित होकर इमाम अकबर शाह कहलाए।

फाजिल साहब स्वयं लिखते हैं कि मेरी बारह वर्ष की अवस्था थी जिस समय पिताजी ने संभल में आकर मियाँ हातिम संभली की सेवा में उपस्थित किया। सन् ९६१ हि० में जब कि बारह वर्ष की अवस्था था (इससे सिद्ध हुआ कि इनका जन्म सन् ९४९ हि० में हुआ था) उनकी खानकाह (मठ) में रहकर "कसीदए बुर्दः" (ग्रंथ) याद किया और वजीफा (जप) करने की आज्ञा प्राप्त की; और हनफी संप्रदाय के कुछ पवित्र पाठ पढ़े और उनका शिष्य हुआ। इसी प्रसंग में मियाँ ने एक दिन स्वर्गीय पिताजी से कहा कि तुम्हारे पुत्र को अपने गुरु मियाँ शेख अजीजुल्लाह की ओर से भी कुलाह और शजरा* देते हैं जिसमें ये लौकिक विद्या से भी अभिज्ञ हों। कदाचित् इसी का यह प्रभाव था कि इस्लाम धर्मशास्त्र का बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त

---

* मुसलमानों में जब कोई शिष्य किसी धर्म्मगुरु से धार्म्मिक शिक्षा प्राप्त कर लेता है तो उसका सम्मान करने के लिये गुरु से उसे कुलाह या एक प्रकार की टोपी मिलती है।' शजरा देने से अभिप्राय किसी को अपनी शिष्यपरंपरा में सम्मिलित करना है।

किया। यद्यपि भाग्य ने इन्हें और और कामों में लगा दिया, परंतु फिर भी ये जन्म भर उसी में प्रवृत्त रहे। मुल्ला साहब की बुद्धि की कुशाग्रता इस विवरण से जान पड़ती है कि वे अदली अफगान के वर्णन में लिखते हैं कि सन् ९६१ हि० में मियाँ (गुरु) की सेवा में आने से पहले बादशाही सरदारों ने बदायूँ में विद्रोहियों से लड़कर उन पर विजय प्राप्त की। उस समय मेरी बारह वर्ष की अवस्था थी। उसी समय मैंने उस घटना की तारीख कही थी—

چه بس خوب کرده اند

अर्थात्—क्या अच्छा किया!

इस तारीख में एक अधिक था। जब मैं मियाँ की सेवा में आया, तो एक दिन बातों बातों में वे कहने लगे कि उन दिनों मैंने यह समाचार सुनकर तुरंत यों ही कह दिया था—

فتح هائے آسمانی شد

अर्थात्—आकाश से अथवा ईश्वरीय विजय हुई।

इसके अक्षरों को गिनो तो, देखो कितने होते हैं। मैंने निवेदन किया कि एक कम होता है। कहा कि लिपि की प्राचीन शैली के अनुसार एक हमजा और लगा दो। मैंने निवेदन किया कि हाँ, फिर तो तारीख पूरी हो जाती है।

शेख सअदउल्ला व्याकरण के अद्वितीय पंडित थे और इसी कारण "वैयाकरण" शब्द उनके नाम का एक अंग हो गया था। बयाना में रहते थे। जब फाजिल साहब नाना के पास

आए, तब उनसे "काफिया" (ग्रंथ) पढ़ा। हेमू ने सिर उठाया और उसकी सेना लूटती मारती हुई बसावर तक आ पहुँची। ये उस समय संभल में थे। सारा बसावर लुटकर चौपट हो गया। स्वयं बड़े दुःख के साथ लिखते हैं कि पिताजी का पुस्तकालय भी लुट गया। दूसरे ही वर्ष अकाल की विपत्ति आई। कहते हैं कि मनुष्यों की दुर्दशा देखी नहीं जाती थी। हजारों आदमी भूखों मरते थे और आदमी को आदमी खाए जाता था !

सन् ९६६ हि० में विद्या के अनुराग ने पिता और पुत्र के हृदय में से देशप्रेम की गरमी ठंढी कर दी और दोनों आगरे पहुँचे। वहाँ मौलाना मिरजा समरकंदी से "शरह शम्सिया" तथा और कई छोटे छोटे ग्रंथ पढ़े। लिखते हैं कि यह शरह मीर अली हमदानी के पुत्र मीर सैयद मुहम्मद की है। और मीर सैयद अली वही व्यक्ति हैं जिनकी कृपा से काश्मीर में इस्लाम धर्म का प्रचार हुआ।

जब बुखारावाले काजी अब्दुलमुआली को अब्दुल्लाखाँ उजबक ने देश-निकाला दे दिया, तब वह भी आगरे में चले आए। उनके देशनिकाले की कहानी भी विलक्षण है। स्वयं लिखते हैं कि जब तर्कशास्त्र तूरान में पहुँचा तो देखते ही लोग बड़े प्रेम से उसकी ओर प्रवृत्त हुए। लेकिन मसाला ऐसा तेज लगा कि सब फलसफी (दार्शनिक) फैलसूफ हो गए। जब किसी सहृदय सत्पुरुष को देखते तो उसकी हँसी उड़ाते और कहते थे कि

यह गधा है गधा। और जब लोग मना करते, तो कहते थे कि हम तर्क से यह बात सिद्ध कर देते हैं। देखो, स्पष्ट है कि यह प्राणी या पशु है और पशु पर-सामान्य है। उस पशु वर्ग के अंतर्गत होने के कारण मनुष्य होने के नाते यह अपर-सामान्य है। लेकिन जब इसमें पर-सामान्य का गुण पशुत्व नहीं है, तो फिर इसका विशिष्ट और अपर-सामान्य का गुण मनुष्यत्व भी नहीं है। और जब मनुष्यत्व ही नहीं है तो फिर यह गधा नहीं तो और क्या है? जब इस प्रकार की बातें सीमा से बहुत बढ़ गई, तब सूफी शेखों ने फतवा लिखकर अब्दुल्लाखाँ के सामने उपस्थित किया। बस तर्कशास्त्र का पढ़ना पढ़ाना हराम हो गया। इसी कारण काजी अब्बुलमुआली, मुल्ला असाम, मुल्ला मिरजा जान आदि व्यक्ति धर्मभ्रष्ट कहकर वहाँ से निकाले गए। कहते हैं कि "शरह विकाया" (ग्रंथ) के कुछ पाठ मैंने भी इनसे पढ़े थे। सच तो यह है कि इस विद्या के ये अथाह समुद्र थे। नकीबखाँ भी इन पाठों के अध्ययन में सम्मिलित हुए थे। (इन नकीबखाँ का वर्णन आगे चलकर दिया गया है।)

मैं तो कहता हूँ कि वह बहुत ही शुभ समय और बहुत शुभ शासन-काल था। अकबर के साम्राज्य का उदय हो रहा था। बैरमखाँ का चलता जमाना था। शेख मुबारक का अनुग्रह था। विद्या और गुण की बरकत विद्या और गुण का प्रचार करने लगी थी। ऐसे समय में फाजिल बदायूनी शिष्य वर्ग में सम्मिलित होकर फैजी,

अब्बुलफजल और नकीबखाँ के सहपाठी हुए थे। शेख मुबारक का उल्लेख करते हुए वे स्वयं कहते हैं कि युवावस्था में मैं आगरे में रहकर कई वर्षों तक उनकी सेवा में विद्याध्ययन करता था। सच तो यह है कि मुझ पर उनका बहुत बड़ा उपकार है। मेहर अलीबेग सलदोज अपने समय का एक प्रसिद्ध सरदार था जो खानखानाँ पर जान निछावर करनेवालों में से था। उसने इन पिता पुत्र को अपने यहाँ रखा। मुल्ला साहब की प्रफुल्लहृदयता और प्रसन्नतापूर्ण संगति ने मेहर अली के हृदय में प्रेम को ऐसा स्थान दिया कि वे क्षण भर के लिये भी इनका वियोग सहन नहीं कर सकते थे। शेर शाह के सवारों में से अदली का गुलाम एक व्यक्ति जमालखाँ था जो चुनारगढ़ का हाकिम था। उसने स्वयं अकबर के दरबार में यह निवेदन भेजा कि यदि श्रीमान् के यहाँ से कुछ सभ्य और कर्मण्य अमीर यहाँ आवें तो किला उनके सपुर्द कर दूँ। बैरमखाँ ने मेहर अलीबेग को भेजना निश्चित किया। उसने इनसे कहा कि तुम भी चलो। यह स्वयं मुल्ला थे और एक मुल्ला के पुत्र भी थे। विद्या प्रेम ने इन्हें जाने की आज्ञा नहीं दी। उसने इनके पिता और शेख मुबारक पर भी चलने के लिये जोर डाला और यहाँ तक कहा कि यदि यह न चलेंगे, तो मैं भी जाने से इन्कार कर दूँगा। अंत में विवश होकर अपने प्रिय मित्र के आग्रह और दोनों बड़ों के कहने से इन्होंने उसके साथ जाना स्वीकृत किया। लिखते हैं—

ठीक वर्षा ऋतु थी। परंतु दोनों बड़ों की आज्ञा का पालन करना मैंने अपना परम कर्तव्य समझा। विद्याध्ययन में बाधा डाली और यात्रा के कष्ट उठाए। कन्नौज, लखनौती, जौनपुर और बनारस की सैर करता हुआ, संसार के विलक्षण पदार्थ देखता हुआ, स्थान स्थान पर शेखों और विद्वानों की शुभ संगति से लाभ उठाता हुआ जब चुनार पहुँचा, तब जमाल खाँ ने ऊपर से देखने में तो बहुत आदरसत्कार किया, परंतु ऐसा जान पड़ा कि इसके मन में कुछ कपट है। मेहर अलीबेग ने हमें तो वहीं छोड़ा और आप मकानों की सैर करने के बहाने सवार हो गया और वहाँ से साफ निकल गया। जमालखाँ अपनी बदनामी से घबराया। हमने कहा कि कोई हर्ज की बात नहीं है। किसी ने उनके मन में कुछ संदेह उत्पन्न कर दिया होगा। खैर, हम लोग उन्हें समझा बुझाकर ले आते हैं। मतलब यह कि इस पेच से यह भी वहाँ से निकल आए। किला पहाड़ के ऊपर है। नीचे नदी बड़े वेग से बहती है। एक स्थान पर नाव वश के बाहर हो गई। मौलाना आखिर तो मुल्ला ही थे। बहुत घबराकर लिखते हैं कि नाव बड़े भयंकर भँवर में जा पड़ी और पहाड़ के निचले भाग में किले की दीवार के पास लहरों में उलझ गई। विरुद्ध दिशा से हवा इतनी तेजी के साथ चलने लगी कि मल्लाहों का कुछ बस ही नहीं चलता था। यदि जंगल और नदी का ईश्वर सहायता न करता तो आशा की नाव विपत्ति के भँवर में पड़कर मृत्यु के

पर्वत से टकरा चुकी थी। नदी से निकलकर जंगल में आए। पता लगा कि शेख मुहम्मद गौस ग्वालियरवाले, जो भारतवर्ष के प्रसिद्ध शेखों में से हैं, पहले इसी जंगल में पहाड़ के नीचे ईश्वर-चिंतन किया करते थे। हम लोग उस स्थान पर पहुँचे। वहाँ उनके एक संबंधी आ गए। उन्होंने ले जाकर एक गुफा दिखलाई और कहा कि इसी में वे बारह वर्ष तक बैठे रहे थे और वनस्पति खाकर निर्वाह करते थे।

जब फाजिल आगरे में थे, तब सन् ९६९ हि० में इनके पिता का देहांत हो गया। उनका शव बसावर ले गए। सन् ९७० हि० में संभल के इलाके में सहसवाँ नामक स्थान में थे कि वहाँ पत्र पहुँचा कि नाना मखदूम अशरफ भी बसावर में मर गए। उनके मरने की तारीख "फाजिल जहान" कही। लिखते हैं कि मैंने तर्क और दर्शन के अनेक पाठ और अंग उनसे पढ़े थे; और मुझ पर तथा अनेक बड़े बड़े विद्वानों पर उनके अनेक बड़े बड़े उपकार थे। बहुत दुःख हुआ। यहाँ तक कि पिता का दुःख भी भूल गया। बरस दिन के अंदर दो आघात पहुँचे। निश्चिंत प्रकृति को विलक्षण विकलता होने लगी। जिन सांसारिक चिंताओं से मैं कोसों भागता था, वे एक साथ ही चारों ओर से तन तनकर सामने आ खड़ी हुईं, मानों उन्होंने मेरा मार्ग ही रोक लिया। स्वर्गीय पिताजी मेरी प्रकृति की स्वच्छंदता और लापरवाही देख देखकर कहा करते थे कि तुम्हारी ये सारी

उमंगे और आवेश मुझ ही तक हैं। जब मैं न रहूँगा तब देखनेवाले देखेंगे कि तुम किस प्रकार स्वतंत्र रहते हो और संसार तथा संसार के कारबार को किस प्रकार ठोकर मारकर छोड़ देते हो। अंत में वही हुआ। अब सारा संसार मुझे शोक का घर जान पड़ता है और मुझसे अधिक शोक-पीड़ित और कोई दिखलाई ही नहीं देता। दो दुःख हैं और दो शोक हैं और मैं अकेला हूँ। एक सिर है। वह दो खुमार सहने की शक्ति कहाँ से लावे! एक हृदय दो भार किस प्रकार उठावे!

बटियाले में अमीर खुसरो का जन्म हुआ है। यह इलाका हुसैनखाँ की जागीर में था। लिखते हैं कि यहाँ पहुँचकर मैं सन् ६७३ हि० में हुसैनखाँ से मिला। जवानी और हिम्मत के शौक ने बादशाही दरबार की ओर ढकेला। परंतु उस धर्मात्मा अफगान के धर्म-प्रेम और गुणों के आकर्षण ने मार्ग में ही रोक लिया। वे स्वयं लिखते हैं कि यह व्यक्ति बहुत उत्तम स्वभाववाला, अतिथियों का आदर सत्कार करनेवाला, फकीरों के से स्वभाववाला, उदार, पवित्र आचरणवाला, सुन्नत संप्रदाय के नियमों का ठीक ठीक पालन करनेवाला और विद्या तथा गुण का अनुरागी था। बहुत सज्जनतापूर्वक व्यवहार करता था। उसकी संगति से अलग होने और नौकरी करने को जी नहीं चाहता था। दस बरस तक इन्हीं अप्रसिद्ध कोनों में पड़ा रहा। वह भले आदमियों का सब प्रकार से ध्यान रखता था और मैं उसका साथ देता था।

मुल्ला साहब ने इस संयमी, शुद्धाचारी और वीर अफगान को बहुत अधिक प्रशंसा की है; और इतनी प्रशंसा की है कि यदि पैगंबर तक नहीं तो औलियाओं के गुणों तक अवश्य पहुँचा दिया है। उसकी जीवनी का अकबर के शासन-काल के साथ ओत-प्रोत संबंध है, इसलिये उसका वर्णन अलग किया जायगा। उसकी बातें बहुत ही मनोरंजक हैं। इस वीर अफगान ने हुमायूँ के लौटने के समय से लेकर अकबर के राज्यारोहण के २२ वें वर्ष तक बहुत अधिक स्वामिनिष्ठा दिख-लाई थी और तीन-हजारी तक मंसब प्राप्त किया था। तात्पर्य यह कि दो धर्मनिष्ठ और समान विचार रखनेवाले मुसलमान साथ रहते थे और आनंद से निर्वाह करते थे।

हुसैनखाँ के पास ये सन् ९७३ से ९८१ हि० तक रहे थे। ईश्वर और रसूल की चर्चा करके अपना और उसका चित्त प्रसन्न किया करते थे। अबाध्य रूप से आपस में बैठ-कर जी बहलाते थे। विद्वानों और फकीरों की सेवाएँ करते थे। जागीर और वकालत का सब काम बहुत उत्तमतापूर्वक और मधुर वचनों से किया करते थे।

सन् ९७५ हि० में ये एक बार छुट्टी लेकर बदायूँ गए थे। उस समय मुल्ला साहब दोबारा दूल्हा बने थे। ब्याह की सजावट, सामग्री और बनाव सिंगार का सारा वर्णन डेढ़ पंक्तियों में समाप्त किया है, लेकिन वह भी बड़ी सुंदरता से। उस लेख से ही यह झलकता है कि स्त्री सुंदरी पाई थी और

इन्हें बहुत पसंद आई थी। क्या मजे से कहते हैं कि इस वर्ष इतिहासलेखक का दूसरा विवाह हुआ. जो बहुत शुभ हुआ। इस विवाह की फारसी भाषा में जो तारीख कही थी, उसका अभिप्राय है कि चंद्रमा और सूर्य दोनों पास पास हो गए। उसी तारीख के पहले चरणों से यह भी जान पड़ता है कि पहली स्त्री से प्रसन्न नहीं थे। ईश्वर जाने उसके जीते जी दूसरा विवाह किया था या वह बेचारी मर गई थी। उसके लिये तो कहीं दुःख भी प्रकट नहीं किया।

थोड़े ही दिनों बाद एक पुत्र उत्पन्न हुआ। ये हुसैनखाँ के पास पहुँचे। वह उन दिनों लखनऊ में अपनी जागीर पर थे। उनकी बदौलत कुछ दिनों तक अवध की सैर की। वहाँ के विद्वानों, फकीरों और ईश्वर तक पहुँचे हुए महात्माओं से मिलकर बहुत कुछ लाभ उठाए।

जागीर बदली जाने के कारण हुसैनखाँ बादशाह से नाराज हो गए और सेना लेकर इस विचार से पहाड़ो प्रांत में चले गए कि जहाद करके ईश्वरीय धर्म की सेवा करेंगे। वहाँ सोने चाँदी के मंदिर हैं। उन्हें लूटेंगे और इस्लाम धर्म का प्रचार करेंगे। इस अवसर पर मुल्ला साहब छुट्टी लेकर बदायूँ चले गए। वहाँ दो भारी आघात सहने पड़े। लिखते हैं कि अपने छोटे भाई शेख मुहम्मद को मैंने अपने प्राणों के साथ पाला था, बल्कि उसे प्राणों से भी बढ़कर प्रिय समझता था। उसने बहुत से सज्जनोचित गुण प्राप्त किए थे। एक

अच्छे घराने में उसका विवाह किया था। अफसोस, कौन जानता था कि इस शुभ कार्य में बाधा देने के लिये हजार विपत्तियाँ खड़ी हैं! विवाह हुए अभी दो महीने भी नहीं बीते थे कि उसको और मेरे पुत्र अब्दुललतीफ को जमाने की नजर लग गई। पलक मारते हँसता खेलता हुआ बच्चा गोद से निकलकर गोर (कब्र) में चला गया। वह मेरे जीवन का हरा भरा पौधा था और मैं दुनिया का बादशाह था। दुःख है कि अपने ही नगर में मुझे परदेशी कर दिया। मुल्ला साहब ने इस विपत्ति के समय बहुत से शेर कहे हैं। भाई के मरने के शोक में भी एक कविता लिखी है। हृदय पर दुःख के बादल छाए हुए थे, इसलिये कविता भी प्रभाव में डूबी हुई निकली है। परंतु इन कविताओं से यह भी पता चलता है कि मुल्ला साहब की जबान में पद्य का ढंग वैसा नहीं है जैसा गद्य का है।

(इस स्थल पर हजरत आजाद ने फारसी की वह कविता उद्धृत की है जो अनावश्यक समझकर छोड़ दी गई है।)

एक कुलीन व्यक्ति किसी स्त्री पर आसक्त होकर मर गया था। उसका वर्णन इन्होंने कहानी के ढंग पर लिखा है और बहुत मजे में लिखा है। अंत में विस्तार अधिक हो जाने पर दुःख प्रकट करते हैं और साथ ही कहते हैं कि ईश्वर मुझे भी यही सौभाग्य प्राप्त करावे। साथ ही प्रेम की एक और करतूत याद आ गई। उसे भी टाँक गए। परंतु उसका लिखना आवश्यक था, क्योंकि उसमें शेख सदर पर और शेख

मुहम्मद गौस के वंश पर भी एक नश्तर मारने का अवसर मिलता था। यह घटना बहुत ही संक्षेप में लिखी है और बहुत सुंदरता से लिखी है। वह यहाँ दे दी जाती है। मुल्ला साहब लिखते हैं—

"ग्वालियर के शेख के वंश में एक व्यक्ति थे जो ग्वालियर-वाले शेख मुहम्मद गौस के बहुत निकटस्थ संबंधी थे। बहुत सज्जन और योग्य थे और नाम के सिर पर बादशाही ताज का ताज रखते थे (अर्थात् उनके नाम में ताज शब्द था)। वह एक डोमनी पर आसक्त हो गए। डोमनी बहुत सुंदरी थी। बादशाह को समाचार मिला। उन्होंने उस कंचनी को पकड़ मँगाया। जब वह आई तो मुकबिलखाँ को दे दी गई जो बादशाह का पार्श्ववर्ती था। यारों को शेखजादा साहब के ढंग मालूम थे। यद्यपि मुकबिलखाँ ने उस रंडी को बहुत ही सुरक्षित मकान में रखा था और बाहर का दरवाजा चुन दिया था, लेकिन वह भी साहस की कमंद डालकर वहाँ पहुँच ही गए और उसे ले उड़े। शेख मुहम्मद गौस के पुत्र शेख जियाउद्दीन के नाम, जो अब भी अपने पिता की गद्दी पर वर्तमान थे, बादशाह की आज्ञा पहुँची। उन्होंने बहुत कुछ समझा बुझाकर उस डोमनी समेत उन्हें दरबार में हाजिर किया। बादशाह ने चाहा कि उसी से शेखजादे का घर बसा दें। परंतु शेख जियाउद्दीन तथा और लोग सहमत नहीं हुए। उन्होंने सोचा कि इससे वंश की शुद्धता जाती रहेगी और खानदान खराब हो

जायगा। चौपट शेखजादे में इतनी सहनशक्ति कहाँ थी! वह छुरी मारकर मर गया। उसे कफन देने और गाड़ने के संबंध में विद्वानों में तकरार हुई। शेख जियाउद्दीन ने कहा कि इसने प्रेम के मार्ग में प्राण दिए हैं। इसी प्रकार गाड़ दो। शेख अब्दुलनबी सदर और दूसरे विद्वान् तथा काजी कहते थे कि यह अपवित्र दशा में मरा और प्रेम से इसकी तुष्टि नहीं हुई थी।" मुल्ला साहब की ये सब बातें या तो इस कारण हैं कि ये स्वयं आशिक मिजाज थे और इसी लिये आशिकों के पक्षपाती थे; और या इस कारण कि शेख सदर पर चोटें करने में इन्हें ख्वाह मख्वाह मजा आता था।

सन् ९७९ हि० में अपने संबंध की एक घटना का वर्णन करते हैं जिससे इतिहास-लेखन की आत्मा प्रसन्न होती है। इससे यह भी जान पड़ता है कि जो व्यक्ति घटनाएँ लिखता है, उसे कहाँ तक सब घटनाएँ ठीक ठीक लिखनी चाहिएँ। लिखते हैं—"इस वर्ष एक भयंकर घटना घटी। काँतगोला हुसैनखाँ की जागीर में था। मैं वहाँ आया। सदारत का पद था। फकीरों की सेवा मेरे सपुर्द थी। कन्नौज के इलाके में मक्खनपुर नामक स्थान में शेख बदीअउद्दीन मदार का मजार था। मुझे दर्शनों की इच्छा हुई। आदमी ने आखिर कच्चा दूध पीया है। लापरवाही, अत्याचार और मूर्खता से ही उसकी प्रकृति की सृष्टि है। वह अनुचित कार्य कर बैठता है; और अंत में हानि उठाता तथा लज्जित

होता है। उसने हजरत आदम से भी उत्तराधिकार पाया है। इन्हीं बलाओं ने मेरी बुद्धि की आँखों पर भी परदा डाल दिया। काम-वासना का नाम प्रेम रखा और उसके जाल में फँसा दिया। भाग्य के लेख पर कलम चल चुकी थी। वही सामने आई और ठीक दरगाह में मुझसे एक बहुत बड़ी बेअदबी हो गई। परंतु लज्जा और ईश्वर की कृपा भी वहीं आकर उपस्थित हो गई कि उस अपराध का दंड भी वहीं मिल गया। अर्थात् दूसरे पक्ष के कुछ आदमियों को ईश्वर ने नियुक्त कर दिया जो तलवार खींचकर चढ़ आए। उन्होंने सिर, हाथ और कंधे पर लगातार नौ घाव लगाए। और सब घाव तो हलके थे, पर सिर का घाव गहरा था जो हड्डी तोड़कर अंदर मग्ज तक जा पहुँचा था। बाएँ हाथ की उँगली भी कट गई। वहीं बेहोश होकर गिर पड़ा। मैंने तो समझा था कि जीवन का अंत हो गया। लेकिन यम-लोक की सैर करके लौट आया। खैरियत हो गई। ईश्वर अंत समय में कुशल करे।

"वहाँ से बाँगर मऊ के कस्बे में आया। वहाँ एक बहुत अच्छा चिकित्सक मिल गया। उसी ने चिकित्सा की। एक सप्ताह में घाव भर आए। उसी निराशा की दशा में ईश्वर को वचन दिया था कि हज करूँगा। परंतु सन् १००४ हि० हो गया और वह वचन पूरा नहीं हुआ। ईश्वर मृत्यु से पहले हज करने की सामर्थ्य दे। हे परमात्मा, तेरे आगे

कोई बड़ी बात नहीं है। फिर बाँगर मऊ से काँतगोला आया। वहाँ आरोग्य-स्नान किया। परंतु घावों ने पानी चुराया और नए सिर से बीमार हो गया। ईश्वर हुसैनखाँ को स्वर्ग प्राप्त करावे। उसने पिता और भाई के समान ऐसा प्रेम प्रदर्शित किया कि जो किसी मनुष्य से नहीं हो सकता। ऋतु की ठंढक ने घावों को बहुत खराब किया था। परंतु उक्त खाँ ने ऐसे प्रेम से सेवा शुश्रूषा की कि ईश्वर उसे उसका शुभ फल प्रदान करे। गाजर का हलुवा खिलाया और सब प्रकार से देख रेख की। वहाँ से बदायूँ आया। यहाँ फिर नासूर में चोरा लगा। यह दशा हुई कि मानों मृत्यु का द्वार खुल गया। एक दिन कुछ जागता था और कुछ सोता था। इतने में देखता हूँ कि कुछ सिपाही मुझे पकड़कर आकाश पर ले गए हैं। वहाँ कुछ लोग बादशाही सिपाहियों की तरह हाथ में डंडे आदि लिए हुए इधर उधर दौड़ते फिरते हैं। एक मुंशी बैठा है और कुछ फरदें लिख रहा है। बोला कि ले जाओ, ले जाओ; यह वह आदमी नहीं है। इतने में आँख खुल गई। जब ध्यान दिया तो देखा कि दरद कुछ कम है और आराम है। धन्य है ईश्वर ! बाल्यावस्था में जब लोगों से इस प्रकार की बातें सुनता था तो कहानी समझता था। अब विश्वास हो गया कि संसारक्षेत्र बहुत विस्तृत है और ईश्वर की महिमा सब पर छाई हुई है।

"इस साल बदायूँ में बड़ी आग लगी और इतने आदमी जलकर मर गए कि गिने न गए। सबको छकड़ों में भर-कर नदी में डाल दिया। हिंदू मुसलमान का कुछ पता न चला। वह आग नहीं थी, मृत्यु की ज्वाला थी। हाँ प्राण बहुत ही प्रिय होते हैं। स्त्रियाँ और पुरुष प्राकार पर चढ़े और बाहर कूद कूद पड़े। जो लोग बच गए, वे जले भुने और लँगड़े लूले रहे। अपनी आँखों से देखा कि आग पर पानी भी तेल का सा काम कर रहा था। धड़ धड़ लपटें उठती थीं। दूर तक शब्द सुनाई देता था। वह आग नहीं थी, ईश्वर का कोप था। बहुतों को राख करके पददलित कर दिया। बहुतों के कान उमेठ दिए। कुछ ही दिन पहले एक पागल सा फकीर दुआब के इलाके से आया था। उसे मैंने घर में ठहराया था। बातें करते करते एक दिन कहने लगा कि तुम यहाँ से निकल जाओ। मैंने पूछा—क्यों ? वह बोला कि यहाँ ईश्वरता का तमाशा दिखाई देगा। पर वह खुराफाती था, इसलिये मुझे उसकी बात का विश्वास नहीं हुआ था।"

इसे केवल भाग्य का संयोग कहते हैं कि सन् ९८१ हि० में दस वर्ष के मित्र, बल्कि धर्म-भाई, हुसैनखाँ से उनका बिगाड़ हो गया। और यह रहस्य न खुला कि आखिर किस बात पर बिगाड़ हुआ। वह सीधा, सादा सिपाही था और इनके स्वामी के स्थान पर था; तथापि इनसे क्षमा-प्रार्थना

करने के लिये बदायूँ में इन की माता के पास गया और उनसे सिफारिश कराना चाहा। पर मुल्ला साहब भी अपनी जिद के पूरे थे। उन्होंने एक न मानी; क्योंकि उन्होंने बादशाही दरबार में जाने का दृढ़ निश्चय कर लिया था।

तमाशा यह कि इसी सन् में विद्या के प्रेम ने अकबर के मस्तिष्क को प्रकाशित करना आरंभ किया। वह उदारहृदय बादशाह संकुचित बुद्धिवाले विद्वानों की व्यर्थ की बातों से तंग होकर समझदार और बुद्धिमान् व्यक्तियों का आदर करने लगा। रात के समय चार ऐवान के प्रार्थना-मंदिर में सभा होती थी जिसमें बड़े बड़े विद्वान् और पंडित एकत्र होते थे। उनसे विद्या संबंधी वाद विवाद सुनता था। मुल्ला साहब की युवावस्था थी, विद्या का आवेश था, मन में उमंग थी। उनके मन ने भी उच्चाकांक्षा की मौज मारी। फैजी, अब्बुलफजल आदि उनके जो सहपाठी उनके साथ मसजिद के कोने और पाठशाला के आँगन में बैठकर बुद्धि लड़ाते थे, उनकी बातों के घोड़े भी बादशाही दरबार में दौड़ने लगे थे। ये भी बदायूँ से आगरे आए। सन् ९८१ हि० के जिलहिज्जः मास में जमालखाँ कोरची से भेंट हुई। मुल्ला साहब स्वयं कहते हैं कि वह अकबर के खास मुसाहबों में से था। वह पाँच-सदी ओहदेदार था। सीधा और धर्मनिष्ठ मुसलमान था, पर साथ ही उसमें हास्यप्रियता का ईश्वरदत्त गुण था। बादशाह के मिजाज पर उसे जितना अधिकार प्राप्त था, उतना और किसी

अमीर को प्राप्त नहीं था। वह बहुत उदार और खाने खिलानेवाला आदमी था। सन् ९८२ हि० में उसका देहांत हुआ। इस संसार में वह कीर्तिशाली रहा और परलोक में अपने साथ नेकी ले गया।

मुल्ला साहब के पीछे नमाज पढ़कर और उनके विद्वत्तापूर्ण भाषण सुनकर जमालखाँ बहुत प्रसन्न हुआ। वह उन्हें अकबर के सामने ले गया और बोला कि मैं एक ऐसा व्यक्ति लाया हूँ जो श्रीमान् के आगे खड़ा होकर नमाज पढ़े (प्रायः किसी बड़े मुल्ला को आगे खड़ा करके उसके पीछे नमाज पढ़ी जाती है)। मुल्ला साहब कहते हैं कि उपाय के पैरों में भाग्य की जंजीर पड़ी है। सन् ९८१ हि० में हुसैनखाँ से अलग होकर बदायूँ से आगरे आया। जमालखाँ कोरची और स्वर्गीय हकीम ऐन उल्मुल्क के द्वारा बादशाही सेवा का सौभाग्य प्राप्त किया। उन दिनों गुणग्राहकता बहुत थी। पहुँचते ही बादशाह के पास बैठनेवालों में प्रविष्ट हो गया। जो बड़े बड़े विद्वान् अपने सामने किसी को कोई चीज नहीं समझते थे, बादशाह ने मुझे उन्हीं से लड़ा दिया। वह स्वयं बात को परखता था। ईश्वर के अनुग्रह, बुद्धि की तीव्रता और हृदय के साहस से (जिसका युवावस्था में होना स्वाभाविक ही है) बहुतों को दबाया। पहली ही सेवा में बादशाह ने कहा कि यह बदायूनी फाजिल हाजी इब्राहीम हिंदी का सिर तोड़नेवाला है। बादशाह चाहता था कि वह किसी प्रकार परास्त

हो। मैंने भी उस पर अच्छे अच्छे अभियोग लगाए। बादशाह बहुत प्रसन्न हुए। शेख अब्दुलनबी सदर पहले ही इस बात पर बिगड़े हुए थे कि यह बिना हमसे मिले ऊपर ही ऊपर आ पहुँचा। अब जो वाद विवाद में अपने मुकाबले पर देखा तो वही कहावत हुई कि एक तो साँप ने काटा, दूसरे उस पर अफीम खाई। खैर, धीरे धीरे उनका वैमनस्य भी प्रेम में परिवर्तित हो गया। परंतु मेरी समझ में तो मुल्ला साहब अपनी इस विजय पर व्यर्थ ही प्रसन्न हुए। उन्हें कदाचित् इस बात का ज्ञान नहीं हुआ कि यह विजय स्वयं अपनी ही सेना का पराजय है। क्योंकि इसके परिणाम स्वरूप धीरे धीरे सभी विद्वानों पर से बादशाह का विश्वास उठ गया और उनके साथ ही साथ ये भी उसकी दृष्टि से गिर गए। मुल्ला साहब साथ ही लिखते हैं कि इन्हीं दिनों शेख मुबारक का पुत्र शेख अब्बुलफजल, जिसकी बुद्धिमत्ता का सितारा चमक रहा था, बादशाह की सेवा में आया और उसने अनेक प्रकार की कृपाओं से विशिष्टता संपादित की। कुछ दूर और आगे चलकर कहते हैं कि बादशाह ने मुल्लाओं के कान मलने के लिये, जिसकी उन्हें मुझसे आशा नहीं रह गई थी, अब्बुलफजल को बहुत उपयोगी और अपने मन के मुताबिक पाया। इनके और अब्बुलफजल के विवरणों को पढ़ने से पाठकों को यह पता लग जायगा कि पहले अकबर की जो कृपा मुल्ला साहब पर थी, वह अब हटकर अब्बुलफजल पर हो गई थी। चाहे इसे भाग्य का जोर

कहे। और चाहे मिजाज पहचानना कहो, पर थी इसी बात की ईर्ष्या जो सदा बहुत तीव्र रूप धारण करके, बल्कि अब विषाक्त शब्दों के रूप में उनकी कलम से टपक रही थी।

तात्पर्य यह कि फाजिल बदायूनी हर संगति और हर सभा में उपस्थित रहते थे। कुछ ऐसे विशिष्ट विद्वान् थे जो अकबर के कहीं रहने के समय भी और यात्रा आदि में भी सदा उसके साथ रहते थे। उन्हीं विद्वानों में मुल्ला साहब भी सम्मिलित हो गए। ये अपनी पहली ही यात्रा का जो वर्णन लिखते हैं; उसे देखने से पता लगता है कि जब कोई नवयुवक किसी बहुत बड़े बादशाह की सेवा में रहकर राजसी ठाठ बाट देखता है, तब उसके मन में किस प्रकार के विचार उत्पन्न होते हैं। अभी तक वह अवसर है कि स्वामी का हृदय कृपा से और नए सेवक का हृदय स्वामिनिष्ठा के आवेश से पूरी तरह से भरा हुआ है। उसी समय मुनइमखां पटने में पठानों से लड़ रहा था। अकबर अपना लश्कर लेकर उसकी सहायता के लिये चला। सेना को आगरे से स्थल-मार्ग से भेज दिया और आप बेगमों, शाहजादों तथा अमीरों को अपने साथ लेकर जल-मार्ग से चला। अभी तक मुल्ला साहब प्रसन्न हैं; क्योंकि इस यात्रा का वर्णन बहुत अच्छी तरह करते हैं और उसमें अकबर की बहुत प्रशंसा करते हैं।

अकबर ने बड़े शाहजादे को भी साथ ले लिया था। नावों की इतनी अधिकता थी कि कहीं पानी दिखाई नहीं देता

था। नए नए ढंग की नावें थीं जिन पर ऊँचे ऊँचे पाल चढ़े हुए थे। किसी नाव का नाम निहंगसर था और किसी का शेरसर आदि। तरह तरह की झंडियाँ लहराती थीं; दरिया का शोर, हवा का जोर, पानी के सर्राटे, बेड़ा चला जा रहा था। मल्लाह अपनी बोली में गाते जाते थे। विलक्षण शोभा थी। ऐसा जान पड़ता था कि बस अब हवा में चिड़ियाँ और पानी में मछलियाँ नाचने लगेंगी। वह आनंद देखा कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। जहाँ चाहते थे, उतर पड़ते थे और शिकार खेलते थे। जब जी चाहता था, तब चल खड़े होते थे। रात के समय लंगर डाल देते थे। फिर वही विद्या संबंधी वाद विवाद होने लगते थे। कविताएँ आदि भी पढ़ी जाती थीं। फैजी साथ थे। मुल्ला साहब इसी वर्ष आए थे और वह भी साथ थे।

तबकात अकबरी आदि ग्रंथों में इसकी अपेक्षा कुछ अधिक वर्णन मिलता है। लिखा है कि स्थल की यात्रा में बादशाह के साथ जो जो सामान रहते थे, वह सब नावों पर ले चले। कुल कारखाने उदाहरणार्थ तोपखाने, सिलाह (हथियार) खाने, नक्कारखाने, तोशाखाने, फर्राशखाने, बावर्चीखाने, तबेले आदि सभी नावों पर थे। हाथियों के लिये बड़ी बड़ी नावें तैयार हुई थीं। और हाथी भी ऐसे ऐसे साथ लिए थे जो डील डौल, मस्ती और तेजी में प्रसिद्ध थे। एक नाव पर बालसुंदर और उसके साथ दो हथनियाँ थीं। एक दूसरी

नाव पर समनबाल और दो हथनियाँ थी। खेमों और डेरों आदि में जो सजावटें हुआ करती थीं, वह सब सजावटें उन नावों पर की गई थीं। उनमें अलग अलग कमरे थे और उन कमरों में भी बहुत सुंदरता से विभाग किए गए थे। उनमें मेहराबें और ताकों की तरह तराशें थीं; और घरों की तरह कई कई मंजिलें थीं। सीढ़ियों के उतार चढ़ाव, हवा के लिये खिड़कियाँ और प्रकाश के लिये रोशनदान थे। सभी बातों में नए नए आविष्कार किए गए थे। रूमी, चीनी और फिरंगी मखमलों तथा बनातों के परदे और फर्श थे जिन पर भारतीयों के हाथ के बेल बूटे आदि बने हुए थे। कहाँ तक वर्णन किया जाय। एक अद्‌भुत संग्रहालय हो रहा था। यह सब सामान नदी में शतरंज की बिसात की तरह बहुत ही व्यवस्था और ढंग से चलता था। बीच में बादशाह की नाव होती थी जो बड़े शानदार जहाज की तरह थी।

मुल्ला साहब कहते हैं कि दूसरे वर्ष बादशाह ने मुझ पर कृपा की और बड़े प्रेम से कहा कि सिंहासन बत्तीसी में राजा विक्रमाजीत के संबंध की जो बत्तीस कहानियाँ हैं, उनका फ़ारसी गद्य और पद्य में अनुवाद कर दो और नमूने के तौर पर एक वरक आज ही उपस्थित करो। एक ब्राह्मण संस्कृतज्ञ सहायता के लिये दिया। उसी दिन कहानी के आरंभ का एक पृष्ठ अनुवाद करके बादशाह की सेवा में उपस्थित किया। बाद-शाह ने उसे पसंद किया। जब समाप्त हुई, तब उसकी तारीख

के आधार पर "नामः खिरद अफ्ज़ा" (बुद्धिवर्धक ग्रंथ) उसका नाम पड़ा। (इसी नाम से इसके बनने की तारीख भी निकलती है।) बादशाह ने प्रसन्न होकर उसे स्वीकृत किया और वह पुस्तकालय में रखी गई। सच पूछो तो मुल्ला साहब तारीख कहने में कमाल करते हैं।

सन् ९८३ हि० तक बैठकें मनोनुकूल थीं; क्योंकि मुल्ला साहब जो कुछ कहते थे, वह धार्मिक सिद्धांतों के आधार पर कहते थे और बादशाह ने अभी तक इस क्षेत्र के बाहर पैर नहीं बढ़ाया था। परंतु मुल्ला साहब कुछ विद्वानों से इस कारण असंतुष्ट थे कि वे केवल आडंबर से धर्मनिष्ठ और साम्राज्य में शक्तिशाली बने हुए थे। ऐसे लोग मखदूम और ..दर तथा उनके अनुयायी थे। कुछ लोगों से वे इस कारण असंतुष्ट थे कि वे केवल ज़बानी जमाखर्च या वाकछल की सहायता से विद्या के अधिकारी बने हुए थे। पर इनका लोहा सब पर तेज हुआ; क्योंकि इन्होंने आते ही सबको दबा लिया। जो कोई ज़रा भी सिद्धांत के विरुद्ध बोलता था, तुरंत उसके कान पकड़ लेते थे। हकीम उल्मुल्क के साथ इनकी जो कटाछनी हुई थी, वह पाठक देख ही चुके हैं।

सन् ९८३ हि० तक के विवरण और चार ऐवान की लड़ाइयों के अपने और अन्यान्य विद्वानों के संबंध के कथन और चुटकुले आदि बहुत प्रसन्नतापूर्वक लिखते चले जाते हैं। पर उसी समय से अचानक कलम की गति बदलती है और स्पष्ट

प्रकट होता है कि कलम से अक्षर और आँखों से आँसू बराबर बराबर बह रहे हैं। लिखते हैं—

"आज इस प्रकार की लड़ाइयों और वाद विवादों को दस बरस बीत चुके हैं। वे शास्त्रार्थ और वाद विवाद करनेवाले जिज्ञासु और उनके अनुयायी सौ से अधिक नहीं थे। पर उनमें से एक भी दिखाई नहीं देता। सबने मृत्यु के घूँघट में मुँह छिपा लिए। वे लोग मिट्टी हो गए और उनकी मिट्टी भी उड़ गई। जब कोई दुर्लभ पदार्थ हाथ से निकल जाता है, तब उसकी कदर मालूम होती है। अब मैं अपने उन साथियों को स्मरण करता हूँ, रोता हूँ, आहें भरता हूँ और मरता हूँ। क्या अच्छा होता यदि वे लोग इस कामनापुरी में कुछ दिन और भी ठहरते! वे लोग जो कुछ थे, गनीमत थे। बात की प्रवृत्ति उन्हीं की ओर होती थी; और बात का आनंद उन्हीं से मिलता था। अब कोई बात करने के योग्य ही नहीं रहा।"

इस लेख के ढंग से और इसके आगे के लेखों से यह बात स्पष्ट प्रकट होती है कि यह प्रसंग ठीक सफलता और संगति के आनंद के समय लिखा गया था। परंतु जो शोकपूर्ण गद्य और पद्य का अंश है, वह पीछे से किनारे पर लिखा गया होगा; और वह भी सन् ९९१ या ९९२ के लगभग होगा, न कि सन् ९९९ में, जैसा कि उन्होंने ग्रंथ की भूमिका में लिखा है।

जब सन् ९८३ हि० में बदख्शाँ का बादशाह मिरज़ा सुलैमान भागकर इधर आया, तब अकबर ने बहुत धूमधाम से उसका स्वागत किया। मिरजा भी चार ऐवान के प्रार्थनामंदिर में आया करता था। शेखों और विद्वानों से उसका वार्तालाप हुआ था। मुल्ला साहब लिखते हैं कि वह ज्ञानवान् और योग्य था और उससे बहुत उच्च आध्यात्मिक विचार सुने गए। उसने कभी समूह की नमाज नहीं छोड़ी। एक दिन मैंने तीसरे पहर की नमाज पढ़कर केवल दुआ ही की और अल्हम्द (ईश्वर के गुणानुवाद के वाक्य) नहीं पढ़ो। मिरजा ने आपत्ति की कि (ईश्वर की) हम्द (प्रशंसा) क्यों नहीं पढ़ी। मैंने कहा कि पैगंबर साहब के समय में नमाज के बाद फातिहा पढ़ने की चाल नहीं थी; बल्कि कुछ प्रवादों में उसे निंदनीय भी कहा है। मिरजा ने कहा कि विलायत में विद्या नहीं थी या विद्वान् नहीं थे ? (मुल्ला भी झगड़ने को आँधी थे।) मैंने कहा—हमें ग्रंथ से काम है, अनुकरण से काम नहीं है। इस पर अकबर ने कहा कि आगे से पढ़ा करो। मैंने स्वीकार कर लिया; पर साथ ही ग्रंथ में से निंदात्मक प्रवाद भी निकालकर दिखा दिया।

गुजरात की लूट में एतमादखाँ गुजराती के पुस्तकालय की अनेक उत्तमोत्तम पुस्तकें प्राप्त हुई थीं। चार ऐवान की सभाओं में अकबर वे पुस्तकें विद्वानों में वितरित किया करता था। मुल्ला साहब लिखते हैं कि मुझे भी कई पुस्तकें दी थीं।

उस समय तक बादशाह प्राय: विषयों में इन्हीं को संबोधन करके बात कहा करते थे और प्रत्येक विषय में पूछते थे कि इसकी वास्तविकता क्या है ?

बादशाह की सेवा में सात इमाम थे और सप्ताह में सात दिन होते हैं। एक एक दिन पारी पारी से एक इमाम नमाज पढ़ाया करता था। दूसरे वर्ष में मुल्ला साहब कहते हैं कि जिस प्रकार सुस्वरता के कारण तूती को पिंजरे में बंद करते हैं, उसी प्रकार मुझे भी उन्हीं में सम्मिलित किया गया और बुधवार की इमामत मुझे प्रदान की गई। हाजिरी की व्यवस्था ख्वाजा दौलत नाजिर के सपुर्द थी। उसका स्वभाव बहुत कठोर था। वह लोगों को बहुत दिक करता था।

इसी वर्ष बादशाह ने बीस्ती का मंसब और कुछ व्यय भी प्रदान किया। पहली ही बार कहा कि बीस्ती के मंसब के अनुसार दाग के लिये घोड़े हाजिर करो। लिखते हैं कि शेख अब्दुलफजल भी इसी बीच में पहुँचे थे। हम दोनों की वही बात है जो शेख शिबली ने अपने और जुनैद के लिये कही थी; अर्थात् ये दो जली टिकियाँ हैं जो एक ही तंदूर से निकली हैं। अब्दुलफजल ने झट स्वीकृत करके कार्य आरंभ कर दिया; और ऐसे परिश्रम से उसने सेवा की कि अंत में दो हजारी मंसब और राजमंत्री के पद पर पहुँच गया (जिसकी चौदह हजार की आय है)। मैं अनुभव के अभाव और सीधेपन के कारण अपना कंबल भी न सँभाल सका। अंजू

के सैयदों में से एक व्यक्ति ने ऐसे अवसर पर स्वयं अपना ही उपहास किया था जो मेरी अवस्था के बहुत अनुकूल है। उसने कहा था—

مرا داخلي سازي و بيستي - مبيناد مادر بدين نيستي

अर्थात् मुझे तो बीस्तो का मंसब प्रदान किया गया; परंतु ईश्वर न करे कि मेरी माँ मुझे इस दुर्दशा में देखे।

उन दिनों मेरा यही विचार था कि संतोष ही सबसे बड़ा धन है। मेरे पास कुछ जागीर है; कुछ पुरस्कार आदि से बादशाह सहायता करेंगे। बस उसी पर संतोष करूँगा; चुप-चाप आनंद से एक कोने में बैठूँगा। विद्या-प्रेम और मन की स्वतंत्रता का परिणाम आर्थिक दृष्टि से विफलता ही है। इसे सँभाले रहूँगा। परंतु दुःख है कि वह भी मुझे प्राप्त नहीं हुआ। (यहाँ मीर सैयद मुहम्मद मीर आदिल का उपदेश स्मरण करते हैं और रोते हैं। देखो परिशिष्ट।)

मुल्ला साहब बहुत अच्छी उठान से उठे, पर दुःख है कि रह गए और बुरी तरह से रह गए। वे अवश्य उन्नति करते और यथेष्ट से भी अधिक उन्नति करते। पर हठी आदमी थे और बात का ऐसा निबाह करते थे कि चाहे कितनी ही अधिक हानियाँ क्यों न हों, पर उसे नहीं छोड़ते थे और उसके निबाह में ही अभिमान समझते थे। अब्बुलफजल को संसार के घिस्सों ने खूब पाठ पढ़ाए थे, इसलिये वह समझ गए। पर मुल्ला साहब को बीस्ती का पद मिला तो उन्होंने अस्वीकार

कर दिया। अब्बुलफजल ने तुरंत स्वीकार कर लिया था, इसी लिये उसका शुभ फल पाया।

इस बात का समर्थन स्वयं मुल्ला साहब के लेखों से भी होता है। लिखते हैं कि सन् ६८३ हि० में मैंने छुट्टी माँगी, पर नहीं मिली। बादशाह ने एक घोड़ा और कुछ रुपए दिए। साथ ही हजार बीघे जमीन भी दी और कहा कि सैनिक विभाग से तुम्हारा नाम निकाल देते हैं। उन दिनों में बीस्ती के पद की ओर देखते हुए मुझे यह पुरस्कार बहुत जान पड़ा, क्योंकि यह हजारी पद के योग्य पुरस्कार था। बादशाह के साथ बैठकर बातें करनी पड़ती हैं। विद्या की चर्चा है, सेवा करना है; सिपाही की तलवार और बंदूक नहीं उठानी पड़ती। यह सब कुछ ठीक था, पर सदर की प्रतिकूलता और संसार की सहायता के अभाव के कारण यथेष्ट लाभ न हो सका। आगे उन्नति का मार्ग नहीं था। इतना हुआ कि शाही आज्ञा-पत्र में "जीविका-निर्वाह के लिये सहायता" लिखा गया, "जागीर" शब्द नहीं लिखा गया। (जागीर में सैनिक सेवा भी करनी पड़ती थी।) मैंने कई बार निवेदन किया कि इतनी जमीन से ही सदा किस प्रकार हाजिरी हो सकेगी। बादशाह ने कहा कि सेवा के साथ साथ तरक्की मिल जायगी। पुरस्कार आदि से भी सहायता हुआ करेगी। शेख अब्दुल नबी सदर ने साफ कह दिया कि तुम्हारे साथियों में से किसी को जीविका निर्वाह के लिये इतना नहीं मिला। अब तक बाईस

वर्ष हुए। आगे मार्ग बंद है। वे सहायताएँ ईश्वरीय महिमा के परदे में हैं। एक दो बार से अधिक पुरस्कार की भी सूरत नहीं देखी। बस वचन हो वचन थे। और अब तो संसार का पृष्ठ हो उलट गया है। हाँ सेवाएँ हैं जिनका कुछ परिणाम नहीं; और निकृष्ट बंधन हैं जो मुफ्त गले पड़े हैं। ईश्वर के यहाँ से कोई काम हो तो इनसे छुटकारा मिले।

अच्छी तरह जानता हूँ कि यह संसार कैसा है और इसमें जो कुछ है, वह कैसा है। आशा है कि ईश्वर अंत सकुशल करेगा। कहा है—जो कुछ तुम्हारे पास है, वह हो चुकेगा और जो कुछ ईश्वर के पास है, वही रहेगा।

अब ऐसी समस्याएँ उपस्थित होने लगीं जिनमें विरोध या मतभेद होता था। इसी कारण बादशाह और शेख सदर के मन में भी अंतर पड़ गया जिससे सब बातें ही बदल गईं। पहला प्रश्न यह था कि एक पति कितनी स्त्रियाँ कर सकता है। मुझे जो कुछ मालूम था, वह निवेदन किया। (देखो शेख अब्दुल नबी सदर का विवरण।)

इसी वर्ष में लिखते हैं कि दक्षिण का एक बुद्धिमान् ब्राह्मण शेख भावन आया जो बहुत निष्ठा और प्रेम के साथ मुसलमान होकर बादशाह के खास चेलों में सम्मिलित हुआ। आज्ञा हुई कि अथर्व वेद, जिसकी प्रायः आज्ञाएँ इस्लाम की आज्ञाओं से मिलती हैं, पढ़कर सुनावे और यह दास (मुल्ला साहब) फारसी में उसका अनुवाद करे। उसके कुछ स्थल ऐसे कठिन

थे कि वह समझा नहीं सकता था। मैंने बादशाह से निवेदन किया। पहले शेख फैजी को और फिर हाजी इब्राहीम सरहिंदी को आज्ञा हुई। पर जैसा जी चाहता था, वैसा कोई न लिख सकता था। अब उन मसौदों का नाम भी नहीं बच रहा। उसकी आज्ञाओं में एक यह है कि जब तक एक वाक्य (जिसमें बराबर बहुत से ल आते हैं, जैसे ला इलह इल्लिल्लाह) न पढ़े तब तक मुक्ति नहीं होगी। कुछ शर्तों के साथ गोमांस भी विहित कहा गया है। और कहा है कि शव को या तो जलावें और गाड़ें आदि आदि।

सन् ९८४ हि० में बादशाह अजमेर में थे। वहां भगवानदास के पुत्र मानसिंह को साथ लेकर दरगाह में गए और एकांत कराकर उनकी सहायता चाही। खिलअत, घोड़ा और सेनापति के योग्य समस्त सामग्री प्रदान करके राणा कीका पर चढ़ाई करने के लिये कोमलमेर को रवाना किया। बड़े बड़े वीर सरदार और खास बादशाही सवारों में से पाँच हजार रकमी सवार सहायता के लिये साथ गए। मानसिंह की अपनी निज की सेना अलग थी। लिखते हैं कि अजमेर से तीन कोस तक बराबर अमीरों के सरा-परदे लगे हुए थे। काजीखां और आसफखाँ को पहुँचाने के लिये मैं भी गया। मार्ग में मेरा भी जी चाहा कि चलूँ और धर्म्म की रक्षा के लिये युद्ध करूँ। सीधा शेख अब्दुल नबी सदर के पास पहुँचा। उनसे कहा कि आप मुझे बादशाह से जाने की आज्ञा ले दें।

उन्होंने मान तो लिया, पर सैयद अब्दुलरसूल नामक अपने एक अयोग्य और दुष्ट वकील पर यह काम छोड़ दिया। मैंने देखा कि बात दूर जा पड़ी। नकीबखाँ के साथ धर्म का भाई-चारा था। उसने कहा कि यदि लश्कर का प्रधान हिंदू न होता तो सबसे पहले मैं इस चढ़ाई में साथ जाने की आज्ञा माँगता। मैंने उसका इतमीनान किया कि हम तो बादशाह को अपना प्रधान समझते हैं। मानसिंह आदि से हमें क्या काम है। नीयत ठीक होनी चाहिए। अकबर एक ऊँचे चबूतरे पर पैर लटकाए मिरजा मुबारक की ओर मुँह किए बैठे थे। इतने में नकीबखाँ ने मेरे लिये निवेदन किया। पहले तो कहा कि इसका तो इमामत का पद है। यह कैसे जा सकता है? उसने कहा कि इसकी धार्म्मिक युद्ध में जाने की बहुत इच्छा है। मुझे बुलाकर पूछा—क्या बहुत जी चाहता है? मैंने निवेदन किया—बहुत। पूछा, कारण क्या है? निवेदन किया कि चाहता हूँ कि काली दाढ़ी को शुभचिंतना से लाल करूँ। कहा कि अच्छा, ईश्वर चाहेगा तो विजय का ही समाचार लाओगे। मैंने सिर झुकाकर ध्यानपूर्वक बिदाई के समय की फातिहा पढ़ी। चबूतरे के नीचे से ही मैंने उनके चरण छूने के लिये हाथ बढ़ाए। आपने पैर ऊपर खींच लिए। जब दीवानखाने से निकला तो फिर बुलाया। एक लप भरकर अशरफियाँ दीं और कहा कि जाओ, ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे। गिनीं तो ६५ अशरफियाँ थीं। शेख अब्दुल नबी

अंदर से बिदा होने गया। उन दिनों वे कृपालु हो गए थे और पुराने मनमुटाव को प्रेम से बदल चुके थे। कहा कि जब दोनों सेनाओं का आमना सामना हो तो मुझे भी शुभ कामना से स्मरण करना; क्योंकि हदीस के अनुसार दुआ के स्वीकृत होने का वह बहुत उपयुक्त समय होता है। देखना, भूलना नहीं! स्वीकृत करके मैंने भी दुआ चाही। घोड़ा कसा और अपने परम मित्रों के साथ मिलकर चल पड़ा। यह यात्रा आदि से अंत तक बहुत उत्तमतापूर्वक समाप्त हुई।

मुल्ला साहब के लेखन-कौशल ने युद्ध-क्षेत्र का बहुत ही सुंदर चित्र खींचा है। लेकिन उसमें भी लोगों के पार्श्वों में कलम की नोकें चुभोए जाते हैं। (देखो राजा मानसिंह का विवरण।) जब विजय हुई और राणा भाग गया, तब अमीर लोग परामर्श करने के लिये बैठे। इलाकों की व्यवस्था प्रारंभ हुई। राणा के पास रामप्रसाद नाम का एक बहुत ऊँचा और जंगी हाथी था। बादशाह ने कई बार माँगा था, पर उसने नहीं दिया था। वह भी लूट में हाथ आया। अमीरों की यह सलाह हुई कि इसी को विजय की सूचना के साथ बादशाह की सेवा में भेजना उचित है। आसफखाँ ने मेरा नाम लिया और कहा कि ये तो केवल पुण्य करने आए थे। इन्हीं के साथ भेज दो। मानसिंह ने कहा कि अभी तो बड़े बड़े काम बाकी पड़े हैं। ये युद्ध-क्षेत्र में योद्धा सैनिकों के आगे इमामत करेंगे। मैंने कहा कि यहाँ की इमामत करने के लिये

मृत्यु है। मेरा तो अब यह काम है कि जाऊँ और बादशाही सेवकों की पंक्ति के आगे इमामत करूँ। इस चुटकुले से मानसिंह बहुत प्रसन्न हुए। हाथी की रक्षा के लिये तीन सौ सवार साथ किए और सिफारिश का पत्र लिखकर मुझे बिदा किया। बल्कि मोहने तक थाने बैठाने के बहाने से शिकार खेलते हुए पहुँचाने आए। मोहना वहाँ से बीस कोस है। मैं माखोर और माँडलगढ़ से होता हुआ आमेर के रास्ते आया। वहाँ मानसिंह की जन्मभूमि थी। जयपुर अब उसी के पार्श्व में बसा हुआ है। मार्ग में स्थान स्थान पर लड़ाई और मान-सिंह की विजय का समाचार सुनाता आता था। लोग आश्चर्य करते थे। किसी को विश्वास नहीं होता था। आमेर से पाँच कोस पर हाथी दलदल में फँस गया। वह ज्यों ज्यों आगे जाता था, त्यों त्यों अधिक धँसता जाता था। आखिर मुल्ला ही तो थे। लिखने के ढंग से जान पड़ता है कि बहुत घबराए। अब पाठक यहीं से समझ लें कि यदि ऐसे लोगों पर साम्राज्य शासन की भारी समस्याओं के बोझ आ पड़ें तो छाती फटे या बचे। कहाँ अब्बुलफजल और उसके काम। अकबर बड़ा भारी लश्कर लिए आसीर का गढ़ घेरे पड़ा है। घेरा अधिक दिनों तक चला। एक अँधेरी रात को बादल गरज रहे थे और पानी बरस रहा था। अब्बुलफजल सेना लेकर दीवार के नीचे पहुँचा और रस्से डालकर हाथ में तलवार लेकर ऊपर चढ़ गया और किले के अंदर जा कूदा। पहले जब कोई

इतना बड़ा दिल दिखलावे, तब उसके विषय में जबान हिलावे। खाली बातें करने से क्या होता है।

वहाँ के लोग आए और बोले कि अगले वर्ष भी यहाँ एक बादशाही हाथी फँस गया था। इसका उपाय यही है कि मटकों और मशकों में पानी भरकर डालते हैं। बस हाथी निकल आता है। पनभरे बुलाए गए। उन्होंने बहुत सा पानी डाला। धीरे धीरे हाथी आप ही निकला और इस विपत्ति से उसका छुटकारा हुआ।

लिखते हैं कि हाथी बहुत कठिनता से निकला। हम आमेर पहुँचे। वहाँ के लोग फूले नहीं समाते थे। उनके अभिमान का सिर आकाश से जा लगा कि हमारे राजा ने इतने बड़े युद्ध में विजय पाई। अपने वंश के शत्रु का कल्ला तोड़ा और हाथी छीन लिया। टोंड़े से भी होकर निकला। यहीं मेरा जन्म हुआ था। बमावर में आया। (पहले पहल इसी स्थान की मिट्टी मेरे शरीर में लगी है।) इस वर्णन से बहुत प्रसन्नता और प्रेम टपकता है। भला एक सज्जन मुल्ला लड़ाई से जीता लौट आवे और वह भी लड़ाई जीतकर लौटे! तिस पर इतने बादशाही सिपाही और इतना बड़ा हाथी लेकर अपने गाँव में आवे और वहाँ का एक एक आदमी उसे देखने के लिये आवे तो वह प्रसन्न न हो तो और कौन प्रसन्न हो! और उसके लेख से प्रेम भी जितना टपके, वह सब थोड़ा है। जिस मिट्टी में खेलकर बड़े हुए

और जिस भूमि की गोद में लोटकर पले, उससे प्रेम न हो तो और किससे हो।

जैसे तैसे फतहपुर पहुँचे। राजा मानसिंह के पिता राजा भगवानदास ने कोका के द्वारा विजयपत्र और हाथी बादशाह की सेवा में उपस्थित किया। पूछा कि इसका क्या नाम है? निवेदन किया कि रामप्रसाद। कहा कि यह सब पीर की कृपा से हुआ। इसका नाम पीरप्रसाद है। फिर कहा कि तुम्हारी बहुत प्रशंसा लिखी है। सच बतलाओ कि किस सेना में थे और क्या क्या काम किया। निवेदन किया कि बादशाहों की सेवा में सच भी डरकर काँपने लगता है। भला यह सेवक कोई झूठ बात कैसे निवेदन कर सकता है! जितनी बातें थीं, सब विस्तारपूर्वक निवेदन कीं। पूछा कि तुम सैनिक वस्त्र पहने थे या नंगे ही रहे? निवेदन किया कि जिरह बकतर था। पूछा कहाँ से मिल गया? निवेदन किया कि सैयद अब्दुल्लाखाँ से। सभी उत्तर पसंद आए। फिर एक लप भर अशरफियाँ पुरस्कार स्वरूप दीं। ९६ अशरफियाँ थीं। फिर पूछा—शेख अब्दुन नबी से मिल चुके? निवेदन किया कि अभी तो यात्रा से सीधा चला आ रहा हूँ; उनसे कैसे मिल सकता था। एक बढ़िया दुशाला देकर कहा कि इसे लेते जाओ। शेख से मिलो और कहो कि इसे ओढ़ो। यह हमारे खास कारखाने का है। तुम्हारी ही नीयत से फरमाइश की थी। मैंने वह ले जाकर सँदेसा

कह सुनाया। शेख प्रसन्न हुए। पूछा कि तुम्हारे चलने के समय मैंने कह दिया था कि जब सेनाएँ आमने सामने खड़ी हों तो दुआ से हमें स्मरण करना। मैंने कहा कि कुल मुसलमानों के लिये जो दुआ है, वही पढ़ी थी। कहा कि यह भी यथेष्ट है। हे ईश्वर, यह वही शेख अब्दुल नबी हैं। अंत समय में ऐसी दुर्दशा से इस संसार से गए, जो ईश्वर न दिखावे और न सुनावे। हाँ इससे सबको शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

कोकंदा की चढ़ाई के वर्णन में लिखते हैं कि मानसिंह, आसफखाँ और गाजीखाँ बदखशी को बुला भेजा। आसफखाँ और मानसिंह में परस्पर द्वेष था। कई दिनों तक सलाम करने से वंचित रखे गए। लेकिन मुल्ला साहब, गाजीखाँ, मेहतरखाँ, अली मुराद उजबक, खंजरी तुर्क तथा और भी दो एक ऐसे आदमी थे जिन पर कई प्रकार के अनुग्रह हुए और जो पदवृद्धि से सम्मानित किए गए। यह युद्ध सन् ९८५ हि० में समाप्त हुआ।

इस समय तक फाजिल बदायूनी ने विरोध के मार्ग में केवल यहीं तक पैर बढ़ाए थे कि उन्हें शासन-व्यवस्था में अथवा सेवकों के कामों में कुछ बातें अपनी मरजी के खिलाफ मालूम होती थीं। हाँ, तबीयत शोख और जबान तेज थी। जो व्यंग्य या परिहास किसी पर सूझता था, वह कलम की नोक से टपक पड़ता था।

लिखते हैं कि मैं इसी सन् में छुट्टी लेकर अपनी जन्मभूमि को गया था। रोग की तीव्रता ने बिछौने पर से हिलने नहीं

दिया था। आरोग्य लाभ करके दरबार के लिये चल पड़ा। मार्ग में सैयद अब्दुल्लाखाँ बारह से भेंट हुई। उन्होंने कहा कि इस मार्ग में अनेक प्रकार के भय हैं। रजवीखाँ के साथ घूमता फिरता मालवे के दीपालपुर नामक स्थान में आकर बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। यहाँ राज्यारोहण के बाईसवें वर्ष के जशन की धूमधाम थी। कुरान हमायल (गले में तावीज की भाँति पहनने योग्य कुरान की बहुत छोटी प्रति) और खुतबों की पुस्तिका, जिनकी रचना में अनेक प्रकार के कौशल थे, बादशाह की सेवा में उपस्थित की। ये दोनों अप्राप्य पदार्थ हाफिज मुहम्मद अमीन खतीब कंधारी के थे। ये हाफिज सात इमामों में से एक इमाम हैं और सुस्वरता तथा कुरान का सुंदरतापूर्वक पाठ करने में अद्वितीय हैं। बसावर के रास्ते में एक पड़ाव पर उनका माल चोरी गया था। उसमें से अब्दुल्लाखाँ ने ये दोनों चीजें प्राप्त करके मुझे दी थीं। बादशाह प्रसन्न हो गए। उन्होंने हाफिज को बुलाया और विनोद के रूप में कहा कि यह हमायल हमारे वास्ते एक जगह से आई है। लो, इसे तुम अपने पास रखो। हाफिज ने देखते ही उसे पहचान लिया। जान में जान आ गई। बहुत कुछ अभिवादन करके और धन्यवाद के सिजदे करके निवेदन किया कि हुजूर ने उसी दिन सैयद अब्दुल्लाखाँ से कहा था कि ईश्वर चाहेगा तो तुम्हीं वे चीजें ढूँढ़ निकालोगे; वे चीजें कहीं जाने न पावेंगी। फिर मुझसे हाल पूछा।

मैंने निवेदन किया कि बसावर के इलाके में मजदूर लोग हौज और कूएँ खोदते हैं। वे दिन के समय काम करते हैं और रात के समय चोरी करते तथा डाका मारते हैं। उन्हीं ने माल चुराया था। उनमें से एक फूट गया। इसी पेंच में ये चीजें निकल आईं। बादशाह ने कहा कि हाफिज, तुम धैर्य रखो; और असबाब भी मिल जायगा। उसने निवेदन किया कि इस सेवक को तो केवल हमायल और खुतबों की इस पुस्तिका से ही मतलब था, क्योंकि ये दोनों चीजें पूर्वजों के स्मृति-चिह्न हैं। और वृद्धावस्था ने मुझे इस प्रकार की रचनाओं के योग्य नहीं रखा। बादशाह ने जो कुछ कहा था, अंत में वही हुआ। बाकी असबाब भी बेलदारों के पास से निकल आया। वह सब सामान सैयद अब्दुल्लाखाँ ने फतहपुर में स्वयं आकर बादशाह की सेवा में उपस्थित किया।

इसी सन् में लिखते हैं कि मैं जन्मभूमि से आया। फिर नए सिरे से मुझे इमामत करने की आज्ञा हुई। ख्वाजा दौलत नाजिर नियुक्त है कि ख्वाहमख्वाम हफते में एक बार चौकी पर हाजिर करे। ठीक वही कहावत है कि अहमद पाठशाला में नहीं जाता, बल्कि ले जाया जाता है।

इसी सन् में मुल्ला साहब को बहुत दुःख हुआ। हुसैनखाँ टुकड़िया मर गए। इनके साथी, मित्र, स्वामी जो कुछ कहो, यही थे। यद्यपि सन् ९८१ हि० में इनसे भी किसी बात पर खटककर अलग हो गए थे, तथापि आजकल संसार और उसके

निवासियों से बहुत दुःखी थे, इसलिये और भी अधिक दुःख हुआ। हुसैनखाँ शेरों का सा हृदय रखनेवाले सिपाही और पक्के सुन्नी मुसलमान थे। उनका जीवन भी अकबरी शासन-काल के एक भाग का अलग ही रंग दिखलाता है। इसलिये उनका वर्णन परिशिष्ट में अलग किया गया है।

सन् ६८५ हि० में राजा मभोला को बाँस बरेली के प्रांत में, पहाड़ की तराई में, प्रबन्ध और व्यवस्था के लिये भेजा। उसने वहाँ से एक रिपोर्ट की। उसके कुछ प्रार्थनापत्रों में से एक इस आशय का था कि श्रीमान् की सेवा से दूर होकर इस जंगल में आ गया हूँ। यहाँ कोई मित्र या साथी नहीं है। यदि शेख अब्दुलकादिर बदायूनी को यहाँ भेज दिया जाय तो बहुत अच्छा हो, क्योंकि वह इस प्रांत के भले बुरे से परिचित है। उसके विश्वास पर लोग प्रवृत्त भी हो जायँगे। और दरबार में उसको कोई ऐसी सेवा भी सपुर्द नहीं है। इससे उस पर भी अनुग्रह हो जायगा और इस सेवक की भी प्रतिष्ठा हो जायगी। आगे जैसी श्रीमान् की आज्ञा हो। ख्वाजा शाह मंसूर ने एक एक वाक्य पढ़कर सुनाया; और एक एक बात का जो जो उत्तर बादशाह ने बतलाया, वह लिख दिया। पर मेरे भेजने के संबंध में न हाँ की और न नहीं।

इसी वर्ष अजमेर से नियमानुसार हाजियों को हज करने के लिये भेजा। शाह अबूतुराब को मीर हाज बनाया। बहुत कुछ सामग्री दी और खुली आज्ञा दे दी कि जो चाहे

सो जाय। उक्त शाह शीराज के अच्छे सैयदों में से थे। गुजरात के बादशाह उन पर बहुत भक्ति और विश्वास रखते थे। मैंने शेख अब्दुल नबी सदर से कहा कि मुझे भी आज्ञा ले दो। शेख ने पूछा कि तुम्हारी माता जीती हैं? मैंने कहा कि हाँ। पूछा—भाइयों में से भी कोई है जो उसकी सेवा करता रहे? मैंने कहा कि उसके निर्वाह का साधन तो मैं ही हूँ। कहा कि पहले माता की आज्ञा ले लो तो अच्छा हो। भला वह कब आज्ञा देने लगी थीं! इस प्रकार यह पुण्य भी संचित न हो सका। अब लालसा के मारे बोटियाँ काटता हूँ और कुछ हो नहीं सकता।

अभी तक मुल्ला साहब का यह विश्वास बना हुआ था कि बादशाह पर ईश्वर की छाया होती है और वह रसूल का नायब या प्रतिनिधि होता है। लिखते हैं कि मैं लश्कर के साथ रेवाड़ी के जिले में था। घर से समाचार आया कि लौंडी के गर्भ से पुत्र उत्पन्न हुआ है। बहुत दिनों पर और बड़ी प्रतीक्षा के उपरांत उत्पन्न हुआ था। बड़ी प्रसन्नता से मैं अशरफी भेंट करने के लिये गया और उसका नाम रखने के लिये निवेदन किया। पूछा कि तुम्हारे पिता और दादा का क्या नाम था? मैंने निवेदन किया कि पिता का नाम मलूक शाह और दादा का नाम हामिद शाह था। उन दिनों बादशाह प्रायः "या हादी" "या हादी" (हे मार्गदर्शक) का जप किया करते थे। कहा कि इसका नाम अब्दुलहादी

रखो। हाफिज मुहम्मद इब्न खतीब ने बहुत कहा कि नाम रखने के भरोसे न रहो। हाफिजों को बुलवाओ और आयु-वृद्धि के लिये कुरान पढ़वाओ। परंतु मैंने कुछ ध्यान नहीं दिया। आखिर छः महीने का होकर मर गया। खैर; ईश्वर मेरे लिये उसका पुण्य संचित रखे और कयामत के दिन उसे मेरा रक्षक करे।

उसी पड़ाव से पाँच महीने की छुट्टी लेकर बसावर आया। पर कुछ आवश्यकताओं बल्कि व्यर्थ की बातों के कारण वचन-भंग करके साल भर तक पड़ा रहा। इस प्रकार सेवाओं से दूर रहने और विरोधों ने धीरे धीरे बादशाह की नजरों से मुझे गिरा दिया। अब मुझ पर उनका कुछ भी ध्यान न रह गया। आज तक अठारह वर्ष हुए। अठारह हजार दशाएँ सामने से गुजर गईं। सब बातों से वंचित हूँ। न इस अवस्था में मुझे शांति मिलती है और न इससे भाग निकलने का कोई मार्ग दिखाई देता है।

बादशाह सन् ९८६ हि० में पंजाब का दौरा करके जल-मार्ग से दिल्ली पहुँचे। वहाँ जल की नाव पर से उतरकर स्थल की नाव पर सवार हुए। साँडनियों की डाक बैठा दो और ठीक समय पर अजमेर पहुँचकर उर्स में सम्मिलित हुए। दूसरे ही दिन बिदा होकर आगरे की ओर लौटे। प्रभात का समय था कि टोंड़ा के पड़ाव पर पहुँचे। मुल्ला साहब लिखते हैं कि मैं बसावर से चलकर स्वागत करने के लिये

आया था। सेवा में उपस्थित हुआ। किताब उल् अहादीस नामक पुस्तक भेंट की। उसमें जहाद का महत्त्व और धनुर्विद्या के लाभ बतलाए हैं। नाम भी ऐसा रखा है कि उसी से उसके बनने की तारीख भी निकलती है। वह पुस्तक राजकीय पुस्तकालय में प्रविष्ट हुई। ईश्वर को धन्यवाद है कि मेरे सेवा से अनुपस्थित रहने और वचन-भंग करने की कोई चर्चा ही नहीं आई। जान पड़ता है कि यह पुस्तक सन् ९७८ हि० से पहले लिखी गई होगी। इनकी कलम भी आजाद की तरह चुपचाप बैठना नहीं जानती थी। यह कुछ न कुछ कहे जाते थे। लिखते थे और डाल रखते थे।

अब तक यह दशा थी कि स्वामी अपने सेवक को हर समय प्रेम की दृष्टि से देखता था, गुण-ग्राहकता और पालन के विचार करके प्रसन्न होता था। और स्वामिनिष्ठ सेवक सब बातों में शुभ-चिंतना, सद् विश्वास और जान निछावर करने के विचारों का विस्तार करके सहस्रों प्रकार की आशाएँ रखता था। परंतु अब वह समय आ गया कि दोनों अपने अपने स्थान पर आकर रुक गए और दोनों के विचार बदल गए। दरबार और दरबारियों के हाल तो पाठकों ने देख ही लिए। सब बातों का रूप ही बदल गया था और विरोधी नई दुनिया के लोग थे। उधर मुल्ला साहब का स्वभाव ऐसा बना था कि किसी से मेल ही न खाता था। धर्मनिष्ठा का तो केवल बहाना था। और इसमें भी संदेह नहीं कि

उनके सहपाठी अब्बुलफजल और फैजी जिस प्रकार विद्या और गुण में बढ़े चढ़े थे, उसी प्रकार वे पद और मर्यादा में भी बराबर बढ़ते चले जाते थे। और प्राय: विद्वान् लोग जो विद्या में मुल्ला साहब की बराबरी के थे, बल्कि उनसे भी कम थे, संसार के अनुकूल चलकर बहुत आगे बढ़ गए थे। इसलिये भी मुल्ला साहब का जी छूट गया था। उनमें साहस न रह गया था। और यदि सच पूछा जाय तो अपने व्यक्तित्व की दृष्टि से ये उसी काम के थे जिस काम पर पारखी बादशाह ने इन्हें नियुक्त किया था। वही काम ये करते रहे और उसी में मर गए। अकबर के विवरण में मैंने जो जो बातें लिखी हैं, वे प्राय: इन्हीं की पुस्तक से ली हैं; और वे सब बातें बिलकुल ठीक हैं। परंतु साथ ही मैं यह भी कहता हूँ कि मुल्ला साहब ने उन सब बातों का क्रम बहुत ही भद्दे ढंग से लगाया है; और राजनैतिक विषयों को ऐसे स्थानों पर सजाया है कि उनसे ख्वाहमख्वाह अकबर और प्राय: विद्वानों तथा अमीरों और विशेषत: अब्बुलफजल तथा फैजी के संबंध में धर्मभ्रष्टता के विचार उत्पन्न होते हैं। और अवश्य ही इसका कारण यह था कि उनके पद और मर्यादा की वृद्धि देखकर ये उनसे जलते थे। उस समय के उपरांत संसार की निंदा करते करते कहते हैं—

"मुझे स्मरण है कि इन बातों के आरंभ में एक सभा में शेख अब्बुलफजल से बातचीत हुई थी। फतहपुर के दीवान

खास में बैठे थे। कहने लगे कि हमें इस्लाम के समस्त लेखकों से दो बातों की शिकायत है। एक तो यह कि जिस प्रकार पैगंबर मुहम्मद साहब की कुछ बातों का वर्णन वर्ष वर्ष का लिखा है, उसी प्रकार और पैगंबरों के हाल नहीं लिखे। मैंने कहा कि किसस्सउल् अंबिया तो ऐसी पुस्तक है। बोले—नहीं, उसमें बहुत संक्षिप्त वर्णन है। अधिक विस्तारपूर्वक लिखना चाहिए था। मैंने कहा कि ये सब बहुत प्राचीन काल की बातें हैं। इतिहास लिखनेवालों को इतनी ही बातों का पता चला होगा। शेष बातों का प्रमाण न मिला होगा। वे बोले कि मेरी बात का यह उत्तर नहीं हो सकता। दूसरे यह कि कोई छोटे से छोटा भी ऐसा पेशा नहीं है जिसका जिक्र औलियाओं के वर्णन की पुस्तकों आदि में न हो। परंतु कवियों ने क्या अपराध किया था जो उनका नाम नहीं लिया? यह बहुत ही आश्चर्य की बात है। समय ने जितना अवकाश दिया, मैंने इसका भी उत्तर दिया। पर कौन सुनता है। मैंने पूछा कि इन प्रसिद्ध धर्मों और संप्रदायों में से तुम्हारी अधिक प्रवृत्ति किसकी ओर है? बोले कि जी चाहता है कि कुछ दिनों तक सब धर्मों को छोड़कर धर्म-रहित जंगल की सैर करूँ। मैंने कहा कि यदि यह बात है तो फिर निकाह और विवाह आदि का बंधन उठा दो तो बहुत अच्छा हो*।

---

* जरा हजरत की फरमाइश तो देखिए; और इनके शौक पर तो ध्यान दीजिए। कैसी कैसी कामनाएँ इनके हृदय में भरी होंगी

"अब्बुलफजल हँसने लगे। उन्हीं दिनों और भी अनेक विषय और समस्याएँ उपस्थित थीं; इसलिये मैंने एकांतवास में जाकर प्राण बचाए और उन लोगों में से भाग निकला। इस प्रकार मैं उन लोगों की दृष्टि से गिर गया। पहला अपनापन पराएपन में बदल गया। अब ईश्वर का धन्यवाद है कि मैं इसी अवस्था में प्रसन्न हूँ। मैंने समझ लिया कि न तो मैं किसी प्रकार की रिआयत के योग्य हूँ और न ये सेवा के योग्य हैं। कभी कभी दूर से ही सलाम कर लेता हूँ और समझ लेता हूँ कि जब तक हम लोगों में परस्पर अनुकूलता न हो, तब तक दूर ही रहना अच्छा है। देखिए आगे भाग्य में क्या लिखा है।

"इस प्रकार के वादविवाद और प्रश्नोत्तरों का क्रमबद्ध इतिहास लिखना असंभव है, इसलिये इतने ही पर संतोष किया। ईश्वर सभी अवस्थाओं में अपने सेवक का रक्षक और सहायक है। उसी के भरोसे इन विषयों पर कुछ लिखने का साहस किया था। और नहीं तो जो कुछ किया है, वह सचेष्टता से दूर है; और ईश्वर साक्षी है कि इन सब बातों के लिखने का मुख्य कारण यही है कि धर्म की यह दुरवस्था देखकर मन में दुःख होता है और जी जलता है। ईश्वर से

जो यह वाक्य मुँह से निकला। और जरा अब्बुलफजल के हृदय की महत्ता को भी देखिए कि इस प्रकार की बातों को कैसे हँसी में डाल देते हैं।

प्रार्थना करता हूँ कि वह मुझे ईर्ष्या, द्वेष और पक्षपात आदि से बचावे।"

सन् ९८७ हि० में लिखते हैं कि चालीस वर्ष की अवस्था में ईश्वर ने मही-उद्दीन नाम का एक पुत्र प्रदान किया। उसका जन्म बसावर में हुआ था। ईश्वर करे, उसे लाभदायक ज्ञान प्राप्त हो और वह सत्कर्म करनेवाला हो।

इन्हीं दिनों में एक स्थान पर लिखते हैं कि मैं सेवा से अलग हो गया था और समझ बैठा था कि अब मेरा नाश हो गया और अस्तित्व ही नहीं रह गया। जन्मभूमि से लौटकर आया। रमजान का महीना था। अजमेर में काजी अली ने मुझे भी बादशाह की सेवा में उपस्थित किया*। उस हजार बीघेवाली वृत्ति का भी जिक्र जो प्रिय समय का नाश करनेवाली है। बादशाह ने कहा कि मैं जानता हूँ। क्या उस आज्ञापत्र में कोई शर्त्त भी लगाई गई थी? निवेदन किया कि हाँ, शर्त्त वही बादशाही सेवा या नौकरी की थी। पूछा कि क्या किसी प्रकार की दुर्बलता थी जो हाजिर न हो सके? गाजीखाँ बदख्शी झट बोल उठे कि भाग्य की दुर्बलता थी। अब्दुलफजल ने भी जोर दिया†। पारिषदों में से एक एक

* देखो परिशिष्ट।

† धन्य है फैजी और अब्दुलफजल का साहस तथा शील कि कठिन समय में भी मुल्ला साहब के संबंध में अच्छी और शुभ बातें कहने से न चूके। और सच तो यह है कि जब उनमें इस प्रकार के इतने गुण थे, तभी तो वे लोग इतने उच्च पदों पर पहुँचे।

ने फिर वही इमाम के पुराने पद के लिये सिफारिश की। यहाँ नमाज और इमाम का पद दोनों ही उठ चुके थे। शहबाजखाँ बख्शी ने निवेदन किया कि सेवा में तो ये सदा ही रहते हैं। बादशाह ने कहा कि हम किसी से बलपूर्वक सेवा नहीं कराना चाहते। यदि यह सेवा करना नहीं चाहता, तो आधी ही जमीन रही। मैंने तुरंत झुककर सलाम किया। मेरा यह उद्दंडतापूर्ण कृत्य बादशाह को बहुत बुरा लगा। उन्होंने मुँह फेर लिया। काजी अली ने फिर निवेदन किया कि इसके विषय में क्या आज्ञा है। शेख अब्दुल नबी सदर अभी तक निकाले नहीं गए थे। लश्कर में ही थे। बादशाह ने कहा कि उनसे पूछो कि बिना सेवा के कितनी भूमि पाने का अधिकारी था। शेख ने अमरोहावाले मौलाना अल्लाहदाद की जबानी कहला भेजा कि बाल बच्चोंवाला है। सुना जाता है कि इसका खर्च भी अधिक है। यदि श्रीमान् इस प्रकार कहते हैं तो सात आठ सौ बीघा तो अवश्य चाहिए। परंतु दरबारवालों ने यह निवेदन भी उचित न समझा और मुझे बादशाही सेवा के लिये विवश किया। लाचार फिर फँस गया। मुझ पर बादशाह की यह सारी नाराजगी केवल इसी लिये थी कि दाग की सेवा के लिये मुझसे कहा गया था और बार बार कहा गया था। फिर मैंने वह सेवा क्यों न स्वीकृत की। लेकिन मैं भी यही समझता और कहता रहा—

شادم که یک سوار ندارم پیاده ام
فارغ ز قید شاهم و از شاهزاده ام

अर्थात्—मैं इस बात से प्रसन्न हूँ कि मैं एक भी सवार नहीं रखता और स्वयं पैदल हूँ। बादशाह और शाहजादे की कैद से छूटा हुआ हूँ।

सबसे बड़ी खूबी की बात यह है कि मुल्ला साहब ने अपने इतिहास में अपनी अथवा दूसरों की कोई बात कहीं छिपाई नहीं है। लिखते हैं कि मजहरी नाम की एक लौंडी थी जो प्राकृतिक सौंदर्य की आदर्श थी। मैं उस पर आसक्त हो गया। उसके प्रेम ने मेरी प्रकृति में ऐसी स्वतंत्रता और स्वच्छंदता उत्पन्न कर दी कि बराबर साल भर तक बसावर में पड़ा रहा। मेरे हृदय की विलक्षण विलक्षण दशाएँ हुईं। सन् ९८९ हि० में वर्ष भर की अनुपस्थिति के उपरांत फतहपुर में जाकर नौकरी पाई। बादशाह उन दिनों काबुल की यात्रा से लौटकर आए थे। शेख अब्दुलफजल से मेरे संबंध में पूछा कि इस यात्रा में यह क्यों नहीं सम्मिलित हुआ था? उसने निवेदन किया कि यह तो उन लोगों में है जिन्हें जीविका-निर्वाह के लिये वृत्ति मिलती है। बात टल गई। काबुल के समीप भी सदर-जहान से कहा था कि जो लोग भाग्यशाली (?) हैं, वे सब साथ हैं या उनमें से कुछ लोग रह गए हैं? दोनों की सूची उप-स्थित करो। तारीख निजामी के लेखक स्वर्गीय ख्वाजा निजाम-उद्दीन से उन्हीं दिनों नया नया परिचय हुआ था; पर वह नया

परिचय भी ऐसा था कि माने सैकड़ों वर्षों का प्रेम हो। उन्होंने सहानुभूति और स्वाभाविक प्रेम से (जो और लोगों के प्रति साधारण रूप से और मेरे प्रति विशेष रूप से था) मुझे बीमार लिखवा दिया और सच लिखवाया था; क्योंकि ईश्वर के साथ किसी विषय का निपटारा करना बहुत सहज है, परंतु मनुष्यों का भय और उनसे होनेवाला लालच बड़ा भारी रोग है। दीर्घकालीन वियोग में उक्त ख्वाजा ने पत्र पर पत्र लिखे कि बहुत विलंब हो गया है। कम से कम लाहौर, दिल्ली, मथुरा जहाँ तक हो सके, स्वागत के लिये आने का अवश्य प्रयत्न करना चाहिए; क्योंकि यह संसार की रीति है और आवश्यक है। और मेरी उस समय यह दशा थी कि एक एक क्षण अमर जीवन से बढ़कर था। परिणाम-दर्शिता का विचार कहाँ और हानि-लाभ का ध्यान कहाँ! आखिर ईश्वर के भरोसे ने अपना काम किया।

تو باخدائے خود انداز کار و خوش دل باش
کہ رحم اگر نکند مدعی خدا بکند

अर्थात्—तू अपने आपको ईश्वर पर छोड़ दे और प्रसन्न रह; क्योंकि यदि तेरा शत्रु तुझ पर दया न करेगा तो ईश्वर तो दया करेगा।

उस अवस्था में कभी कभी स्वप्न में भी अच्छे अच्छे शेर बन जाते थे। एक बार रात को सोते में यह शेर कहा था जिसे बाद में बहुत दिनों तक पढ़ता था और रोता था—

آئینہ ماروے ترا عکس پذیراست
گر تو نہ نمائی گنہ از جانب مانیست

अर्थात्—मेरा हृदय रूपी दर्पण तेरी छाया ग्रहण करने-वाला है। यदि इतने पर भी तू अपना मुख न दिखलावे तो इसमें मेरा अपराध नहीं है।

प्रतिष्ठा और ईश्वर के प्रताप की सौगंध है, आज सत्रह बरस हो गए हैं, पर अब तक उस आनंद का ध्यान मन से नहीं जाता। जब स्मरण करता हूँ, तब फूट फूटकर रोता हूँ। क्या अच्छा होता कि मैं उसी समय पागल हो जाता! नंगे सिर और नंगे पाँव निकल जाता और इस जंजाल से छूट जाता। परंतु उसका लाभ मेरे मन को प्राप्त हुआ। उस दशा में मैंने ऐसी ऐसी बातें समझीं कि यदि कई जन्मों तक लिखता रहूँ और धन्यवाद देता रहूँ, तो भी उसका एक अणु भी व्यक्त न हो सके।

सन् ९९० हि० में आज्ञा दी कि हजरत मुहम्मद साहब की हिजरत के हजार वर्ष पूरे हो गए हैं। सब स्थानों में हिजरी सन् और तारीख लिखी जाती है। अब इतिहास की एक ऐसी पुस्तक लिखी जाय जिसमें इन हजार वर्षों के मुसलमान बादशाहों का इतिहास रहे। अभिप्राय यह था कि यह इति-हास पहले के और इतिहासों को रद्द करनेवाला हो। इसका नाम तारीख अल्फी (अलिफ अक्षर एक हजार की संख्या का सूचक है) रखा जाय। सनों में हिजरत (प्रस्थान) के स्थान

पर रेहलत (मृत्यु) शब्द लिखा जाय। मुहम्मद साहब की मृत्यु के पहले दिन से आरंभ करके एक एक वर्ष का विवरण लिखने के लिये सात व्यक्ति नियुक्त हुए। पहले साल का विवरण लिखने के लिये नकीबखाँ और दूसरे वर्ष का विवरण लिखने के लिये शाह फतहउल्ला नियुक्त हुए। इसी प्रकार हकीम हमाम, हकीम अली, हाजी इब्राहीम सरहिंदी (जो उन्हीं दिनों गुजरात से आए थे), मिरजा निजामउद्दीन अहमद और फकीर (फाजिल बदायूनी) की भी नियुक्ति हुई। दूसरे सप्ताह में फिर इसी प्रकार सात व्यक्ति नियुक्त हुए। इस प्रकार जब पैंतीस वर्षों का विवरण लिखा जा चुका, तब एक रात को मेरा लिखा हुआ सातवें वर्ष का हाल पढ़ा जाता था। उसमें खलीफा हक्कानी शेख सानी (द्वितीय) के समय की कुछ ऐसी दंतकथाएँ थीं जिनके संबंध में शीया और सुन्नी लोगों में मतभेद है। नमाज पढ़ने के पाँच समयों के निर्धारण का उल्लेख था और नसीबैन नगर की विजय का वर्णन था। लिखा हुआ था कि बड़े बड़े मुरगों के बराबर च्यूँटे वहाँ से निकले। बादशाह ने इस संबंध में बहुत अधिक आपत्तियाँ कीं। आसफखाँ सालिस (तृतीय) अर्थात् मिरजा जाफर ने भी मेरा बहुत कुछ विरोध किया। हाँ शेख अब्बुलफजल और गाजीखाँ बदखशी अलबत्ता ठीक ठीक संगति बैठाकर समाधान करते थे। बादशाह ने मुझसे पूछा कि तुमने ये बातें कैसे लिखीं? मैंने कहा कि जो कुछ मैंने ग्रंथों में

देखा, वही लिखा है। अपनी ओर से कोई काट छाँट नहीं की। उसी समय रौजतुउल्अहबाब आदि इतिहास के कई ग्रंथ खजाने से मँगवाकर नकीबखाँ को दिए और कहा कि इस बात की जाँच करो। उन ग्रंथों में जो कुछ था, उसने वही कह दिया। ईश्वर की कृपा से उस व्यर्थ की पकड़ से छुटकारा हुआ। अब मुल्ला अहमद ठठवी को आज्ञा हुई कि छत्तीसवें वर्ष से आगे का विवरण तुम समाप्त करो। यह आज्ञा हकीम अब्बुलफतह की सिफारिश से हुई थी। मुल्ला अहमद कट्टर शीया था। उसने जो कुछ चाहा, वह लिख दिया। उसने चंगेजखाँ के समय तक दो खंड समाप्त किए। एक रात को धार्मिक विरोध के आवेश में मिरजा फौलाद बरलास उसके घर गया और बोला कि तुम्हें हुजूर ने याद किया है। वह घर से निकलकर उसके साथ चल पड़ा। रास्ते में उसने मुल्ला अहमद को मार डाला। स्वयं भी उसने उसका दंड पाया*। फिर सन् ८६० हि० तक का विवरण आसफखाँ

* मुल्ला साहब जैसे पवित्र इतिहास-लेखक हैं, वैसे ही उनका आदर्श भी पक्षपात से रहित होना चाहिए था। परंतु दुःख है कि उन्होंने पीड़ित मुल्ला अहमद के विषय में बहुत ही बुरी बुरी बातें कही हैं। ऐसी बातें कही हैं जिनके लिखने के लिये कलम मारे लज्जा के सिर नहीं उठाती और सभ्यता मुझे आज्ञा नहीं देती कि मैं यह पृष्ठ उसके उद्धरण से गन्दा करूँ। मैं तो शीया भाइयों के कुवाच्यों से ही बहुत दुःखी था; पर इस सुन्नी भाई की बातों ने तो मेरा हृदय जलाकर राख कर दिया!

ने लिखा। सन् १००२ हि० में फिर मुझे आज्ञा हुई कि तुम इस इतिहास की सब बातों का एक सिरे से मिलान करो और सनों आदि में जो भूलें हों, उन्हें ठीक करो। मैंने पहला और दूसरा खंड ठीक किया और तीसरा खंड आसफखाँ पर छोड़ दिया। आईन अकबरी में शेख अब्बुलफजल लिखते हैं कि इस ग्रंथ की भूमिका मैंने लिखी है

महाभारत का अनुवाद भी इसी वर्ष हुआ था। यह हिंदुओं की बहुत प्रसिद्ध पुस्तकों में से है। इसमें अनेक प्रकार की कहानियाँ, उपदेश, नीति, आचार, अध्यात्म, दर्शन, संप्रदाय, धर्म, उपासना आदि का वर्णन है और उसी के साथ साथ भारतवर्ष के शासकों—कौरवों और पांडवों—के युद्ध का भी वर्णन है। इस युद्ध को हुए चार हजार वर्ष हुए; और कुछ लोग कहते हैं कि आठ हजार वर्ष से भी अधिक हुए। देखने में ऐसा जान पड़ता है कि हजरत आदम से भी पहले ये लोग हुए होंगे। भारतवासी इसका पढ़ना और लिखना बहुत पुण्य का कार्य समझते हैं और मुसलमानों से छिपाते हैं। (अकबर पर चोट करके कहते हैं) इस आज्ञा का कारण यह था कि उन्हीं दिनों में सचित्र शाहनामा लिखवाया था और अमीर हम्जा का किस्सा भी पंद्रह वर्ष के समय में सत्रह खंडों में सचित्र प्रस्तुत हुआ था। किस्सा अबूमुस्लिम और जामअ उल् हिकायात को भी दोबारा सुना और लिखवाया था। उस समय विचार यह आया कि ये सब

काव्य हैं और कवियों की उपज हैं। परंतु किसी शुभ समय में लिखी गई थीं और ग्रह नक्षत्र अनुकूल थे, इसलिये इनकी बहुत प्रसिद्धि हो गई थी। पर हिंदी (भारतीय) पुस्तकें बुद्धिमान् ऋषि मुनियों की लिखी हुई हैं जो बिलकुल ठीक और सत्य हैं और हिंदुओं के धर्म तथा उपासना आदि का आधार इन्हीं ग्रंथों पर है। ये पुस्तकें विलक्षण और नई हैं। फिर क्यों न हम अपने नाम से फारसी भाषा में इनका अनुवाद करें? ऐसे ग्रंथों के पठन पाठन से इहलोक और परलोक सुधरता है, अक्षय धन धान्य प्राप्त होता है और वंश की वृद्धि होती है। इसी लिये इसके खुतबे (मंगलाचरण) में भी यही लिखा गया था। इस काम के लिये बादशाह ने अपने ऊपर भी कुछ पाबंदी ली और कुछ पंडितों को इसलिये एकत्र किया कि वे मूल ग्रंथ का आशय और अनुवाद सुनाया करें। कई रात बादशाह स्वयं ही उसका अभिप्राय नकीबखाँ को समझाते रहे। वह फारसी में लिखता गया। तीसरी रात फकीर (मुल्ला साहब) को बुलाकर आज्ञा दी कि नकीबखाँ के साथ मिलकर तुम भी लिखा करो। तीन चार महीने में मैंने अठारह में से दो पर्व लिखकर तैयार किए। इसे सुनाते समय मुझे कौन कौन सी आपत्तियाँ नहीं सुनानी पड़ीं! हरामखोर और शलगमखोरा क्या था? यही संकेत थे। मानो इन ग्रंथों में मेरा अंश यही था। सच है, भाग्य में जो कुछ लिखा रहता है, वह अवश्य होता है। फिर थोड़ा मुल्ला

शीरीं और नकीबखाँ ने लिखा और थोड़ा हाजी सुलतान थानेसरी ने लिखा। फिर शेख फैजी को आज्ञा हुई कि गद्य और पद्य में लिखो। वह भी दो पर्व से आगे न बढ़े। फिर उक्त हाजी ने दोबारा लिखा। पहली बार जो जो त्रुटियाँ रह गई थीं, वे सब इस बार भली भाँति दूर की गईं। सौ जुज बहुत घिच पिच लिखे थे; और ताकीद यह थी कि अनुवाद बिलकुल मूल के अनुरूप हो और उसमें मक्खिकास्थाने मक्खिकावाले सिद्धांत का पालन किया जाय। आखिर हाजी भी एक कारण से भक्कर को निकाला गया। अब वह अपनी जन्मभूमि में है। अनुवाद बतलानेवालों में से बहुतेरे कौरवों और पांडवों के पास जा पहुँचे। जो अवशिष्ट हैं, उन्हें ईश्वर मुक्ति प्रदान करे। इस ग्रंथ का नाम रज्मनामा रखा गया। यह दोबारा सचित्र लिखवाया गया और अमीरों को आज्ञा हुई कि इसे शुभ समझकर इसकी प्रतिलिपियाँ तैयार करावें। शेख अब्बुलफजल ने दो जुज का खुतबा लिखकर इसमें लगाया था।

बख्तावरखाँ ने मिरात उल् आलम में लिखा है कि मुल्ला साहब को इस सेवा के पुरस्कार स्वरूप १५० अशरफियाँ और दस हजार तंगे प्रदान किए गए थे।

सन ९९२ हि० में लिखते हैं कि फकीर को आज्ञा मिली कि रामायण का अनुवाद करो। यह महाभारत से भी पहले का ग्रंथ है। इसमें पचीस हजार श्लोक हैं। प्रत्येक

श्लोक ६५ अक्षरों का है। एक कथानक है कि रामचंद्र अवध के राजा थे। उनको राम भी कहते हैं। लोग उन्हें ईश्वरीय महिमा का प्रकाश (अवतार) समझकर उनकी पूजा करते हैं। उसका संक्षिप्त वर्णन यह है कि दस सिरवाला एक देव उनकी रानी सीता पर आसक्त होकर उसे हर ले गया। वह लंका द्वीप का स्वामी था। रामचंद्र अपने भाई लक्ष्मण के साथ उस द्वीप में जा पहुँचे। उन्होंने बंदरों और भालुओं की बहुत बड़ी सेना एकत्र की। वह सेना असंख्य और अनंत थी। समुद्र पर चार कोस का पुल बाँधा। कुछ बंदरों के संबंध में कहते हैं कि वे कूद फाँदकर समुद्र लाँघ गए और कुछ पैदल चलकर पुल के पार हुए। इसी प्रकार की बुद्धि के बाहर की बहुत सी बातें हैं जिनके विषयों में बुद्धि न तो हाँ कहती है और न नहीं कहती है। जैसे तैसे रामचंद्र बंदर पर सवार होकर पुल से पार हुए। एक सप्ताह तक घनघोर युद्ध हुआ। रामचंद्र ने रावण को बेटों और पोतों समेत मार डाला। हजार वर्ष का वंश नष्ट कर दिया और लंका का राज्य उसके भाई को देकर लौट आए। हिंदुओं का विश्वास है कि रामचंद्र दस हजार वर्ष तक सारे भारतवर्ष पर राज्य करके अंत में अपने ठिकाने (परलोक) पहुँचे। उन लोगों का विश्वास है कि संसार अनादि है और कोई युग मनुष्यों से खाली नहीं रहा। और इस घटना को लाखों वर्ष बीत गए। हजरत आदम को, जिसे सात हजार

वर्ष हुए, मानते ही नहीं। या तो ये घटनाएँ सत्य नहीं हैं, केवल कल्पित कहानियाँ हैं, जैसे शाहनामा और अमीर हम्जा की कहानियाँ; अथवा यदि ये घटनाएँ सत्य भी हों तो उस समय की हैं जिस समय जिन, असुर आदि और पशु इस पृथ्वी पर शासन करते थे। इन दिनों की विलक्षण घटनाओं में से एक यह है कि लोग फतहपुर के दीवानखाने में एक हलालखोर को लाए थे और कहते थे कि पहले यह स्त्री था और अब पुरुष हो गया है। रामायण का अनुवाद करनेवालों में से एक पंडित उसे देख भी आया। वह कहता था कि एक स्त्री है जो लज्जा के मारे घूँघट निकाले हुए है और कुछ बोलती नहीं। अनेक विद्वान् और बुद्धिमान् लोग इस घटना के समर्थन में अनेक प्रकार के तर्क उपस्थित करते थे और कहते थे कि इस प्रकार की अनेक घटनाएँ हुई हैं।

सन् ९९३ हि० आरंभ हुआ। नौ-रोज के ठाठ बाट का क्या वर्णन किया जाय। आईनबंदी (सब स्थानों की सजावट) तो मानों आईन (कानून) में सम्मिलित हो गई थी। बादशाह अमीरों के यहाँ दावतों में गए और भेंट तथा उपहार आदि भी लिए। विशेषता यह हुई कि भेंट और उपहार सब लोगों से लिए। फाजिल बदायूनी लिखते हैं कि यह दीन (मैं) किसी गिनती में नहीं है। हाँ हजार बीघा जमीन के कारण नाम का हजारी है। हजरत यूसुफवाली बुढ़िया का स्मरण करके चालीस रुपए ले गया था जो स्वीकृत हो गए।

. • अब फाजिल बदायूनी दरबार की परिस्थिति और रंग ढंग देखकर बहुत दुःखी होने लग गए थे। समय वह था कि अब्दुल रहीम खानखानाँ के प्रताप की वसंत ऋतु अपना नौ-रोज मना रही थी स्वयं सन् ९९३ हि० में लिखते हैं कि इन्हीं दिनों में मिरजा निजामउद्दीन अहमद ने मुझे गुजरात से लिखा कि खानखानाँ ने यहाँ से प्रस्थान करते समय मुझे वचन दिया है कि मैं बादशाह से निवेदन करके मुल्ला अल्लाहदाद को और तुमको लेता आऊँगा। जब खानखानाँ वहाँ पहुँचें, तब निश्चित नियमों आदि के अनुसार तुम उनसे जाकर मिलो और हुजूर से आज्ञा लेकर उनके साथ चले आओ। यह प्रांत भी बहुत विलक्षण है। जरा यहाँ की भी सैर करो। फिर जैसा विचार होगा, वैसा किया जायगा। फतहपुर के दीवानखाने में पाठागार है। वहीं अनुवादक लोग बैठते हैं। जब खानखानाँ वहाँ आए तो मैं जाकर उनसे मिला। वह झट पट विदा होकर फिर गुजरात चले गए। छुटकारा पाने का जो विचार था, वह मन ही में रह गया। इस बात को भी बहुत दिन बीत गए हैं। सच कहा है कि जो कुछ हम चाहते हैं, वह नहीं होता। जो कुछ ईश्वर चाहता है, वही होता है।

दुःख है कि अब वह समय आता है जब कि इनके मित्र और परिचित आदि इस संसार से चलने लग गए हैं। लिखते हैं कि बादशाह काबुल को जा रहे थे। स्यालकोट के पड़ाव

पर मुल्ला अल्लाहदाद का वियोग हुआ। उसकी हरारत जिगर तक पहुँची। हकीम हसन ने पेट का मल निकालने की दवा दी। दो दिन में वह ईश्वर में लीन हो गए। बहुत अच्छे मित्र थे। ईश्वर उनकी आत्मा पर अनुग्रह करे।

सन् ९९७ हि० में लिखते हैं कि रामायण का अनुवाद करके रात के जल्से में उपस्थित किया। उसकी समाप्ति इस शेर पर हुई थी—

ما قصه نوشتیم به سلطان که رسد
جان سوخته کردیم به جانان که رسد

अर्थात्—मैंने यह कहानी इसलिये लिखी है कि यह बादशाह तक पहुँचे। अपने प्राण इसलिये जला दिए हैं कि वे प्राण-प्रिय तक पहुँचें।

वह अनुवाद बादशाह को बहुत पसंद आया। पूछा कि कितने जुज हुए ? मैंने निवेदन किया कि मसौदा ७८ जुज के लगभग था। साफ होने पर १२० जुज हुए हैं। बादशाह ने आज्ञा दी कि जैसा लेखकों का दस्तूर है, एक भूमिका भी लिख दो। पर अब मन में वह उमंग नहीं रह गई थी। यदि मैं लिखता तो वह ठीक न होती, इसलिये टाल गया। इस कलुषित लेख (रामायण !) के लिये, जो मेरे जीवन के लेख की भाँति नष्ट है, ईश्वर से दया और रक्षा माँगता हूँ। कुफ्र की नकल कुफ्र नहीं है। मैंने बादशाह की आज्ञा से इसे लिखा है और घृणापूर्वक लिखा है। डरता हूँ कि कहीं उसके

फलं स्वरूप फिटकार न मिले। मेरी तोबा, जो आशा की तोबा नहीं है, ईश्वर के द्वार पर स्वीकृत हो।

लिखते हैं कि उन्हीं दिनों में एक दिन अनुवादों की सेवाओं पर ध्यान देकर बादशाह ने हकीम अब्बुलफतह से कहा कि इस समय यह खास हमारा शाल इसे दे दो। पीछे घोड़ा और खर्च भी प्रदान किया जायगा। और शाह फतहउल्ला से कहा कि बसावर का इलाका तुम्हारी जागीर में किया गया। इसमें जो जागीर इमामों को दी गई है, वह भी तुम्हें माफ की गई। फिर मेरा नाम लेकर कहा कि यह जो जवान बदायूनी है, इसकी वृत्ति की भूमि हमने सोच समझकर बसावर से बदायूँ में कर दी। जब मेरा फरमान तैयार हो गया, तब मैं साल भर की छुट्टी लेकर बसावर पहुँचा। वहाँ से बदायूँ आया। विचार था कि गुजरात अहमदाबाद चलकर मिरजा निजामुद्दीन अहमद से मिलूँ; क्योंकि सन् ९९३ हि० में उसने बुला भेजा था, लेकिन मैं और झगड़ों में फँसा रह गया था।

काश्मीर प्रांत में शाहाबाद नाम का एक कस्बा है। वहाँ के रहनेवाले मुल्ला शाह मुहम्मद अनेक विषयों के अच्छे ज्ञाता और पंडित थे। उन्होंने बादशाह की आज्ञा से काश्मीर का इतिहास लिखा था। मुल्ला साहब लिखते हैं कि सन् ९९९ हि० में बादशाह ने फरमाइश की कि इसे अच्छी और मुहावरेदार फारसी भाषा में लिखो। मैंने दो महीने में उसे तैयार करके सेवा में उपस्थित किया। बादशाह ने उसे पसंद किया

और पुस्तकालय में रखवा दिया। वह क्रम से पढ़ी जाती थी। दुःख है कि न तो वह मूल पुस्तक ही और न मुल्ला साहब द्वारा उसकी संशोधित प्रति ही कहीं मिलती है। हाँ अब्बुलफजल ने आईन अकबरी में शाह मुहम्मद की पुस्तक की ओर संकेत किया है और लिखा है कि वह राज-तरंगिणी का अनुवाद था और राजतरंगिणी संस्कृत में है।

एक दिन हकीम हम्माम ने मुअज्जिम उल्बल्दान नामक एक पुस्तक, जो प्रायः दो सौ जुज की होगी, बहुत प्रशंसा करते हुए बादशाह की सेवा में उपस्थित की। कहा कि यह पुस्तक अरबी भाषा में है। यदि फारसी में इसका अनुवाद हो जाय तो बहुत अच्छा हो। इसमें बहुत सी विलक्षण और उपदेश-प्रद कहानियाँ आदि हैं। मुल्ला अहमद ठट्ठा, कासिम बेग, शेख मुनव्वर आदि दस बारह ईरानी और भारतीय एकत्र किए गए और उस पुस्तक के जुज सब लोगों में बाँट दिए गए। अनुवादकों के आराम के लिये फतहपुर के पुराने दीवानखाने में एक पाठागार था। मुल्ला साहब के हिस्से में दस जुज आए थे। एक महीने में तैयार कर दिए और सबसे पहले बादशाह की सेवा में उपस्थित किए। और इसी सेवा को अपनी छुट्टी का साधन बनाया। छुट्टी स्वीकृत हो गई।

यद्यपि मुल्ला साहब की योग्यता और कृति अकबर की गुणग्राहकता को अनुग्रह के मार्ग पर खींच लाती थी, परंतु फिर भी दोनों के विचारों में जो अंतर था, वह बीच में धूल

उड़ाकर काम बिगाड़ दिया करता था। लिखते हैं कि बहुत कुछ सोच विचार के उपरांत पाँच महीने की छुट्टी मिली। छुट्टी माँगने के समय ख्वाजा निजामउद्दीन ने निवेदन किया कि इनकी माता का देहांत हो गया है। बाल बच्चों को सांत्वना देने के लिये इनका वहाँ जाना आवश्यक है। बादशाह ने छुट्टी तो दे दी, पर नाराजगी के साथ। जब मैं चलते समय सलाम करने लगा, तब सदर जहान ने कहा कि सिजदा करो; पर मुझसे न हो सका। बादशाह ने कहा कि जाने दो। बल्कि दुःखी होने के कारण चलते समय मुझे कुछ दिया भी नहीं।

ख्वाजा निजामउद्दीन अपनी जागीर शम्साबाद को जा रहे थे। मैं भी उनके साथ था। अपनी जन्मभूमि में जाकर एक पुस्तक लिखी। उसका नाम नजातउलरशीद रखा। इसी नाम से उसकी तारीख भी निकलती थी। उसकी भूमिका में लिखते हैं कि ख्वाजा साहब ने मुझे छोटे और बड़े अपराधों और पापों की एक सूची दी और कहा कि यह बहुत संक्षिप्त है, विस्तृत और तर्क आदि से युक्त नहीं है। तुम इसे इस प्रकार लिख दो कि न बहुत अधिक विस्तृत ही हो और न बहुत संक्षिप्त ही। मैंने उनकी आज्ञा का पालन करना आवश्यक समझा, आदि आदि।

परंतु आजाद की समझ में तो ये लेखकों के साधारण बहाने हैं। वास्तव में इसमें उन विवाद-ग्रस्त विषयों का

विवेचन है जिन पर उन दिनों धार्मिक विद्वानों अथवा अकबर के दरबारियों में मतभेद था। उसमें महदवी संप्रदाय का भी विस्तृत विवरण है; और वह विवरण ऐसी सुंदरता से दिया गया है कि अनजान लोग यही समझने लगते हैं कि ये भी उसी संप्रदाय पर अनुरक्त थे। पर वास्तविक बात यह है कि मीर सैयद मुहम्मद जौनपुरी असल में इस संप्रदाय के आचार्य थे* और उनके दामाद शेख अब्बुलफजल गुजराती के साथ मुल्ला साहब का बहुत मेल जोल था और उन पर मुल्ला साहब बहुत भक्ति रखते थे। उनके साथ रहकर इन्होंने कई बातें भी जानी और सीखी थीं। इसके अतिरिक्त एक बात यह भी थी कि इस संप्रदाय के आचार्य और अनुयायी सभी लोग शरम के नियमों का पूरा पूरा पालन करते थे। और मुल्ला साहब ऐसे लोगों के साथ बहुत प्रेम रखते थे जो शरअ के अनुसार चलते थे। कदाचित् यही कारण है कि उनकी बातों का मुल्ला साहब ने हर जगह बहुत अच्छी तरह वर्णन किया है।

मुल्ला साहब अपने इतिहास में लिखते हैं कि सन् ६६६ हि० में मैं घर में बीमार हो गया। वहाँ से बदायूँ पहुँचा। बाल बच्चों को भी अपने साथ वहीं लेता गया और अपनी चिकित्सा कराता रहा। मिरजा फिर लाहौर चले गए। मैं घर रहा। सिंहासन बत्तीसी का फारसी अनुवाद पुस्तकालय

---

* शेख अलाई और महदवी संप्रदाय का जो कुछ हाल मिल गया, वह परिशिष्ट में दिया गया है।

में से खो गया था। सलीमा सुल्तान बेगम ने बराबर हुजूर से तगादा करना आरंभ किया। इसलिये हुजूर ने मुझे कई बार स्मरण किया। कई मित्रों के दूत भी बदायूँ पहुँचे। परंतु कुछ ऐसे ही कारण आ उपस्थित हुए कि जिनसे आना न हो सका। बादशाह ने आज्ञा दी कि निर्वाह के लिये उसे जो वृत्ति दी गई है, वह बंद कर दो और आदमी भेजो जो जाकर उसे गिरिफ्तार कर लावे। उक्त मिरजा पर ईश्वर अपार अनुग्रह करे। उन्होंने अंदर ही अंदर मेरी बहुत कुछ सहायता की। शेख अब्बुलफजल ने भी कई बार निवेदन किया कि कोई ऐसी ही बाधा बीच में आ पड़ी होगी। और नहीं तो वह कभी रुकनेवाला नहीं है।

लिखते हैं कि जब बराबर आज्ञाएँ पहुँचने लगीं, तब मैंने बदायूँ से प्रस्थान किया। हुजूर उस समय काश्मीर की यात्रा में थे। भिंभर के पड़ाव पर मैं जा उपस्थित हुआ। हकीम हम्माम ने निवेदन किया कि वह कोर्निश की कामना रखता है। पूछा कि अपने वादे के कितने दिनों बाद आया है? निवेदन किया कि पाँच महीने के बाद। पूछा कि इतना विलंब किस कारण से हुआ? निवेदन किया कि बीमारी के कारण। बदायूँ के प्रसिद्ध लोगों का प्रमाणपत्र और हकीम ऐन उल् मुल्क का निवेदनपत्र भी इसी आशय का दिल्ली से लाया है। सब कुछ पढ़कर सुना भी दिया। बादशाह ने कहा कि बीमारी पाँच महीने की नहीं हुआ करती। और कोर्निश

की आज्ञा नहीं दी। शाहजादा दानियाल का लश्कर रोहतास में पड़ा था। मैं लज्जित, दुःखी और हतोत्साह होकर वहाँ आ पड़ा। उन दिनों शेख फैजी दक्खिन के दूतत्व पर गए हुए थे। जब वहाँ उन्होंने मुल्ला की इस दुर्दशा का समाचार सुना, तो वहाँ से इनकी सिफारिश में एक निवेदनपत्र लिख भेजा। वह फैजी के पत्र-संग्रह में दिया हुआ है। उसमें इनकी योग्यता, निस्पृहता और संतोष आदि की प्रशंसा की है। पर वह सिफारिशी पत्र ठीक समय पर न पहुँच सका। उस समय न तो डाक थी और न तार था। जब लाहौर में आने पर वह पढ़ा गया, तब बादशाह को उसकी सिफारिश का ढंग बहुत पसंद आया। शेख अब्बुलफजल को आज्ञा दी कि अकबरनामे में इसे नमूने के तौर पर सम्मिलित कर लो। इसे फाजिल बदायूनी ने भी अपनी योग्यता का अच्छा प्रमाणपत्र समझा; और यही कारण है कि इसे अपने इतिहास में भी ज्यों का त्यों उद्धृत कर दिया।

खैर; फाजिल साहब शाहजादे के लश्कर में आकर पड़े। लिखते हैं कि उस समय कुछ भी समझ में नहीं आता था कि क्या करूँ और क्या न करूँ। कुछ जप और पाठ आरंभ किया। ईश्वर दीन दुखियों की खूब सुनता है। धन्यवाद है उस ईश्वर को कि मेरी प्रार्थना स्वीकृत हुई। पाँच महीने के उपरांत बादशाही लश्कर काश्मीर से लौटा और लाहौर आने पर ईश्वर ने फिर बादशाह को मुझ पर दयालु किया।

जामः रशीदी इतिहास की बहुत मोटी पुस्तक है। बादशाह उसका अनुवाद कराना चाहता था। मिरजा निजामउद्दीन अहमद आदि कई दयालु तथा अनुकूल मित्रों ने एकांत में, मेरी अनुपस्थिति में, मेरा जिक्र किया। किसी प्रकार मुझे सेवा में उपस्थित होने की आज्ञा मिली। मैं उपस्थित हुआ और एक अशरफी भेंट की। बादशाह ने मेरे साथ बहुत अनुग्रहपूर्ण व्यवहार किया। सारी लज्जा और कठिनता ईश्वर ने सहज में दूर कर दी। जामः रशीदी के अनुवाद की आज्ञा हुई। कहा कि अल्लामी शेख अब्बूलफजल से परामर्श करो। उसमें अब्बासी, मिस्री और बनी उम्मी खलीफाओं का वंश-वृक्ष था जो हजरत आदम से आरंभ होकर हजरत मुहम्मद साहब तक समाप्त होता है। सभी बड़े बड़े पैगंबरों और अंबियाओं के वंश-वृक्ष अरबी से फारसी में लिखकर हुजूर की सेवा में उपस्थित किए जो राजकोष में रख दिए गए।

इसी सन् में लिखते हैं कि तारीख अल्फी के तीन खंडों में से दो तो मुल्ला अहमद राफिजी (शीया) ने और तीसरा आसफखाँ ने लिखा है। मुल्ला मुस्तफा लाहौरी सुलेखक था। वह अपने बंधुओं में से था और अहदियों में नौकर था। मुझे आज्ञा हुई कि इसे साथ लेकर पहले खंड का मिलान करो और उसमें जो भूलें हों, उन्हें ठीक करो। यह काम भी पूरा किया। मेष के सूर्य्य संक्रमण का जशन था। मैंने वही भेंट स्वरूप उपस्थित किया। उसकी बहुत प्रशंसा हुई।

कहा कि उसने पहले बहुत पक्षपातपूर्वक लिखा था। अब तुम दूसरा खंड भी ठीक कर दो। एक बरस उसमें भी लगा। पर अपने पक्षपात के अभियोग से डरकर समय का क्रम ही ठीक किया। उसके विचारों में कोई हेर फेर नहीं किया। मूल ज्यों का त्यों रहने दिया और उसमें कुछ भी परिवर्त्तन नहीं किया। मुझे भय हुआ कि कहीं ऐसा न हो कि कोई और झगड़ा उठ खड़ा हो। मानों रोग को प्रकृति पर छोड़ दिया। अब वह आप ही उसे दूर कर देगी।

एक कहानी है कि कोई आदमी गुठलियों समेत खजूरें खा रहा था। किसी ने पूछा—गुठलियां फेंकते क्यों नहीं ? उसने कहा कि ये गुठलियाँ भी तौल में यों ही चढ़ी हैं। यही दशा मेरी है कि मेरे भाग्य में ऐसा ही लिखा है।

इसी वर्ष ख्वाजा इब्राहीम का देहांत हुआ। ये मेरे विशिष्ट मित्रों में से थे। ख्वाजा इब्राहीम हुसैन ही उनके मरने की तारीख हुई। ईश्वर उनकी आत्मा पर अनुग्रह करे।

इसी वर्ष परमात्मा ने मुझे सामर्थ्य दी। एक कुरान मजीद लिखकर पूरा किया और अपने गुरु शेख दाऊद जहनीवाल की कब्र पर रखा। मेरी और जो पुस्तकें, मेरी कृतियों की भांति कलुषित हैं, आशा है इससे उनका प्रायश्चित्त हो जायगा। यह जीवन काल में मेरा सहायक होगा और मृत्यु के उपरांत मुझ पर दया करावेगा। यदि ईश्वर दया करे तो यह कोई बड़ी बात नहीं।

सन् १००२ हि० में आपत्तियों और शिक्षाओं के ऐसे कोड़े लगे कि अब तक जिन खेलवाड़ों और पापों में लगा हुआ था, उनसे तोबा करने की सामर्थ्य प्राप्त हुई; और ईश्वर ने मेरे दुष्कर्मों से मुझे अभिज्ञ किया। शुभ शकुन के रूप में उसकी तारीख कही—"इस्तक़ामत" (दृढ़ता)। कवि-सम्राट् फैजी ने अरबी में इस संबंध की एक छोटी कविता भी कही थी।

मिरजा निजाम उद्दीन बादशाही सेवाओं में कुलीचखां जैसे पुराने सरदार के साथ लाग डाँट रखता था। उसने बादशाह के हृदय में घर कर लिया था। वह बड़ी फुरती और चालाकी से साम्राज्य के कार्यों का निर्वाह करता था। उसकी मितव्ययता, चतुरता, सुशीलता, परिश्रम और ईमानदारी के कारण बादशाह उस पर बहुत अनुग्रह करने लगे थे और उसका बहुत विश्वास करते थे। इसलिये कुलीचखाँ तथा और और अमीरों को, जो बादशाह का मिजाज पहचानते थे और उसके पास से अलग नहीं हो सकते थे, इधर उधर भेज दिया। इस पर वे अनेक प्रकार से कृपा करना चाहते थे। वे चाहते थे कि इसमें जो अनेक गुण वृद्धि के योग्य हैं, उन्हें प्रकट करें और प्रकाश में लावें। अचानक ठीक उन्नति और उत्कर्ष के समय ऐसा भारी आघात पहुँचा, जिसकी अपने या बेगाने किसी को आशा नहीं थी। वह विषम ज्वर से पीड़ित होकर ४५ वर्ष की अवस्था में इस असार संसार से चला गया। वह कीर्त्ति के अतिरिक्त और कुछ भी अपने साथ

नहीं ले गया। उसकी सुशीलता और सद्व्यवहार के कारण बहुत से मित्रों को अनेक आशाएँ थीं। विशेषतः मुझ दीन को तो और भी आशा थी; क्योंकि मैं उसके साथ हार्दिक प्रेम और अपनायत रखता था। मेरा संबंध सांसारिक कामनाओं से रहित और स्वच्छ था। आँखों से हसरत के आँसू बहाए, छाती पर निराशा का पत्थर मारा। परंतु अंत में धैर्य और संतोष के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं देखा। यही अच्छे लोगों का स्वभाव है और यही संयमी लोगों की उपासना है। इस दुर्घटना को अपने लिये बहुत बड़ी विपत्ति समझकर इसे भारी शिक्षा का साधन माना। निश्चय कर लिया कि अब किसी के साथ प्रेम और मित्रता नहीं करूँगा। मैंने एकांत-वास ग्रहण किया।

रावी नदी के तट पर पहुँचे थे कि जीवन-नौका किनारे लग गई। यह घटना २३ सफर सन १००३ हि० की है। वहाँ से रत्थी लाहौर लाए। लाश उन्हीं के बाग में गाड़ी गई। साधारण और विशिष्ट सभी प्रकार के लोगों में से बहुत कम ऐसे होंगे, जो उनके जनाजे पर न रोए हों और उनके सद्व्यवहार को स्मरण करके विकल न हुए हों। मुल्ला साहब ने भी उनकी मृत्यु पर थोड़ी सी, पर बहुत ही शोकपूर्ण और हृदयद्रावक कविता की है।

उन्होंने भी भारतवर्ष का एक इतिहास लिखा था जिसमें अकबर के अड़तीस वर्षों का विस्तृत विवरण है। उसका नाम

तबकाते अकबरी है। मुल्ला साहब ने सन् १००१ निजामी से उसकी तारीख कही थी और उसका नाम तारीख निजामी रखा था। उसमें सभी बातें बहुत ही स्पष्ट और बिना किसी प्रकार की अत्युक्ति आदि के लिखी हैं जिनसे उनके वास्तविक स्वरूप का पता लगता है। ऐसा जान पड़ता है कि न तो वे किसी से प्रसन्न हैं और न किसी से अप्रसन्न हैं। जिसकी जो कुछ बात है, वह ज्यों की त्यों लिख दी है।

इसी वर्ष में लिखते हैं कि अकबर के राज्यारोहण का चालिसवाँ वर्ष आरंभ हुआ। जशन के अवसर पर संक्रमण से दो दिन पहले दीवान खास में झरोखे पर बादशाह बैठे थे। मुझे बुलाया। मैं ऊपर गया। आगे बुलाया और शेख अब्बुलफजल से कहा कि हम तो शेख अब्दुलकादिर को साधु प्रकृति का समझे हुए थे और समझते थे कि इसने अपने आप को ईश्वर के मार्ग पर लगा दिया है। वह तो शरअ का ऐसा कट्टर अनुयायी निकला, जिसके कट्टरपन की गरदन की रग को कोई तलवार काट ही नहीं सकती। शेख ने पूछा कि हुजूर ने इनकी किस पुस्तक में क्या लिखा देखा जो ऐसा कहते हैं? कहा कि इसी रज्मनामा (महाभारत) में। हमने रात को नकीबखाँ को गवाह कर दिया। उसने कहा कि उन्होंने अपराध किया। मैंने आगे बढ़कर निवेदन किया कि यह सेवक तो केवल अनुवादक था। जो कुछ भारतीय बुद्धिमानों ने लिखा था, उसका ज्यों का त्यों अनुवाद कर दिया।

यदि अपनी ओर से कुछ लिखा हो तो अवश्य अपराध किया और बहुत बुरा किया। शेख ने यही अभिप्राय निवेदन कर दिया। बादशाह चुप हो रहे।

इस आपत्ति का कारण यह था कि मैंने रज्मनामे में एक कथा लिखी थी। उसका विषय यह था कि हिंदुओं में से एक पंडित ने मृत्यु-शय्या पर लोगों से कहा था कि अज्ञान की सीमा से पैर बाहर निकालकर मनुष्य को पहले परब्रह्म परमात्मा को पहचानना चाहिए और बुद्धि के मार्ग पर चलना चाहिए। ज्ञान प्राप्त करके उसके अनुसार कार्य भी करना चाहिए, क्योंकि बिना इसके ज्ञान का कोई फल नहीं हो सकता। उसे शुभ मार्ग ग्रहण करना चाहिए और जहाँ तक हो सके, दुष्कर्म तथा पाप से बचना चाहिए। उसे निश्चित रूप से समझ रखना चाहिए कि उसके प्रत्येक कार्य का विचार होगा। उसी स्थान पर मैंने यह मिसरा भी लिख दिया था—

هر عمل اجرے ؛ هر کردہ جزائے دارد

अर्थात्—प्रत्येक कार्य का प्रतिफल होता है और प्रत्येक कृत्य का परिणाम होता है। (अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।)

इसी कारण बादशाह का यह कहना था कि मैंने अंत समय में लोगों के कामों की होनेवाली जाँच आदि को बिलकुल ठीक लिख दिया है।' बादशाह पुनर्जन्म का सिद्धांत मानते थे और इसी लिये मेरे इस कथन को उस सिद्धांत के

विरुद्ध समझकर मुझ पर कट्टरपन का अपराध लगाते थे। अंत में मैंने बादशाह के पार्श्ववर्त्तियों को समझाया कि हिंदू लोग शुभ और अशुभ कर्मों को मानते हैं। उनका विश्वास है कि जब कोई व्यक्ति मरता है, तो उसके समस्त जीवन की सब बातें लिखनेवाला उसे आत्माओं पर शासन करनेवाले फरिश्ते के पास ले जाता है। उसका नाम धर्मराज है। वह अच्छे और बुरे कार्यों की तुलना करके उसकी कमी बेशी निकालता है; फिर मरनेवाले से पूछते हैं कि पहले स्वर्ग में चलकर सुख भोगोगे या नरक में चलकर कष्ट सहोगे? जब दोनों श्रेणियाँ पूरी हो चुकती हैं, तब आज्ञा होती है कि फिर संसार में जाओ। फिर वह किसी उपयुक्त योनि में जाकर जीवन व्यतीत करता है और इसी प्रकार उसका आवागमन होता रहता है। अंत में उसका मोक्ष होता है और वह आवागमन से छूट जाता है। तात्पर्य यह कि यह आई हुई विपत्ति भी सहज में टल गई।

सूर्य संक्रमण के दिन सदरजहान से कहा कि अजमेर में ख्वाजा साहब के रौजे पर कोई मुतवल्ली नहीं है। यदि फाजिल बदायूनी को उस स्थान पर नियुक्त कर दें तो कैसा हो? सदरजहान ने कहा कि बहुत अच्छा हो। मैं दो तीन महीनों तक दरबार में बहुत दौड़ता फिरा कि इन झंझटों से छूट जाऊँ। कई बार निवेदनपत्र भी दिए। मेरा जी चाहता था कि छुट्टी लूँ। ईद की रात को सदरजहान ने निवेदन

किया कि इसकी छुट्टी के विषय में क्या आज्ञा होती है? कहा कि यहाँ इसे बहुत काम है। कभी कभी कोई सेवा निकल आती है। इसे यहीं रहने दो और अजमेर के लिये कोई और आदमी ढूँढ़ लो। ईश्वर की इच्छा इस संबंध में मेरे अनुकूल नहीं हुई। ईश्वर ही जाने कि वह क्यों मुझे इस प्रकार दर दर भटका रहा है।

उन्हीं दिनों में एक दिन शेख अब्दुलफजल से मेरे सामने कहा कि यद्यपि फाजिल बदायूनी अजमेर की सेवा भी बहुत अच्छी तरह कर सकता है; पर हम इसे प्रायः अनुवाद के लिये चीजें देते रहते हैं। यह बहुत अच्छा अनुवाद करता है और ठीक हमारे इच्छानुसार लिखता है। इसे अपने पास से पृथक् करने का जी नहीं चाहता। शेख ने भी तथा अन्यान्य अमीरों ने भी इस बात का समर्थन किया। उसी दिन आज्ञा हुई कि जो अफसाने हिंदी काश्मीर के बादशाह जैनउल् आबिदैन की आज्ञा से थोड़ा सा अनुवादित हो चुका है और जिसका नाम बहर उल् इस्मा रखा गया है, उसका जो बहुत सा अंश बाकी बचा हुआ है, उसे पूरा कर दो। उसका उत्तरार्द्ध, जिसके साठ जुज हैं, पाँच महीने में लिखकर पूरा कर दिया। उन्हीं दिनों में एक रात को शयनागार में अपने सिंहासन के पास बुलाया और प्रातःकाल तक भिन्न भिन्न विषयों पर बातें करते रहे। फिर कहा कि बहर-उल् इस्मा के पहले खंड का जो अनुवाद जैन उल् आबिदैन

ने कराया था, उसकी फारसी पुरानी और अप्रचलित है। उसे भी सुबोध भाषा में लिखो। और जो पुस्तकें तुमने लिखी हैं, उनके मसौदे तुम स्वयं अपने पास रखो। मैंने जमीन चूमकर हृदय से स्वीकृत किया और कार्य आरंभ किया। (मुबारक हो। चलो जमीन चूमने की कसम तो टूटी।) बादशाह ने बहुत कृपा की। दस हजार तंगे और एक घोड़ा इनाम में दिया। ईश्वर चाहेगा तो यह पुस्तक भी शीघ्र ही दो तीन महीने के अंदर और बहुत सुंदरतापूर्वक लिखी जायगी। और जन्मभूमि जाने के लिये छुट्टी भी, जिसके लिये प्राण दे रहा हूँ, मिल जायगी। ईश्वर सर्व-शक्तिमान् है और प्रार्थनाएँ स्वीकृत करना ही उसे शोभा देता है।

दुःख है कि अब वह समय आया कि इनके साथियों के डेरे खेमे चले जाते हैं और ये दुःख कर रहे हैं। सन् १००३ हि० के अंत में रो रोकर कहते हैं कि दो और घनिष्ठ मित्र चले गए। शेख याकूब काश्मीरी, जिनका उपनाम सेरफी था, दरबार से छुट्टी लेकर अपने घर गए थे। वहाँ उनका शरीरांत हो गया। हकीम जैनउल्मुल्क राजा अलीखाँ के पास राजदूत बनकर गए थे और वहाँ से लौटकर अपनी जागीर हँडिया में आए थे। वहाँ ०७ जी-हिज्ज को उनका देहांत हो गया। उनकी और जलालखाँ कोरची की सिफारिश से ही मुल्ला साहब अकबर के दरबार में पहुँचे थे। देखता हूँ कि सभी मित्र एक एक करके मेरी संगति से विरक्त होते जाते हैं और परलोक को दौड़ गए हैं

अथवा दौड़े जाते हैं। और हम वही हृदय की कलुषता तथा विकलता लिए हुए और परिणाम का कुछ भी विचार न करते हुए व्यर्थ बेहूदापन में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

मुहर्रम सन् १००४ हि० में हकीम हसन गैलानी का भी देहांत हो गया। वह बहुत ही साधु प्रकृति का, दयालु और सद्व्यवहार करनेवाला व्यक्ति था।

इन्हीं दिनों में कुछ लोग चारों प्रकार से अपनी भक्ति प्रकट करते हुए बादशाह के शिष्यों और अनुयायियों में सम्मिलित हुए। उन्होंने दाढ़ियों तक की सफाई कर डाली। उनमें से कुछ तो प्रकांड विद्वान् थे और कुछ फकीरी करनेवाले खानदानी शेख थे और कहते थे कि हम हजरत गौस उल्सकलैन की औलाद हैं। और हमारे संप्रदाय के आचार्य शेख ने बतलाया है कि भारतवर्ष का बादशाह कंपित (विचलित) हो गया है। तुम जाकर उसको बचाओगे, आदि आदि। मुल्ला साहब उनकी बहुत दिल्लगी उड़ाते हैं और उनकी मुँड़ी हुई दाढ़ियों पर धूल डालकर कहते हैं कि "मूतराश चन्द" (मू-तराश का अर्थ है बाल काटनेवाले) तारीख हुई।

इसी सन् में १० सफर को शेख फैजी का भी देहांत हो गया। उनके मरने का हाल बहुत खराबी के साथ लिखकर कहते हैं कि थोड़े ही दिनों में हकीम हम्माम भी इस संसार से चले गए। दूसरे ही दिन कमालाए सदर का भी देहांत हो गया। दोनों के घरों पर उसी समय से बादशाही

पहरे बैठ गए और कोषागार में ताले लग गए। उनके शव के लिये कफन के चीथड़े भी नहीं मिल रहे थे। यहाँ इतिहास समाप्त करते हैं और कहते हैं कि यह दशा थी उन अंगों की जिनसे संसार का संघटन हुआ था। सन् १००४ हि० का सफर का महीना है और बादशाह के राज्यारोहण का चालिसवाँ वर्ष है, जब कि मुझ भग्न-हृदय की टूटी हुई कलम से यह बात लिखी गई है। मैंने बिना कोई बात बढ़ाए घटाए इस लेख की लड़ी में पिरो दिया है। यद्यपि विस्तार के विचार से मेरा लेख समुद्र में एक बुलबुला है और वर्षा के जल में से एक बूँद है, तथापि जो कुछ लिखा है, वह सोच समझकर लिखा है और आपत्तियों से बचाकर लिखा है।

तारीख निजामी के लेखक ने अपने समय के बहुत से अमीरों के विवरण लिखे हैं, पर उनमें से अधिकांश बिना किसी प्रकार की कृपा या विशेषता संपादित किए हुए चले गए। मैंने उन व्यर्थ के लोगों का वर्णन करके अपनी कलम खराब नहीं की। पुस्तक के अंत में लिखते हैं कि शुक्रवार २३ जमादी उलसानी सन् १००४ हि० को वचन-विस्तार का संकोच करके इतने पर ही बस करता हूँ। दुःख यह है कि इसी वर्ष में पुस्तक समाप्त की और इसी वर्ष के अंत में स्वयं भी समाप्त हो गए। मरने के समय ५७ वर्ष की अवस्था थी। जन्मभूमि इन्हें बहुत प्रिय थी। ये वहीं मरे और वहीं की मिट्टी में मिल गए। ऐसे गुणी और योग्य व्यक्तियों का मरना बहुत

ही दु:ख की बात है। इन्होंने अपने समय के साथियों के मरने को कैसी सुंदरता से प्रकट किया। पर इनके उपरांत कोई ऐसा नहीं था जो इनके गुणों के योग्य इनके संबंध में दु:ख प्रकट करता। इनके मरने पर शोक करना मानों गुणों के अनुत्तराधिकार पर शोक करना है।

खुशगो ने अपने तजकिरे (उल्लेख) में लिखा है कि बदायूँ के पास अतापुर में, आम के बाग में, ये गाड़े गए। मैं कहता हूँ कि उस समय ये नाम और स्थान रहे होंगे। अब तो नगर से दूर एक खेत में तीन चार कब्रें हैं जिन पर आम के तीन चार वृक्ष हैं। वह स्थान मुल्ला का बाग कहलाता है। लोग कहते हैं कि इन्हीं कबरों में से कोई एक मुल्ला साहब की भी कबर है। संभव है कि खुशगो के उपरांत किसी समय यह स्थान मुल्ला का बाग भी कहलाया होगा। अतापुर का आज कोई नाम भी नहीं जानता। हाँ जिस महल्ले में मुल्ला साहब के घर थे, वह महल्ला अब तक सब लोग जानते हैं। वह महल्ला पतंगी टीला कहलाता है। वह सैयद बाड़े में है। परंतु वहाँ घर या टीले का कोई चिह्न नहीं है। वहाँ के लोग यह भी कहते हैं कि संतान का क्रम एक कन्या पर ही समाप्त हो गया। उस कन्या के वंशज अवध प्रांत के खैराबाद नामक स्थान में अब तक रहते हैं।

अकबर के समय में मुल्ला साहब के इतिहास का प्रचार नहीं हुआ। मुल्ला साहब ने उसे बहुत सचेष्टतापूर्वक अपने

पास गुप्त रखा। जहाँगीर के समय में इस पुस्तक की चर्चा आरंभ हुई। बादशाह ने भी देखी। उसने आज्ञा दी कि इसने मेरे पिता को बदनाम किया है, इसलिये इसके पुत्र को कैद कर लो और इसका घर लूट लो। इसलिये इनके उत्तराधिकारी पकड़ मँगाए गए। उन्होंने कहा कि हम लोग तो उस समय बहुत छोटे थे। हमें इन सब बातों का कुछ भी पता नहीं। उनसे मुचलके लिए कि यदि हमारे पास यह पुस्तक निकले तो हमें जो चाहो, वह दंड दो। पुस्तक-विक्रेताओं से भी मुचलके लिए गए कि हम यह इतिहास न तो खरीदेंगे और न बेचेंगे। खाफीखाँ ने शाहजहान के समय से लेकर मुहम्मद शाह तक का समय देखा था। वह उक्त विवरण लिखकर कहता है कि आश्चर्य है कि इतनी अधिक कड़ाई होने पर भी स्वयं राजधानी में सब पुस्तक-विक्रेताओं की दूकानों पर सबसे अधिक बदायूनी का यह इतिहास ही देखने में आता है। सब लोगों में यह बात बहुत अधिक प्रसिद्ध हो गई थी कि बादशाह इस पुस्तक पर बहुत नाराज हैं। इसलिये कासिम फरिश्ता देहलीवाले, शेख नूर उलहक (शेख अब्दुल हक मुहद्दस के पुत्र) और तारीख जैद के लेखक ये तीन ऐसे इतिहासज्ञ थे जो जहाँगीर के शासन-काल में इतिहास लिख रहे थे। पर इन तीनों में से किसी ने भी मुल्ला साहब के इस इतिहास का कोई उल्लेख नहीं किया।

सूर्यकुमारी पुस्तकमाला

(१) ज्ञान-योग

पहला खंड

सूर्य्यकुमारी पुस्तकमाला का पहला ग्रंथ स्वामी विवेकानंदजी के ज्ञानयोग संबंधी व्याख्यानों का संग्रह है। इसमें स्वामीजी के निम्नलिखित १६ व्याख्यान हैं—(१) धर्म्म की आवश्यकता, (२) मनुष्य की वास्तविक प्रकृति, (३) माया और भ्रम, (४) माया और ईश्वर की भावना, (५) माया और मोक्ष, (६) पूर्ण ब्रह्म और अभिव्यक्ति, (७) ईश्वर सबमें है, (८) साक्षात्कार, (९) भेद में अभेद, (१०) आत्मा की स्वतंत्रता, (११) सृष्टि [स्थूल जगत्], (१२) अंतर्जगत वा अंतरात्मा, (१३) अमृतत्व, (१४) आत्मा, (१५) आत्मा, उसका बंधन और मोक्ष, (१६) दृश्य और वास्तव ब्रह्म। पृष्ठ-संख्या ३७१, सुंदर रेशमी जिल्द, मूल्य २॥)

(२) करुणा

यह प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता श्रीयुक्त राखालदास वंद्योपाध्याय के ऐतिहासिक उपन्यास का अनुवाद है। इसमें दिखलाया गया है कि किसी समय गुप्त-साम्राज्य कैसा वैभवशाली था और अंत में किस प्रकार उसका नाश हुआ। इस पुस्तक में आपको गुप्त-कालीन भारत का बहुत अच्छा सामाजिक तथा राजनीतिक चित्र मिलेगा। आप समझ सकेंगे कि यहाँ का वैभव किस प्रकार एक ओर बर्बर हूणों के बाहरी आक्रमण तथा दूसरी ओर वैदिक धर्म्म से द्वेष रखनेवाले बौद्धों के आंतरिक आक्रमण के कारण नष्ट हुआ। बढ़िया एंटिक कागज और रेशमी कपड़े की सुनहरी जिल्द, पृष्ठ-संख्या सवा छः सौ के लगभग। मूल्य ३॥)

(३) शशांक

यह भी राखाल बाबू का ऐतिहासिक उपन्यास है। गुप्त साम्राज्य के ह्रास-काल से इसका संबंध है। इसमें सातवीं शताब्दी के आरंभ के भारत का जीता-जागता सामाजिक और ऐतिहासिक चित्र दिया गया है। जिन लोगों ने 'करुणा' को पढ़ा है, उनसे इस संबंध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। पर जिन लोगों ने उसे नहीं देखा है, उनसे हम यही कहना चाहते हैं कि इन दोनों उपन्यासों के जोड़ के ऐतिहासिक उपन्यास आपको और कहीं न मिलेंगे। मूल्य ३)

(४) बुद्ध-चरित्र

यह अँगरेजी के प्रसिद्ध कवि सर एडविन आर्नल्ड के "लाइट आफ एशिया" के आधार पर स्वतंत्र ललित काव्य है। यद्यपि इसका ढंग एक स्वतंत्र हिंदी काव्य के रूप पर है, किन्तु साथ ही मूल पुस्तक के भावों को स्पष्ट किया गया है। प्रायः शब्द भी वही रखे गए हैं जो बौद्ध शास्त्रों में व्यवहृत होते हैं। कविता बहुत ही मधुर, सरस और प्रसाद-गुणमयी है जिसे पढ़ते ही चित्त प्रसन्न हो जाता है। छप्पन पृष्ठों की भूमिका में काव्य-भाषा पर बड़ी मार्मिकता से विचार किया है। दो रंगीन और चार सादे चित्र भी दिए गए हैं जिनमें दो सहस्र वर्ष पहले के दृश्य हैं। एंटिक कागज और कपड़े की सुनहरी जिल्द, पृष्ठ-संख्या लगभग तीन सौ। मूल्य केवल २॥)

(५) ज्ञान-योग

दूसरा खंड

यह स्वामी विवेकानंदजी के ज्ञान-योग संबंधी व्याख्यानों का, जो स्वामीजी ने समय समय पर युरोप और अमेरिका में दिए थे, संग्रह है। इसमें कर्म वेदांत की मीमांसा करते हुए बतलाया गया है कि विश्वव्यापी धर्म का आदर्श, उसकी प्राप्ति का मार्ग और सुख का मार्ग

क्या है। आत्मा और परमात्मा का क्या स्वरूप है, विश्व का क्या विधान है, धर्म का लक्षण क्या है, आदि आदि। जो लोग वेदांत का रहस्य जानना चाहते हैं, उनके लिये यह ग्रंथ बहुत ही उपयोगी है। वेदांत दर्शन के प्रेमियों और स्वामीजी के भक्तों को इस ग्रंथ का अवश्य संग्रह करना चाहिए। पृष्ठ-संख्या ३२६ के लगभग, मूल्य २॥)

(६) मुद्रा-शास्त्र

हिंदी में मुद्रा-शास्त्र संबंधी यह पहला और अपूर्व ग्रंथ है। मुद्राशास्त्र के अनेक विदेशी विद्वानों के अच्छे अच्छे ग्रंथों का अध्ययन करके यह लिखा गया है। मुद्रा का स्वरूप, उसके विकास की रीति, उसके प्रचार के सिद्धांत, उत्तम मुद्रा के कार्य्य, मुद्रा के लक्षण और गुण, राशि-सिद्धांत, उसके विकास की कथा, क्रय-शक्ति पर उसके प्रभाव, मूल्य संबंधी सिद्धांत, मूल्य-सूची और उसका उपयोग, द्विधातवीय मुद्राविधि का स्वरूप आदि का इसमें विस्तृत विवेचन है। मुद्रा-शास्त्र की सभी बातें इसमें बतलाई गई हैं। विद्या-प्रेमियों को इस नए विज्ञान से परिचित होना चाहिए। पृष्ठ-संख्या ३२५ के लगभग, मूल्य २॥)

(७) अकबरी दरबार

पहला भाग

उर्दू, फारसी आदि के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय शम्सुल उल्मा मौलाना मुहम्मद हुसेन साहब आज़ाद कृत 'दरबारे अकबरी' का यह अनुवाद है। इसमें बादशाह अकबर की जीवनी विस्तार के साथ देकर बतलाया गया है कि उसने कैसे कैसे युद्ध किए, किस प्रकार राज्य-व्यवस्था की, और उसका धार्मिक विश्वास आदि कैसा था। इससे उसके दरबार के वैभव का परिचय हो जाता है। प्रत्येक साहित्य-प्रेमी के काम की पुस्तक है। पृष्ठ-संख्या चार सौ से ऊपर, मूल्य २॥)।

(८) पाश्चात्य दर्शनों का इतिहास

विषय नाम से ही प्रकट है। इसमें लेखक ने पाश्चात्य दर्शन-शास्त्र की आलोचना करके बतलाया है कि किस सिद्धांत को किस दार्शनिक ने कब स्थापित किया। वहाँ के दर्शन-शास्त्रियों की मुख्य शाखा-प्रशाखाओं का विवेचन पढ़ लेने से पाठक को उनका ज्ञान हो जाता है। एंटिक कागज, पृष्ठ-संख्या पौने पाँच सौ, अच्छी जिल्द, मूल्य २॥)।

(९) हिंदू राज्यतंत्र

पहला खंड

इसके मूल लेखक श्रीयुक्त काशीप्रसाद जायसवाल, एम० ए०, बार-एट-लॉ हैं। इस ग्रंथ में लेखक ने वेद, वेदांग और पुराण आदि के प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि भारतीय आर्यों में वैदिक समितियों की, गणों की और एकराज तथा साम्राज्य-शासन-प्रणालियाँ मौजूद थीं। इस पुस्तक ने उन सब विदेशी आक्षेपों का खंडन कर दिया है जो भारतीय शासन-प्रणालियों का अस्तित्व स्वीकृत नहीं होने देते थे। अपने ढंग की विचित्र पुस्तक है। देश-विदेश में सर्वत्र इस ग्रंथ की प्रशंसा हो रही है। एंटिक कागज, पृष्ठ-संख्या ४००, सुंदर जिल्द। मूल्य सिर्फ ३॥)।

मिलने का पता—

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग